चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी महाराज

आध्यात्मिक ज्योति

धर्मदिवाकर सुमेरुचन्द्र दिवाकर

बी ए , एलएल बी , शास्त्री, न्यायतीर्थ

सिवनी (म.प्र.)

आध्यात्मिक ज्योति

लेखक : सुमेरुचन्द्र दिवाकर, सिवनी
प्रस्तुति : डॉ चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
सस्करण : द्वितीय, ३५०० प्रतियाँ, श्रुतपचमी, वि स २०५७, ६ जून २०००
संकल्पना : निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर © ४४०५७८
मुद्रक : हिन्दुस्तान प्रिन्टिग हाउस, जोधपुर © ४३३३४५
अर्थ सौजन्य १ कान्ति भाई जवेरी
C/o निहालचन्द गिरधारीलाल जवेरी
९८, जवेरी बाजार, मुम्बई - ४०० ००२
२ श्री दिगम्बर जैन समाज
C/o श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन पचायत
मदनगज-किशनगढ (राज)
३ घाटलिया ताराचन्द दाडमचन्द
जैन ब्रदर्स, ग्राम-पारसोला, तहसील-धरियावद
जिला-उदयपुर (राजस्थान)
४ कुन्थीलाल बैद, चिरजीलाल पाटनी
फर्म - धर्मसागर मार्बल, मदनगज-किशनगढ (राज)
५ (ब्र) इन्द्रसेना जैन
आर-२, राज विश्वविद्यालय परिसर, जयपुर (राज)
६ मदनलाल डूगरमल गगवाल, डेह वाला
बी-३/३८३, पहली मजिल, पश्चिम विहार, नई दिल्ली
७ ब्र गोपीचदजी छाबडा (चदलाई वाले)
फर्म-निर्मलकुमार छाबडा, अकुर इण्डस्ट्रीज, रायपुर (म प्र)
८ नन्दलालजी मागीलालजी छाबडा
किराडा बडा निवासी, डीमापुर (नागालैण्ड)
प्राप्ति स्थान राजकुमार दोसी
सचिव, आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट
'कुन्दनम्', २४/२५ माहेश्वरी कॉलोनी
रवीन्द्र रगमच के पास, मदनगज किशनगढ (अजमेर)
© ४५१५१, ४५१४१ (नि), ४५१२१, ४५१३१ (ऑ)

आभार

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के दीर्घ सान्निध्य का मुझे इस जीवन मे सुअवसर मिला था। आचार्यश्री बस आचार्यश्री ही थे, उनके गुण उन्हीं मे थे। उस अद्वितीय विभूति की प्रेरणास्पद जीवनचर्या हम सबके लिए प्रेरक बने, इसी उद्देश्य से मेरी भावना प सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर की कृति 'आध्यात्मिक ज्योति' को पुनर्प्रकाशित कर वितरित करने की हुई, जिसकी पूर्ति वर्तमान सघनायक पू आचार्य श्री वर्धमानसागरजी के एव सघ के आशीर्वाद से आज हो रही है। मै आचार्यश्री एव समस्त सघ के प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूँ।

इस कृति की सशोधित पाण्डुलिपि मुझे प सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर के अनुज श्री अभिनन्दनकुमार जी दिवाकर के सौजन्य से प्राप्त हुई, एतदर्थ मै आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ।

प्रकाशन मे सहयोगी सभी दातार एव अन्य महानुभाव मेरी बधाई के पात्र हैं।

- कान्तिभाई जवेरी, मुम्बई

卐 卐 卐

अभिनन्दनकुमार दिवाकर
एम ए , एलएल बी
एडवोकेट

☎ २०१०९
दिवाकर सदन
गाँधी चौक,
सिवनी (म प्र) ४८०६६१

॥ प्रणति ॥

आर्ष परम्परा के महान् पुनर्स्थापक, श्रमणराज चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज की अप्रतिम सल्लेखना के उपरान्त आदरणीय पूज्य बडे भाईसाहब श्री सुमेरुचन्द्र दिवाकर द्वारा लिखित ग्रन्थ आध्यात्मिक ज्योति का पुनर्प्रकाशन पूज्य आचार्यश्री वर्धमानसागरजी महाराज के आशीर्वाद अनुकम्पा से हो रहा है. यह प्रसन्नता की बात है। उन महर्षि साधुराज का पुण्य- जीवन आज धर्म और सामाजिक सस्कृति मे व्याप्त विसगतियो एव विषमताओ का मेरी दृष्टि में पूर्ण समाधान है।

ग्रन्थप्रकाशन हेतु पूज्य आचार्यश्री के प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

गुरु-चरण-सेवक
अभिनन्दन दिवाकर

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज

आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज
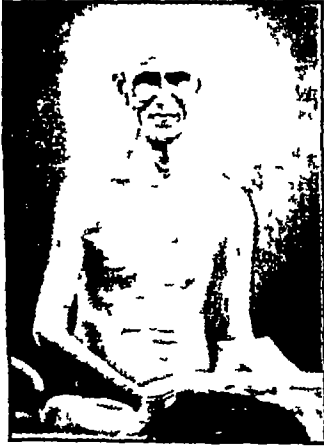
आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज
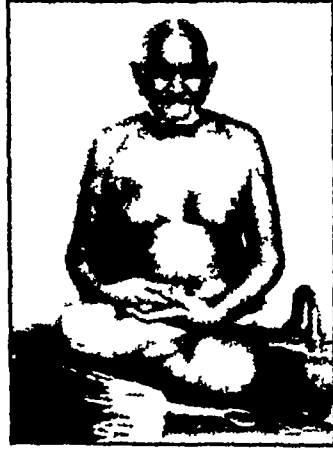
आचार्यश्री धर्मसागरजी महाराज

आचार्यश्री अजितसागरजी महाराज

आचार्यश्री वर्धमानसागरजी महाराज

ॐ समर्पण ॐ
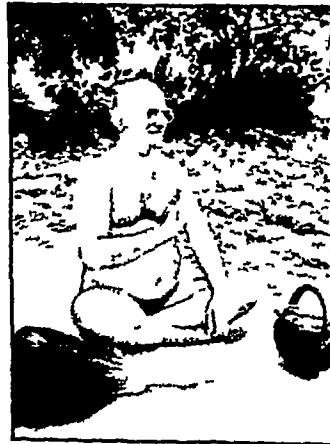
जिन्होंने ब्रह्मत्व की उपलब्धि हेतु राग-द्वेष आदि अन्तरग
तथा वस्त्रादि बाह्य परिग्रह का परित्याग कर विशुद्ध
दिगम्बरत्व अगीकार किया,
जो भोगाकाक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रिय प्रतीत होने वाली
प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मशोधन की
मगल साधना मे सलग्न है,
जो काम, क्रोध, मोह, माया आदि दुर्गति के द्वार रूप
अनिष्ट प्रवृत्तियो से अभिभूत नही है,
जो ससार-परिभ्रमण से मुक्ति-प्राप्ति के लिए विवेकपूर्वक
पुरुषार्थ-निरत है,
जो भौतिकता के मोहक जाल से ग्रस्त इस विश्व में
कल्पनातीत से प्रतीत होते है,
जो अतीत युग के ऋषिराज कुन्दकुन्द, समतभद्र,
अकलक आदि मुनीन्द्रो एव वर्तमानकालीन
योगिराज शातिसागर महाराज सदृश रत्नत्रय
ज्योति के पदचिह्नों पर चल रहे है और
जिनके ज्योतिर्मय जीवन से ही

'आध्यात्मिक-ज्योति'

दैदीप्यमान हुई,
उन्हीं ज्ञान, ध्यान एव तप में अनुरक्त तथा
विषयों की आशा से रहित
विद्यमान निर्ग्रन्थों के
पावन कर-कमलों में —

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

#卐 मंगल-स्मरण 卐

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याया. सर्वसाधव ।
कुर्वन्तु मङ्गला. सर्वे निर्वाणपरमश्रियम् ॥१॥

मगलमय सम्पूर्ण अरहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी हमे मोक्षरूप श्रेष्ठ लक्ष्मी प्रदान करे।

अनंत-विज्ञान-मनंतवीर्यता-मनंतसौख्यत्व-मनंतदर्शनम्।
बिभर्ति योऽनत-चतुष्टयं विभु· स नोऽस्तु शाति भवदु ख-शांतये ॥२॥

वे भगवान शान्तिनाथ हमारे ससार के दु खो को शात करे, जिनके अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य अनन्तसुख तथा अनन्तदर्शन रूप अनन्त चतुष्टय विद्यमान हैं।

य स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैर्य स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रै ।
यो गीयते वेद-पुराण-शास्त्रै. स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥३॥

जो सर्व मुनीन्द्र समुदाय द्वारा स्मरण किये जाते हैं, सर्व मनुष्यो और देवताओ के शिरोमणि जिनकी स्तुति करते हैं, जिनका वेद पुराण तथा शास्त्रो मे गुण गाया गया है, वे देवाधिदेव जिनेन्द्र, मेरे हृदय मे विराजमान हो।

जनताभिमतार्थकरं सुखदं भवभीति-हरं कृतसिद्धपदम्।
परमं शिव-सौध-निवासकरं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥४॥

मैं जीवो के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले आनन्ददायी, ससार के भय का निवारण करनेवाले, मोक्षपद प्रदान करनेवाले, मुक्ति मदिर मे निवास करने वाले अत्यन्त विशुद्ध चारित्र को प्रणाम करता हूँ।

तज्जयति परं ज्योति समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥५॥

वह श्रेष्ठ केवलज्ञान ज्योति जयवन्त हो, जिसमे समस्त पदार्थ अपनी अनन्त पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होते हैं, जिस प्रकार दर्पण मे अन्य पदार्थ झलका करते हैं।

●●●

॥ आमुख ॥

भौतिक विज्ञान को ध्यान में रखने वाले लोग इस बीसवीं शताब्दी को मानव के बौद्धिक विकास का महान् युग मानते हैं। वे मानते हैं कि आज स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र तथा कर्ण इन पाँचों इन्द्रियों को परितृप्ति प्रदान करने के साधनों की अद्भुत वृद्धि हुई है। आध्यात्मिक दृष्टि वाला व्यक्ति सोचता है कि वर्तमान युग ने मनुष्य की वासनाओं को जगाकर उसे भयंकर बन्दी बना लिया है। कोई व्यक्ति जो बन्दी बनाया जाता है, उसमें उसकी मजबूरी कारण पड़ती है। कोई जबरदस्त शक्ति सिर पर सवार रहती है, इससे मनुष्य कारावास का कष्ट भोगता है। यदि उसका वश चले, तो उसे उस बन्धन को दूर करते तनिक भी देर न लगेगी। यह वासना की दासता अद्भुत है। इसमें मनुष्य स्वयं अपने को बन्धनबद्ध बनाकर दुःखी होता है।

एक कवि एक भ्रमर के रूप में विषयासक्त जीव का चित्रण करता है।[१]

"सौरभ पान का लोलुपी एक भ्रमर सरोज की सुगन्ध में मग्न होता हुआ सूर्यास्त के समय कमल के बाहर नहीं आता है। सूर्य के अस्तगत होने पर भ्रमर कमल के भीतर बैठा हुआ आनन्द का अनुभव करता है और मन में सोचता है-'अरे! रात्रि शीघ्र ही व्यतीत होगी। पुनः सुप्रभात आयेगा। प्रिय प्रभाकर का पुनः दर्शन होगा, उस समय इस कमल का मुख खिल जायेगा।' इतने में कोई गजराज उस सरोवर में घुसकर उस कमल को तोड़कर उदरस्थ करता है और स्वर्णिम स्वप्नों के सौन्दर्य में निमग्न भ्रमर की जीवन लीला समाप्त हो जाती है।" उस भ्रमर के समान ही मनुष्य का जीवनप्रदीप अकस्मात् बुझ जाता है और उसका मनुष्यजन्म समाप्त हो जाता है।

मोह के बन्धन से क्रियाविहीन बने भ्रमर के विषय में कवि के ये शब्द अत्यन्त मार्मिक हैं -

---

१ रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गजमुज्जहार ॥

वन्धनानि किल संति वहूनि,

स्नेह-रज्जुकृत-वंधनमन्यत्।

दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रि.,

निष्क्रियो भवति पंकजवद्ध.॥

– वन्धन तो अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु प्रेम की रज्जु द्वारा निर्मित वन्धन सवसे निराला है। कमल के प्रेमवन्धन में वद्ध भ्रमर, यद्यपि काष्ट में छेद करने की क्षमता से सम्पन्न रहता है, परन्तु पङ्कज के मध्य में निष्क्रिय वन जाता है।

पचाध्यायी में लिखा है- कि "यह प्राणी यथार्थ में विश्व से भिन्न है, किन्तु समस्त विश्व को मोहवश अपनाता हुआ देखा जाता है।" मोह के कारण जव यह विविध पदार्थ-मालिका के साथ ममता के माध्यम से आत्मरूपता स्थापित करता है, तव उन पदार्थों के अनुकूल परिणमन पर यह आनन्द की कल्पना करता है और उनके विपरीत परिणमन पर दु खी होता है। तत्त्वज्ञान के प्रकाश में ममता के केन्द्र इस जीव के समान उन सचेतन-अचेतन पदार्थों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, अत उनके अनुकूल-प्रतिकूल परिणमन पर इस ज्ञानी आत्मा को अपना सन्तुलन नहीं खोना था, किन्तु क्या किया जाय, यह मोह की वारुणी पान करने से विवेकरहित स्थिति को प्राप्त करता है। फलत 'मेरा'-'मेरा', (मे-मे) कहनेवाले अज (वकरे) के समान काल रूप भेडिया (वृक) इसको मार डालता है। कवि कहता है -

अशनं मे वसनं मे जाया मे वन्धुवर्गो मे ।

इति मे मे कुर्वाणं कालवृको हंति पुरुषाजम्॥

व्यावहारिक दृष्टि से सोचा जाय, तो प्रतीत होगा कि यह मानव संग्रह की दूषित भावना से प्रेरित हो, इतना धन-वैभव एकत्र करने में सलग्न रहता है, जितना यह सैकडों भवों में भी नहीं भोग सकेगा। इसे प्रारम्भ में अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्यान रहता है, किन्तु जहाँ आवश्यकता की पूर्तियोग्य परिस्थिति आई, वहाँ तृष्णा की वीमारी उसे घेर लेती है तथा अनिश्चित भविष्य की भीतिवश यह संग्रह-मूर्ति वनता चला जाता है। उस स्वार्थ के नशे में यह दूसरों के कष्टों की ओर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करता है। दूसरों को अपने स्वार्थपूर्ति का साधन वनाने में उसे जरा भी सकोच नहीं होता है। यह सव होते हुए भी आकुलताओं की सीमातीत वृद्धि होने से इसका मन अशान्ति का केन्द्र वन जाता है। अविद्या के कारण यह जीव इस सत्य पर दृष्टिपात ही नहीं करता

है कि परिग्रह की वृद्धि में इसकी अशान्ति बढ गई है तब फिर यह क्यों परिग्रह पिशाच से अपना पिण्ड छुडाने का उद्योग नहीं करता है? पूज्यपादस्वामी ने इष्टोपदेश में लिखा है -

आरभे तापकान्प्राप्तावतृप्ति-प्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥१७॥

– विषयभोग प्रारम्भ में सन्ताप प्रदान करते है, क्योंकि उनकी उपलब्धि के लिए परिश्रम किया जाता है। अनुकूल सामग्री प्राप्त होने पर असन्तोष का भाव जागृत होता है, पश्चात् उन विषयों का नशा ऐसा चढता है कि उनका त्याग करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। कौन विवेकी व्यक्ति होगा, जो इन विषयों को अधिक सेवन करेगा?

कभी-कभी सत्पुरुषों का सुयोग प्राप्त होने पर यह मानव अपनी मलिन प्रवृत्तियों के दोषो को जान जाता है, किन्तु वे प्रवृत्तियाँ छूटती नहीं हैं। इस सम्बन्ध में यह शिथिलाचारी व्यक्ति कहता है- " मै तो इन बुराइयो को छोडने को तैयार हूँ किन्तु क्या करूँ, ये प्रवृत्तियाँ मुझे नहीं छोडतीं।" ऐसे लोगों की बुद्धि को ठिकाने लगाना अत्यन्त कुशल व्यक्ति का काम है। कहते है, गुजरात मे एक सहृदय साधु पहुँचे। उन्होंने काठियावाड के कुछ ठाकुरों को दारू (मद्य) त्यागने को कहा। एक ने कहा-" मै तो दारू त्यागने को तैयार हूँ, किन्तु क्या किया जाय, यह दारू मुझे नहीं छोडती।" साधु ने ठाकुर से कहा-"कल आकर मिलो, फिर विचार करेंगे।" दूसरे दिन प्रभात मे ठाकुर वहाँ पहुँचा। ठाकुर ने आवाज लगाकर महाराज को बुलाया। वे स्वामीजी कहने लगे- "क्या बताऊँ, मैं तो आना चाहता हूँ, किन्तु इस घर के खम्भे ने मुझे पकड लिया है।" ऐसा कहते हुए वे दोनों हाथो से एक खम्भे को पकडे हुए थे। ठाकुर ने कहा-"खम्भे से हाथ हटाइये।" हाथ हटाते ही स्वामीजी खम्भे से छूट गए। उन्होंने ठाकुर से पूछा- "क्यों भाई! खम्भे ने मुझे पकडा था, या मैंने उसे पकडा था।" ठाकुर महोदय ने तुरन्त कह दिया-"खम्भे ने आपको नहीं पकडा था। आपने ही स्वय उसे पकडा था।" इस पर स्वामीजी ने समझाया कि इसी प्रकार दारू ने तुम्हे नहीं पकडा है, किन्तु तुमने उसको पकड लिया है। ठाकुर को अपनी भूल समझ में आ गई और उसने उस व्यसन को सदा के लिए छोड दिया। इसी प्रकार मनुष्य यदि अपनी मानसिक दुर्बलता को दूर कर सत्सकल्प का आश्रय ले, तो सहज ही अनेक हानिप्रद प्रवृत्तियो को छोड सकता है। जैनधर्म इसी कारण जीव के सुख-दु ख, उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व दूसरे पर न लादकर जीव को ही दोषी कहता है।

वर्तमान युग का मानव लौकिक जगत् मे अलौकिक कार्य करता सा दिखाई देता है, किन्तु विषयो की दासता के परित्याग के क्षेत्र मे वह आगे बढने के स्थान मे पीछे हटता जा रहा है। एक सर्वजनसम्मत रात्रिभोजन की प्रवृत्ति की हानि पर विचार किया जाय, तो शास्त्रो से भी महान्, अनुभव तथा प्रत्यक्ष बोध द्वारा इसकी हानि का सबको पता है, फिर भी साधन सम्पन्न व्यक्ति भी इस आदत से नहीं छूटता। एक बात "बालभारती" मे छपी थी-"एक बार एक लडकी उस दूध को पी गई, जिसमे एक मक्खी गिर गई थी।" रात्रि को भोजन करने मे ऐसी बाते अनेक बार हो जाती है, क्योकि सूर्यप्रकाश के अभाव से दीपक के उजेले मे अनेक कीडे स्वय भोजन मे आकर आत्मसमर्पण करते है। कभी-कभी उनका शरीर स्थूल रहा, तो दृष्टिगोचर हो गए और बहुधा छोटे शरीर वाले हुए, तो पता भी नहीं चलता कि रात्रिभोजन मे उनका क्या हो गया। "उस लडकी ने बिना देखे दूध को पी लिया। मरी मक्खी पेट मे चली गई। उससे उस लडकी का बुरा हाल हुआ। वह मर गई। डाक्टरो ने उसकी बीमारी समझने का प्रयत्न किया था, किन्तु पता नहीं चल पाया। जब उसके शव की परीक्षा की गई, तब पता चला कि मक्खी जहरीली थी। उसके साथ जहरीले कीटाणुओ ने शरीर मे प्रवेश किया था।"

(बालभारती १९५५ पृष्ठ २२)

हिन्दी जगत् के सुपरिचित विद्वान प० रामनरेश त्रिपाठी ने नवनीत बम्बई मे वैदिक मिशनरी "प० रुचिराम की मक्का यात्रा" एक लेख छपाया था, उसमे उन्होने लिखा था-"अदन मे दो माह रहने के बाद पडित रुचिराम जी जुकार मुकाम मे पहुँचे। वहाँ उन्होने दो दिन का पानी भर लिया। बद्दुओ ने उनकी केटली मे ऊँटनी का दूध भर दिया। कुछ खजूर भी दिए। चलते-चलते वे रास्ता भूल गए और शाम को एक जगल मे जा निकले। उन्होने लकडियाँ जमाकर आग जलायी, खाना पकाया। चाय पी और वहीं सो गए। आधा दूध सोते समय पी लिया और आधा रात्रि मे जब प्यास लगी, तब पी लिया। सबेरे उनको जोर का बुखार चढ आया। केटली को देखा, तो सारी केटली चींटियो से भरी थी। बुखार का कारण समझ मे आ गया। आधी रात के दूध मे चींटियाँ भी थीं, जिन्हे वे पी गए थे।"

(नवम्बर १९०८)

इन उदाहरणो के प्रकाश मे विवेकी मानव अपना कर्तव्य सोच सकता है। धर्म के नाम पर न सही, अपने हित के नाम पर तो ऐसे बहुत से नियमो को सहज ही अपना

सकता है, किन्तु विषयासक्ति के कारण मनुष्य विकारों से विमुक्त होने का पुरुषार्थ नहीं करता है और देव की गोद में बच्चे की तरह सोया करता है। आत्मविकास के लिए गीता का यह उपदेश विश्व के लिए हितप्रद है -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५, अध्याय ६॥

— अपने द्वारा अपनी आत्मा का उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे, क्योंकि जीवात्मा आप ही अपना मित्र है, आप ही अपना शत्रु है। यह जीव आत्मशक्ति तथा कर्तव्य को भूलकर स्वयं का शत्रु बन रहा है। यह अपने अमूल्य नरजन्म को विषयभोग में व्यतीत करता है।

बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्न परमे ब्रह्मणि कोपि न लग्नः ॥[१]

इसका भाव इस हिन्दी पद्य में दिया गया है :-

खेलकूद में बीता बचपन, रमणी राग रंग-रत यौवन।
शेष समय चिन्ता में डूबा, इससे हो कब ब्रह्माराधन॥

जिस प्रकार कुम्भकार का चक्र पूर्व सस्कार के प्रभाव से पुन गमन हेतु प्रेरणा न मिलने पर भी भ्रमण करता है, इसी प्रकार जिनके पास आत्मशोधन तथा जीवन को विशुद्ध बनाने योग्य सर्व प्रकार की अनुकूलता रहती है, वे कीर्ति की लालसा से बाहर से आकुलताओं को खरीदने का प्रयत्न करते है और दोष कर्मों को देते फिरते है। कवि भूधरदास जी ने लिखा है- "सुबुद्धि रानी से उसकी एक सखी कहती है, कि तेरा पति आत्मदेव दु खी हो रहा है। वह तो बहुत अच्छा है, किन्तु इस पुद्गल (जड तत्त्व) ने उसे कष्ट में डाल दिया है।" कवि के शब्दो में -

कहै एक सखी सुन री सुबुद्धि रानी।
तेरा पति दुःखी देख लागे उर आर है॥
महा अपराधी एक पुद्गल है छहो माहि।
सोई दु ख देत दीखे नाना परकार है॥

---

१ भज गोविन्द स्तोत्र-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (पृ०७)

अपने पति की दूषित वृत्ति की आलोचना करती हुई सुवुद्धि देवी न्यायपूर्ण वात कहती है, कि मेरा पति ही अपने दु ख का बीज बोता है। उमका दोष दूसरे के ऊपर लादना ठीक नहीं है। सुबुद्धि की अपनी प्रिय सखी से अपने पति की कटु समालोचना कितनी सत्य है, यह प्रत्येक तत्त्वज्ञ सोच सकता है -

कहत सुबुद्धि आली कहा दोष पुद्गल को।
अपनी ही भूल लाल होत आप ख्वार है॥
खोटो दाम आपनो सराफै कहा लगे वीर।
कोउ को न दोष मेरो भोंदू भरतार है॥

अविद्या के कारण इस जीव की रुचि इतनी विकृत हो गई है कि यह आत्मा के अहितकारी कार्यो मे आनन्द की कल्पना करता है। यह बालू को पेल तेल पाने को महाकष्ट उठाता है, किन्तु बालू के भीतर तेल का अभाव होने से वह उद्योग व्यर्थ जाता है, इसी प्रकार बाह्य पदार्थ मे आनन्द न होने से उसकी वहाँ खोज सर्वदा निराशा रूप मे ही परिणत होती है।

अमेरिकन दार्शनिक इमरसन ने कहा है- "एक समय अनेक लोगो ने बहुत शस्य-श्यामला भूमि पर अधिकार जमाया। वे अपनी जागीर मे घूमते हुए गर्व का अनुभव कर रहे थे। वे कहते थे यह भूमि तो हमारी है।" उस समय पृथ्वी से प्रतिध्वनि उत्पन्न हुई -

'They call me theirs
Who so controlled me,
Yet everyone
Wished to stay, and is gone,
How am I theirs ?
If they cannot hold me
But I hold them?

– जिन्होने मुझ पर अधिकार जमाया, उन्होने कहा-'यह पृथ्वी हमारी है।' प्रत्येक ने चाहा कि वह यहाँ निवास करे, किन्तु वह चला गया । बताओ! मै उनकी किस प्रकार हूँ? वे मुझे पकड नहीं सकते, किन्तु मै ही उनको अपने आधीन करती हूँ।

विश्व का सर्वोच्च प्रहरी हिमालय बता सकेगा, कि इस भारत देश पर तथा

दूसरी जगह अपना प्रभुत्व जमाने कितने व्यक्ति, जातियों आदि का पदार्पण नहीं हुआ और अब उनका नाम भी ज्ञात नहीं है, इतिहास के पृष्ठों में जिन देशों की पुरातन युग में वैभवपूर्ण स्थिति बताई जाती है, वहाँ विनाश तथा शून्यता का अखण्ड साम्राज्य है।

महाकवि जिनसेन ने महापुराण में बताया है कि चक्रवर्ती भरतेश्वर विविध देशों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त वृषभाचल नामक एक सुन्दर पर्वत के समीप पहुँचे। उस समय तक भरतराज अपने को विश्व में अप्रतिम पृथ्वीपति सोचते थे, किन्तु उस पर्वत के पास पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि असख्य शासक इस पृथ्वी के स्वामी बने थे और वे सब चले गए। उस पर्वत पर परम्परा के अनुसार प्रतापी नरेश चक्रवर्ती का नाम उत्कीर्ण रहता है, उस क्रम के अनुसार पर्वत पर अपने नाम की प्रशस्ति अंकित करने को भरतेश्वर तैयार हुए। महाकवि कहते है-"चक्रवर्ती भरत ने काकिणी रत्न लेकर ज्योंही वहाँ लिखने की इच्छा की, त्योंही उन्होंने वहाँ हजारों चक्रवर्ती राजाओ के नाम अंकित देखे। असख्यात करोड कल्पों में जो चक्रवर्ती हुए थे, उन सबके नामो से भरे हुए उस वृषभाचल को देखकर भरत को बहुत ही विस्मय हुआ। तदनन्तर जिसका गर्व कुछ दूर हुआ है ऐसे चक्रवर्ती ने आश्चर्ययुक्त होकर इस भरतक्षेत्र की भूमि को अनन्य-शासन-अन्य के शासन रहित नहीं माना।"[1] उस समय चक्रवर्ती भरतेश्वर के अन्त करण मे यह बात अंकित हुई कि विश्व के मध्य उसकी असाधारण स्थिति नहीं है। जब तक मोह का नशा नहीं उतरता, तब तक मनुष्य अद्भुत कल्पनाजाल मे स्वय को कैदी बनाया करता है।

मोह पिशाच के द्वारा छला गया जीव प्रभुता पाकर स्वय का पतन करते हुए दूसरों की दुर्गति का भी कारण बनता है। उदाहरणार्थ वाममार्गियों का प्रश्रय पाकर धर्म का कितना विकृत रूप बनाया गया कि उसका विचार करते ही सच्चे धर्मवालो के हृदय पर वज्रपात सा होता है। इस वाममार्ग के मुख्य केन्द्र विक्रमशिला काश्मीर तथा बगाल थे। श्री के एम पनिक्कर ने लिखा है कि वाममार्ग के केन्द्रस्थलों की बडी दयनीय स्थिति

---

१ काकिणी रत्नमादाय यदा लिलिखिषत्ययम्।
तदा राजसहस्राणा नामान्यत्रैक्षताधिराट् ॥१४१॥

असख्यकल्पकोटीषु येऽतिक्रान्ता धराभुज ।
तेषा नामभिराकीर्णं त पश्यन् विसिष्मिये ॥१४२॥

तत किंचित् स्खलद्गर्वो विलक्षीभूय चक्रिराट्।
अनन्यशासनामेना स मेने भरतावनीम् ॥१४३॥ पर्व ३२

थी- "एक साधु शराब की बोतल सहित विक्रमशिला के विश्वविद्यालय में पाया गया। इस संबंध में पूछे जाने पर उसने कहा कि वह मदिरा उसे उसकी प्रेयसी भिक्षुणी ने दी थी। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उसके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही करने का जब विचार किया, तब विश्वविद्यालय के सदस्यों में दो पक्ष हो गए। इस प्रकार काफी झगडा बढ गया। इन लोगों की आराधना मांस, मीन, मदिरा, तथा स्त्री-सेवन की अनुज्ञा थी। मनुष्य बलि तक विधेय थी। इनके ग्रन्थ में यह उल्लेख आया है कि पूजा में नरमांस भी आवश्यक था, जिसे वे लोग महाप्रसाद कहकर उदरस्थ करते थे। मदिरा के साथ मानव-रक्त भी पिया जाता था।"[1]

आज भी कभी-कभी पत्रों में ऐसा वर्णन पढने मे आ जाता है कि "अमुक साधु के वेषवाले व्यक्ति ने बच्चों को उडाकर उनका वध करके अपनी नर-रक्त प्रेमी देवी का आशीर्वाद प्राप्त किया।" ऐसे लोग भी अपने को महान् धर्म का अंग कहते हैं।

शान्तभाव से धर्मों के इतिहास का परिशीलन करने वाले को यह स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसी पतनकारी प्रवृत्तियों के कारण ही सच्चा धर्म भी लांछित किया जाने लगा और उसी का यह परिणाम है कि जन-साधारण का हृदय धर्म के बंधन से विमुक्त रहने मे अपना कल्याण सोचता है। लोग अपनी भोगलिप्सा की पूर्ति के लिए धर्म तथा उसके आश्रयरूप देवी, देवताओं को उन बातों से अभिभूत बताते हैं, जिन दुर्बलताओं से मोही मानव व्यथित हो रहा है। उदाहरणार्थ किसी तम्बाखू प्रेमी कविराज ने यह कविता बना दी कि कृष्णमहाराज भी तम्बाखू खाते थे-

---

1 In religion also this degeneration was apparent. The Left Hand Marge had taken deep roots and a nursery for it existed at Vikramasila. Kashmere and Bengal The following incident, which took place in Vikramsila will show how deep was the cancer which had eaten into the vitals of national life

A priest studying at the university was discovered with a bottle of wine When asked he stated that it was given to him by a nun whom he used to meet The authorities of the university decided to take disciplinary action but on this the members of the university split into two factions and great trouble followed

Every thing was permitted in this worship-fish flesh wine, women Even human-sacrifice was allowed One passage would seem even to indicate *that human flesh was also used in worship and consumed as* Mahaprasad Blood of men along with wine was also used

'A SURVEY OF INDIAN HISTORY K M Pannikker P.105

कृष्ण चले बैकुंठ को राधा पकडी बॉह।
यहॉ तमाखू खाय लो, वहॉ तमाखू नाहि ॥

एक कवि कहते है कि भगवान ब्रह्मदेव से पूछा गया, कि इस जगत मे सार रूप कौन पदार्थ है? उस समय अपने चारो मुखो से भगवान ने कहा कि तमाखू ही साररूप पदार्थ है।

ऐसा ही काल्पनिक चित्रण अनेक विलासी तथा व्यसनी लोग करते है। भगवान के नाम पर लोग अपनी विषय लोलुपता की पूर्ति करते हैं। ऐसे कार्य का दुष्परिणाम क्या होगा, यह विलासी लोग नहीं सोचते है। (खोजा समाज के गुरु आगाखान जी भरकर शराब पीते हुए कहते हैं, 'The wine turns in to water as soon as it touches my mouth' (John Gunther Inside Asia, p 485) जिस समय शराब मेरे कठ मे पहुचती है, उस समय वह जल रूप मे परिवर्तित हो जाती हे।)

गीता मे नरक अवस्था मे जीवात्मा के पतन के त्रिविध तमोद्वारो का इन शव्दो मे कथन किया गया है -

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१-अध्याय १६

– नरक के तीन द्वार कहे गए है- काम, क्रोध तथा लोभ। इनके द्वारा आत्मा का अध पतन होता है, इससे इन तीनों का त्याग करना चाहिए। दिगम्वर जैन मूर्तियो मे शाति, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य का दर्शन स्पष्ट रूप से होता है।

यदि हम शान्त भाव से विचार करे, तो उपर्युक्त उक्ति अक्षरश सत्य प्रतीत होगी। इनमे सर्वोपरि स्थान लोभ का है। जैन पूजा मे कहा है "लोभ पाप का बाप बखाना" अग्रेजी मे सूक्ति है-"No vice like avarice" आज भारत राजनैतिक दृष्टि से स्वतत्र हो गया है, किन्तु वह लोभ के जाल मे भयकर रूप से पराधीन हो गया है अहिंसा का पुण्य नाम लेने वाला शासन मासाहार तथा जीववध को प्रेरणा देता है। जीववध द्वारा वह धनसचय करने के पथ मे लग रहा है। जीवघात द्वारा धन कमाना धीवर, कसाई आदि का कार्य रहा है। अहिसावादी शासन जीवघात द्वारा गरीबी दूरकर सपन्नता का स्वप्न देखता है। यह भयकर भ्रम है। अहिसावादी रहते हुए गरीबी वरदान है। शीलवती महिला फटे वस्त्रो में रहती हुई भी रत्नालकृत वेश्या से अनत गुनी अच्छी है। शासन अव्यवस्था के द्वारा धन का अपार अपव्यय करता है तथा धनलाभ के लिए वह धर्म-अधर्म की तनिक खबर नहीं रखता है।

१ नागपुर के ७ अक्टूबर १९५३ के दैनिक नवभारत मे कांग्रेसी सरकार की सूचना छपी थी- "बन्दर मारो इनाम लो। प्रत्येक बन्दर मारने पर ५) तथा ५ से अधिक बन्दर मारने पर १) की दर से पुरस्कार दिया जावेगा। जो व्यक्ति ५ से कम बन्दर मारेगा उसे कोई पुरस्कार नहीं दिया जायगा।"

शासन द्वारा निर्दोष जीवो की हत्या द्वारा पैसा पाने के आकांक्षी व्यक्तियों का हृदय पत्थर का बन जाता है फिर वे अपनी क्रूरता द्वारा मानव समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं, बड़े-बड़े हत्याकाड ऐसो के द्वारा हो जाते हैं। अत शासन को गहराई से सोचना चाहिए। देश को विपत्ति के गर्त मे गिरने से बचाना चाहिए। देश के पुरातन गौरव को याद करना चाहिए।

सन् १९५५ के ८ फरवरी के हितवाद मे लन्दन का समाचार छपा था कि भारत की हाईकमिश्नर श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित से दयाप्रेमी अंग्रेजो का एक शिष्टमण्डल मिला था, उसने निवेदन किया था कि लन्दन के बन्दरगाह पर से दो वर्षो मे एक लाख बन्दर अमेरिका भेजे गए थे- 'The deputation pointed out that in last two years hundred thousand monkeys have passed through London airport for the United States' दयाप्रेमी शिष्टमडल ने बन्दरों को न भेजे जाने की प्रार्थना की थी। उन बन्दरों का नाश वैज्ञानिक कार्यो मे किया जाता था।

बम्बई के मुख्य मत्री ब्राह्मण जातीय स्व खेर ने मछली के मास की स्तुति करते हुए उसे खाने को प्रेरणा की थी। वर्ष १९६२ के आरम्भ मे धार्मिक परिवार मे जन्म धारण करने वाले गवर्नर श्रीप्रकाशजी ने अण्डा खाने का उपदेश दिया था। मासाहार का महत्त्व बताने का प्रचार कार्य भारत शासन का खाद्य विभाग करता है। स्वतन्त्र भारत मे भयकर रूप से जीव-वध शासन के कारण बढता जा रहा है यह महान् दुःख की बात है। दया प्रचार का जोरदार प्रयत्न राष्ट्रहितार्थ आवश्यक है, अन्यथा हिंसा भयकर विपदाओ का हेतु बनेगी।

ये गणतत्र शासन के वाहक जिनको पिता, बापू कहकर देशवासियो के समक्ष अपने को गाँधीभक्त सूचित करते है, उन गाधीजी के ही उपदेश पर यदि दृष्टि दे, जो उन्होने सन् १९४६ मे अमेरिकावासियो को दिया था, तो इनकी श्यामवृत्तियो मे शुभ्रता का पदार्पण हो सकता है, "मेरा ख्याल है कि अमेरिका का भविष्य उज्ज्वल है। वह धन को उसके सिंहासन से हटाकर ईश्वर के लिए थोडी जगह खाली करे। लेकिन अगर वह धन की ही पूजा करता रहा, तो उसका भविष्य अन्धकारमय है, फिर लोग चाहे जो कहे। धन आखिर तक किसी का सगा नहीं रहा है। वह हमेशा बेवफा (बेईमान) दोस्त साबित हुआ है।" (२१-१०-१९६० नई दिल्ली, प्रेस्टन ग्रोवर के साथ बातचीत मे)। भारत देश ने त्याग तथा त्यागी की पूजा की है। यदि उसका मार्गदर्शन करने वालो ने अपना रवैया न बदला, तो या तो वे देश को विनाश की स्थिति मे पहुँचा देगे अथवा जनता को अधर्म की ओर ले जाने वालो का साथ छोडना पडेगा।

मनुष्य जीवन अल्पकाल स्थायी है। शीघ्र ही सावधानीपूर्ण प्रवृत्ति का आश्रय करना श्रेयस्कर है। स्वामी विवेकानन्द उपनिषद् का यह वाक्य अपने श्रोताओ को सुनाया करते थे - "त्यागेन अमृतत्व आनशु " त्याग के द्वारा अमृतत्व (Immortality) की प्राप्ति होती है। समझ मे नहीं आता कि गाँधीवादी भारत के भाग्यविधाताओं का ध्यान सादगी की साकार मूर्ति सेवाग्राम की कुटी की ओर क्यो नहीं जाता? लुई फिशर ने गाँधीजी के विषय मे लिखा है- 'Gandhi is the symbol of lifelong renunciation and dedication '– गाँधीजी आजीवन त्याग तथा आत्मसमर्पण के प्रतीक रूप थे।

दो हजार वर्ष पूर्व ग्रीस देश सभ्यता तथा समृद्धि के शिखर पर था। उस देश की अप्रतिम विभूति सुकरात का जीवन सार्वजनिक शान्ति के मार्ग को सूचित करता हुआ प्रतीत होता है। जहाँ आज तरह-तरह की आवश्यकताओ को उत्पन्न करके उनकी पूर्ति हेतु कल, कारखानो तथा उनके लिए धन सग्रह के लिए भारत लालायित है, वहाँ सुकरात कहता था- "जितनी जरूरतो को तुम कम करोगे, उतना ही तुम परमात्मा के सदृश बनोगे।" "The fewer our wants, the more we resemble gods "

[1] सुकरात ने आवश्यकताओ को अल्पतम करते हुए जीवन व्यतीत करने का अभ्यास कर लिया था। सुकरात बाजार मे जाकर विविध विक्रय-योग्य वस्तुओ को

---

[1] He trained himself to live in the most frugal manner 'How many things I can do without?' he would exclaim on looking at the goods exposed for sale in the market-places 'The Paths of Peace ' by H Bellis

देखकर सोचता था इनमें से किन-किन पदार्थों के बिना मेरा काम चल सकता है? जब समाज में त्यागी पुरुषों में वृद्धि होती है तब राष्ट्र उन्नत होता है। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में लोकमान्य तिलक देशबंधु चितरंजनदास मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय आदि महनीय विभूतियों के त्याग के फलस्वरूप गाँधीजी ने भारत को विजयी बनाया था।

आज त्यागियों 'Selfless' का स्थान Selfish स्वार्थी लोगों ने ग्रहण किया है और वे स्वार्थी लोग मछली बेचने का (Sell Fish) धन्धा करने लगे।

इस हिंसा के कारण देश की जनता सुखी नहीं है यद्यपि वहन द्वारा तथा कल्पित आँकडों के आधार पर अथवा अन्य लोगों की सम्मतियाँ बताकर हमें बच्चों की तरह समझाया जाता है कि अब तुम्हारी हालत बहुत अच्छी हो गई है तुम उन्नत हो रहे हो। यह भी विनोदप्रद बात है। क्षीण शरीर व्यक्ति में यदि बल की वृद्धि होती है उसका वजन बढता है, तो क्या उसे मालूम नहीं पडता? क्या उसे समझाया जाता है कि तुम अब स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रगति कर रहे हो? यदि देश भौतिक विकास से सुखी हो रहा है, तो उसका अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? क्यों महंगाई का ज्वालामुखी सबको संतप्त कर रहा है। किसी ने व्यंग्यात्मक भाषा में कहा है-

देश हुआ आजाद अब कीमत भी आजाद।
जी भर बढने दो उन्हें क्यों करते फरयाद॥

वास्तव में, शान्ति और उन्नति का मार्ग आत्मा के गुणों को विकसित करना तथा विलासिता से विमुख होना है। जब मनुष्य भोग विलास की ओर कदम बढाता है, तो वह कुछ काल के पश्चात् पतन को प्राप्त करता है। विलासपुरी का निवासी 'विकासनगर' से दूर होता हुआ 'विनाशपुर' के निकट पहुँचता है। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि विषयों के दास दीपक के पास दौडकर आने वाले पतंगा की दशा को प्राप्त करते हैं। विषयजनित आनंद कृत्रिम (artificial) है। उसमें स्थायीपन नहीं है। वह विपत्ति प्रचुर भी है। स्वावलंबन तथा सदाचार द्वारा उपलब्ध आनन्द अपूर्व होता है।

समंतभद्र स्वामी ने संभवनाथ भगवान के स्तवन में इंद्रियजनित सुख की मीमांसा करते हुए लिखा है-

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यम्, तृष्णामयाप्यायनमात्र हेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रम्, तापस्तदायासयतीत्यवादी. ॥3॥

– भगवन्! आपने यह कहा है कि इंद्रियो से उत्पन्न होनेवाला सुख बिजली की चमक के समान क्षणस्थायी है। वह सुख तृष्णा रूपी रोग का एक मात्र हेतु है। उसके सेवन करने से विषयो की लालसा बढ़ती है। यह तृष्णा की वृद्धि निरन्तर संताप करती है। उसी कारण यह संताप जगत् को कृषि वाणिज्यादि कार्यों मे प्रवृत्त कराकर अनेक प्रकार के कष्टो से दु:खी बनाता है।

जिस ३० जनवरी १९४८ के दिन गोडसे ने गोली मारकर गाधी जी की जीवन-लीला समाप्त की थी, उसी दिन के प्रभातकाल में वे शायर के इस गीत को ध्यान से सुन रहे थे-

है बहारे बाग दुनिया चंद रोज।
देख लो इसका तमाशा चन्द रोज ॥

– यह जगत् एक बगीचे के समान है, जिसमे सौरभ तथा सौन्दर्य थोडी देर निवास करते हैं। यह स्थायी आनन्द का स्थल नहीं है। इसका तमाशा कुछ समय पर्यन्त रहा है, उसे देख लो। वह आसक्ति के योग्य नहीं है। उपर्युक्त उद्‌गार गाधी जी की समाधि भूमि पर अंकित रखने योग्य है।

इस क्षणिक आनन्द तथा वैभव के पीछे मनुष्य तो क्या सांस्कृतिक संपत्ति का उत्तराधिकारी यह देश भी आँख बन्दकर सुख-प्राप्ति के मार्ग पर दौड लगा रहा है। भारतवासियो को- शासको तथा शासितों को महाभारत के शान्तिपर्व मे प्रतिपादित भीष्म की पुण्य वाणी ध्यान मे रखना चाहिए-

"धर्मेण निधनं श्रेय:, न जय: पापकर्मणा।"

–धर्म (अहिंसात्मक जीवन) के साथ मृत्यु अच्छी है, पाप कार्यों के द्वारा विजय भी बुरी है।[1]

पाप की आधार शिला पर अवस्थित अभ्युदय वास्तविक आनन्द और शान्ति से दूर रहता है। किसी भवन की नींव मे यदि मुर्दा डाल दिया जाये और ऊपर दया के देवता का मंदिर बनाया जाय, तो क्या उस स्थान पर भगवती अहिंसा का निवास होगा? दया के देवता के मंदिर की नींव मे रक्त नहीं, प्रेम का अमृत सींचा जाना चाहिए। मनुष्य

1 "Death through Dharma is better than victory through a Sinful act" — *The Mahabharata Condensed* Madras P401

का कर्त्तव्य है कि वह अपना 'स्व' अपने शरीर तथा परिवार को ही नहीं मानकर प्राणीमात्र को अपना सोचे तथा माने। सच्ची करुणा की सृष्टि मे सम्पूर्ण जीव समान दिखते है। माता को सुस्वादु वस्तु अपने वच्चो को खिलाने मे जितना आनन्द आता है, उतना आनन्द अकेले अपना पेट भरने मे नहीं आता।

जो व्यक्ति नकली नहीं, असली आनन्द चाहता है, उसे अपने आपको समुद्र की तरह गभीर तथा विशाल बनाना चाहिए। रवि बावू ने विश्वकवि की प्रतिष्ठा के अनुरूप ये शब्द कहे थे- "महाशान्ति महाप्रेम, महापुण्य महाप्रेम।" महान् प्रेम ही महान् पुण्य है, उसके समीप ही महा शान्ति का निवास रहता है।(योगसूत्र मे लिखा है- "अहिसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग " (सूत्र ३५, द्वितीय पाद) अहिसा की प्रतिष्ठा होने पर उसके सन्निधान होने पर ("सहजविरोधीनामहिनकुलादीना वैरत्याग ") निसर्गविरोधी सर्प-नकुलादि जीवो मे वैरभाव छूट जाता है।)

अहिंसा की सुव्यवस्थित रीति से श्रेष्ठ साधना का मार्गदर्शन जैनग्रन्थो मे किया गया है। अहिसा की सफल साधना करने वालो मे चौबीसवे तीर्थकर भगवान महावीर कैवल्यप्राप्ति के पश्चात् मगधदेश की राजधानी राजगृह के विपुलाचल पर आए थे। उस समय भगवान के समवसरण मे विद्यमान पशुओ मे अद्भुत मैत्री की ज्योति जगी थी। जिनसेन स्वामी ने महापुराण मे उस मैत्री की एक मधुर झॉकी इस प्रकार दी है। सम्राट् श्रेणिक (बिम्बसार) ऋषिराज गौतम गणधर से कहते है-

> सिह-स्तनन्धयानत्र करिण्य. पाययन्त्यमू.।
> सिहधेनुस्तनं स्वैरं स्पृशन्ति कलभा इमे ॥२-१३॥

– प्रभो ! इधर ये हथिनियॉ सिह के बच्चो को अपना दूध पिला रही है तथा सिहिनी के स्तनो का दूध हाथी के बच्चे स्वेच्छा से पी रहे है।

सम्राट् श्रेणिक पुन कहते हैं -

> तपोवनमिदं रम्यं परितो विपुलाचलम्।
> दयावनमिवोद्भूतं प्रसादयति मे मन ॥२-१७।

– नाथ! विपुलाचल के चारो ओर का यह तपोवन बडा रमणीय है। यह मुझे दयावन के रूप मे उत्पन्न हुआ अत्यन्त प्रिय लगता है।

अहिसा आध्यात्मिक तथा लौकिक उन्नति की जननी सदृश है। जिनेन्द्र भगवान

के एक हजार आठ नामो मे 'महादय' शब्द आया है. उसका भाव है कि भगवान महादया युक्त है। उनको 'महोदय' भी कहा है, क्योकि उनका उदय अर्थात् उनकी उन्नति भी महान् है। 'महान् दया' का 'महान् उदय' के साथ सबध है। भगवान को 'महादम'-महाइन्द्रिय विजेता भी कहा है. क्योकि उन्नति का आरम्भ इन्द्रियविजय तथा आत्म निर्मलता द्वारा सम्पादित होता है।

काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि विकारो के कारण ही यह जीव अविनाशी आनन्द को नहीं प्राप्त कर पाता। अबोध बालक मिट्टी के ढेर मे अवर्णनीय सौन्दर्य तथा विभूति की कल्पना करके प्रसन्न होता है, पश्चात् ज्ञान के विकास होने पर उसे अपनी भूल तथा भोलेपन का पता चलता है, इसी प्रकार मोह रूपी अन्धकार के दूर होने पर मनुष्य को वस्तुस्थिति का सम्यक् अवबोध होता है। इस मोह के कारण लौकिक विद्या के महान् विद्वान् तथा सर्व प्रकार के वैभवादि सम्पन्न प्राणी अज्ञवत् चेष्टा करते है। जब यह जीव चिंतन अवस्था मे पदार्थो के तथा अपने स्वरूप पर विचार करता है, तब यह सोचता है कि मै अब तक गहरे अन्धकार में था, जो मैने अपने आत्मस्वरूप को नहीं जाना।

विश्व के महापुरुष आत्मा के ज्ञान को सुख का मूल बीज बताते है।'आत्मान विद्धि'। (Know Thyself) आदि शब्द उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते है। सर्वथा एकाकी जीवन बिताने वाला चीनी महापुरुष कन्फ्यूशस कहता था-"मै पहले अपने को भलीभाँति जानना चाहता हूँ। मेरा अनुभव है कि अपने को जानना बडा कठिन कार्य है।" जैन महर्षि कुन्दकुन्द ने लिखा है -

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भाविय-सहावपुरिसो विसएसु विरज्जए दुक्खं ॥६५॥ मोक्षप्राभृत

– इस आत्मा का ज्ञान बहुत कठिनता से होता है। आत्म-बोध होने पर उसकी भावना कठिन कार्य है। आत्मा की भावना करने वाला पुरुष बडी कठिनता से विषयो से विरक्त होता है।

आत्मस्वरूप की उपलब्धि के लिए विशेष ज्ञान भी आवश्यक है। ऐसे जीव जिनके मन नहीं है, आत्मोपलब्धि के उद्योग से वंचित हो जाते है। मनुष्य जीवन मे सहज ही सर्व प्रकार की अनुकूल सामग्री है, किन्तु यह जीव भूल जाता है कि यदि मैने शीघ्र हित सम्पादन नहीं किया, तो जीवन सूर्य अस्तङ्गत हो जायगा। इमरसन ने लिखा

है- 'Life is too short to Waste' "जीवन इतना थोड़ा है कि उसमें से क्षणभर भी बरबाद नहीं किया जा सकता।" अतः आत्मविकास की ओर ध्यान जाना चाहिए। असली आनन्द का भण्डार बड़े भवनों तथा भौतिक विकास-केन्द्रों में नहीं है, आत्मा को महान् बनाने में व्यक्ति तथा राष्ट्र का हित है। पश्चिम के एक विद्वान् ने यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि शासन के नागरिकों के घरों की छतों को ऊँचा करने में राष्ट्र की उतनी सेवा तुम नहीं कर सकते, जितनी कि उनकी आत्मा को विशाल बनाकर कर सकते हो। विद्वान् लेखक के शब्द इस प्रकार हैं - "You will do the greatest services to the state if instead of raising the roofs of the houses you will raise the souls of the Citizens for it is better that great souls should dwell in small houses than that mean slaves should lurk in great ones" भौतिक विकास द्वारा प्राप्त सुख कृत्रिम है तथा अल्पकाल तक टिकता है। सारा जगत् अज्ञानवश उस सुख में ही मस्त हो रहा है। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है -

> वपुः गृहं धनं दारा: पुत्रमित्राणि शत्रव:।
> सर्वथान्यस्वभावानि मूढ: स्वानि प्रपद्यते ॥

-शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु ये सब जीव से भिन्न स्वभावयुक्त हैं, किन्तु अज्ञानी जीव इन सब को अपना मानता है।

जिसने वास्तविक तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लिया है, वह विवेकी व्यक्ति भोग तथा मोह के मार्ग से विमुख होकर श्रेष्ठ त्याग को अंगीकार करता है। इस युग में आत्मविद्यारूप श्रेयोमार्ग का प्रदर्शन प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने किया था। उन्होंने प्रजापति के रूप में लोगों को लौकिक सुख और शान्ति के मार्ग पर लगाया था। जब उनकी दृष्टि मोह के अंधकार की न्यूनता होने पर विशेष विशुद्ध बनी तब उन्होंने महान् राज्य का परित्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण की थी। उनका श्रेष्ठ व्यक्तित्व वैदिक साहित्य में भी निरूपित किया गया है। ऋग्वेद तथा उपनिषदों में दिगम्बर स्वरूप युक्त परमहंस साधुओं का उल्लेख है। जाबाल उपनिषद् में कहा है, "यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थ: स परमहंसो नाम"। जब सिकन्दर भारत में आया था, तब उसने दिगम्बर साधुओं का दर्शन किया था, ऐसा मेगस्थनीज ने लिखा है।[1] भागवत में भगवान ऋषभदेव को वासुदेव का अंश कहते हुए उन्हें आत्मविद्या का पारगामी बताया है। भागवत में उनके लिए 'वासुदेवांशम्' शब्द आया है। उनके नौ पुत्र आत्मविद्या में निपुण दिगम्बर श्रमण

---

1 When Alexander came to India he saw some naked saints in Taxila

हो गए थे। भागवत के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

नवाभवन्महाभागाः मुनयो ह्यर्थशंसिनः।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्या-विशारदाः ॥२०,अ २, स्क. ११॥

वे दिगम्बर साधु सर्वत्र अव्याहत गति से विचरण करते थे।

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिध्यसाध्य-
गन्धर्व-यक्ष-नर-किन्नर-नाग-लोकान्।
मुक्ताश्चरन्ति मुनि-चारण-भूतनाथ-
विद्याधर-द्विजगवॉ भुवनानि कामम् ॥२३॥

--एक समय महात्मा निमि ने बडे-बडे ऋषियो के द्वारा एक महान् यज्ञ कराया था, तब वहॉ नव दिगम्बर श्रमण पहुँचे थे। उन्हे देखकर राजा निमि तथा अन्य महान् विप्र लोग खडे हो गए थे, उन दिगम्बर साधुओ का महान् सन्मान किया था तथा उनकी पूजा की थी। (श्लोक २४,२५, २६, अ २)।

(भागवत मे लिखा है कि साधु का धर्म "शाति तथा अहिसा" है- "भिक्षोर्धर्म शमोऽहिंसा")(४२, अध्याय १८, स्कन्ध ११)। इस श्रेष्ठ अहिसा धर्म की चर्चा करना सरल है, उस पर निर्दोष रूप से आचरण करना महान् आत्माओं का काम है। इस अहिसा की साधना के लिए दिगम्बर वृत्ति तथा नि सग अवस्था आवश्यक है। जैसे सरोवर में एक छोटा सा पाषाण खण्ड फेंकने पर लहरे उठती हैं, इसी प्रकार बाह्य कामिनी, कचनादि का जरा भी सबध मन को वीतरागता से गिराकर रागी, द्वेषी, मोही आदि विकार भाव सम्पन्न कराता है। इन्द्रियों के कारण ही जीव का मन चचल होता है। गीता में कहा है- "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरति प्रसभ मन ॥६०, अध्याय २॥ इन्द्रियाँ प्रमथन स्वभाव वाली है, वे बलपूर्वक मन को अपनी ओर खींचती हैं।

बाह्य पदार्थों का आश्रय पाकर आसक्ति उत्पन्न होती है, उससे कामना जागती है, इसके निमित्त से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से अविवेक, उससे स्मृति का नाश होता है, इसके द्वारा बुद्धि-विवेक का नाश होता है। इससे यह श्रेयोमार्ग से गिर जाता है-

ध्यायतो विषयान्पुंस. संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥६१,६२,अ २॥

कोई लोग सोचते हैं मनोभावों की शुद्धि आवश्यक है। बाह्य सामग्री से कुछ हानि नहीं पहुँचती। परिग्रह पास में रहने में कोई हानि नहीं है। यह परिकल्पना भ्रान्त है। डकैती का विचार यदि बुरा है तो डकैती का कार्य क्यों न बुरा होगा। धीवर द्वारा मछली मारने की मनोदशा यदि त्याज्य है तो क्या मछली मारने का कार्य त्याज्य न होगा? परस्त्री-सेवन का चिंतन यदि निंद्य है तो उक्त कार्य क्यों न पातक रूप होगा? दैवी सम्पत्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है- 'दैवी सम्पद्विमोक्षाय' (५ १६)। जैन शास्त्रों में उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप त्याग, आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्य ये दस धर्म कहे गए हैं।[१] दिगम्बर जैन साधु में ये दश गुण पाए जाते हैं। इन्हीं गुणों का उल्लेख दैवी सम्पत्ति के रूप में गीता में पाया जाता है। वास्तव में, ये गुण ही नर को नारायणरूपता प्रदान करते है। प्रत्येक सत्पुरुष का ध्यान इन पद्यों पर जाना चाहिए -

अभयं सत्त्व-संशुद्धिर्ज्ञान-योग-व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा-सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥१-३, अ. १६॥

— हे अर्जुन! अभय, अन्तःकरण की शुद्धता, ज्ञानयोग मे दृढस्थिति, दान, इन्द्रियों का दमन, पूजा, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, निन्दा न करना, सर्वजीवों में दया, इन्द्रियों की लोलुपता का त्याग, कोमलता, लज्जा, चचलता का त्याग, तेज, क्षमा, धैर्य, अन्तरंग तथा बहिरंग पवित्रता, शत्रुभाव का त्याग, अभिमान का अभाव, ये दैवी सम्पत्ति-प्राप्त पुरुष के लक्षण कहे गए हैं। गीता-भक्तों के मनोमंदिर में यदि दैवी संपत्ति का सूर्य प्रकाश प्रदान करे तो जीवन ज्योतिर्मय बन जाय। विद्वेष तथा हिंसामूलक प्रवृत्तियों का अभाव हो जाय और आदर्श मानव की स्थिति प्राप्त हो सकती है। सत्कर्मों की परिकल्पना नहीं, उनके अनुरूप जीवन का निर्माण आवश्यक है। आत्मा का पतन करानेवाली सामग्री आसुरी सम्पत्ति कही गई है। कोई भी व्यक्ति हो, कितना भी बडा तथा लोकमान्य हो; धर्म के क्षेत्र में भी जिसने

---

१. उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-सत्य-शौच-संयम-तपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः - ॥ तत्त्वार्थसूत्र अ ९.६॥

होगा। जैन दिगम्बर मूर्तियाँ काम, क्रोध तथा लोभ रूप नरक के कारण त्रिविध दोषा स रहित हो, अकाम, अक्रोध तथा अलोभ वृत्ति की स्पष्ट प्रतीक हैं। जैन साधु जब दिगम्बर स्थिति को प्राप्त करते है, तब वे गीता की परिभाषा के अनुसार ब्राह्मी स्थिति सम्पन्न 'स्थितप्रज्ञ' सत्पुरुष के रूप में सम्मान के योग्य हो जाते हैं। उनका आदर न करके उनके प्रति अभद्र भावों को व्यक्त करना क्या स्वधर्म की पवित्र आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं हैं? दिगम्बर जैन मुनि परमशान्ति स्वरूप, सर्वकामनाओं से मुक्त तथा पाणिपात्र महातपस्वी होते है। उन परम ब्रह्मचर्य से समलकृत साधुओं का विहार सुभिक्ष तथा समृद्धि का कारण कहा गया है। स्थित-प्रज्ञ का स्वरूप इन शब्दों में कहा गया है -

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५, अ. २॥

– हे अर्जुन! यह पुरुष मनोगत सर्व कामनाओं का त्याग करता है, उस काल में आत्मा के द्वारा ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

शीत, उष्ण, क्षुधा, प्यास, दंश, मशक, दिगम्बरत्व आदि की कठिनाइयों को सहन करने वाले जैन मुनिराज के विषय में गीता की यह उक्ति कितनी सत्य तथा उपयुक्त है यह विचारवान व्यक्ति सोच सकता है -

दुखेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतराग-भय-क्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६ अ.२॥

–जो दु खो मे घबराता नहीं, सुखो में जिसकी तनिक भी इच्छा नहीं है, जो राग, भय तथा क्रोध से विमुक्त है, वह स्थितप्रज्ञ मुनि कहा गया है।

सामान्य श्रेणी का मानव तो श्रेयोमार्ग मे सलग्न साधुओं तथा तपस्वियों के जीवन मे प्रकाश पाता हुआ गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, किन्तु उसकी आकाक्षा भर्तृहरि के शब्दो मे इस प्रकार रहती है-

एकाकी निस्पृहो शान्त: पाणिपात्रो दिगम्बर:।
[1]कदाऽहं सभविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षम: ॥८९॥ वैराग्यशतक

– भगवन्! मै अकेला, स्पृहा रहित, शान्त, कर-पात्र में भोजन करने वाला तथा कर्मो का मूलोच्छेद करने मे समर्थ दिगम्बर मुनि कब बनूगा?

---

१ कहीं-कहीं 'कदा शभो' भी पाठ मिलता है।

इस दिगम्बर अवस्था के प्राप्त होने पर मनुष्य अगणित चिन्ताओ तथा मनो-व्यथाओ से मुक्त होकर उस उच्च शाति को प्राप्त करता है, जिसकी बडे से बडे नरेश, वैभवशाली गृहस्थ, श्रेष्ठ गौरवशील राजनीतिज्ञ आदि स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकते। दुनिया की उलझनो मे फॅसे व्यक्ति को क्षणभर भी चैन नहीं मिलती है। लोकोपकार, लोकसेवा आदि सत्कार्यो के द्वारा आनन्द और अभ्युदय मिलते है, किन्तु नि.श्रेयस, निर्वाण-मुक्ति, अविनाशी सुख का उपाय विश्व से विमुख हो आत्मा की ओर उन्मुख होकर जीवन को वीतराग-वीतमोह बनाना है।

अध्यात्मविद्या के रसिक विद्वान् महाकवि बनारसीदासजी का आत्मोन्मुखता की ओर प्रेरणा देने वाला भजन मनन योग्य है। अध्यात्म का महत्व न ऑकने के कारण कोई विदेशी आध्यात्मिकता मे 'World Flight' -दुनिया से दूर भागने की कल्पना करके अकर्मण्यता का दर्शन करते है, किन्तु यदि उन्हे यह पता चल जाय कि साधु तपोवन मे जाकर चुपचाप अकर्मण्य नहीं बैठता है, वह क्रोध, मान, माया लोभ, काम आदि अन्तरग शत्रुओ से घोर सग्राम करता है, तब वे यह समझेगे कि उस अवस्था को 'Spiritual Fight' आध्यात्मिक-सग्राम कहना सुसगत होगा।

बनारसीदास जी कहते है-

"दुविधा कब जै है या मन की ।।दु ।।
कब निजनाथ निरजन सुमिरौ, तज सेवा जन-जन की ।।दु ।।१।।

कब रुचि सौं पीवै दृग चातक, बूँद अखय पद घन की ।
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूँ न ममता तन की ।।दु ।।२।।

कब घट अन्तर रहै निरन्तर दिढता सुगुरु वचन की।
कब सुख लहौ भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ।।दु ।।३।।

कब घर छाडि होहु एकाकी, लिये लालसा वन की।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौ बलि-बलि वा छनकी।।दु ।।४।।"

गॉधी जी राजनैतिक नेता होते हुए भी गहरी आध्यात्मिक रुचि वाले सत्पुरुष थे, इसीसे उन्होने इगलैड के तत्कालीन प्रधानमत्री चर्चिल को एक पत्र लिखकर कहा था- "मेरी तीव्र इच्छा है कि मैं दिगम्बर साधु बनूँ, यद्यपि मै अभी उस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सका हूँ।" वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने के स्थान मे जो व्यक्ति एक झोपडी मे

रहकर अपनी आवश्यकताओं को न्यून करते हुए अपना जीवन व्यतीत करता था उस पुरुष की दृष्टि भौतिकता के मोतियाविन्दु के रोग से विमुक्त होने से स्वच्छ थी।

देशवासियों को स्वदेशी सामग्री का उपयोग करने का उपदेश देने वाले गाँधी जी आत्मा के लिए उसके देह को भी परदेशी सोचते थे। जहाँ 'स्व' शब्द आत्मा का वाचक बनता है, वहाँ जड देह उस चैतन्य ज्योतिर्मयी आत्मा से भिन्न ही ठहरी अत उससे मुक्ति प्राप्त करना ही सच्चे अर्थ मे स्वदेशी बनना कहा जायगा। उसी विशुद्ध प्रकाश मे अपने देश पर अपना शासन 'स्वराज्य' न होकर अपनी आत्मा को भोग तथा विषयों के कुचक्र से छुडाकर आत्मा मे अवस्थित होना 'स्वराज्य' है। उस स्वराज्य को जिनसेन स्वामी महापुराणकार के शब्दों मे "धर्म-साम्राज्य-नायक" भी कहा जाता है। यरवदा जेल मे बैठे हुए कैदी शरीरवाले गाँधीजी ने सन् १९३० में वे अनमोल शब्द लिखे थे- 'आत्मा के लिए स्वदेशी का अतिम अर्थ सारे सम्बन्धों से आत्यतिक मुक्ति है। देह भी उसके लिए परदेशी है।" ऐसी स्थिति को प्राप्त करने की क्षमता अपने हाथ से काते गए सूत से बने खादी के वस्त्र में नहीं है। वह वस्त्र भी परदेशी है। उसके लिए दिशारूपी वस्त्र धारणकर या तो दिगम्बर होना पडेगा अथवा वस्त्र मात्र रहित निरम्बर होना आवश्यक होगा। सहस्रनाम पाठ मे परमात्मा के वाचक शब्दों मे यह कहा है -

'दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रंथेशो निरम्बर '

— भगवान दिशारूपी वस्त्रों को धारण करने से 'दिग्वास' है, पवन रूपी करधनी से समलकृत होने से 'वातरशन' है मोह की ग्रन्थि (गाँठ) रहित होने के कारण निर्ग्रथो के ईश्वर है तथा अम्बर अर्थात् वस्त्ररहित होने से निरम्बर है।

इस प्रसग मे गाँधीजी के ये उद्गार वडे अनुभवपूर्ण प्रतीत होंगे- "आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा जो मन से और कर्म से दिगम्बर है। मतलब वह पक्षी की भाँति विना घर के विना वस्त्रों के और विना अन्न के विचरण करेगा इस अवस्था को तो विरले ही पहुँच सकते है।" आज जो लोग भौतिक अभ्युदय को अपने जीवन का लक्ष्य वनाए हुए है तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति मे कृतार्थता की कल्पना किए है भारत के उन कर्णधारो को अपने पूज्य वापू के इन शब्दो की गहराई हृदयगम करने का कष्ट करना चाहिए "सच्चे सुधार का सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह वढाना नहीं है वल्कि उसको विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यो-ज्यो परिग्रह घटाइये त्यों-त्यों सच्चा सुख और सच्चा सतोष वढता है।"

(गाधी वाणी पृ २५६)

जैन कवि की यह वाणी कितनी सप्राण, विशुद्ध तथा वास्तविक है-

> चाह घटी चिन्ता हटी मनुआ वेपरवाहू।
> जिन्हें कछू नहि चाहिए वे शाहनपति शाह ॥

ऐसी पवित्र तथा परिशुद्ध स्थिति प्राप्त करने के लिए इस जीव को जडतत्त्व की आराधना को छोडकर अनत शक्ति के अक्षयभण्डार आनदमय आत्मा का आश्रय लेना होगा। जड पदार्थ की सगति से ही जीव की दुर्दशा होती है। अग्नि जव लोहे की सगति करती है, तव वह लुहार के द्वारा घनो की मार सहन करती है। परमानंद स्तोत्र मे लिखा है-

> सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पण्डितः।
> स सेवते निजात्मान परमानन्द-कारणम् ॥

—जो जीव को सदा आनन्दमय जानता है, परमार्थ दृष्टि से वह ज्ञानी है, पडित है। वह श्रेष्ठ आनन्द के कारण स्वरूप अपनी आत्मा की आराधना करता है।

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने इस आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहा है। यह आत्मा स्वशरीर प्रमाण है। ससारी जीव कर्मो द्वारा वद्ध हैं, इससे कर्मो के अनुसार जितना छोटा-वडा शरीर प्राप्त होता है, जीव भी उसी प्रकार सकोच-विस्तार रूप होता है। आत्मा शरीर के वाहर नहीं है तथा वह शरीरव्यापी है, वह विश्वव्यापी नहीं है। यह जेनागम का कथन अनुभव तथा विज्ञानसम्मत है। अत आत्मा का चिंतन करने वाले मानव को अपने शरीर प्रमाण ज्ञानस्वरूप आत्मा का विचार करना चाहिए। महान् योगी पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश मे आत्मा का स्वरूप इस प्रकार कहा है -

> स्व-संवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्यय·।
> अत्यन्त-सौख्यवान् आत्मा लोकालोकविलोकनः ॥

—यह आत्मा स्व को अर्थात् अपने आपको सवेदन (ज्ञान) के द्वारा भली प्रकार जान जाता है। यह शरीर प्रमाण है। इस आत्मतत्त्व का क्षय नहीं होता, यह अविनाशी आनन्द वाला है। यह लोक तथा अलोक का दर्शन करने की सामर्थ्य सम्पन्न है।

शुभचद्राचार्य ने लिखा है कि यह जीव पशु, मनुष्यादि की पर्यायो मे पाया जाता है। उसका कारण यह कर्मोदय है- ''सर्वोऽय कर्मविक्रम ''। मै अनतज्ञानादि सम्पन्न हूँ, इससे विपक्षी कर्मरूप विषवृक्ष को क्यो न जडमूल से उखाडूँ? ''किन्तु
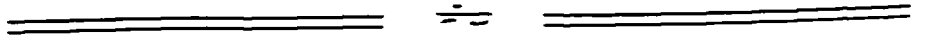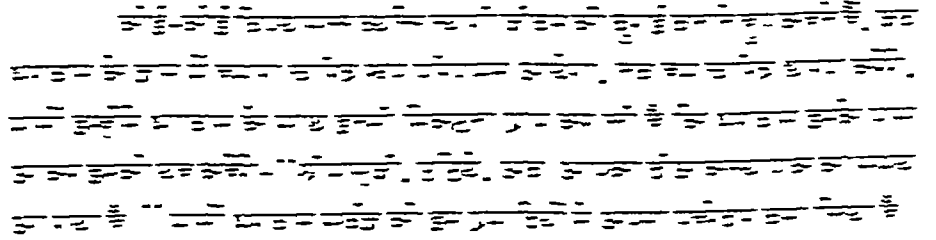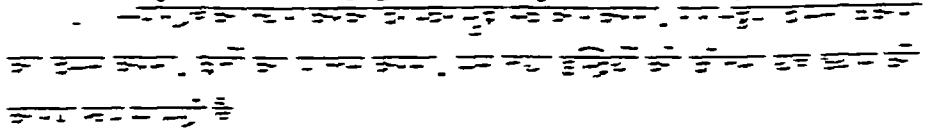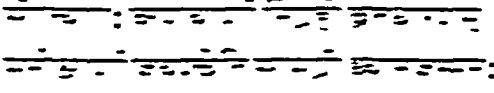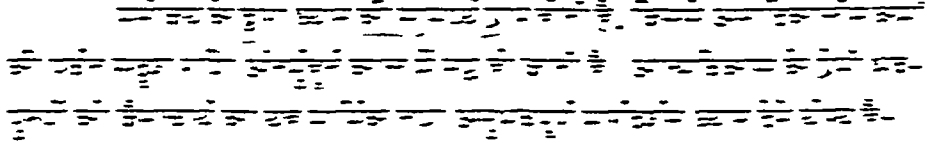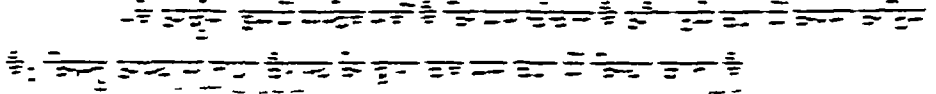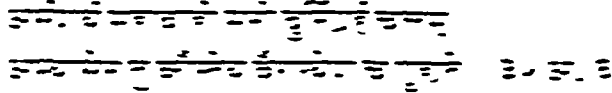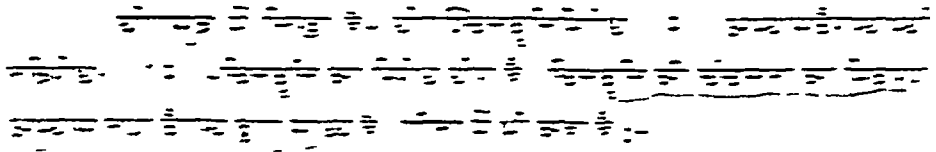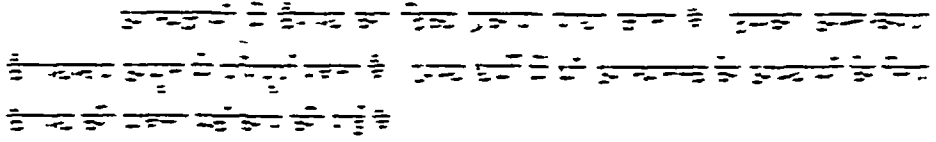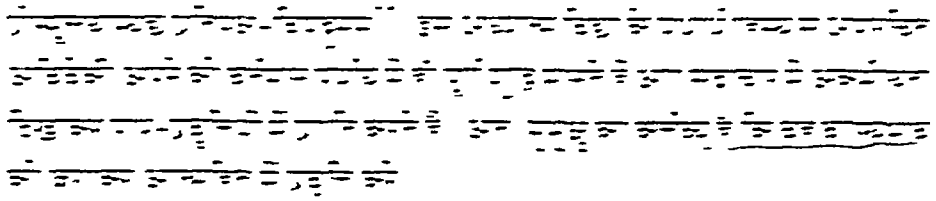
सत्कर्मो से विमुख हो दुष्ट प्रवृत्तियो में निमग्न होने वाले तथा उनमे विशेप प्रयत्नगत व्यक्तियो को महर्षि कुदकुद उपदेश देते है, "जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक पाप कार्यो मे लगते हैं, वे ससार मे दु ख भोगते है।"

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिस जीवो।
मोहंधयार-सहियो तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

ऐसे प्रमादियो के प्रमुख को एक जैन कवि भजन में ममझाते हैं—

आवै न भोगन तैं तोहि गिलान ॥टेक॥
तीरथनाथ भोग तजि दीने तिन तैं भय मन आन।
तू तिनतैं कहुं डरता नांही, दीसत अति बलवान ॥टेक॥

इस प्रसग मे उर्दू के एक शायर की उक्ति स्मरण योग्य है, जो यह बताती है कि आचरण के द्वारा जीवन बनता है। उच्च पद या नीच अवस्था मनुष्य के आचार पर आश्रित है।

अमल से जिदगी बनती है, जन्नत भी जहन्नुम भी।
ये खाकी अपनी फितरत में न नूरी है न नारी है ॥

मोह के कारण अन्धा जीव विपरीत दृष्टि बन जाता है, उससे ही सब प्रकार के उपद्रव आरम्भ होते हैं। उस मोह को वश करने का उपाय यशोविजय उपाध्याय ने ज्ञानसार मे इस प्रकार कहा है-

अहं ममेति मंत्रोयं मोहस्य जगदाध्यकृत्।
अयमेव हि नञ्पूर्वः प्रतिमंत्रोपि मोहजित्॥

– मोहरूपी जादूगर जिस मत्र के द्वारा ससार को मूर्ख बनाता है वह मत्र है 'मै ऐसा हूँ,' (अहकार) 'मेरा यह है' (ममकार)। इस अहकार, ममकार के द्वारा यह अपना विनाश करता है। इस मोह के मत्र मे निषेध वाचक शब्द लगाकर 'न मम' 'न अह'-यह जगत् मेरा नहीं है, मैं सुखी, दु खी, धनवान, गरीब आदि नहीं हूँ, इस दृष्टि के द्वारा मोह का जादू दूर हो जाता है।

जैसे सुवर्ण पीतवर्ण है, उसी प्रकार का पीलापन पीतल मे भी पाया जाता है, इसी प्रकार सर्वज्ञ शासन के द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक दृष्टि एव इतर जनो द्वारा कही जाने वाली आत्मा की चर्चा मे सामान्यतया आध्यात्मिकता का नाम मात्र से साम्य है।

रत्नत्रय की ज्योति से समलकृत आत्मदृष्टि मोक्षमार्ग है। उस आत्मा का क्या स्वरूप मुमुक्षु को श्रद्धान मे रखना चाहिए, इस सम्बन्ध मे कुदकुदस्वामी ने प्रवचनसार मे कहा है-

अरसमरुवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द।
जाण अलिगग्गहण जीव-मणिदिट्ठ-सठाण ॥१७२॥

– जीव को रस रहित, रूप रहित, गध रहित, स्पर्श रहित, शब्द रहित, किसी चिह्न के द्वारा न ग्रहण करने योग्य तथा विशिष्ट आकार रहित जानो।

नियमसार मे कहा है-

एगो मे सासदो आदा णाण-दसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥१०२॥

– तत्त्वदृष्टि से विचारने पर ज्ञात होगा कि मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है तथा ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। इसके सिवाय शेष पदार्थ मुझसे भिन्न है। वे सयोग लक्षणवाले है। बाह्य पदार्थो का मेरी आत्मा के साथ तादात्म्य भाव नहीं है।

जो जीव का ध्यान राग, द्वेष, मोहादि विषधरो से व्याप्त जगत् की ओर खींचते है, वे इस आत्मा को जन्म-जरा-मरण के सकटो से नहीं छुडा सकते। **भैया भगवतीदास** जी ने प्रेमभरी वाणी मे जीव को समझाते हुए प्रार्थना की है, कि वह जड शरीर तथा धन-धान्य, कुटुम्बादि के मोह का त्याग करके अपना उद्धार करे। उनके उद्‌बोधक शब्द है-

अहो जगत के राय मानहु एती बीनती।
छांडहु पर-परजाय, काहे भूले भरम मे॥

इस आध्यात्मिक प्रकाश की उपलब्धि के लिए मनुष्य को अपना अन्त करण सम्यग्दर्शन से समलकृत करना चाहिए। उसे सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी प्रभु का शरण ग्रहण करना होगा। यदि आराध्य विकारो का पुज होगा, तो उसका आश्रय ग्रहण करने से कैसे कल्याण होगा? सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान आवश्यक है। इनके लिए साधारण अहिसापूर्ण जीवन प्रवृत्ति आवश्यक है। जैन आगम मे इसे रत्नत्रय का मार्ग कहा है। उसकी श्रेष्ठ साधना इस युग मे अत्यन्त कठिन है। शारीरिक परिस्थिति, बाह्य वातावरण तथा श्रेष्ठ मनोजय इसके लिए आवश्यक है। आध्यात्मिक प्रकाशप्रद सामग्री दुर्लभ है।

चारित्र-चक्रवर्ती श्रमणराज

यह भारत का सौभाग्य रहा, कि उसको चारित्र-चक्रवर्ती श्रमणराज आचार्य शान्तिसागर महाराज नाम के दिगम्बर जैन महर्षि के रूप मे आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हुई थी। उन्होने श्रेष्ठ अहिसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि की समाराधना की थी तथा ३६ दिन पर्यन्त आहार-पान का परित्यागकर उच्च अहिसा की साधना के हेतु कुथलगिरि की जैन तपोभूमि से १८ सितम्बर १९५५ के प्रभात मे परलोक यात्रा की थी। वे चन्द्रमा के समान अत्यन्त शीतल थे तथा सूर्य की भाँति तपस्या के तेज से अलकृत थे। वह आध्यात्मिक ज्योति लोकोत्तर थी, जिसमे भानु तथा शशि दोनो की विशेषताएँ केन्द्रित थीं।

हमने इन श्रमणराज के समाधि लेने के पूर्व उनके पुण्य जीवन पर जो रचना बनाई थी, उसे 'चारित्र चक्रवर्ती' नाम से प्रगट किया था, क्योकि वे चारित्ररूपी धर्मचक्र का प्रवर्तन कर रहे थे। उनका जीवन परोपकारपूर्ण समुज्ज्वल प्रवृतियो से समलकृत था। इसके पश्चात् गुरुदेव ने आत्मशुद्धि तथा रत्नत्रय-साधना को अपने जीवन का केन्द्र बिन्दु बनाया था, इसलिए उन्होने जनसम्पर्क को छोडकर आत्माराधन के कल्याणपथ को अपनाया था। उन्होने 'समाधिशतक' की इस उच्च शिक्षा द्वारा अपने जीवन को अनुशासित किया था -

> जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमः।
> भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥७२॥

– लोक सम्पर्क होने पर वचनालाप होता है, उससे मानसिक चचलता होती है और चित्त मे विभ्रम होता है, इसलिए योगी जनसम्पर्क का परित्याग करे।

वास्तव में वे परमयोगी हो गए थे, जिन्होने शरीर-पोषण से पूर्ण विमुखता धारण कर आत्मोन्मुखता प्राप्त की थी। उन गुरुदेव ने सल्लेखना के श्रेष्ठ क्षणो मे एकबार यह रहस्यपूर्ण बात बताई थी, कि वे अनन्त सिद्धो की निवासभूमि सिद्धशिला पर चिन्तनशक्ति द्वारा पहुँचकर अपनी आत्मा का ही ध्यान करते थे। अत उनका जीवन आध्यात्मिक ज्योतिरूप में प्रतीत होता है, जो अपनी मुद्रा द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करते हुए सब प्राणियों को यह दिव्य प्रकाश प्रदान करता है, कि प्रत्येक भव्य आत्मचिंतन पूर्वक सच्चे पुरुषार्थ का प्रश्रय ले रत्नत्रय के प्रसाद से परमात्मा की अवस्था को प्राप्त करता है। पुस्तक के उत्तरखण्ड का नाम आध्यात्मिक ज्योति रखना उचित लगा।

इस पुस्तक की मुद्रण व्यवस्था, प्रूफ सशोधन तथा महत्त्वपूर्ण सुझाव देना

आदि अत्यन्त श्रमपूर्ण कार्य मेरे अनुज प्रोफेमर मुशीलकुमार दिवाकर, एम ए वी कॉम, एल-एल वी ने वहुत श्रम कर मम्यक् प्रकार मम्पन्न किये। अनेक मम्मरणो के लेखन मे छोटे भाई श्रेयासकुमार, वी एस-सी , अभिनन्दनकुमार दिवाकर एम ए एल-एल वी एडवोकेट ने भी गुरुभक्ति से प्रेरित हो कार्य किया था। चिरजीव ऋषभ ने लेखनकार्य मे वहुत परिश्रम उठाया। इस रचना का कुछ अश लिखते ममय स्व प्रो ताराचद जैन, पथरिया (सागर) ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। श्रीगणपति रोटे कोल्हापुर ने माथ चलकर सस्मरण सग्रह करने मे सहयोग किया था। व्र जिनदामजी समडोलीकर ने भी प्रवास का कष्ट उठाकर अपूर्व सहयोग दिया था। गुरुभक्त वन्धु श्री एम एम दोशी वकील फलटण तथा श्री गजानन मूग कोल्हापुर ने कुछ उपयोगी चित्र भेजे थे। इस प्रकार इनके पवित्र सहयोग द्वारा यह कार्य वन सका। लेखक इनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

१०८ चारित्र चूडामणि महामुनि वर्धमानसागर महाराज, आचार्य वीरसागर महाराज, उग्रतपस्वी नेमिसागर महाराज, वीतरागी आचार्य धर्मसागर महाराज, आचार्य पायसागर महाराज, आचार्य देशभूषण महाराज, आदिसागर महाराज (दक्षिण), आचार्य अनतकीर्ति महाराज आदि अनेक निर्ग्रन्थ साधुओ ने, अनेक साध्वियो ने, त्यागियो ने, गृहस्थो ने अपने अमूल्य सस्मरण निवद्ध करने मे सहयोग दिया था। **संस्मरणो के लेखन मे यथाशक्ति पर्याप्त सावधानी रखी गई है। फिर भी स्वयं के प्रमाद अथवा किन्ही संस्मरणदाताओ की असावधानी से यदि कोई ऐसी बात छप गई हो, जो यथार्थ न हो, तो हमे जानकार बंधु साधार सामग्री भेजने की कृपा करे, जिसके प्रकाश मे आगामी सस्करण मे समुचित संशोधन कर विशुद्ध सत्य की रक्षा की जा सके।**

दिवाकर-सदन
सिवनी (मध्यप्रदेश)
दिनाक १७-४-१९६२
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जयती)

सुमेरुचद्र दिवाकर

।। ज्ञानामृतम् ।।

वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलम्।
प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुष-कीर्तनात्।।
अल्पकालमिदं जतोः शरीरं रोग-निर्भरम्।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम्।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना।
शरीरं स्थास्नु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनं।।२४-२६, प्रथम पर्व

महापुरुष का यशोगान करने से विशुद्ध ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, निर्मल कीर्ति का प्रसार होता है। पाप दूर भागता है। इस जीव की रोगभरी देह थोडे दिन टिकनेवाली है, किन्तु महापुरुष की गुण-गाथा से उत्पन्न यश जब तक चन्द्र, सूर्य, तारे रहेंगे, तब तक विद्यमान रहेगा। अत आत्मज्ञ पुरुष को सम्पूर्ण प्रयत्नो द्वारा महापुरुष का कीर्तन करके इस यशरूपी शरीर को स्थायी बनाना चाहिए। —(पद्मपुराण)

पूजार्थाऽऽज्ञैश्वर्यैर्बल-परिजन-काम-भोग-भूयिष्ठैः।
अतिशयित-भुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः।।१३५।।

सद्धर्म (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) पूजा, धन, आज्ञा, ऐश्वर्य, बल, परिजन, पचइन्द्रियों के द्वारा सेव्यमान काम तथा भोग की प्रचुरता से त्रिभुवन मे उत्कृष्ट तथा आश्चर्यप्रद अभ्युदय रूप फल प्रदान करता है।

यदि पाप-निरोधोऽन्यसम्पदा कि प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य-सम्पदा कि प्रयोजनम्।।२७।।

यदि पापास्रव का निरोध है अर्थात् उसका सवर होता है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है? यदि पाप का आस्रव होता है, तब भी अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है?

श्रद्धान परमार्थानामाप्तागम-तपोभृताम्।
त्रिमूढा-पोढ-मष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।।४।।

सच्चे सर्वज्ञ-वीतराग-हितोपदेशी आप्त, जिनेन्द्रवाणी रूप आगम तथा तप को धारण करने वाले दिगम्बर ऋषियो का देवमूढता, गुरुमूढता रहित, नि शकित आदि अष्टाग युक्त तथा जाति कुलादि के अभिमान रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

- (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

सूत्रमौपासिक चास्य स्यादध्येय गुरोर्मुखात्।
विनयेन ततोऽन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ।।११८, पर्व ३८।।

सबसे पहले गुरु के मुख से श्रावकाचार पढना चाहिए, इसके अनन्तर विनयपूर्वक अध्यात्मशास्त्र तथा अन्य शास्त्र पढना चाहिए। -(महापुराण)

दुराचारार्जितं पापं सच्चरित्रेण नश्यति ।।४६, पर्व ७२।।

दुराचार अर्थात् नीच आचरण करने से बाँधा गया पाप कर्म सम्यक् आचरण के द्वारा नष्ट हो जाता है।

दुर्विध. सधन: पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गश्च प्राप्यते।
तस्मात्पुण्यं विचिन्वंतु हतापत्-सपदैषिण.।।१५७,पर्व ७५।।

पुण्य से धनरहित धनवान बनता है। पुण्य से स्वर्ग प्राप्त होता है, अतएव आपत्ति का अभाव तथा सम्पत्ति की प्राप्ति की इच्छा करनेवालो को पुण्य का सग्रह करना चाहिए। –(उत्तरपुराण)

पुण्यं जिनेन्द्र-चरणार्चनसाध्यमाद्यम्।
पुण्यं सुपात्रगतदान-समुत्थमेतत्।।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्।
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्।।

पुण्य की उत्पत्ति जिनेन्द्र भगवान के चरणो की पूजा द्वारा सम्पन्न होती है, सुपात्र-दान द्वारा यह पुण्य प्राप्त होता है। व्रतो के पालन द्वारा तथा उपवास के द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्यार्थी पुरुषो को उपर्युक्त पूजा, पात्रदान, व्रत तथा उपवास द्वारा पुण्यार्जन करना चाहिए। -(हरिवशपुराण)

यस्य पुण्य च पापं च निष्फल गलति स्वय।
स योगी तस्य निर्वाण न तस्य पुनरास्रव ।।२४६।।

जिस योगी के पुण्य तथा पाप विना फल दिये निर्जीर्ण हो जाते हे, उसके निर्वाण होता है, उसके पुन कर्मों का आगमन नहीं होता।

करोतु न चिरं घोर तपः क्लेशासहो भवान्।
चित्तसाध्यान् कषायारीत्र जयेद्यत्तदज्ञता ॥२१२॥

तपस्या का कष्ट सहन करने की शक्ति न होने से बहुत समय पर्यन्त घोर तप नहीं करते हो, तो कोई वात नहीं है, किन्तु अपने परिणामो के द्वारा ही वश करने योग्य क्रोधादि कषायरूप शत्रुओं को यदि नहीं जीतते हो, तो यह तुम्हारी अज्ञानता हे।

धर्मादवाप्त-विभवः धर्म प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु।
बीजादवाप्त-धान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव ॥२१॥

धर्म के द्वारा वेभव को प्राप्त करके धर्म की रक्षा करते हुए भोगो का अनुभव करो। जैसे किसान बीज के द्वारा धान्य प्राप्त करता हुआ बीज की रक्षा करता हुआ उसका उपभोग करता है।

परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य-पापयोः प्राज्ञाः।
तस्मात्पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः ॥२३॥

महान् ज्ञानियो ने कहा है कि पुण्य तथा पाप के कारण जीव के भाव ही हे। इससे पाप का क्षय तथा पुण्य का सचय करना उचित हे।

-(आत्मानुशासन)

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

रागद्वेष आदि की उत्पत्ति न होना अहिसा हे। उनकी उत्पत्ति होना ही हिसा है, यह जिनवाणी का सार है।

-(पुरुषार्थसिध्युपाय)

यदा मोहात् प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थ-मात्मान शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

जब तपस्वी साधु की आत्मा मे राग तथा द्वेष उत्पन्न हो, उसी समय राग-द्वेष विकार विमुक्त अपनी आत्मा की भावना करे, ऐसा करने से वे विकार क्षण भर मे शान्त होते हैं।

सोऽह-मित्यात्त-मम्कारम्तम्मिन् भावनया पुन ।
तत्रैव दृढसम्काराल्लभते ह्यात्मनि म्थितिम ॥२८॥

'सोऽह'जो परमात्मा है, वह मै हूँ इम प्रकार का मम्कार, इम प्रकार की भावना तथा इसी मे सुदृढ सस्कारो मे आत्मा मे म्थिरता प्राप्त होती है।

-(ममाधिशतक)

स्यात्सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्ररूप पर्यायार्थादेशतो मोक्षमार्ग ।
एकोज्ञाता सर्वदैवाद्वितीय म्याद द्रव्यार्थादेशतो मुक्तिमार्ग ॥२१ अ ॥

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र रूप है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक अद्वितीय तथा सर्वदा ज्ञान म्वरूप आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। (तत्त्वार्थसार)

एकापि समर्थेय जिनभक्ति दुर्गति निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितु दातु मुक्तिश्रिय कृतिन ॥

यह जिनेन्द्र भगवान की भक्ति अकेली ही दुर्गति-गमन को दूर करने मे समर्थ है, वह पुण्य को प्रदान करती है। उस भक्ति द्वारा भाग्यशाली व्यक्ति को मुक्तिलक्ष्मी भी प्राप्त होती है। -(दशभक्ति)

एक सदा शाश्वतिको ममात्मा।
विनिर्मल साधिगमस्वभाव ॥
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता।
न शाश्वता कर्मभवा स्वकीया ॥२६॥

मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है। वह पूर्ण निर्मल है तथा ज्ञान स्वभाव वाली है। उसके सिवाय अन्य सर्व पदार्थ बाह्य है। कर्मोदय से प्राप्त सामग्री शाश्वतिक नहीं है।

शरीरत कर्तुमनतशक्ति।
विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्॥
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टिम्।
तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति ॥२॥

हे जिनेन्द्र भगवान् ! आपके प्रसाद से मेरी ऐसी शक्ति हो, कि तलवार से जिस

प्रकार म्यान अलग रहती है, उसी प्रकार मे अनन्त शक्ति युक्त तथा दोप रहित अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् कर सकूँ। -(सामायिक पाठ)

एकोऽह निर्मम: शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर'।
वाह्या: संयोगजा भावा मत्त: सर्वेपि सर्वथा ॥२७॥

'मे' एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानवान हूँ, योगीन्द्रो के ज्ञानगोचर हूँ। सयोग रूप से प्राप्त सर्वपदार्थ मुझसे सर्व प्रकार से भिन्न है। -(इष्टोपदेश)

आदे हि कम्मगठी जा वद्धा विसय-राय- मोहेहि।
त छिदंति कयत्था तव-संजम सीलयगुणेण ॥२७॥

जो कर्मो की गॉठ, विपयो की आसक्ति तथा मोहभाव के कारण आत्मा मे वधी है, उसे कृतार्थ पुरुप तप, सयम ओर शीलरूप गुणो के द्वारा काट देते हे। -(अष्टपाहुड)

अवश्य यदि नश्यंति स्थित्वापि विपयाश्चिरम्।
स्वय त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्ति: संसृतिरन्यथा ॥

यदि विषय-भोग की सामग्री अधिक समय तक स्थित रहकर भी अन्त मे विनाश को प्राप्त होती है, तो उसका पहले ही स्वय त्याग करना उचित होगा। ऐसा करने से मुक्ति का लाभ होगा, अन्यथा ससार मे परिभ्रमण करना पडेगा। -(क्षत्रचूडामणि)

* * * *

मोह महातम दलन दिन तप-लक्ष्मी-भरतार।
सो पारस परमेस मुझ होहु सुमति दातार॥[१]

तीन काल के जिनवरा तीन काल के सिद्ध।
तीन काल के मुनिवरा वन्दो लोकप्रसिद्ध॥

तीन भुवन मे जे लसे, चेत्य, चेत्य-गृह सार।
तिनको वन्दौ भावयुत, ये त्रिभुवन मे सार॥

---

१ हमारे परम धार्मिक, प्रशान्त परिणामी, आदरणीय बाबा रतनचन्द्रजी ने जो प्रकीर्णक तथा प्रवोधक पद्य हमें वाल्यजीवन मे सिखाये थे, वे यहाँ दिये गए है, ताकि उनको स्मरण कर लोग आत्महित में प्रवृत्ति करें।

चौबीसी तीनो नमो, नमो तीस चोवीस।
सीमधर आदिक नमो, विहरमान जिन बीस॥

वृषभसेनको आदि दे, अतिम गौतम स्वाम।
चौदहसौ बावन सुगुरु, तिनको सदा प्रणाम॥

तुम माता तुम ही पिता, तुम सज्जन सुखदान।
तुम समान इस लोक मे, और नहीं भगवान॥

पडूँ पग तरे आपके, पाप पग तरे दैन।
हगे कर्म को सब तरे, देहु सब तरे चैन॥

हार गए हो नाथ तुम, अधम अनेक उवार।
धीरे-धीरे सहज ही, लीजे हमे उबार।।

जहाँ जपै नमोकार वहाँ अघ कैसे आवे।
जहाँ जपै नमोकार वहाँ व्यतर भग जावे॥

जहाँ जपै नमोकार वहाँ सुख सम्पत्ति होई।
जहाँ जपै नमोकार वहाँ दु ख रहे न कोई॥

नमोकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवे निकट।
भैया नित जपवो करो, महामन्त्र नमोकार है॥

सुलझे पशु उपदेश सुन, सुलझे क्यो न पुमान।
नाहर ते भये वीर जिन, गज पारस भगवान॥

आयु घटत है रात दिन, ज्यो करोत ते काठ।
हित अपना जल्दी करो, पडा रहे सब ठाठ॥

मन तू सडे शरीर मे, क्या माने सुख-चैन।
जहाँ नगारे कूच के, बजत रहत दिन-रैन॥

को काको दु ख देत है, देत करम झकझोर।
उलझै सुलझे आपही, धुजा पवन के जोर॥

ज्यो मतिहीन विवेक बिना नर साज मतग जो ईन्धन ढोवै।
कचन भाजन धूरि भरै शठ मूढ सुधा-रस सो पग धोवै॥

बेहित काग उडावन कारन डार उदधि मनि मूरख रोवै।
त्यों नरदेह दुर्लभ्य बनारसि पाय अजान अकारथ खोवे॥

आठनि की करतूति विचारहु कौन-कोन ये करते हाल।
कबहुँक सिर पर छत्र फिरावे कबहुँक रूप करै बेहाल॥

देवलोक सुख कबहूँ भुगते कबहूँ रच नाज को काल।
ये करतूति करै कर्मादिक चेतन रूप तू आप सम्हाल॥

प्रभु सुमरन को आलसी भोजन को तैयार।
ज्ञानी ऐसे नरन कौं बार-बार धिक्कार॥

रात गँवाई सोयकर, दिवस गँवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौडी बदले जाय॥

तीन लोक का नाथ तू क्यो बन रहा अनाथ।
रत्नत्रय निधि साथ ले क्यो न होय जगनाथ॥

॥ अनुक्रम ॥

❑❑❑

आध्यात्मिक ज्योति

दिव्य समाधि

(सल्लेखना)

अपने सीमित साधनो के मध्य रहने वाले मानव को यह पता नहीं चलता कि आगे कैसी विचित्र अघटित तथा अकल्पित बातें प्रत्यक्षगोचर हो जाती है। विधि सुघटित घटनाओं को विघटित करता है और अघटित घटनाओं का निर्माण करता है। ऐसी भी घटनाएँ प्रत्यक्षगोचर होती हैं जिनकी मनुष्य ने कभी चिन्ता भी नहीं की थी।

अघटित-घटितं घटयति, सुघटित-घटितं च जर्जरीकुरुते ।
विधिदेव तानि घटयति, यानि नरो नैव चिन्तयति ॥

स्व आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के चरणों के समीप रहने से मन में ऐसा विश्वास जम गया था कि आचार्य महाराज जब भी सल्लेखना स्वीकार करेंगे तब नियम सल्लेखना लेंगे, यम सल्लेखना नहीं लेंगे। ऐसा ही उनका मनोगत अनेक बार ज्ञात हुआ था। मुझे दृढ विश्वास था कि महाराज विचारक महापुरुष है, उनकी सल्लेखना नियम सल्लेखना के रूप में प्रारम्भ होगी, किन्तु भविष्य का रूप किसे विदित था? जिसकी स्वप्न मे भी कल्पना न थी, वह साक्षात् हो गया। आचार्य शान्तिसागर महाराज ने यम सल्लेखना ले ली। उसे लिये चार दिन हो गए। कुथलगिरि से कोई भी समाचार मुझे नहीं मिला।

२२ अगस्त १९५५ को १ बजे मध्याह्न मे फलटण से इन्द्रराज गाधी का तार मिला, 'Acharya Maharaj started Yama Sallekhana from four days, start first train Kunthalgiri.' 'आचार्य महाराज ने चार दिन हुए यम सल्लेखना ले ली है। शीघ्र ही पहली ट्रेन से कुथलगिरि पहुँचिये।' मै अवाक् हो गया। चित्त घवडा गया। अकल्पित वात हो गई। तत्काल ही मैने गुरुदेव के दर्शनार्थ प्रस्थान किया।

मैं २२ अगस्त को २ बजे दिन की मोटर से नागपुर ७॥ बजे रात को पहुँचा।

वहाँ से रेल से शेगाँव गया। पश्चात् मोटर से देवलगाँव, वागरुल, जालना होते हुए ता २३ की रात को १० बजे कुन्थलगिरि पहुँचा। उस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी। एक घण्टा स्थान पाने की परेशानी के उपरान्त मुझ अकेले को स्थान मिल पाया।

प्रथम दर्शन

मैने २४ अगस्त के प्रभात मे पर्वत पर कुटी मे आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शन किये और नमोस्तु निवेदन किया। महाराज बोले – "वहुत देर मे आए। आ गए, यह बहुत अच्छा किया। बहुत अच्छा हुआ आ गए। बहुत अच्छा हुआ आ गए। वहुत अच्छा किया।" इस प्रकार चार बार पूज्यश्री के शब्दो को सुनकर स्पष्ट हुआ कि उन श्रेष्ठ साधुराज के पवित्र अत करण मे मेरे प्रति करुणापूर्ण स्थान अवश्य है।

मैने कहा – "महाराज ! श्रेष्ठ तपस्या रूप यम समाधि का महान् निश्चय करके आपने जगत् को चमत्कृत कर दिया है। आपका अनुपम सौभाग्य है। इस समय मै आपकी सेवार्थ आया हूँ। शास्त्र सुनाने की आज्ञा हो या स्तोत्र पढने आदि का आदेश हो, तो मै सेवा करने को तैयार हूँ।"

पूर्णतया स्वावलम्बी अवस्था

महाराज बोले – "अव हमे शास्त्र नहीं चाहिए। जीवन भर सर्वशास्त्र सुने। खूब सुने, पढे। इतने शास्त्र सुने कि कण्ठ पूर्ण भर चुका है। अब हमे शास्त्रो की जरूरत नहीं है। हमे आत्मा का ही चिन्तन करना है। इस विषय मे स्वय सावधान हूँ। हमे कोई भी सहायता नहीं चाहिए।" महाराज की वीतराग भावपूर्ण वाणी को सुन मन वडा सन्तुष्ट हुआ। सचमुच मे जिस महापुरुष के ये वाक्य हो "शास्त्र हृदय मे भरा है" उन्हे ग्रन्थ के अवलम्बन की इस समय क्या आवश्यकता?

ता २५ अगस्त को अष्टमी थी। मैने पूछा – "महाराज ! नींद घटा दो घटा आती तो है न?"

महाराज – "निद्रा अति अल्प है।"

आत्मा का ध्यान

प्रश्न – "महाराज ! आत्मध्यान का क्या हाल है?"

महाराज – आत्म-ध्यान सतत चालू आहे — आत्मध्यान निरन्तर चलता है।

वीरसागरजी को आचार्यपद

ता २६ शुक्रवार को आचार्य महाराज ने वीरसागर महाराज को आचार्यपद प्रदान किया। उसका प्रारूप आचार्यश्री के भावानुसार मैने लिखा था। भट्टारक लक्ष्मीसेनजी कोल्हापुर आदि के परामर्शानुसार उसमे यथोचित परिवर्तन हुआ। अन्त मे पुन आचार्य महाराज को बॉचकर सुनाया, तव उन्होने कुछ मार्मिक सशोधन कराए। उनका एक वाक्य वडा विचारपूर्ण था – "हम स्वय के सन्तोप से अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य वीरसागर को आचार्य पद देते है।"

आचार्य वीरसागरजी को संदेश

आचार्य महाराज ने वीरसागर महाराज को यह महत्त्वपूर्ण मदेश भेजा था – "आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना, हमारी ही तरह समाधि धारण करना ओर सुयोग्य शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना, जिमसे परम्परा वरावर चले ।"

उन्होंने यह भी कहा – "वीरसागर वहुत दूर है, यहॉ नहीं आ सकता अन्यथा यहॉं वुलाकर ही हम आचार्यपद देते।" उनके ये शव्द महत्त्व के थे – "वीरसागर को हमारा आशीर्वाद कहना और कहना कि शात भाव रखे, शोक करने की जरूरत नहीं है।"

उस समय महाराज का एक-एक शव्द अनमोल था। वे वडी मार्मिक वाते कहते थे। क्षु सिद्धसागर (व्र भरमप्पा) को महाराज ने कहा था - 'रेल, मोटर से मत जाना।" इस आदेश के प्रकाश मे उच्चत्यागी अपना कल्याण सोच सकते हें, कर्त्तव्य जान सकते हैं। शिष्यों को व्रत ग्रहण की प्रेरणा करते हुए वे वोले - " स्वर्ग मे आवोगे तो हमारे साथी रहोगे।"

अद्‌भुत दृश्य

यम समाधि के वारहवे दिन ता २६ अगस्त को महाराज जल लेने उठे। उनकी चर्या मे तनिक भी शिथिलता न थी। पहले मन्दिर मे भगवान का पचामृत द्वारा किया गया अभिषेक उन्होने वडे ध्यान से देखा। वाद मे महाराज चर्या को निकले। हजारो की भीड उनकी चर्या देखने को पर्वत पर एकत्र थी। अद्‌भुत दृश्य था। नवधा भक्ति के वाद महाराज ने खडे-खडे अपनी अॅजुली द्वारा थोडा सा जलमात्र लिया और पश्चात् वे क्षण भर में ही बैठ गये। कुछ क्षण वाद गमनकर अपनी कुटी मे आए और पुन आत्मचिंतन मे निमग्न हो गये। आत्मचितन उनका अत्यन्त प्रिय, अभ्यस्त कार्य था। ससार को वह कार्य वडा कठिन लगता है। वास्तव मे, वे महान् योगी थे।

स्वाध्याय की प्रेरणा

एक दिन महाराज ने कहा था – "धर्म पर अविचल श्रद्धा धारण करो।" उन्होंने यह भी कहा था – "स्वाध्याय करो। यह स्वाध्याय परम तप है। 'णहि सज्झायसम तवो कम्मं'। शास्त्र के अभ्यास से आत्मा का कल्याण होता है। गरीब लोग शास्त्र नहीं खरीद सकते। उनको शास्त्रो का दान करो। शास्त्रदान में महान् पुण्य है।"

आत्मध्यान का महामन्त्र

'आत्मा का चिंतन करो', यह बात दो तीन वर्षो से वे पुन पुन कहा करते थे। उन्होने सन् १९५४ मे फलटण मे चातुर्मास के पूर्व सब समाज को बुलाकर कहा था, "तुम्हे हमारा चातुर्मास अपने यहाँ कराना है, तो एक बात सबको अगीकार करनी पडेगी।" सबने उनकी बात शिरोधार्य करने का वचन दिया। पश्चात् महाराज ने कहा "सब स्त्री-पुरुष यदि प्रतिदिन कम-से-कम पाँच मिनिट पर्यन्त आत्मा का चितवन करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो हम तुम्हारे नगर मे चातुर्मास करेगे, अन्यथा नहीं।" श्रेष्ठ साधुराज के समागम का सौभाग्य सामान्य नहीं था। सब लोगो ने गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की थी।

आत्मानुभव की चर्चा का आधार

आत्मानुभव के विषय मे एक दिन फलटण मे आचार्य महाराज ने बडी सुन्दर चर्चा की। उसे सुनकर सभी लोग आनन्दविभोर हो गए थे। उस समय हृदय यही अनुभव करता था, कि यह कथन तत्त्व के अतस्तत्त्व को स्पर्श करने वाले सम्यक्ज्ञानी का है। शुक सदृश अध्यात्म ग्रन्थो का वाचन या निरूपण करने वालो का नहीं है। फिर भी मन मे शका उत्पन्न हुई थी अत मैने धीरे से नम्रतापूर्वक पूछा - "महाराज! आप जो आत्मा के अनुभव की चर्चा कर रहे है, यह आगम के आधार पर कह रहे हैं या अनुमान से कह रहे है या अपने अनुभव से कह रहे है?"

महाराज ने कहा - "यह बात हम अपने अनुभव के आधार पर कह रहे हैं"। इतना कहने के बाद उनकी मुद्रा बहुत गम्भीर हो गई। मुझे अपूर्व आनन्द आया क्योंकि इस कलिकाल मे आत्मतत्त्व का रसास्वादन करने वाले महायोगी शातिसागर जी हैं और उनके पावन चरणो मे बैठने का मुझे सौभाग्य मिल रहा है।

महाराज कहते थे - "निकट भव्य को आत्मस्वरूप का अनुभव होता है।

तपोरत श्रमणशिरोमणि

ध्यानरत साधुराज

ज्ञानरत गुरुदेव
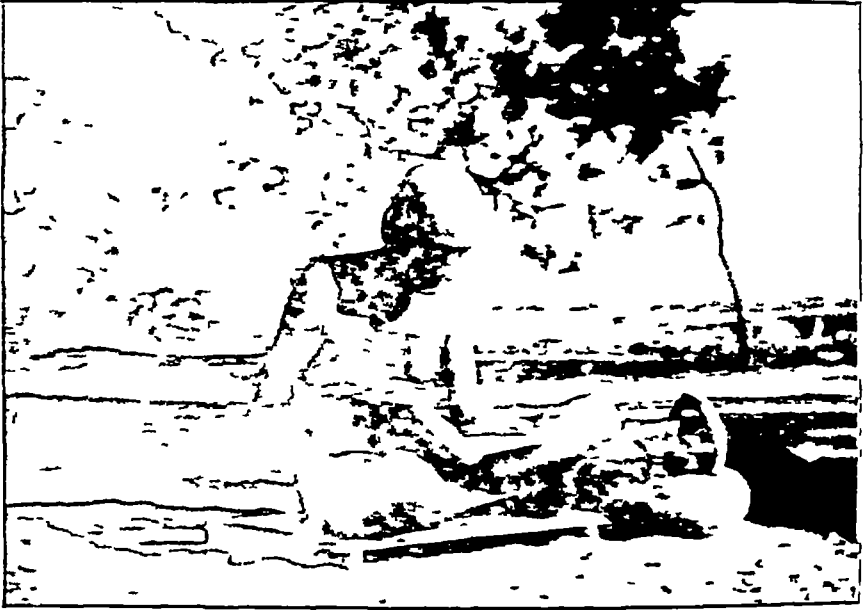
एकलविहारी निर्ग्रन्थराज

सयम के उपकरण – पिच्छी, कमण्डल, शास्त्र
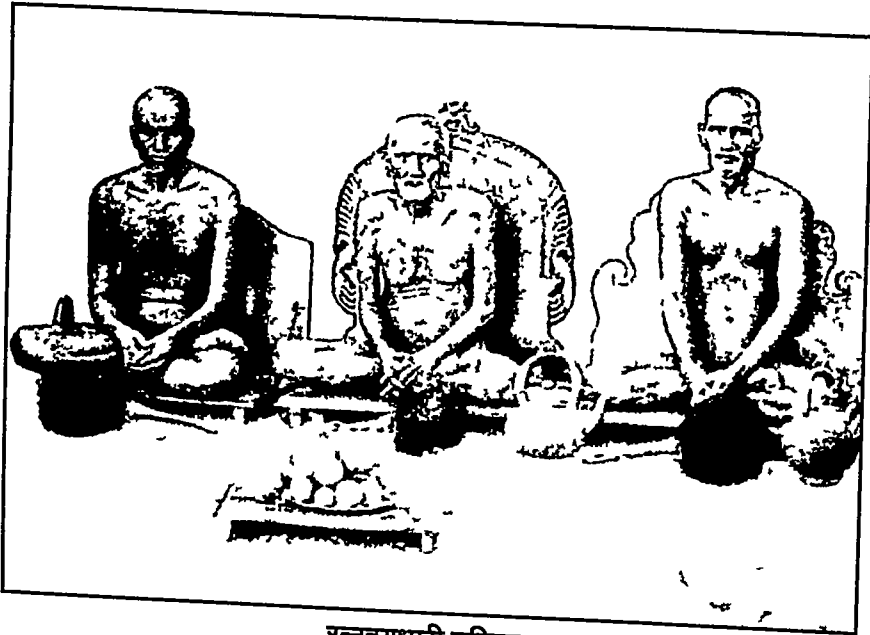
रत्नत्रयधारी मुनित्रय
(पायसागर महाराज, आचार्यश्री, नेमिसागर महाराज)

लेखक आचार्यश्री के सामने शास्त्र प्रवचन करते हुए

पूज्य आचार्यश्री – शास्त्रोद्धार चर्चा – प्रकरण मे रत
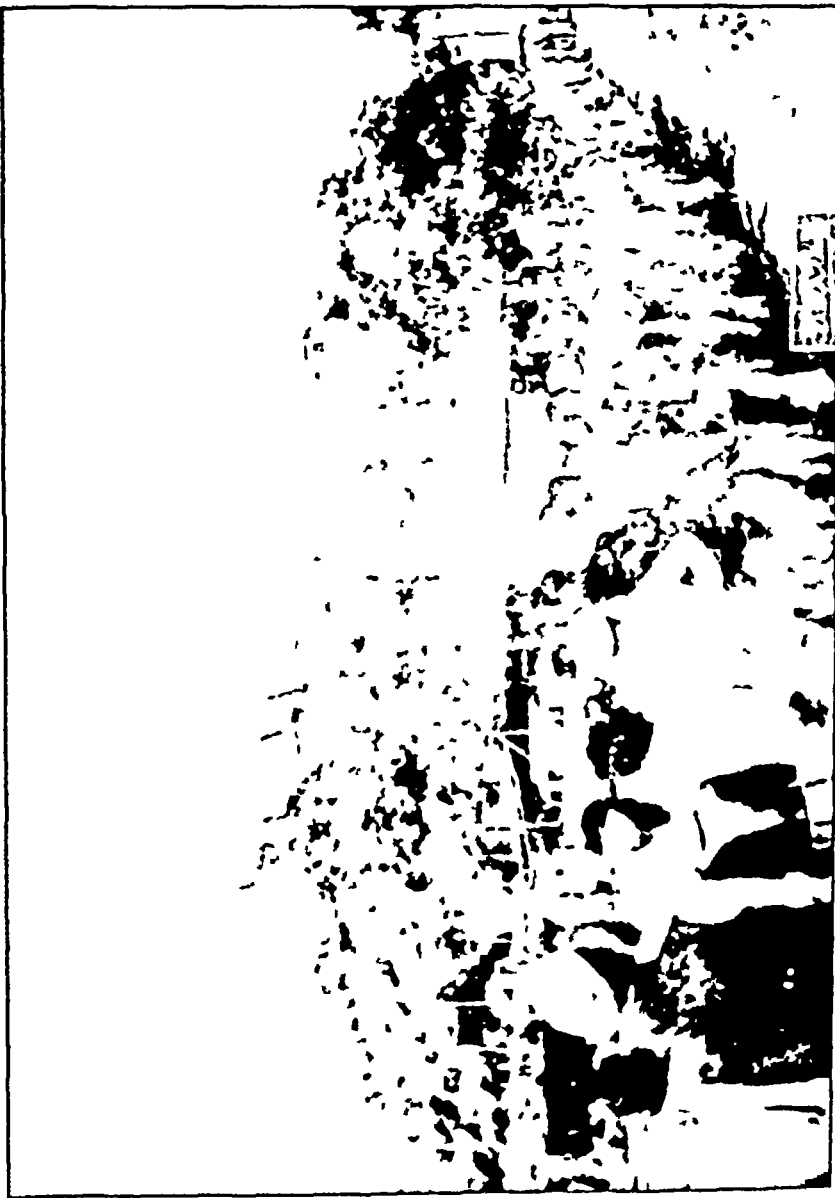
कुन्थलगिरि म समाधिस्थ आचार्य महाराज के दर्शनार्थ जाते हुए 'क्यू' म जनसमुदाय

जिसे ससार मे बहुत समय तक परिभ्रमण करना है, उसे आत्मा का अनुभव नही होता है। अभव्य को भी आत्मा का अनुभव नहीं होता है।"

एक दिन महाराज को मैने कुछ आध्यात्मिक सुन्दर श्लोक सुनाए, कारण (शास्त्र में लिखा है कि क्षपक के समीप मधुर वाणी से ऐसी वात सुनावे जिससे उसके भावो मे वीतरागता के परिणाम की तथा विशुद्धता की वृद्धि हो। "प्रीणयेत् वचोमृतै ")

आध्यात्मिक सूत्र

माघनदी आचार्य रचित आध्यात्मिक सूत्रो को मैं पढने लगा। मैने कहा - "महाराज देखिये ! जिस आत्मस्वरूप के चिन्तन मे आप सलग्न हैं और जिसका स्वाद आप ले रहे हैं, उसके विषय मे आचार्य के सूत्र बडे मधुर लगते हैं, 'चिदानदस्वरूपोहम्' (मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ), 'ज्ञानज्योति-स्वरूपोहम्' (मै ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ), 'शुद्धात्मानुभूति स्वरूपोहम्' (मैं शुद्ध आत्मानुभूति स्वरूप हूँ), 'अनतशक्ति स्वरूपोहम्' (मैं अनन्तशक्ति स्वरूप हूँ), 'कृतकृत्योहम्' (मैं कृतकृत्य रूप हूँ)। 'सिद्धस्वरूपोहम्' (मैं सिद्धस्वरूप हूँ) 'चैतन्यपुजस्वरूपोहम्' (मैं चैतन्यपुज रूप हूँ)। इसे सुनकर महाराज ने कहा था - "यह कथन भी आत्मा का यथार्थ रूप नहीं बताता है। अनुभव की अवस्था दूसरे प्रकार की होती है। जब आत्मा ज्ञानादिगुणो से परिपूर्ण है तब बार-बार 'अह' क्या कहते हो। मैं जो हूँ सो हूँ। बार-बार 'मै' क्यों कहते हो?" यह कहकर वे गुरुदेव चुप हो गए। उक्त कथन महायोगी के अनुभव पर आश्रित है।

शान्त बनो

कुछ क्षण के पश्चात् अत प्रेरणा से धीरे-धीरे उन क्षपकराज ने कहा - "कर्मो का नाश करना है तो शात बनो। कर्मो का मूलोच्छेद शात भाव से होता है। जब आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होकर रहता है, तब कर्म घबडाकर भागते है।"

आत्मभवन मे निवास

मैने जिनेन्द्र भगवान के स्तोत्र की चर्चा करते हुए उसके अपार सामर्थ्य पर कुछ प्रकाश डाला, तब महाराज कहने लगे; "हम स्तोत्र वगैरह सब पढ चुके है। उसे हम भली प्रकार जानते हैं किन्तु अब हम अपनी आत्मा के भीतर बैठ गए हैं। अब हमे अन्य बातो से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। इस समय हम अपने घर मे बैठे सदृश है।"

जलग्रहण का रहस्य

आचार्य महाराज ने यम सल्लेखना लेते समय केवल जल लेने की छूट रखी थी। इस सम्बन्ध मे मैंने कहा - "महाराज! यह जल की छूट रखने का कार्य आपका बहुत महत्त्व का है। वास्तव मे आपने विवेकपूर्ण कार्य किया है। आपके जीवन भर के कार्यो मे हमे विवेकपूर्ण प्रवृत्ति का ही दर्शन होता रहा है। गौतम स्वामी से पूछा गया था - भगवन्! ऐसा उपाय बताइये कि जिससे पापो का भार न उठाना पडे। तब उन्होने कहा था - "विवेकपूर्वक कार्य करो इससे तुम्हे पापो का बध नहीं होगा।[१]" यह सुनकर महाराज बोले - "हमने देखा है जल नहीं ग्रहण करने के कारण आठ-दस त्यागियो की बुरी हालत हुई है अत हमने जल का त्याग नहीं किया है।"

उन्होने यह भी कहा - "हमने पानी लेने की छूट इसलिए भी रखी है कि इससे दूसरे त्यागी भाइयो का मार्ग-दर्शन होता है। नहीं तो हमारा अनुकरण करने पर बहुतो की असमाधि होगी।"

मर्म की बात

एक दिन महाराज कहने लगे - "आत्मचिन्तन द्वारा सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक्त्व होने पर दर्शन मोह का अभाव होते हुए भी चारित्र-मोहनीय कर्म बैठा रहता है। उसका क्षय करने के लिए सयम धारण करना आवश्यक है। सयम से चारित्र मोहनीय नष्ट होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण मोह के क्षय होने से 'अर्हन्त' स्वरूप की प्राप्ति होती है।

जीवित समयसार

मैंने कहा - "महाराज! आपके समीप बैठने पर ऐसा लगता है कि हम जीवित समयसार के पास बैठे हो। आप आत्मा और शरीर को न केवल भिन्न मानते हैं तथा

---

१ कध चरे कध चिट्ठे कधमासे कध सए।
कध भुजन्ज भासेज्ज कध पाव ण बज्झइ॥
जद चरे जद चिट्ठे जदमासे जद सए।
जद भुजेज्ज भासेज्ज एव पाव ण बज्झई॥

- मूलाचार

प्रश्न - भगवन्! कैसे चलें? कैसे खडे रहें? कैसे बैठें? कैसे शयन करें कैसे भोजन करें? कैसे बोले? किस प्रकार पाप नहीं बँधता है?

उत्तर - यत्नपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक खडे रहो, सावधानी से बैठो, सावधानी से शयन करो, सावधानी से भोजन करो सावधानी पूर्वक सम्भाषण करो। ऐसा करने से पाप नहीं बँधता है।

कहते है किन्तु प्रवृत्ति भी उसी प्रकार कर रहे है। शरीर आत्मा से भिन्न है। वह अपना स्वभाव नहीं है। पर-भाव रूप है, फिर उसे खिलाने-पिलाने आदि का व्यर्थ क्यो प्रयत्न किया जाय? यथार्थ मे इस समय आपकी आत्म-प्रवृत्ति अलौकिक है।''

आत्मा को भिन्न कहना तथा विषयो मे प्रवृत्त होना कैसा?

महाराज बोले - ''आत्मा को भिन्न बोलना और विषयो मे लगना कैसा आत्मचिन्तन है? शरीर से आत्मा भिन्न है अत आत्मा का ही चिन्तन करना ठीक है। शरीर की क्या बात? वह तो पर ही है। उसकी सेवा या चिन्ता क्यो करना? उसका क्यो ध्यान करना? देखो! आत्मा के ध्यान से कर्मो का नाश होता है।''

हृदय में शान्ति का आवास

ऐसी मधुर चर्चा चल रही थी, कि मन्दिर मे अभिषेक की बोली का बडे जोर से हल्ला मचना शुरू हो गया। उसको सुनकर मैंने कहा - ''महाराज! इस पूजन की बोली आदि को बन्द करने से गडबड नहीं होगी। हल्ला नहीं होगा।''

महाराज बोले - ''बाहर हल्ला हो, गडबडी हो उससे हमे क्या है? जब भीतर शान्ति है, तब बाहर की गडबडी हो उससे हमे क्या है? जब भीतर शान्ति है, तब बाहर की गडबड़ी क्या करेगी? आत्मा मे शान्ति है, तो हल्ला क्या बाधा करेगा?''

जीवन द्वारा उपदेश

यम सल्लेखना के तेरहवें दिन पूज्यश्री को प्रणाम कर मैने निवेदन किया था - ''हम लोगो का महान् सौभाग्य है, जो आप सदृश निरन्तर आत्मस्वरूप का चिन्तन करने मे निमग्न साधुराज के पुण्य चरणो का आश्रय मिला है। आपने जीवन भर रत्नत्रय धर्म की समाराधना की है। अब आपका जीवन स्वय रत्नत्रय धर्म का उपदेश देता है।'' उनके पास पहुँचने पर मन मे यह भाव पैदा होता था, कि इस कुटी के भीतर एक महान् आत्मा विद्यमान है, जो कर्मो का भीषणता से क्षय करती हुई अपूर्व विशुद्धता को प्राप्त कर रही है। वह आत्मा मृत्यु को चुनौती देकर और उसे आमन्त्रित करके अन्त मे मृत्युञ्जय बनने का परम पुरुषार्थ कर रही है। मृत्यु के आगमन के पूर्व उसका नाम सुनते ही बडे-बडो के होश ठिकाने आ जाते हैं, किन्तु आप मृत्यु को मित्र सदृश सोचकर उससे भेट करने को तैयार बैठे हैं।

क्षुल्लक दीक्षा का अपूर्व समारम्भ

ता २८ अगस्त सन् १९५५ रविवार को आचार्य महाराज के समक्ष उनकी सुन्दर रीति से वैयावृत्य तथा परिचर्या करने वाले ब्र भरमप्पा की क्षुल्लक दीक्षा का समारम्भ हुआ। ब्र भरमप्पा ने सर्व उपस्थित सघ से क्षमा मॉगी। सघ ने उनकी दीक्षा की भावना की अनुमोदना की। आचार्य महाराज ने वीतरागता के भावो मे निमग्न रहते हुए भी ब्र भरमप्पा पर विशेष करुणावश दीक्षा समारम्भ मे उपस्थित रहने की कृपा की तथा अपने महान् सेवक भरमप्पा के मस्तक पर दीक्षा सम्बन्धी बीजाक्षर का न्यास किया। दीक्षा की विधि विद्वान् तथा सहृदय भट्टारक लक्ष्मीसेन जी कोल्हापुर द्वारा सम्पन्न हुई थी। कुछ समय के पश्चात् ब्र भरमप्पा के हाथ मे पिच्छी कमण्डल आ गये। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उनको 'सिद्धसागर' यह महत्त्वपूर्ण नाम प्रदान किया।

महाराज का आशीर्वाद

दीक्षा समारम्भ हो गया। इसके पश्चात् दूसरे दिन सायकाल के समय पूज्यश्री ने कहा - "भरमा! तुमने दीक्षा ली है। हमारा विश्वास है कि तेरी कुगति नहीं होगी। घबडाना मत। मिथ्यामती साधु भी तपस्या के द्वारा देव पदवी को प्राप्त करते है तब तो तूने जिनेन्द्र कथित व्रत लिये है। निश्चय ही तेरी सद्‌गति होगी।"उन्होने यह भी कहा था, मेरे सामने जो तेरा मूल्य है, वह चक्रवर्ती का भी नहीं है।

भक्तों को संयम-पालनार्थ प्रबल प्रेरणा

महाराज अपने भक्तो को सयम-धारणार्थ अधिक प्रेरणा देते रहते थे। उनके समीप बहुत वर्षो से आने-जाने वाले कुछ शिक्षित और सम्पन्न भक्तो को वे व्रती बनने को कहा करते थे, परन्तु उन भक्तो के कान पर जूँ तक नहीं रेगती थी। महाराज निराश नहीं होते थे।

वे एक दिन कहने लगे - "नर्मदा नदी के पत्थर बहुत चिकने हो जाते हैं। पानी मे निरन्तर रहते-रहते उन पर भी जल टिकने लगता है, किंतु तुम लोगो के मन मे हमारी बात क्यो नहीं टिकती है।" पश्चात् महाराज बोले - "तुम व्रती नहीं बनते हो, नहीं बनना चाहते हो और हम निरन्तर तुमको यह कहते रहते हैं। यथार्थ मे तुम तो बहुत अच्छे हो। हम ही अज्ञानी है।"

इसके बाद आचार्यश्री की करुणाप्रेरित यह वाणी निकली - "अरे! क्या देखते हो। व्रत पालोगे, तो स्वर्ग मे तुम हमारे साथी रहोगे। वहॉ भी मिलते रहोगे। हमे वहॉ

साथी चाहिए। देखो! अभी हम तुमको इतना आग्रह करते है। स्मरण रखो आगे फिर शातिसागर तुमको कहने नहीं आने वाला है। स्वर्ग मे जाकर वहॉ से विदेह मे पहुँच सीमधर स्वामी के दर्शन कर सकोगे। उनकी दिव्य ध्वनि सुन सकोगे। नदीश्वर आदि के अकृत्रिम जिनबिम्बो का दर्शन कर सकोगे। इससे तुमको सम्यक्त्व मिल सकेगा। वहॉ से चयकर मोक्ष जा सकोगे। सोचो! एक बार फिर से सोचो।''

महाराज की यह मार्मिक वाणी उन लोगो के मन पर असर कर गई और उन लोगो ने कठिन परिस्थिति होते हुए भी व्रत प्रतिमा धारण कर ली। कुथलगिरि में उन बन्धुओ से भेट हुई। उन्होने अपनी कथा सुनाते हुए सयम धारण जनित शान्ति और सन्तोष को व्यक्त किया।

वृद्धव्रती को उपदेश

एक व्यक्ति ने, जो अधिक वृद्ध हो गए है, बताया था कि - महाराज ने हमे व्रत प्रतिमा दी थी तथा हमसे कहा था - ''घबडाना मत। व्रतो को निर्दोष पालने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना। यदि दोष आ जावे, तो प्रायश्चित्त ले लिया करना। दोष आ जाने पर माह दो माह पर्यन्त णमोकार महामन्त्र की विशेष रूप से चार माला और जप लिया करना।''

अपने परिवार के जनगोडा पाटील को देशना

कुथलगिरि मे महाराज के स्व छोटे भाई कुमगोडा पाटील के चिरजीव श्री जनगोडा पाटील जयसिगपुर से सपरिवार आए थे। आचार्य महाराज के चरणो मे उन्होने प्रणाम किया। बाल्यकाल मे जनगोडा आचार्य महाराज की गोद मे खूब खेल चुका है, जब महाराज शातिसागर जी सातगोडा पाटील थे। उस समय का स्नेह दूसरे प्रकार का था, अब का स्नेह वीतरागता की ओर ले जाने वाला था। जनगोडा को महाराज ने कहा - ''देखो! हमने यम समाधि ली है और अब शीघ्र जाने वाले हैं। तुमको भी सयम धारण करना चाहिए। इसके सिवाय जीव का हित नहीं होता है।'' जनगोडा ने कहा - ''महाराज क्या करूँ? जो आज्ञा हो, वह करने को तैयार हूँ।''

दीक्षा का सकल्प करो

महाराज बोले - ''तुमको हमारी ही तरह दिगम्बर दीक्षा धारण करना चाहिए। इससे अधिक आनन्द और शाति का दूसरा मार्ग नहीं है।''

भावलिगी श्रमण को मुनित्व सचमुच मे आनन्द का भण्डार लगता है। जिनके

मन मे सम्यक् ज्ञान तथा वैराग्य की ज्योति नहीं जगती है, उनको वह पद भयावह और कष्टपूर्ण प्रतीत होता है।

इष्ट बन्धु को धर्म मे लगाना

सुभाषितकार कहता है "जो तुम्हारा इष्ट है, उसे धर्म की ओर उन्मुख करो - इष्ट धर्मेण योजयेत्।" इस नियमानुसार आचार्यश्री ने अपने पूर्व के स्नेहपात्र को श्रेष्ठ कल्याण की बात कही। जनगोडा के पिता कुमगोडा पर भी महाराज का बडा प्रेम था।

एक दिन महाराज ने मुझसे कहा "कुमगोडा का असमय मे मरण हो गया। हम उसे ब्रह्मचर्य प्रतिमामात्र दे पाए। हमारा इरादा उसे भी वर्धमानसागर की तरह मुनि बनाने का था। वर्धमानसागर भी पहले गृहस्थी के जाल में था। जिस प्रकार सुनार चाँदी के तार को यन्त्र मे जोर से खींचता है, उसी प्रकार हमने उसे सयम की ओर खींचकर लगाया है।" इस दृष्टि से महाराज ने जनगोडा को मुनि बनने को कहा।

जनगोडा ने कहा - "महाराज! कुछ वर्षों की साधना के पश्चात् मुनि बनने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।"

पश्चात् महाराज ने जनगोडा की स्त्री को बुलाकर पूछा - "यदि यह मुनि बनता है तो तुमको कोई आपत्ति तो नहीं है?" वह देवी बोली - "महाराज! कल के बदले यदि वे आज भी मुनि बनना चाहें, तो मेरी ओर से कोई भी रोक-टोक नहीं है।" यह बात सुनकर उन क्षपकराज को बहुत शाति मिली। महाराज ने उस बाई को व्रत प्रतिमा दी। उसी क्षण वे दम्पती व्रती श्रावक बन गए।

घराने में मुनिपद की परम्परा

महाराज ने जनगोडा से एक बात और कही थी - "तुम जब मुनि बन जाओ, तो अपने पुत्र को भी आगे मुनि पद धारण करने की कहना न भूलना। अपने घराने मे मुनिपद धारण करने की परम्परा बराबर चलती जावे, यह ध्यान रखना।"

इस वर्णन को बाँचते समय वाचक के हृदय मे ऐसा ही लगेगा, मानो वह ऐसे काल मे पहुँच गया है जहाँ सयम की सुधाधारा से समाज का हृदय धुला करता था और महापुण्यशाली तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ पुरुषो का सद्भाव था। कर्म का विपाक विचित्र होता है। श्री जनगोडा पाटील का सन् १९५९ में स्वर्गवास हो गया। वे मुझसे कहते थे, शास्त्राध्ययन हेतु मैं बाहर जाकर शीघ्र दीक्षा लेने की तैयारी कर रहा हूँ।"

विनोद मे भी सयम की प्रेरणा

महाराज की प्रत्येक चेष्टा सयम की प्रेरणा प्रदान करती थी। उनके विनोद म भी आत्मा को प्रकाशदायिनी सामग्री मिला करती थी। २८ अगम्त को क्षुल्लक सिद्धसागरजी की दीक्षा हुई थी। नवीन क्षुल्लकजी ने महाराज के चरणो मे आकर प्रणाम किया और महाराज से क्षमायाचना की।

महाराज बोले - "भरमा! तुमको तब क्षमा करेगे, जब तुम निर्ग्रन्थ दीक्षा लोगे।"

ऐसी ही कल्याणदायिनी मधुर वार्ता कोल्हापुर के एक पवित्र हृदय भक्त की है। उनका नाम बाबूराव मार्ले है। सम्पन्न होते हुए सयम पालना और सयमियो की सेवा-भक्ति करना उनका व्रत रहता है। वे दो प्रतिमाधारी थे। बारसी से महाराज कुथलगिरि को आते थे। महाराज का कमण्डलु हाथ मे लेकर गुरुदेव के पीछे-पीछे चला करते थे। एक बार वे महाराज का कमण्डलु उठाने लगे, तो महाराज ने कह दिया - "तुम हमारे कमण्डलु को हाथ मत लगाना। उसे मत उठाओ।" ये शब्द सुनते ही मार्ले चकित हुए।

महाराज कहने लगे - "यदि दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा करने का इरादा हो, तो कमण्डलु लेना, नहीं तो हम अपना कमण्डलु स्वय उठावेगे।"

वे भाई विचार मे पड गये। महाराज के पवित्र व्यक्तित्व ने उस आत्मा के अत करण पर प्रभाव डाला। वे बोले - "महाराज! कुछ वर्षो के बाद अवश्यमेव मैं क्षुल्लक दीक्षा लूँगा।" महाराज को सन्तोष हुआ। महाराज अपने परीक्षित भक्तो को प्रेरणा करते थे। वे जानते थे कि वह भव्य सयम को धारण करने की क्षमता सपन्न है।

कुतर्क का समाधान

यहॉ कोई यह कुतर्क कर सकता है, कि महाराज का ऐसा आग्रह करना अच्छा नहीं लगता। जिनको सयम या व्रत लेना होगा, वे स्वय लेगे। ऐसी प्रेरणा तथा आग्रह ठीक नहीं है।

शान्तभाव से विचार करने पर विदित होगा कि सन्मार्ग पर चलने के लिए जीवन को प्रेरणा देना आवश्यक है। (पतन की ओर किसी को उपदेश की जरूरत नहीं पडती है। जल की धारा स्वत नीचे की ओर जाती है, उसे ऊँचा उठाने के लिए और ऊपर की भूमि पर पहुँचाने के लिए विशेष बल तथा शक्ति की आवश्यकता पडा करती है। यही हाल जीव की परिणति का है। उसे ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए सत्प्रयत्न तथा उद्योग अत्यन्त आवश्यक है।)

मार्मिक दृष्टि

एक बात और है, महाराज में यह विशेषता थी कि आदमी की सूरत देखकर उसे पूर्णतया पहिचान जाते थे। इस प्रवीणता के कारण उनका अंत करण पात्र-अपात्र का पहले ही विचार कर लिया करता था। पंजाब प्रान्त के एक शास्त्री जी सुनाते थे - "मै महाराज के पास गया। मैने उनसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा देने की प्रार्थना की। मुझे कई दिन तक लगातार उनके पीछे पडना पडा, तब योग्य मुहूर्त मे गुरुदेव ने मुझे उक्त व्रत देकर मेरा जीवन मङ्गलमय बनाया।

जीव के सच्चे कल्याण की दृष्टि

मैंने भी देखा है कि महाराज व्यक्ति की शक्ति, अवस्था, पात्रता आदि का भली प्रकार पूर्ण विचार करके ही व्रतादि देते थे। एक समय एक व्यक्ति बडा व्रत मॉग रहा था, किन्तु महाराज ने उसे छोटा व्रत दिया। मैंने कहा - "महाराज! आपने ऐसा क्यो किया? उसके भाव ऊँचे थे, तो आपको उसकी इच्छानुसार बडा व्रत देना था।"

महाराज बोले - "उसकी अन्तरङ्ग स्थिति को हम जानते है। वह बडे व्रत का निर्वाह नहीं कर सकेगा। जबरदस्ती व्रत लेकर उसको भङ्ग करेगा, इससे उसकी आत्मा का अहित हो जायगा। हमे ऐसा काम करना है, जिससे उस जीव की भलाई तथा उत्कर्ष हो। हम दूर तक सोच कर व्रत देते हैं।

सप्तम प्रतिमा धारण

उक्त बाबूराव जी मार्ले ने महाराज का कमण्डलु उठा लिया, तब महाराज बोले- "देखो! क्षण भर का भरोसा नहीं है। कल क्या हो जायगा यह कौन जानता है। तुम आगे दीक्षा लोगे, यह ठीक है किन्तु बताओ! अभी क्या लेते हो।"

उक्त व्यक्ति की अच्छी होनहार होने से उसने कह दिया -"महाराज मै सप्तम प्रतिमा लेता हूँ।"

महाराज ने कहा - "अच्छा"। उन्होने महाराज के चरणो मे प्रणाम किया। महाराज ने पिच्छी सिर पर रखकर अपना पवित्र आशीर्वाद दिया। छोटे से विनोद का इतना मधुर पवित्र परिपाक हुआ। एक व्यक्ति धन वैभव के होते हुए भी गुरुदेव के प्रसाद से ब्रह्मव्रती हो गया और आगे वह क्षुल्लकव्रती होगा।

ओजपूर्ण वाणी

महाराज की वाणी मे बडा बल था। सयम को धारण न करनेवाला भी हृदय से सयम का भक्त बन जाता था और उसके मन मे भी सयम के प्रति हार्दिक ममता और प्रगाढ अनुराग जागृत हो जाता था। अत्यन्त परिचित ब्र वडू को महाराज कहते थे - "अरे! तू सन्यासी हो जा। मरे साधु का कलेवर और प्राणधारी गृहस्थ समान हैं। इतना ही नहीं साधु का मृत देह जो काम करता है, वह गृहस्थ भी नहीं करता है। मेरे पीछे तुझे कोई और कहने को आने वाला नही है। पीछी धारण कर मरो। ऐसे ही मत मरना। करने के कार्य मे रुको मत! मेरा बेटा है, भाई है, धन है, आदि की बात मत सोचो।"

लक्ष्मी पुण्य की दासी है

महाराज की यह वाणी बहुत गहरी अनुभूति को प्रदर्शित करती है - "अरे! निर्दय होकर घर छोडना पडता है। निर्दय हुए बिना घर नहीं छूटता है। मेरे पीछे घर में सम्पत्ति रहेगी या नहीं रहेगी यह ख्याल भी मत करो। घर के व्यक्तियो का पुण्य होगा, तो रहेगी। पुण्य नहीं होगा, तो सपत्ति नहीं रहेगी। लक्ष्मी पुण्य की दासी है।"

भीरु स्वभाव वालो के प्रति उपेक्षा

उनके ये वाक्य भी पूर्ण सत्य है - "जो व्रत लेने वाले नहीं है, उनको हम नहीं कहते है। इसमे हमारा धन व्यर्थ मे जाता है। ऐसो से हम नहीं बोलते।" व्रती की वीर से तुलना करते हुए पूज्यश्री कहते थे - "डरपोक आदमी, हरिण और गॉव की चिडिया अपना स्थान छोडकर बाहर नहीं जाते है। वीर व्यक्ति अपना स्थान छोडकर बाहर जाता है।"

वाहन मे बैठनेवाले साधुओ को इशारा

जो साधु बनकर भी रेलगाडी आदि का मोह नहीं छोडते उनके बारे मे विनोदपूर्ण भाषा मे आचार्य महाराज कहते थे-"हम तो दरिद्र साधु है। हमे पैदल गमन किए सिवाय साध्य नहीं है। इसके सिवाय गत्यतर नहीं है। रेल मे जाने वालो को तो विद्या सिद्ध है। वे क्षण भर मे यहॉ से वहॉ चले जाते है। अन्य धर्म के साधु भी तो रेल मे नहीं बैठते और पैदल चलते है किन्तु यहॉ के जो साधु वाहन का उपयोग करते हैं, उनको क्या कहना?"

लोकोत्तर मनोभाव और वैराग्य

आचार्यश्री का हृदय लोकोत्तर था। उनकी मुद्रा क्षणभर मे भी गम्भीर बन जाती थी। उनकी परिणति में विकार नहीं रहता था। एक समय मुनि वर्धमान स्वामी ने

महाराज के पास अपनी प्रार्थना भिजवाई - "महाराज! मैं तो बानवे वर्ष से अधिक का हो गया। आपके दर्शनो की बडी इच्छा है। क्या करूँ?" इस पर महाराज ने कहा - "हमारा वर्धमानसागर का क्या सम्बन्ध? गृहस्थावस्था मे वह हमारा बडा भाई रहा है सो इससे क्या? हम तो सब कुछ त्याग कर चुके हैं। पच परावर्तन रूप ससार में हम अनादिकाल से घूमते हैं। उसमें सभी जीव हमारे भाई-बन्धु रह चुके है। ऐसी स्थिति मे किस-किस को भाई, बहिन, माता, पिता मानना। हमको तो सभी जीव समान हैं। हम किसी मे भी भेद नहीं देखते है। ऐसी स्थिति मे वर्धमानसागर बार-बार हमे क्यो दर्शन के लिए कहता है।"

उस व्यक्ति ने बुद्धिमत्तापूर्वक यह कहा - "महाराज! वे आपके दर्शन अपने भाई के रूप मे नहीं करना चाहते है।"

महाराज बोले - "यदि ऐसी बात है, तो वहाँ से ही स्मरण कर लिया करे। यहाँ आने की क्या जरूरत है?"

कितनी मोहरहित, वीतरागतापूर्ण परिणति आचार्यश्री की थी। विचारवान व्यक्ति आश्चर्य मे पडे बिना न रहेगा। जहाँ अन्य त्यागी लौकिक सम्बन्धो और पूर्व सम्पर्कों का विचार कर मोही बन जाते है वहाँ आचार्यश्री अपने सगे ज्येष्ठ भाई के प्रति भी आदर्श वीतरागता का रक्षण करते हैं । वास्तव मे वे पवित्र साधु थे। उनकी साधुत्व की कल्पना प्रारम्भ से ही उज्ज्वल थी।

साधु को धन देने वाला भी दुर्गति का पात्र है

सन् १९२५ की बात है। उस समय पूज्यश्री नसलापुर मे विराजमान थे। मुनि नेमिसागर जी उस समय गृहस्थ थे। उनके हृदय मे सत्य, श्रद्धा और सद्गुरु के प्रति निर्मल भक्ति का भाव नहीं उत्पन्न हुआ था।

श्री नेमण्णा ने महाराज से पूछा था - "साधु किसको कहते हैं?"

महाराज ने कहा था - "जिसके पास परिग्रह न हो, कषाय न हो, दुनिया की झझटे न हों, जो स्वाध्याय और ध्यान मे लीन रहता हो उसे साधु कहते हैं।"

धन के लालची साधुओ का वर्णन करते हुए महाराज ने कहा था - "हाल मे ऐसे भी साधु बहुत होते हैं, जो पैसा रखते हैं। कमडलु मे पैसे डलवाते हैं। ऐसे साधु को पैसा देने वाला पहले दुर्गति को जाता है। तुम पैसा देकर के पहले स्वय क्यो दुर्गति को जाते हो?" इससे आचार्यश्री की स्फटिक सदृश विशुद्ध दृष्टि स्पष्ट होती है।

सल्लेखना के लिए मानसिक तैयारी

यम सल्लेखना लेने के दो माह पूर्व से ही उनके मन मे शरीर के प्रति गहरी विरक्ति का भाव प्रवर्धमान हो रहा था। इसका स्पष्ट पता इस घटना से होता है। कुथलगिरि आते समय एक गुरुभक्त ने महाराज की पीठ मे दाद रोग को देखा। उस रोग से उनकी पीठ और कमर का भाग विशेष व्याप्त था।

दाद रोग की दवा

भक्त ने कहा - "महाराज! इस दाद की दवाई क्यो नहीं करते? दवा लगाने से यह शीघ्र ही दूर हो जायगा।"

महाराज बोले - "अरे! इसमे बहुत दवाई लगाई गई। तेजाब तक लगाया गया, किन्तु यह बीमारी हमारा पिण्ड नहीं छोडती है। हमारे पास एक दवाई है उसे लगावेंगे, तो यह रोग नष्ट हो जायगा और शरीर रोगमुक्त हो जायगा।"

भक्त बोला - "महाराज! अभी दवा क्यों नहीं लगाते? आगे लगावेगे, ऐसा क्यो कहते हैं? बताइये, कौन दवा है? मैं लगा दूँगा।"

महाराज बोले - "अरे! वह दवा तू नहीं जानता। मै उसे दो माह मे लगाकर इस शरीर को पूरा ठीक कर दूँगा।"

शरीर से गहरी विरक्ति

इसके अनन्तर महाराज की मुद्रा गम्भीर हो गई और वे कहने लगे - "यह शरीर हमें बहुत दिनो से खूब तङ्ग करने लगा है। पहले दॉतो ने तकरार की -झगडा किया। वे सब चले गए। इसके बाद ऑख ने गडबड शुरू की। धीरे-धीरे एक ऑख की ज्योति मन्द हो गई। बाद मे दूसरी भी जाने को तैयार हो रही है। देखो! हमने जीवन मे किसी की गुलामी नहीं की। फिर भी इस ऑख की खूब दवा की। सुबह-शाम दवा लगाते थे। दवा लगाते-लगाते हम थक गए। अब शरीर की हमको फिकर नहीं है। थोडे दिन में इस शरीर को छोडकर नवीन नीरोग और स्वच्छ शरीर धारण करेगे, तब कमर की दाद वगैरह अपने आप दूर भाग जायगी।"

आचार्यश्री की इस वाणी मे उनकी यम-सल्लेखना के बीज अकुरित पाए जाते थे। गुरुदेव की वाणी सुनकर बेचारा भक्त चुप हो गया। महाराज की अनासक्ति अद्भुत थी।

शरीर से भेद-बुद्धि

एक बार उन्होने मुझसे कवलाना मे पूछा था - ''क्यो पडितजी! चूल्हे मे आग जलने से तुम्हे कष्ट होता हे या नही?'' मेने कहा-''महाराज! उससे हमे क्या वाधा होगी। हम तो चूल्हे से पृथक् है।''

महाराज बोले - ''इसी प्रकार हमारे शरीर मे रोग आदि होने पर भी हमे कोई बाधा नही होती।'' यथार्थ मे वे पहिले ही घर मे पाहुने सदृश रहते थे और अहिसा महाव्रती निर्ग्रन्थराज बनने पर तो वे शरीर के भीतर ही पाहुने सदृश हो गए थे। जव देह अपना नहीं है। उसका गुण, धर्म आत्मा से पृथक् है, तव देह के अनुकूल या विपरीत परिणमन होने पर सम्यक्ज्ञानी सत्पुरुष क्यो राग या द्वेष को धारण करेगा? यह तत्त्व बौद्धिक स्तर (Intellectual level) पर तो प्रत्येक विचारक के चित्त मे जॅच जाता है किन्तु अनुभूति की दृष्टि से जब तक सम्यग्दर्शन अत करण मे आविर्भूत नहीं होता है, तथा सम्यक् चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है तव तक इस ओर जीव की प्रवृत्ति नहीं होती है। शास्त्र मे इस कलिकाल मे सम्यक्त्वी की सख्या दो-चार कही है।[१] वह ऐसी आत्माओ को लक्ष्य करके कहा है।

सल्लेखना का निश्चय गजपथा मे १९५१ मे हुआ था

सल्लेखना का तो निश्चय उन्होने गजपथा मे सन् १९५१ मे किया था, किन्तु यम-सल्लेखना को कार्यरूपता कुथलगिरि मे प्राप्त हुई। महाराज ने सन् १९५२ मे बारामती चातुर्मास के समय पर्यूषण मे मुझसे कहा था कि ''हमने गजपथा मे द्वादशवर्ष वाली सल्लेखना का उत्कृष्ट नियम ले लिया है। अभी तक हमने यह बात जाहिर नहीं की थी। तुमसे कह रहे है। इसे तुम दूसरो से भी कहना चाहो, तो कह सकते हो।'' इसके बाद से महाराज की सयम साधना, उपवासादि बडे उग्र रूप से हो चले।

कुथलगिरि चातुर्मास मे विशेष तपस्या

सन् १९५३ मे अर्थात् दो वर्ष पूर्व कुथलगिरि मे उनका चातुर्मास था, तब

---

१ विद्यन्ते कति आत्मबोधविमुखा सदेहिनो देहिन ।
प्राप्यन्ते कतिचित् कदाचित्पुनर्जिज्ञासमाना क्वचित्।
आत्मज्ञा परमप्रमोदसुखिन प्रोन्मीलदतर्दृशो।
द्वित्रा स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पचषट् दुर्लभा ॥
-सस्कृत टीका कार्तिकेयानुप्रेक्षा

उनके उपवास वृहत् रूप मे चल रहे थे। मै व्रतो मे पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि पचमी से महाराज ने पॉच दिन का मौन और पच उपवास का नियम कर लिया है। मैने महाराज से कहा - "आपके चरणो मे लाभ लेने की लालसा से भारत के बडे-बडे स्थानो के निमन्त्रण को छोडकर आपकी सेवा मे सदा की भॉति आया हूँ। आपका मौन देखकर मैं चकित सा हो गया । कम-से-कम धर्मशास्त्र की चर्चा के लिए तो मौन का बन्धन न हो।"

पाँच दिन के पश्चात् महाराज ने आहार किया और पुन पॉच उपवास की प्रतिज्ञा कर ली, किन्तु इस समय उन्होने मौन नहीं लिया। महाराज बोले - "हमने सोचा पडित इतनी दूर से हमारे पास आया है। तुम्हारा ख्याल करके हमने मौन नहीं लिया।" मैंने उनके पावन चरणो को प्रणाम किया और कहा - "महाराज! आपने बडी दया की। इससे शेष व्रत के काल मे आपके अमूल्य अनुभवो का लाभ हम सबको मिल सकेगा।"

'भगवती आराधना' से समाधि का प्रकाश-लाभ

महाराज ने अपनी तपस्या का कारण समाधिमरण की तैयारी बताया था। इसके पश्चात् मैंने 'भगवती आराधना' ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढा, तब ज्ञात हुआ कि आचार्य महाराज की नैसर्गिक प्रवृत्ति पूर्णतया शास्त्रसगत रहा करती है।

मुनिपद के लिए आदर्श

महापुराण मे सम्राट् भरत के विषय मे कथित जिनसेन स्वामी की एक बात इस प्रसग में उल्लेखनीय है। भरतेश्वर की प्रवृत्ति तथा उस महापुरुष की शरीर रचना आदि को विविध शास्त्र पारगत लोग प्रत्यक्ष देखकर अपना-अपना सशय दूर किया करते थे। भरतेश्वर मूर्तिमान् आयुर्वेद शास्त्र के समान दिखते थे -"आयुर्वेदोनुमूर्तिमान्" -१६-१४५

> अन्येस्वपि कला-शास्त्र-सग्रहेषु कृतागमाः।
> तमेवादर्शमालोक्य सशयांशाद् व्यरंसिषु ॥१६-१५०॥

इसी प्रकार यह कथन उचित है कि मुनि-धर्म के शास्त्रों को पढते समय आचार्य महाराज की प्रवृत्ति का विचार करते ही शका दूर हो जाती थी। महाराज की प्रत्येक चेष्टा शास्त्र के अनुकूल थी।

न्यायपक्ष ग्रहण

ऐसी पुण्य जीवनी होते हुए भी दूसरे व्यक्ति की युक्तिपूर्ण बात को स्वीकार

करने मे वे सकोच नहीं करते थे। महत्ता इस बात मे नहीं है कि यदि मुख से अयोग्य बात निकल गई हो, तो उसको ही ठीक सिद्ध करने मे अपने पाडित्य का प्रदर्शन किया जाय।

भ्रान्त विचार

किन्हीं-किन्ही की यही धारणा रहती है कि मुख से जो भी बात निकल जाय, उसे ही ठीक सिद्ध करने मे पाडित्य की प्रतिष्ठा है। एक समय महाराष्ट्र के एक बडे नगर मे महाराज विराजमान थे। मै पर्यूषणपर्व मे वहाॅ तत्त्वार्थ-सूत्र पर विवेचन करता था। शास्त्र की एक शका का ठीक समाधान मेरे ध्यान मे नहीं आया। मैंने कहा इस विषय पर मै अभी कुछ नहीं कह सकता, पीछे शास्त्र देखकर कुछ कह सकूॅंगा। मेरे इस व्यवहार को देख शास्त्र के समाप्त होने पर एक वृद्ध शास्त्री जी बहुत अप्रसन्न हुए और कहने लगे पडिताई की रक्षा के लिए तुम्हे कुछ भी उत्तर देकर उसका समर्थन करना चाहिए था। मैने नम्रता से कहा, ''पडितजी! मुझ मे ऐसी पडिताई इसलिए नहीं है कि मै यथार्थ मे पडित नहीं हूॅं।''

विचारपूर्ण प्रवृत्ति

आचार्य महाराज का कवलाना मे दूसरी बार चातुर्मास हो रहा था। अन्नपरित्याग के कारण उनका शरीर बहुत अशक्त हो गया था। उस समय उनकी देहस्थिति चिताप्रद होती जा रही थी। एक दिन महाराज आहार के लिए नहीं निकल रहे थे। मै उनके चरणो मे पहुॅंचा।

महाराज बोले '' आज हमारा इरादा आहार लेने का नहीं हो रहा है।'' मैने प्रार्थना की ''महाराज! ऐसा न कीजिए। शरीर कमजोर है। चर्या को अवश्य निकलिये। यदि शरीर को थोडा जल भी मिल जायगा, तो ठीक रहेगा। यह शरीर रत्नत्रय साधन मे सहायता देता है, इसलिए इसके रक्षण का उचित ध्यान आवश्यक है।'' मेरे आग्रह करने पर महाराज ने विचार बदल दिया और क्षण भर मे वे चर्या को निकल गये।

भूल-सशोधन मे निरन्तर तत्पर

मैने देखा है कि विरुद्ध पक्ष की युक्तियुक्त बात को वे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते रहे है। उनके मुख से मैने बहुत बार यह सुना ''**यदि बालक भी हमे हमारी भूल बतायेगा, तो हम भूल को स्वीकार कर लेगे।**'' माता सत्यवती से प्रसूत साधुराज की ऐसी प्रवृत्ति पूर्णतया स्वाभाविक तथा उचित भी थी।

समाधिमरण के स्वार्थी प्रेरक

कुथलगिरि मे आचार्यश्री को यम-सल्लेखना तप मे समारूढ देखकर तथा विविध साधनो से यह ज्ञातकर हृदय मे व्यथा हुई कि कुछ स्वार्थी तथा विवेकहीन भक्तो ने पूर्व मे सल्लेखना लेकर यम से युद्ध छेडने के गुरुदेव के विचार व्यक्त करते समय उत्साहवर्धक रणभेरी बजाना प्रारम्भ कर दी। इससे उनकी उस तपस्या की ओर बहुत शीघ्र प्रवृत्ति हो गई। सत्यशोधक के नाते लेखक का यह कटु कर्तव्य है कि **'शत्रोरपि गुणा: वाच्या, दोषा: वाच्या गुरोरपि'** की नीति का सरक्षण करे।

समाधिमरण के बाद वर्तमान पर्याय की समाप्ति हो जाती है। जीव पर्यायान्तर को धारण करता है। अत आचार्यश्री फिर दर्शन न देगे। इस सर्वविदित तत्त्व को भी कुछ लोग भूलकर महाराज को सदा समाधिमरण धारण करने की प्रेरणा दिया करते थे।

पहले भी प्रेरणा

महाराज ने मुझे सुनाया था कि एक बार वे बहुत बीमार हो गए थे। शरीर इतना अशक्त हो गया था कि करवट भी बदलना कठिन था। लघुशका निमित्त उठकर दूर जाना असम्भव हो गया था। उस प्रसङ्ग में एक ब्रह्मचारी जी ने महाराज से बहुत आग्रह किया था - "महाराज! आप समाधि ले लीजिये। अब आप अधिक दिन नहीं टिकेगे।"[१]

महाराज ने उत्तर दिया था - "हमने बाल्यकाल से जिनेन्द्र के धर्म की शरण ली है। हमें अपने जीवन के बारे मे धोखा नहीं होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हमे तुम्हारी सलाह की जरूरत न पडेगी।" कदाचित् पूज्यश्री के मन पर उन महोदय की वाणी असर कर देती या उन अविवेकी व्यक्ति की भाँति और भी प्रेरक निमित्त बननेवाले पुरुष मिल जाते और महाराज उनके कथनानुसार प्रवृत्ति करते, तो दस बारह वर्ष पूर्व ही यह आध्यात्मिक निधि लुट गई होती। समाज का भाग्य था कि इतने वर्ष ये महापुरुष समाज को सत्पथ-प्रदर्शन करते रहे।

सशक्त शरीर होते हुए यम सल्लेखना ग्रहण

इस यम सल्लेखना के प्रकरण में कुछ जिम्मेदार धर्मबन्धुओं से कुथलगिरि में अनेक बातें ज्ञात हुईं। यम सल्लेखना लेने के पश्चात् २७ वें दिन आचार्य महाराज ने मुझे

---

१ इन्होंने ही कुथलगिरि में समाधिमरण लेने को महाराज से अनेक बार आग्रह किया। ऐसी अमङ्गल सलाह देने वाले का नाम न देना उचित लगता है। अब इनका मरण हो गया।

समाधि की प्रेरणा का रहस्य

वे नीरा ग्राम तरफ आए। वहॉ से उनका भाव मुक्तागिरि की तरफ बिहार करने का हुआ और वे रवाना होने को तैयार थे क्योकि वीरसागर महाराज ने एक बार मुक्तागिरि को समाधियोग्य स्थान सुझाया था। इस विषय मे उनका पत्र नीरा मे आया था। कुछ लोग महाराज के पास आए और उन्होने स्मरण दिलाया - "महाराज! आप वहॉ कहॉ जाते है? आपके नेत्रो की ज्योति मद हो रही है। आपको समाधिमरण लेना है।" कहते है उनमे मुख्य सत्पुरुष तो वे थे, जो १२ वर्ष पूर्व ही पूज्य गुरुदेव को समाधिमरण के लिए प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान कर चुके थे। इन प्रेरको की इच्छा उन गुरुराज को मुक्तागिरि गमन से विमुख कराकर कुथलगिरि ले जाने की थी। इस पद्धति से क्षेत्र के लिए विपुल धन-लाभ की उनकी अतरग की भावना थी।

समाधिमरण लेने की चर्चा की जाने पर पूज्यश्री ने कहा "अच्छा अभी हम कुछ दिन यहॉ नीरा मे ही निवास करेगे।" इसके अनतर मुक्तागिरि के व्यवस्थापको आदि ने गुरुदेव के समीप आने का प्रयत्न नहीं किया और कुथलगिरि के पक्षकारो ने आकर गुरुदेव का उस ओर प्रस्थान करा दिया। बारामती मे जब महाराज थे, तब भी कुछ व्यक्ति आकर नेत्रो की चर्चा का आश्रय ले समाधिमरण के लिए महाराज के स्वय-विरक्त मन को प्रेरणाप्रद बाते कहने मे सकोच नहीं करते थे।

विपरीत निमित्तो का जमघट

हमे ज्ञात हुआ है कि जब पूज्य महाराज कुथलगिरि पहुँच गए, तब वहॉ पूना से एक वैद्य बुलाया गया। वैद्य ने नेत्रो की पूर्ण जॉच के पश्चात् भयकर अवस्था न बताकर रोग को उपचार से साध्य कहा। उस समय महाराज ने वैद्य की दवा एक माह के लगभग लगाने की भावना दर्शाई।

इसके ही अनतर कुछ लोगों ने एक विवेकशून्य नेत्र-विशेषज्ञ डाक्टर को बुलाया, जिसने कहते है, महाराज के समक्ष कह दिया, कि अब आपके नेत्र ठीक नहीं हो सकते। उनकी शक्ति समाप्तप्राय हो गई है। रक्तवाहिनी नसे (Veins) काम नहीं कर रही है। उस वाणी को सुनते ही महाराज का मन पूर्ण बदल गया और उन्होने यम से युद्ध लेने के लिए यम-सल्लेखना का सुदर्शनचक्र चलाने का विचार किया।

उस समय, ऐसा पता चला है कि एक निकटवर्ती, प्रभावशाली, विचारशील भक्त सज्जन ने महाराज से प्रार्थना की, कि अभी आप यम-सल्लेखना न लीजिए। चातुर्मास

के समक्ष श्रीफल रखकर प्रतिज्ञा की थी, कि आपका उत्तर तरफ विहार करने का भाव है, तो जहॉ आप यात्रार्थ जाने को कहेगे, वहॉ चलने की सर्व व्यवस्था तथा सेवा करने को हम लोग तैयार है।'' ऐसे अनेक प्रकरण है, जिनसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि पूज्यश्री की बलवती भावना उत्तर की तरफ जाने की थी।

महाराज का इरादा

वे हमसे यह भी कहते थे कि - ''अब पहले की तरह बडे समुदाय के साथ जाने का हमारा भाव नहीं है। थोडे से लोगो के साथ जाने की इच्छा है।'' उस समय मैंने कहा था - ''महाराज! अबकी बार यदि आप यात्रार्थ गए तो सिवनी होकर के ही जाइए, ऐसी प्रार्थना है?''

सिवनी के मंदिर

महाराज ने कहा था - ''क्या बताये, पहले हमारी तुम्हारी 'ओलख' (पहिचान) नहीं थी, नहीं तो जब जबलपुर आए थे, तब सिवनी के मन्दिरो के दर्शनार्थ अवश्य आते।''

सिवनी के मदिरो के फोटो देखकर महाराज ने कहा था - ''बहुत सुन्दर मन्दिर है।'' उत्तर जाते समय हम सिवनी होते हुए जावेगे।''

अविवेक का कार्य

उपर्युक्त विवेचन का ध्येय किसी के दोषो का उद्भावन नहीं है। यह तो समझ का फेर है। गुरुदेव का जीवन किसे प्रिय नहीं था, किन्तु किन्हीं अदूरदर्शी भाइयों के भ्रान्त विचार तथा मिथ्या भक्ति ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि असमय मे ही गुरुदेव का स्वर्गारोहण कुथलगिरि से हो गया।

आचार्यश्री की सेवा मे रहनेवाले हजारो व्यक्तियो का अनुभव रहा है, कि आचार्य महाराज के साथ मे कभी भी कोई कष्ट नहीं हुआ। कुथलगिरि मे सघपति सेठ गेदनमल जी जवेरी बम्बई वालो से हमने आचार्य महाराज के प्रभाव के बारे मे चर्चा चलाई थी, तो वे कहने लगे - ''हम महाराज के साथ हजारो मील पैदल गए हैं। उनके प्रभाववश कभी भी कष्ट नहीं हुआ।'' औरो का भी यही अनुभव रहा है।

प्रकृति का रोष

कुथलगिरि की कथा इससे निराली रही है। प्रकृति का भीषण प्रकोप रहा है।

वर्षा की भीषणता के कारण यात्री घबडाते थे। प्रबन्ध की भी अद्भुत स्थिति थी। शातिमय वातावरण का अभाव अधिक दृष्टिगोचर होता था। कलह तथा विरोध की अद्भुत बाते यत्र तत्र सुनने मे तथा अनुभव मे आती थीं। महाराज के शव के रखने को जो विमान पहले बना था, वह बडी ही विचित्र बनावट का था। पश्चात् सघपति सेठ गेदनमलजी के कडे रुख के कारण उन महापुरुष के शरीर की श्मशान-यात्रा के अनुरूप दूसरा विमान बनवाया गया था। यह विषय भी कटु विवादस्वरूप बन गया था। दुर्भाग्य से अभक्त जनों का नेतृत्व उस समय दिखता था।

लेखक का कर्तव्यपालन हमे प्रेरित करता है कि हम सत्य के प्रकाश मे सकोच छोडकर वास्तविकता का चित्रण करे। कुथलगिरि की अमगलमय प्रवृत्तियों की स्मृतियाँ आज भी मनोव्यथा उत्पन्न करती हैं। पाठक इस घटना के विषय में स्वय सोचें कि कैसी-कैसी बाते वहाँ हुई थीं।

अविवेक की चरम सीमा

महाराज का शरीरात तो ता १८ सितम्बर को हुआ था; किन्तु ऐसी अद्भुत व्यवस्था रही कि आठ दिन पूर्व ही दाहस्थल पर महाराज की चिता रच दी गई थी। हजारो यात्री इस अद्भुत विवेक को देखकर दु खी हो रहे थे कि गुरुदेव जीवित है, फिर क्यो उनकी चिता पहले ही रच दी गई? कुछ लोगो ने हमसे कहा था कि ऐसा अनर्थ तो रुकवाइये। हमने उत्तर दिया था कि इस स्थल का अद्भुत रग-ढग देखकर बुद्धि काम नहीं करती है। फिर भी कुछ बन्धुओं से चर्चा की ओर उन्होंने पूर्व निर्मित चिता की सामग्री स्थानान्तर करके रखवा दी थी।

अविवेक के शासनवश सल्लेखना के अन्तिम समय के कुछ पूर्व हजारो लोगों को आचार्य महाराज के दर्शन मे रोक करने से दर्शन के बिना ही लौट जाना पडा। आसाम, बङ्गाल, पजाब, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, मलाबार, मध्यप्रदेश, मध्यभारत आदि के हजारो लोग - ऐसे लोग जिन्होने जीवन में अपने धर्मगुरु का कभी भी दर्शन नहीं किया था - विपुल द्रव्य खर्च कर बडी भक्ति से वहाँ पहुँचे थे। हजारो गरीब तो ऐसे भी थे जो अपने घर की वस्तुओ को बेचकर, कर्जा तक लेकर उन साधुराज के दर्शन द्वारा अपना जन्म सफल करने आए थे, किन्तु उनको अत्यन्त दु खी हो निराश लौटना पडा। उनकी मनोव्यथा का मूल्य कौन ऑक सकता है?

मिथ्या परिकल्पना

अहकारी और अविवेकी स्वयभू व्यवस्थापक आदेश भर दे देते थे कि महाराज

का दर्शन नहीं हो सकता। उनके ध्यान मे विघ्न आयेगा। मैंने कई लोगों से कहा था - "अभिषेक के समय लाउड स्पीकर मे हजागे की वोली करते समय धनसचय की पूर्ति होने से वह हल्ला ध्यान मे वाधक नहीं होता था, किन्तु मौनभाव से चुप रहने की शपथ लेकर जाने वाले लोगो को कुटी खोलकर यदि गुरुदेव के दर्शन का अवसर दिया जाय, तो क्या वाधा है?"

विवेक का जागरण

अनेक भाइयों के सत्प्रयत्न से तथा भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज के विशेष उद्योग से अन्त मे महाराज के पास की कुटी अलग कर दी गई और सव लोग उनका दर्शन करके कुछ शाति प्राप्त कर सके। यदि ऐसा विवेक पहिले जग जाता तो हजारों श्रावको को दूर-दूर से आकर निराश न लौटना पडता।

निदनीय दुष्ट भावना

जव महाराज के दर्शन लोगों को हो रहे थे, तव एक सुशिक्षित प्रवधक सज्जन ने उलाहना देते हुए मुझसे कहा - "आप लोग अभी भी दर्शन करा रहे हैं। आप लोग शीघ्र ही महाराज का प्राण लिये विना न रहेगे।" उन चिरपरिचित क्षेत्रप्रवधक की वाणी दिल मे तीर की तरह चुभी थी। हम सदा से प्रत्यक्ष मे, परोक्ष मे गुरुदेव की पूजा करते रहे हैं, फिर भी ये हमे उनके जीवन का शत्रु सोचते थे। तव दूसरों के विषय में क्या कहा जाय? पहले वे व्यक्ति महाराज के तीव्र विपक्षी रहे हैं। अव तो वे काल-कवलित हो गए।

अंतराय कर्म

सामायिक के पश्चात् आचार्य महाराज का भक्ति पाठ आदि का कार्यक्रम बराबर चला करता था। महाराज अपनी क्रियाओं में आश्चर्यप्रद रीति से सजग रहते थे। मैं सोचता था, जब लोग कुछ इधर उधर की बातो मे पूज्यश्री के क्षणो को लेते हैं, तव ऐसे समय यदि समाधिशतक आदि की उद्बोधिनी सामग्री उनको सुनाई जाय, तो क्षपकराज की सुन्दर सेवा होगी। उनके पास में रहने वाले लोग अद्भुत थे। बडी कठिनता से वहॉ कुटी मे प्रवेश हो पाता था और वहॉ मौनी बनने का सकेत प्राप्त होता था।

शास्त्र की बडी सुन्दर बातें, महाराज को सुनाने योग्य दृष्टिपथ मे आती थीं, जिनसे उनके हृदय को विशेष प्रेरणा प्राप्त होती, किन्तु वहॉ महाराज के निकटवर्ती मडल की दृष्टि में यह बात महत्त्व विहीन दिखती थी।

आचार्यश्री जिनेन्द्रदर्शन को जाते हुए

आचार्यश्री आहार ले रहे है

आचार्यश्री आहार के बाद

समाधि के 35 वे दिन का अद्भुत चित्र

जब कभी सौभाग्य मिला, तब चर्चा द्वारा गुरुदेव के हृदय की ऐसी अनुपम बाते सुनने मे आई, जिनको शास्त्र का अपूर्व मर्म कहा जा सकता है। महाराज के आसपास धनसचय के हेतु हल्ला को शाति मानने वाले और धर्म की वीतरागतापूर्ण चुनी सामग्री को व्यर्थ की बाते सोचने वाले अद्भुत विवेकी वर्ग से मेरा यही कहना था कि इस अवसर पर आगत हजारों व्यक्तियों को धर्मलाभ का मौका भाषण, उपदेशादि द्वारा कराने का प्रबन्ध जरूरी है, परन्तु बहुत कम सुनवाई हो पाती थी। वहाँ अधेर नगरी का रूप दिखता था।

आर्षवाणी की अपार शक्ति

जो सोचते हैं शास्त्र क्या करेगा? वे इस एक श्लोक को ही देखें कि इस एक पद्य में ही आत्मा को सामर्थ्य प्रदान करने वाली कितनी जोरदार सामग्री भरी है। ऐसी सामग्री के सुनाए जाने से मन को अधिक निर्मलता प्राप्त हुए बिना नहीं रहती।

जिनवाणी रूप भोजन

'मृत्यु के साथ युद्ध करो' वाले क्षपकराज के शरीर को भोजन नहीं मिलता है, उनकी आत्मा के लिए अमृतमय भोजन सदृश ऐसी जिनवाणी की सामग्री होती है - आचार्य समझाते हैं "अरे क्षपक! कृमि समुदाय से परिपूर्ण शरीररूपी पिंजरे के नष्ट होते समय तुझे डरना नहीं चाहिए। तेरा शरीर तो ज्ञान रूप है, पुद्गल शरीरात्मक नहीं है। कहा भी है -

> **कृमिजाल-शताकीर्णे, जर्जरे देहपंजरे।**
> **भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञानविग्रह॰ ॥ - मृत्युमहोत्सव ॥९॥**

अद्भुत आत्म-सामर्थ्य

वहाँ की सामग्री को ध्यान में रखने पर मेरी तो यह धारणा है कि यदि आचार्य शातिसागर महाराज के स्थान पर अन्य व्यक्ति ने समाधि ली होती, तो उनके भावो मे स्थिरता रहना बहुत कठिन बात थी। आचार्यश्री की सारी जीवनी अपूर्व थी, तपोमयी थी। अगणित सकटों के मध्य मे भी वे आध्यात्मिक स्थिरता को कायम रख सकते थे। उनकी शक्ति और अभ्यास असामान्य रहे हैं।

एक समय महाराज ने कहा था - "हम बीच बाजार में भी बैठकर आत्मध्यान कर सकते हैं।" उस समय मैंने पूछा था - "महाराज! बाजार का हल्ला आदि आपके ध्यान में विघ्न उपस्थित नहीं करेगे, यह कैसे हो सकता है?"

लगता है कि उनका वैराग्य-भाव-पूर्ण हृदय उन अनुपम गुणों में भी पूर्णतया अनासक्त रह आत्मचिंतनजनित अपने आध्यात्मिक आनंद का रसपान करता होगा, किन्तु हमारी आत्मा के कल्याण की अपूर्व सामग्री उनके जीवन से [illegible] में नहीं है, अतः विश्वास है कि उनके जीवन की मधुरतापूर्ण वार्ता भव्य आत्माओं को सदा सत्पथ बताती रहेगी। इससे उनकी चर्चा भी सर्वदा [illegible] रहेगी।

क्षीण नाडी

उपवास को एक मास से अधिक समय हो गया था। एक दिन महाराज की प्रकृति विशेष क्षीण दिखने लगी। उनका स्वर्ण [illegible] दर्शन भी मन्द हो गया। उस समय एक वैद्यराज महाराज के पास गया और उनकी कुटी में हाथ पकड़कर उनकी नाडी देखने लगा। आचार्य महाराज बोल उठे - "हम अच्छे होंगे, कोई रोग है क्या? हमारे शरीर में कोई रोग नहीं है। अब हम शीघ्र ही जाने वाले हैं।"

भट्टारक लक्ष्मीसेनजी से महत्त्वपूर्ण वार्तालाप

सत्ताईसवें उपवास के दिन भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी कोल्हापुर संस्थान ने आचार्य महाराज से पूछा, "महाराज! शांति तो है?"

महाराज - "पूर्ण शांति है। शरीर में भी शांति है।"

भट्टारक जी - "आप पुण्यवान हैं। आपके पुण्य-प्रभाव से ही शांति है।"

महाराज - "बाबा! हमारा पुण्य नहीं है। भगवान देशभूषण कुलभूषण के प्रभाव से ऐसा है।" ऐसी पवित्र श्रद्धा गुरुदेव की थी।

धर्म का अवलंबन

एक विद्वान् ने महाराज से कहा "आपके अभाव में हम लोग निरवलंब हो गए।"

महाराज - "क्यों? धर्म का अवलंबन तो है। धर्म पर चलने से सबका कल्याण होता है।"

धर्मसंरक्षण का ध्यान

रा. ब. सेठ राजकुमारसिंह जी इंदौर ने ३-९-५५ को महाराज के पास जा उनको प्रणाम किया। गुरुदेव बोले - "धर्म के संरक्षण का काम तुम्हारा है।"

सेठजी - ''महाराज! आपके आशीर्वाद से जो मुझसे बन सकेगा, करूँगा।''

विवेकपूर्ण दानशीलता

कुथलगिरि मे आने वाले हजारो भाई ऐसे थे, जो अकेले आए थे। उनके भोजन का प्रबन्ध करने की उदारता बारसी के उदार हृदय विवेकी तथा दानशूर सेठ बालचद लालचद भूमकर ने की थी। श्री भूमकर की दानशीलता सचमुच मे अपूर्व थी। श्रेष्ठ साधुराज शातिसागर महाराज की सल्लेखना अलौकिक थी। उन गुरुदेव के दर्शनार्थ हजारो भाई आते-जाते थे। श्रीभूमकर ने यह सूचना करदी थी कि जिस भाई का प्रबध न हो वे सब हमारे खास भोजनालय मे पधारकर भोजन करे। यह बुद्धिमत्ता पूर्ण दानशीलता सराहनीय है। इस सबध की चर्चा भट्टारक जिनसेन स्वामी ने आचार्य महाराज से की, तब महाराज बोले - ''भूमकर ने बहुत पुण्य का काम किया है। अन्नदान से जीव सुखी होता है।'' शास्त्र मे कहा है -

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानत.।
अन्नदानात् सुखी नित्यं, निर्व्याधि भेषजाद्भवेत्॥

आत्महित मे सर्वदा सजग

मैने सल्लेखना के बीसवे दिन सुयोग पाकर कहा - ''महाराज! समतभद्र स्वामी ने स्वयभूस्तोत्र मे एक बडी सुन्दर बात कही है। (१) शीतलनाथ भगवान की स्तुति मे वे कहते है - ''भगवन्! जगत् के प्राणी अपनी आजीविका तथा सुखोपभोग के योग्य सामग्री अर्जन करने मे दिन व्यतीत करके रात को श्रान्त हो सो जाते हैं, किन्तु आप दिनरात प्रमाद का त्यागकर आत्महित के विशुद्ध पथ मे सजग रहते है।'' इसी प्रकार आप भी चौबीसो घटे आत्मकल्याण मे निमग्न हैं। धन्य है आपका जीवन और आपकी आत्म साधना।''

अपने विषय में

महाराज बोले - ''हमारा शरीर बहुत चलने वाला था। ऑख ने गडबडी कर दी। सयम निर्दोष पालने मे विघ्न देखकर हमने समाधि धारण की।''

इतने मे एक भाई ने कह दिया - ''महाराज! आप तो तीर्थकर होगे।''

महाराज - ''तीर्थंकर हो या केवली हो, कुछ भी हो। मोक्ष मिलेगा, तो ठीक है।'' कुछ क्षण के पश्चात् गुरुदेव बोले - ''हमे उसकी भी लालसा नहीं है।''

महाराज की शरीर-स्थिति

मैने कहा -("महाराज! आपका यह शरीर हमारी दृष्टि से कल्याणदायी तथा ममत्व की वस्तु तो है ही, यह आपके लिए भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। यह रत्नत्रय का साधक शरीर जब तक रहेगा, तब तक आपका महाव्रती का जीवन है। आप छठे, सातवे गुणस्थान का आनद लेते रहेगे। इसे छोडने मे शीघ्रता की,तो आपकी भी हानि है। आपको अविरत नामका चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त होगा। अत आपको जलग्रहण नहीं छोडना चाहिए।")

महाराज - "हमने जल का त्याग कहाँ किया है?"

मैंने कहा - "आपने ४ दिन से जल लेना बद कर दिया है। इससे सब लोग चिंतामग्न हो गए हैं। आगे जल लेने की हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान दीजिये।"

जल-परित्याग का हेतु

हमारा तर्क तो महाराज को अनुकूल लगा, किन्तु अब विचित्र स्थिति मे जल लेना सामान्य बात नहीं थी। महाराज की क्रियाएँ अन्त तक आगम के अनुसार ही रही हैं। कोई सोच सकता है कि वे बेठे-बेठे कुटी के भीतर जल ले सकते थे, किन्तु ऐसी बात साधुओं के शिरोमणि शान्तिसागर महाराज के विषय मे नहीं सोचना चाहिए। डरकर या घबडाकर जिनेन्द्रवाणी के विरुद्ध प्रवृत्ति करना उनके जीवन मे तो क्या स्वप्न मे भी नहीं पाया गया। जलग्रहण करने के लिए वे उसी प्रकार शरीर-शुद्धि करके जाते थे, जैसे समाधि के पूर्व मे जाया करते थे। अब भी वे पूर्ववत् ही नवधा भक्ति होने के बाद खडे-खडे अँजुलियो मे केवल उष्ण जल लेते थे।

अब शरीर इतना अशक्त हो गया कि कम से कम पन्द्रह मिनिट पर्यन्त शारीरिक श्रम के पश्चात् शुद्ध जल की दो-चार अँजुलियाँ लेना असम्भव हो गया था। जल लेने मे उनकी जितनी शक्ति का व्यय होता था उसका बहुत अल्प अंश जलग्रहण द्वारा उनको प्राप्त होता था। इन अनेक बातों को सोचकर उन विवेकमूर्ति मुनिनाथ ने फिर आगे जल नहीं लिया।

अद्भुत तेजपुञ्ज शरीर

उनका शरीर आत्मतेज का अद्भुत पुञ्ज दिखता था। तीस से भी अधिक उपवास होने पर देखनेवालों को ऐसा लगता था, मानो महाराज ने दस-पॉच ही उपवास

किये होगे। उनके दर्शन मे जडवादी मानव के मन मे आत्मवल की प्रतिष्ठा अकित हुए विना नही रहती थी।

निकट से निरीक्षण

देशभूपण-कुलभूपण भगवान के अभिपेक का जव उन्होने अन्तिम वार दर्शन किया था, उस दिन शुभोदय से महाराज के ठीक पीछे मुझे खडे होने का मोभाग्य मिला था।

मै महाराज के अत्यन्त क्षीण शरीर को ध्यान मे देख रहा था। उनके शरीर के तेज की दूसरो के शरीर से तुलना करता था, तव उनकी देह विशेप दीप्तियुक्त लगती थी। मुखमण्डल पर तो आत्मतेज की ऐसी ही आभा दिखती थी, जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व प्राची दिशा मे विशेष प्रकाश दिखाता हे। उनके हाथ, पैर, वक्ष स्थल उस लम्वे उपवास के अनुरूप क्षीण नहीं लगते थे, फिर भी वहुत समय से महान् तपस्या के कारण क्षीणता युक्त शरीर और उस पर यह महान् सल्लेखना का भार, ये सव अद्भुत सामग्री, आत्म-शक्ति और उस तेज को स्पष्ट करते थे।

एकाग्रचित्त हो अभिपेक-दर्शन

मेने देखा कि महाराज एकाग्रचित्त हो जिनेन्द्र भगवान की छवि को ही देखते थे। इधर उधर उनकी निगाह नहीं पडती थी। मुख से थके माँदे व्यक्ति के समान शव्द नहीं निकलता था। तत्त्व दृष्टि से विचार किया जाय,तो कहना होगा कि शरीर तो पोषक सामग्री के अभाव मे शक्ति तथा सामर्थ्य रहित हो चुका था, किन्तु अनन्तशक्ति पुञ्ज आत्मा की सहायता उस शरीर को मिलती थी, इससे ही वह टिका हुआ था और आत्मदेव की आराधना मे सहायता करता था।

अनेकान्तिक दृष्टि

सल्लेखना के ३० वे उपवास के लगभग महाराज ने मन्दिर जाकर भगवान के अभिषेक का दर्शन किया। अन्तिम क्षण के पूर्व मे जिनेन्द्र देव के पचामृत अभिषेक के गन्धोदक को भक्तिपूर्वक ग्रहण किया। इधर श्रेष्ठ समाधि धारण रूप निश्चय दृष्टि और इधर जिनेन्द्र भक्ति आदि रूप व्यवहार दृष्टि इस बात को व्यक्त करती थी कि आचार्य महाराज की जीवनी अनेकान्त भाव को घोषित करती थी।

शिक्षाग्रहण

आज अपने आपको परम आध्यात्मिक समझने वाले व्यक्तियो को आचार्यश्री

के जीवन रूपी मानस्तम्भ के द्वारा अपने अध्यात्मज्ञान का अहकार दूर करना श्रेयस्कर है। वे भले आदमी कम-से-कम इतना तो सोच सकते है कि जब साधु शिरोमणि शातिसागर महाराज सदृश सत्पुरुष को जिन-दर्शनादि द्वारा आत्मशुद्धि मे सहायता प्राप्त होती थी और इसीलिए जीवन भर इन मङ्गलप्रवृत्तियो का उन्होने परित्याग नहीं किया, तब साधारण श्रेणी का व्यक्ति, जो प्राय आरम्भ और विषयो की सेवा मे काल व्यतीत किया करता है, यदि जिन-दर्शन पूजा आदि व्यवहार धर्म को छोडता है अथवा उसका तिरस्कार करता है, तो आगम के प्रकाश में वह अपने उत्कर्ष तथा कल्याण के पथ पर कुठाराघात करता है। आज के समय मे, समाज के मध्य निश्चय और व्यवहार पक्ष की रस्साखिचाई के सघर्ष मे, आचार्य शान्तिसागर जी की जीवनी पूर्ण समाधानप्रद सामग्री प्रस्तुत करती है।

मुनिबन्धु को संदेश

करीब ९२ वर्ष की वय वाले मुनिबन्धु चारित्र चूडामणि श्री १०८ वर्धमान सागर महाराज के लिए पूज्यश्री ने सदेश भेजा था, "अभी १२ वर्ष की सल्लेखना के छह सात वर्ष तुम्हारे शेष हैं। अत कोई गडबड मत करना। जब तक शक्ति है, तब तक आहार लेना। धीरज रखकर ध्यान करना। हमारे अन्त पर दु खी नहीं होना और परिणामो मे बिगाड मत लाना।"

शेडवाल

आचार्यश्री ने यह भी कहा - "शक्ति हो तो समीप मे विहार करना। नहीं तो थोडे दिन शेडवाल बस्ती मे और थोडे दिन शेडवाल के आश्रम मे समय व्यतीत किया करना।" उन्होने यह भी कहा था - "अपने घराने के पिता, पितामह आदि सभी सल्लेखना करते आए हैं, इसी प्रकार तुम भी उस परम्परा का रक्षण करना। इससे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त होता है। अच्छे भाव से ध्यान करते गए, तो स्वर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा, इसमे सन्देह नहीं है।"

भट्टारक युगल को उपदेश

कुथलगिरि मे आचार्यश्री के समीप भट्टारक लक्ष्मीसेन जी कोल्हापुर मठ वाले थे। भट्टारक जिनसेन स्वामी भी सदा की भाँति गुरुदेव की सेवा मे विद्यमान रहते थे। एक दिन पूज्य महाराज ने दोनों भट्टारको को यह महत्त्वपूर्ण बात कही थी - "**धर्म का रक्षण करो, समाज का रक्षण करो और साधु-सतों का रक्षण करो।**"

कल्याण का त्रिविध मार्गदर्शन

आचार्यश्री ने यमसल्लेखना लेते हुए तीन वडी महत्त्वपूर्ण वातें कही थीं - "(१) जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर विश्वास करो। (२) स्वाध्याय का प्रचार करो। (३) जैनधर्म का प्रचार करो।" आचार्य महाराज की ये तीनो वाते इस युग की दृष्टि से रत्नत्रय सदृश है।

आज का युग

आज के युग मे जो भी व्यक्ति लक्ष्मी का कृपापात्र वना, या जिसके पास लौकिक ज्ञान का थोडासा अश आया, वह अहकार-मूर्ति तुरन्त ही अपने को महान् ज्ञानी मानकर, जिनागम पर सन्देह करना प्रारभ कर देता है। हमे ऐसे सत्पुरुषो के दर्शन का अनेक जगह सौभाग्य मिला करता है, जो भद्रता के नाते आगम के विषयो से स्वय को अत्यन्त अपरिचित बताते हुए भी उन ऋषिवाक्यो को सदोष कहने मे सकोच नहीं करत है।

स्वच्छ जीवन का पोषण

शास्त्रो से परिचित धन के लोलुपी कुछ भाई भी ऐसे लोगो की हॉ मे हाँ मिलाकर वीतरागवाणी को सकलक वनाने की दु खद चेष्टा करते हैं। विद्वत्ता का गौरव भूलकर वे लोग द्रव्य के दास वनकर आगम की आज्ञा के लोप करने पर प्राप्त होने वाले नरक-तिर्यच गति के दु खो को भूलकर अपने मालिकों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का पोषण करने लगे है। इस स्थिति मे उन श्रीमानो की भी परमार्थ दृष्टि से बडी दुर्गति होती है। कारण, धन का मद उनको विवेकहीन बनाकर वानर सदृश चचल बनाता है और ये विद्वान् कहे जाने वाले उनको अपनी मोहमयी वाणी रूपी मदिरा पिलाकर, उनको निरर्गल बना देते हैं। ऐसी स्थिति मे यह अत्यन्त आवश्यक है कि नर-जन्म और श्रावक का कुल पाने वाले व्यक्ति को वीतराग की वाणी के प्रति श्रद्धा धारण करना चाहिए।

जिनागम की श्रद्धा

समझदार आदमी जिनागम का जैसा-जैसा व्यवस्थित अभ्यास या स्वाध्याय करता जाएगा, वैसा-वैसा उसका विश्वास विशुद्ध होगा और उसकी श्रद्धा बलवती होती जाएगी। पहले लोगो की शास्त्र स्वाध्याय तथा चर्चा मे रुचि रहा करती थी, किन्तु आज लोगो का झुकाव लौकिकता की ओर अधिक रहा करता है। ऐसे लोग शास्त्र को पढकर विषयपोषण की सामग्री खोजते फिरते हैं। समाज के अत्यन्त वृद्ध, करुणाशील, अनुभवी

तथा तपस्वी धर्मगुरु ने स्वर्गयात्रा करने के पूर्व जो उक्त बात कही है,उसके अनुसार प्रवृत्ति करना हमारे लिए हितकारी है।

स्वाध्याय प्रचार

दूसरी बात महाराज ने स्वाध्याय-प्रचार की कही थी। आज जन साधारण के हाथ मे जब अल्प मूल्य मे उपयोगी साहित्य मुद्रित होकर आवे, तो स्वाध्याय का प्रचार हो, लेकिन ग्रन्थ-विक्रेता महाशय जिन-वाणी को बहुमूल्य मे बेचकर सुखोपभोग की सामग्री इकट्ठी करना चाहते हैं। शास्त्रो को बेचकर धनी बनने वालो की दु खद कथा सुनाते हुए एक अनुभवी समाजनेता ने बताया था कि ऐसा करने से बहुत से अर्थलोलुप आगम विक्रेताओ पर किस-किस प्रकार से असाता का पहाड टूटा है, फिर भी उनकी आँखों पर पट्टी बँधी हुई है, अत आवश्यक है कि समाज का विचारक वर्ग इस बात की व्यवस्था करे ताकि ज्ञानसवर्धक तथा जीवन को विमल बनाने वाला जैन साहित्य कम-से-कम मूल्य मे समाज तथा जनता को प्राप्त हो सके। समाज के सहृदय विद्वानो, कार्यकर्ताओं तथा दानियों को गीता प्रेस सदृश उद्योग करना चाहिए, जिससे अल्प अथवा उचित मूल्य मे सुन्दर तथा मनन करने योग्य साहित्य का प्रकाशन सम्भव हो सके। यह धारणा अनुचित है कि अधिक मूल्य रखने से उसका विशेष महत्त्व होता है। यह लालची परिकल्पना ठीक नहीं है, ज्ञानप्रसार मे बाधक है।

निर्लोभ दृष्टि

कई लोग बिना आगा-पीछा सोचे जघन्य श्रेणी का साहित्य छापकर उसे बॉटने मे धर्मप्रभावना की कल्पना करते हैं। निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने वाले इस सुझाव से सहमत होंगे कि जो भी धर्म प्रभावना करने वाला साहित्य प्रकाश मे आवे उससे स्वार्थ-पोषण का सम्बन्ध न हो। तत्त्वार्थराजवार्तिक मे अकलंक स्वामी ने लिखा है कि जो शास्त्र को बेचकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है, वे आगे वज्रमूर्ख हुए बिना न रहेंगे। हमारा परम कर्तव्य है कि जीव को अनन्त कल्याण प्रदान करने वाली जिनवाणी को जन-जन की वाणी बनावें। शास्त्रदान का फल कैवल्य ज्योति की प्राप्ति है। आगमविरोधी साहित्य का प्रकाशन तथा दान कार्य मिथ्यात्व पोषक होने से कुगति-प्रदाता है।+

धर्म प्रचार

आचार्य महाराज की तीसरी बात बहुत महत्त्वपूर्ण है - ''जैनधर्म का प्रचार

करो।' आचार्य महाराज का कथन साम्प्रदायिकता के भाव से नहीं था। वे जानते थे कि जैनधर्म की रत्नत्रयी 'प्रदर्शना' के प्रभाव से यह जीव अनन्त संसार के सन्ताप से मुक्त होकर अविनाशी शांति प्राप्त करके सिद्ध परमात्मा बनता है, इसलिए वे समस्त जीवों के कल्याण की भावना से समाज को कहते हैं - 'जैन धर्म का प्रचार करो।' इस युग में एक आत्मा ने महाराज शांतिसागरजी के रूप में रत्नत्रय की आराधना तथा उज्ज्वल तपस्या द्वारा जो वीतराग शासन की प्रभावना की, वह लाखों लोग न कर सके। बड़े-बड़े दानी या विद्वान् भी न कर सके। कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है ''**सव्व जगस्स हिदकरो धम्मो तित्थकरेहि अक्खादो**' - तीर्थंकरदेव कथित धर्म विश्वकल्याणकारी है। वर्तमान युग में भोगासक्ति के महारोग से पीड़ित विदेशी लोगों में शांतिदायी धर्मपान की तीव्र पिपासा है। वैभव प्रदर्शन के स्थान पर आज सत्साहित्य प्रकाशन तथा प्रचार की जरूरत है। सुलझे हुए परकाण्ड समर्थ विद्वानों को प्रचारार्थ विदेश भेजना चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि **चरित्रहीन व्यक्ति प्रभावना का अपात्र है। मलिन जीवन क्या प्रकाश देगा ?**

यदि धर्म की प्रभावना करने वाला व्यक्ति सदाचार सम्पन्न हो, सुश्रद्धा समलकृत हो, अध्ययनशील हो, तो उसकी वाणी आज के ज्ञानपिपासु, चिंतनप्रधान जगत् के मन पर प्रभाव डाल सकती है। आज धर्मप्रभावना के लिए उद्यत प्रायः ऐसे सत्पुरुषों के दर्शन होते हैं, जो श्रावक के कर्तव्य-देवदर्शन, पूजन सदृश कार्यों से पूर्णतया विमुख रहते हैं। असयम का मुकुट उनके मस्तक पर शोभायमान रहता है। अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने की तथा उसे उचित सिद्ध करने की उनमें सिद्धहस्तता रहती है। ऐसों से धर्म की प्रभावना होती है या तिरस्कार होता है, यह विवेकी व्यक्ति अपने हृदय पर हाथ रखकर विचार कर सकता है।

एक चरित्रवान् विद्वान् बताते थे कि किसी नगर में लोकशास्त्रज्ञ जैन भाइयों का सम्मेलन हुआ था। उसके अध्यक्ष बने थे, विलायत से प्रमाण-पत्र प्राप्त एक सज्जन। धर्म प्रभावना की चर्चा तथा तत्त्वचिंता से श्रान्त हो वे लोग स्वयं को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए रात्रि में बिजली के आलोक में बैठकर भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोड़कर आहार करते रहे। उनको देखकर समाज के भले और भोले लोगों पर यह प्रभाव पड़ा था कि ऐसे नाविकों की नौका में यदि बैठ गए, तो नाविक तथा यात्री नौका के साथ में नदी के तल में जाकर अनन्त निद्रा का आनन्द लेंगे।

जिनशासन प्रेमी का कर्तव्य

सद्धर्म की प्रभावना तथा प्रचार के लिए तत्पर व्यक्ति को रत्नत्रय समलकृत होना चाहिए। शराब पीने वाला किस प्रकार मद्य-त्याग का उपदेश देकर लोगो को प्रभावित कर सकता है?

अत यह आवश्यक है कि धर्म-प्रचार के योग्य इस युग मे समाज वीतराग शासन की लोक में प्रतिष्ठा-वृद्धि निमित्त सत्पुरुषो का निर्माण करे। ज्ञानवान सयम को धारण करे और सयमी व्यक्ति सरस्वती के प्रति विरक्ति का भाव त्याग उसकी आराधना करे, ऐसे लोगो द्वारा ही धर्म का प्रसार होता है। भगवती आराधना मे लिखा है, "श्रेयोर्थिना जिनशासनवत्सलेन कर्तव्य-एव नियमेन हितोपदेश " - "जिनशासन के प्रेमी कल्याण चाहने वाले सत्पुरुष को नियम रूप से हित का उपदेश देना चाहिए। स्वाध्याय रूप अतरग तप का एक भेद धर्मोपदेश कहा गया है। तत्त्वार्थ सूत्र मे कहते हैं, "**वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः**" (अ ९ सूत्र २५) - धर्म प्रभावना तीर्थकरपद दायिनी षोडशभावनाओ मे परिगणित है। सम्यक्त्व के आठ अगो मे प्रभावना अग कहा गया है। मिथ्यात्व रोग से पीडित व्यक्तियो को अनेकान्त विद्यापान रूप अमृतपान कराने का काम सच्चरित्र, गहन अध्ययनशील तथा वक्तृत्व शक्ति समलकृत व्यक्तियो का काम है। चरित्रहीन, मायावी, लोभी, अध्ययन शून्य व्यक्ति के कार्य को शून्य ही उपलब्ध होता है। यह धर्मप्रचार की बात श्रावक, श्रमण सब के विचार योग्य है।

त्यागियों के लिए विचारणीय

आचार्य शातिसागर महाराज की धर्मप्रचार की बात त्यागियो के बहुत काम की है। कारण इस धर्म प्रभावना द्वारा यह जीव धर्म तीर्थंकर की पदवी तक को प्राप्त करता है। प्राय देखने मे आता है कि त्यागी लोग व्रत लेने के बाद स्वाध्याय से इस तरह विमुख रहते हैं, जिस प्रकार वे सासारिक प्रपच की बातों से अलग रहते हैं। उनमें से कुछ लोगो से बात करने का मौका आया, तो वे शिवभूति साधु को अपना आदर्श बताते है, जिन ने 'तुष-माष-भिन्न' अर्थात् छिलका और दाल भिन्न-भिन्न है इतने ज्ञान द्वारा कैवल्य को प्राप्त किया था। आश्चर्य है कि शास्त्रो से अनुचित स्वार्थ की सिद्धि की जाती है। उचित तो यह था कि उससे आत्मा के लिए प्रेरणा प्राप्त करनी थी। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के द्वारा यह जीव सुरेन्द्र-वद्य जिनेन्द्र की पदवी पाता है। स्वाध्याय को महान् तथा अपूर्व तप कहा गया है।

सयमविरोधी भावना

कोई-कोई सम्यक्त्व की चर्चा के विपय मे महान् प्रेम दिखाते हुए सयमी के प्रति तिरस्कार की भावना व्यक्त करते हे ओर अपना आदर्श अन्तर्मुहूर्त म सिद्धि प्राप्त करनेवाले चक्रवर्ती भरत को कहते हे। ऐसे लोग यह म्मरण रखने की कृपा नहीं करते है कि चक्रवर्ती भरत सदृश अल्पतम काल मे सिद्धि आदिनाथ भगवान से लेकर वीर भगवान तक चौबीस तीर्थकरो मे किसी को न मिली, तव क्या हमे तीर्थकरो से भी अपने को बडा और विशुद्धि का भडार सोचना चाहिए? यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भरतेश्वर के जीव ने पूर्व जन्मो मे महान् तप द्वारा अपनी आत्मा को सशक्त वनाया था।

आज के लोगो मे युक्तिसगत वात को शिरोधार्य करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। वैज्ञानिक अनुसधानो आदि के प्रभाववश प्राय शिक्षित वर्ग के अन्त करण पर मूढता से प्रसूत तथा विज्ञान विरुद्ध धर्म की मान्यताओ का भार नहीं लादा जा सकता है। जैनधर्म का कथन अनुभव, युक्ति तथा विज्ञान के पूर्णतया अनुरूप है। उसके तत्त्व का निरूपण करने वाले निस्पृह, सहृदय और सच्चरित्र व्यक्ति होने चाहिए और ऐसे धर्मसेवको के सहायक विवेकी धनिक चाहिए। विद्वानो मे संयम चाहिए और त्यागियो मे विद्या का रस उत्पन्न होना चाहिए। इस प्रकार की सामग्री का समागम होने पर जैनधर्म की प्रभावना हो सकती है। धीर-वीर विवेकी व्यक्ति आज भी वीर शासन का चमत्कार विज्ञजगत् को बताकर विश्वहित कर सकते है।

ज्ञान और चारित्र का संगम

उत्तरपुराण मे गुणभद्रस्वामी ने लिखा है कि विद्वत्ता के साथ सयम तथा सदाचरण का समागम आवश्यक है -

> विद्वत्त्वं सच्चरित्रत्वं मुख्यं वक्तरि लक्षणम्।
> अबाधितस्वरूप वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥६१-७॥

जिस प्रकार ज्ञान तथा दर्शन जीव के अबाधित लक्षण है, उसी प्रकार विद्वत्ता तथा सदाचार वक्ता के मुख्य लक्षण है।

जैनधर्म की समृद्ध अतीत अवस्था की झॉकी देखने पर ज्ञात होता है कि उस समय प्रकाण्ड धर्माचार्य थे, जो ज्ञान के पारगामी थे और श्रेष्ठ सयम के धारक थे। ऐसे महान् आचार्यो का कार्य आज का गृहस्थ यदि करना चाहता है, तो उसमे कम से कम सज्जन मनुष्य के सामान्य गुण तो होने ही चाहिए और उसे सामान्य श्रावक के सदाचार

की परीक्षा मे उत्तीर्ण होना चाहिए। हमारा तो विश्वास है कि सयम का शत्रु, सद्धर्म की ध्वजा की इज्जत कभी भी नहीं बढा सकता। स्याद्वाद के ध्वज को हाथ में उठाने वालो को पापी, पाखडी और प्रतारणा मे प्रवीण न होकर मार्दव, सत्य तथा सयम आदि सद्गुणों का प्रगाढ प्रेमी होना चाहिए। आज के अनुकूल युग मे हमें जैनधर्म की प्रभावना के कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

असाधारण व्यक्तित्व

आचार्य महाराज का व्यक्तित्व असाधारण रहा है। सारा विश्व खोजने पर भी वे अलौकिक ही लगेंगे। ऐसी महान् विभूति के अनुभवो के अनुसार प्रवृत्ति करने वालो को कभी कष्ट नहीं हो सकता। [एक दिन महाराज ने कहा था - "हम इन्द्रियो का तो निग्रह कर चुके हैं। हमारा चालीस वर्ष का अनुभव है। सभी इन्द्रियॉ हमारे मन के आधीन हो गई हैं। वे हम पर अपना हुकम नहीं चलाती हैं। अब प्राणी सयम का पालन करना हमारे लिए कठिन हो गया है, कारण नेत्रों की ज्योति मन्द हो रही है, अत सल्लेखना की शरण लेनी पडेगी। मुझे समाधि के लिए किसी को णमोकार तक सुनाने की जरूरत नहीं पडेगी।"]

पुरातन सेवक की स्मृति

पहले नसलापुर के जैनबन्धु श्री हनगोडा ने बडी भक्तिपूर्वक महाराज की सेवा की थी। सल्लेखना के १९ वे दिन सहसा महाराज को उसकी स्मृति आगई कि अब हनगोंडा ८० वर्ष के हो गए। यहॉ महाराज को उसकी याद आई, उधर वह एक दिन पूर्व ही कुथलगिरि आ गया था। वह महाराज की सेवा मे पहुँचा।

अमृत वाणी

उन्होने परम करुणा-भाव पूर्वक उससे कहा - "तुमने हमारी बहुत सेवा की।" यह कहकर उसे उन्होंने आशीर्वाद दिया। वह फूट-फूटकर गुरुचरणो की ममता के कारण रोने लगा। महाराज ने सान्त्वना के ये शब्द कहे - "अरे! यह ससार असार है। दु ख करने में सार नहीं है।" गुरुदेव की वाणी सुनकर वह गुरु चरणो का प्रेमी ग्रामीण कुटी के बाहर आ गया।

अभिषेक

चौरासी वर्ष की आयु मे लम्बे उपवासो के होते हुए भी महाराज की स्मृति आदि पूर्ववत् शुद्ध रही है। वे भगवान का अभिषेक देख रहे थे। वह समाधि का १८ वॉ

दिन था। महाराज ने प्रबधको स कहा - "जब तुम लाग पूजा की बोली द्वारा हजारो रुपया वसूल करते हो तब अभिषक के लिए केशर दूध दही आदि के परिमाण मे क्यो कमी करते हो?" दूसरे दिन मे बड वैभव पूर्वक अभिषेक होन लगा। उस अभिषेक को ध्यानपूर्वक देखने पर हृदय को बडा सतोष मिलता था।

विचारणीय दृष्टि

"यदि वह घी, दूध, दही आदि के द्वारा किया गया जिनेन्द्र का अभिषेक आचार्यश्री की अत्यन्त विरक्त तथा यम-सल्लेखना के शिखर पर समारूढ़ आत्मा को आगम विपरीत प्रतीत होता तो वे देह की क्षीण अवस्था मे क्यो बहुत समय बैठकर अभिषेक दर्शन मे अपना बहुमूल्य समय देते? आचार्यश्री की प्रवृत्ति आगमविरुद्ध कभी नहीं रही है।" अत इस कार्य मे हमारा कर्तव्य है कि क्षपकराज की जीवनी से अपने कल्याण की बात ग्रहण करें और पक्ष-मोह को छोडे। उनके चरणो का अनुगमन करना श्रेयस्कर है। हमे आगमपथी बनना चाहिए।

वैराग्य-भाव की पराकाष्ठा

गुरुदेव से प्रार्थना की गई थी-"महाराज! अभी आहार लेना बन्द नहीं कीजिए। चौमासा पूर्ण होने पर मुनि आर्यिका आदि आकर आपका दर्शन करेंगे। चौमासा होने से वे कोई भी गुरु दर्शन हेतु नहीं आ सकेंगे।" महाराज ने कहा - "प्राणी अकेला जन्म धारण करता है अकेला जाता है - **'येसी एकला जासी एकला'**। कोई किसी का साथी नहीं है - **'साथी कुणि न कुणाचा'**। क्यो मै दूसरो के लिए अपने को रोकूँ? हम किसी को न आने को कहते है, न जाने को कहते है।"

सघपति - "महाराज! जो आपके शिष्य है वे अवश्य आवेंगे।"

महाराज - "उनके लिए हम अपनी आत्मा के हित मे क्यो बाधा डाले?"

इसके पश्चात् महाराज के मन मे कुथलगिरि पर्वत के शिखर पर जाने का विचार आया। यह ज्ञात होते ही भट्टारक जिनसेन स्वामी ने कहा -"महाराज! आज का दिन ठीक नहीं है। आज तो अमावस्या है।"

सामान्यत आचार्यश्री के जीवन मे सभी महत्त्व के कार्य मुहूर्त आदि के विचार के साथ हुआ करते थे किन्तु उस समय उनका मन समाधि के लिए अत्यन्त उत्सुक हो चुका था। वैराग्य का सिन्धु वेग से उद्वेलित हो रहा था। इससे वे बोल उठे - "महावीर भगवान अमावस्या को ही तो मोक्ष गए है। इसमे क्या है?"

भगवान की कृपा

महाराज की महावीर भगवान के प्रति अपार भक्ति रही है। जब भी कोई महत्त्व का धार्मिक कार्य उनके प्रयत्न से सम्पन्न हो जाता था, तब वे कहा करते थे - ''महावीर भगवान की कृपा है, उससे ऐसी बात बन गई।'' अपने कार्य को महत्त्व देना और अहकार की बाते करना मैंने उनमे कभी नहीं पाया।

वीरवाणी

एक दिन महाराज ने कवलाना मे कहा था - ''आज महावीर भगवान हमारे बीच मे नहीं हैं, तो क्या हुआ? उनकी वाणी तो विद्यमान है। उससे हम अपनी आत्मा का अच्छी तरह कल्याण कर सकते हैं।''

सुन्दर प्रायश्चित्त

महाराज का अनुभव और तत्त्व को देखने की दृष्टि निराली थी। एक बार महाराज बारामती मे थे। वहॉ एक सम्पन्न महिला की बहुमूल्य नथ खो गई। वह हजारो रु की थी। इससे बडों बडों पर शक हो रहा था। अन्त मे खोजने पर उस महिला के पास ही वह आभूषण मिल गया। यह बात जब महाराज को ज्ञात हुई, तब महाराज ने उस महिला से कहा - ''तुम्हे प्रायश्चित्त लेना चाहिए। तुमने दूसरो पर प्रमादवश दोषारोपण किया।''

उसने पूछा - ''क्या प्रायश्चित्त लिया जाय?''

महाराज ने कहा - ''यहॉ स्थित जिन लोगों पर तुमने दोष की कल्पना की थी, उन सबको भोजन कराओ।''

महाराज के कथनानुसार ही कार्य हुआ।

वर्धमान महाराज से मार्मिक बातचीत

शेडवाल जाते हुए वर्धमानस्वामी को आचार्यश्री के दर्शन का सौभाग्य मिला। उन्होंने आचार्य महाराज से कहा था - ''महाराज! आपने तो १२ वर्ष की समाधि का नियम लिया है। मुझे आपका क्या आदेश है?''

महाराज - ''तुम भी हमारी तरह नियम ले लो।''

उन्होंने १२ वर्ष की समाधि का नियम ले लिया। पश्चात् आचार्यश्री ने कहा - ''तुम अब विशेष भ्रमण मत करो। जहॉं सयम ठीक पले, वहॉ काल व्यतीत करो। अब

अधिक भ्रमण ठीक नहीं हे। अव वुढापा वहुत आ गया है।'' उम समय वर्धमान स्वामी की अवस्था लगभग ९३ या ९४ वर्प की थी। वहॉ जव दोनो भाई अथवा परमार्थ की भाषा मे दोनो गुरु शिष्य मिलते थे, तव वे एकान्त मे सयम तथा धर्म की ही वाते करते थे। धन्य था उन साधुयुगल का पवित्र जीवन।

स्थायी लोककल्याण की उमङ्ग

कुभोज वाहुवली क्षेत्र पर आचार्यश्री पहुँचे। उनके पवित्र हृदय मे सहसा एक उमङ्ग आई कि इस क्षेत्र पर यदि वाहुवली भगवान की एक विशाल मूर्ति विराजमान हो जाय, तो उससे आसपास के लाखो की सख्या वाले ग्रामीण जैन कृषक वर्ग का वडा हित हो। महाराज ने अपना मनोगत व्यक्त किया ही था कि शीघ्र ही अर्थ का प्रवन्ध हो गया और मूर्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हो गया।

उस प्रसङ्ग पर आचार्य महाराज ने ये मार्मिक उद्‌गार व्यक्त किए थे - ''दक्षिण मे श्रमणवेलगोला को साधारण लोग कठिनता से पहुँचते हैं, इससे सर्व साधारण के हितार्थ बाहुबली क्षेत्र पर २८ फुट ऊँची वाहुवली भगवान की मूर्ति विराजमान हो। मेरी यह हार्दिक भावना थी। अव उसकी पूर्ति हो जायगी, यह सन्तोष की वात है।'' महाराज की इस भावना का विशेष कारण है। महाराज मिथ्यात्वत्याग को धर्म का मूल मानते रहे है। भोले गरीब जैन अज्ञान के कारण लोकमूढता, देवमूढता, गुरुमूढता के फन्दे मे फॅस जाते हैं। इससे उन्होने दक्षिण मे विहार करते समय मिथ्यात्व के त्याग का जोरदार उपदेश दिया था। जो गृहस्थ मिथ्यात्व का त्याग करता था, वही महाराज को आहार दे सकता था। दक्षिण मे लोग प्राय स्वत ही शुद्ध आहार पान करते हैं, इससे उनको आहार-पान के विषय मे उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी।

महाराज लोगो को कहते थे - ''कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र का आश्रय कभी मत ग्रहण करो। कुगुरु की वन्दना मत करो। उनकी बात भी मत सुनो। यह ससार बढाने का कारण है। इससे बडा कोई पाप नहीं है। मिथ्यात्व महापाप है। झूठ, चोरी, सप्तव्यसन आदि सभी कुकृत्य पाप हैं, परन्तु मिथ्यात्व से बडा पाप दूसरा नहीं है। इस विशाल मूर्ति की भक्ति द्वारा साधारण जनता का अपार कल्याण होगा। सचमुच मे मूर्ति कल्पवृक्ष है।''

सबकी शुभ कामना

आचार्य महाराज वास्तव मे लोकोत्तर महात्मा थे। विरोधी या विपक्षी के प्रति

भी उनके मन मे सद्भावना रहती थी। एक दिन उनके पास से सिवनी आते समय मैने कहा था - "महाराज! आशीर्वाद हेतु प्रार्थना है।"

महाराज ने कहा - "तुम्हें ही क्यो, जो भी धर्म पर चलता है, उसके लिए हमारा आशीर्वाद है। जो हमारा विरोध करता है, उस पर भी हमारा प्रेम है, उसे भी हमारा आशीर्वाद है कि वह सद्बुद्धि प्राप्त कर आत्मकल्याण करे।"

विशाल हृदय

सल्लेखना के समय कुथलगिरि मे हमे महाराज के विशाल हृदय ओर लोकोत्तर भाव का दर्शन हुआ। जो लोग महाराज के प्रति कलुषित प्रवृत्ति वाले रहे थे वे लोग भी उन साधुराज के लिए विशेष धर्म-प्रेम के पात्र थे।

चंदन तुल्य जीवन

वे चदन के वृक्ष के समान थे, जो सर्पराज को भी आश्रय देता है। चदन के साथ उनका सादृश्य सार्थक है। स्वर्गारोहण के उपरान्त उनका देह (शरीर) चदन, कपूरादि से भस्म हुआ था। उस समय समझ मे आया कि चदन के समान ये सदा सुवास देते थे। इससे चदन की लकडी द्वारा ही उन सद्गुणो के पुजरूप, आत्मा के आश्रय-स्थल शरीर को दाह योग्य समझा गया था। वे चदन के समान ही गुण धर्म वाले थे। जिस घर मे इनका जन्म हुआ था, वहाँ चदन का वृक्ष है।

सच्चा साम्य भाव

कुथलगिरि में महाराज के अत्यन्त निकट आने-जाने वाले कई व्यक्तियो की भयकर विरोधियों के रूप में प्रसिद्धि रही है। उनके विरुद्ध कृत्यो से महाराज भी सुपरिचित थे। सामान्य श्रेणी का साधु ऐसे व्यक्तियों को अपने पास भी न प्रवेश देता, किन्तु धन्य हैं, वे आचार्यशिरोमणि साधुराज श्रीशातिसागरजी कि जिन्होने राग तथा द्वेष का त्याग करके भक्तों-अभक्तो, मित्रों-अमित्रों आदि सभी पर साम्य भाव धारण किया था। कुथलगिरि के पर्वत पर वे साम्य भाव से समलकृत लोकोत्तर महापुरुष लगते थे। ऐसे महापुरुषों की गभीरता और उच्चता को राग-द्वेष के पक मे लिप्त मानव नहीं जान सकता है। वे असि या पुष्पमाला में भेद नहीं करते थे। सर्पराज को भी वे उसी स्नेह से कृतार्थ करते थे, जिस करुणा द्वारा वे भक्तजनों को उपकृत करते थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि दुष्ट व्यक्ति तथा साधु पुरुष समान हो गए। वे स्वभावानुसार भिन्न ही रहते है और अपनी-अपनी कषायानुसार भावी जीवन का निर्माण करते हैं। श्रेष्ठ महात्मा राग द्वेष की मलिनता

मे ऊँच उठकर साम्य भाव रूप वीतरागता को प्राप्त करते है। यह वीतरागता ही मोक्ष की जननी है। वीतराग और वीतरागता के आश्रय से जीव का उत्कर्ष होता है। सराग और सरागता की समाराधना से आत्मा का पतन होता है। इससे आत्मा ससार मे परिभ्रमण करती है। महाराज के विषय मे यह श्लोक पूर्णतया चरितार्थ होता था। कारण, वे सच्ची तथा शाश्वतिक शातिदायिनी जननी समाधि की गोद मे विराजमान थे -

साम्य मे सर्वभूतेषु, वैर मम न केनचित्।
आशा सर्वा परित्यज्य, समाधिमहमाश्रये ॥३॥

- मै सपूर्ण आशाओ को त्यागकर समाधि का शरण ग्रहण करता हूँ। सपूर्ण प्राणधारियो के प्रति मेरे हृदय मे समता भाव है। किसी भी जीव के प्रति मेरे मन मे विरोध नहीं है।

आचार्यश्री की दृष्टि

आचार्यश्री की समाधि का निकट मे निरीक्षण करने पर उक्त पद्य की अक्षरश अन्वर्थता दिखी। उनका आत्मविश्वास सामायिकपाठ के इस पद्य में निवद्ध है -

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषा वहिर्भवा भावा., सर्वे संयोगलक्षणा. ॥१०॥

"मेरी आत्मा का स्वरूप ज्ञान और दर्शन है। मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है। इसके सिवाय वाह्य पदार्थ मुझ से भिन्न हैं। उनका मेरे साथ सयोग मात्र है। वे मेरे साथ तादात्म्य नहीं है।"

आगम का सार

आचार्य महाराज ने सल्लेखना के २६वे दिन के अमर सदेश में कहा ही था - **"जीव अकेला आहे, अकेला आहे! जीवाचा कोणी नॉही रे बाबा! कोणी नांही।"** -जीव अकेला है, अकेला है। जीव का कोई नहीं वावा, कोई नहीं है। इसके सिवाय गुरुदेव के ये वोल वडे अनमोल रहे - **"जीवाचा पक्ष घेतला तर पुद्गलाचा घात हो तो। पुद्गलाचा पक्ष घेतला तर जीवाचा घात हो तो। परन्तु मोक्षाला जाणारा जीव हा एकटा च आहे पुद्गल नांही।"**- 'जीव का पक्ष ग्रहण करने पर पुद्गल का घात होता है, पुद्गल का पक्ष ग्रहण करो, तो आत्मा का घात होता है, परन्तु मोक्ष को जाने वाला जीव अकेला ही है, पुद्गल साथ में मोक्ष नहीं जाता है।'

तपोग्नि द्वारा लोकोत्तरता की अभिवृद्धि

अग्नि मे तपाया गया सुवर्ण जिस प्रकार परिशुद्ध होता है, उसी प्रकार सल्लेखना की तपोग्नि द्वारा आचार्य महाराज का जीवन सर्व प्रकार से लोकोत्तर बनता जा रहा था। दूरवर्ती लोग उस विशुद्ध जीवन की क्या कल्पना कर सकते है?

प्रशम मूर्ति

सल्लेखना की वेला मे महाराज केवल प्रशममूर्ति दिखते थे। उस समय वे नाम निक्षेप की दृष्टि से नहीं, अन्वर्थता की अपेक्षा भी शान्ति के सिधु शातिसागर थे। वे पूर्णतया अलौकिक थे।

जिनेश्वर के लघु नंदन

ससार मृत्यु के नाम से घबडाता है और उसके भय से नीच से नीच कार्य करने को तत्पर हो जाता है, किन्तु शातिसागर महाराज मृत्यु को चुनौती दे, उससे युद्ध करते हुए जिनेश्वर के नदन के समान शोभायमान होते थे। उनका सकल्प था 'Death thou shalt die' - अरी मृत्यु तेरी मृत्यु होगी। समाधि में सफल सयमी एक दिन मृत्युजय बनता ही है।

मृत्युजय बनने का मार्ग

ससार के देव-दानव-मानव आदि प्राणियो पर मृत्युराज का आतक है। ऐसा कौन है, जिस पर यम का शासन न हो? ऐसे अद्भुत पराक्रम वाले यम को पछाडकर अपने प्रकृति सिद्ध अधिकार अमृतत्त्व को प्राप्त करने की श्रेष्ठ कला जिनेन्द्र के शासन मे बताई गई है। अहिंसा की पूर्णता जब जीवन मे प्रतिष्ठित हो जाती है, तब यह प्राणी अमृतत्त्व का अधिकारी बनता है। सुव्यवस्थित, सुसम्बद्ध तथा निर्दोष रूप से अहिंसा का प्रतिपादन तथा प्रतिपालन अनेकान्त शासन मे ही हुआ है। इससे अमृतत्व की उपलब्धि का एक मात्र उपाय जिनेन्द्रदेव की वीतराग देशना का अनुकरण करना है। एकान्तवादी की अमृतत्व की कल्पना विषपान द्वारा नीरोगता पाने सदृश विवेक शून्य है।

जैन शास्त्र कहते हैं कि मृत्यु विजेता बनने के लिए मुमुक्षु को मृत्यु के भय का परित्याग कर उसे मित्र सदृश मानना चाहिए। इसी मर्म को हृदयस्थ करने के कारण आचार्य शातिसागर महाराज ने अपने जीवन की सध्या वेला पर समाधिपूर्वक-शान्त भाव सहित प्राणो का परित्याग करके रत्नत्रय धर्म की रक्षा का सुदृढ सकल्प किया था। वे मृत्यु को उपकारी मित्र सोचते थे, "मृत्यु मित्र उपकारी मेरो"।

आगमोक्त आचरण

उन्होंने जब भी जल लिया था, तब दिगम्बर मुनि की आहार ग्रहण करने की विधिपूर्वक ही उसे ग्रहण किया था। खड़े होकर, दूसरे का आश्रय न ले, अपने हाथ की अंजुलियों द्वारा थोड़ासा जलमात्र लिया था। चार सितम्बर को उक्त स्थिति में इन्होंने चार छह अंजुली जल लिया था, परन्तु बीस दिन से अनाहार शरीर को खड़े रखकर जल लेने की क्षमता भी उस देह में नहीं रही थी। वास्तव में तो चौरासी वर्ष के वृद्ध तपस्वी के शरीर द्वारा ऐसी साधना इतिहास की दृष्टि से भी लोकोत्तर मानी जायगी।

आत्मबल का प्रभाव

शरीररूपी गाड़ी तो पूर्णतः शक्तिशून्य हो चुकी थी; केवल आत्मा का बल शरीर को खींच रहा था। यह आत्मा का ही बल था, जो मेरी प्रार्थना पर सल्लेखना के

२६वे दिन आठ सितम्बर को सायकाल के समय उन साधुराज ने २२ मिनट पर्यन्त लोककल्याण के लिए अपना अमर सन्देश दिया था, जिससे विश्व के प्रत्येक शातिप्रेमी को प्रकाश प्राप्त होता है।

चिन्तापूर्ण शरीर स्थिति

ता १३ सितम्बर को सल्लेखना का ३१ वॉ दिन था। उस दिन गुरुदेव की शरीर-स्थिति बहुत चिन्ताजनक हो गई और ऐसा लगने लगा कि अब इस आध्यात्मिक सूर्य के अस्तगत होने मे तनिक भी देर नहीं है। यह सूर्य अव क्षितिज को स्पर्श कर चुका है। भूतल पर से उसका दर्शन लोगो को नहीं होता, हॉ शैलशिखर से उस सूर्य की कुछ-कुछ ज्योति दिखाई पड रही है। उस समय महाराज की स्थिरता अद्भुत थी। उनकी सारी ही बातें अद्भुत रही हैं। जितने काम उस विभूति के द्वारा हुए वे विश्व को चकित ही तो करते थे।

ता १३ को महाराज का दर्शन दुर्लभ बन गया। हजारों यात्री आए थे, किन्तु उनकी शरीर की स्थिति को देखकर जन-साधारण को दर्शन का लाभ मिलना असभव दिखने लगा। उस दिन बाहर से आगत टेलीफोनो के उत्तर में हमने यह समाचार भेजा था - "महाराज की प्रकृति अत्यन्त क्षीण है। दर्शन असम्भव लगता है। नाडी कमजोर है। भविष्य अनिश्चित है। आसपास की पचायतो को तार या फोन से सूचना दे दीजिये, जिससे दर्शनार्थी लोग यहाँ आकर निराश न हो।" अन्य लोगो ने भी आसपास समाचार भेज दिए कि अव यह धर्म का सूर्य शीघ्र ही लोकान्तर को प्रयाण करने को है। जैसे-जैसे समय बीतता था, वैसे-वैसे दूर-दूर के लोग अहिंसा के श्रेष्ठ आराधक के दर्शनार्थ आ रहे थे। बहुभाग तो ऐसे लोगों का था, जिनके मन मे दर्शन के प्रति अवर्णनीय ममता थी। कारण, उन्होंने जीवन में एक बार भी इन लोकोत्तर साधुराज की प्रत्यक्ष वन्दना न की थी। उस समय धार्मिक जनता मे अपार चिन्ता बढ रही थी।

अन्तिम दर्शन

कुछ बेचारे तो दु खी हृदय से लौट गये और कुछ लोग इस आशा से कि शायद आगे दर्शन मिल जाँय, ठहरे। अन्त मे सत्रह सितम्बर को सुबह महाराज के दर्शन सबको मिलेंगे, ऐसी सूचना ता १६ की रात्रि को लोगो को मिली। इस सम्बन्ध में कोल्हापुर के भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी ने महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया था, जिसके फलस्वरूप दर्शन मे अन्तराय बनने वाले व्यक्तियो को सद्बुद्धि प्राप्त हुई। बडे व्यवस्थित ढङ्ग से तथा शातिपूर्वक

एक-एक व्यक्ति की पंक्ति बनाकर लोगो ने आचार्यश्री का दर्शन किया। महाराज तो आत्मध्यान मे निमग्न रहते थे। वास्तव मे ऐसा दिखता था मानो वे लेटे-लेटे सामायिक कर रहे हो। बात यथार्थ मे भी यही थी।

पीठ का दर्शन

जब मै पर्वत पर पहुँचा, तब महाराज करवट बदल चुके थे, इससे उनकी पीठ ही दिखाई पडी। मैने सोचा - "सचमुच मे अब हमे महाराज की पीठ ही तो दिखेगी। उन्होने अपना मुख परलोक की ओर कर लिया है। उनकी दृष्टि आत्मा की ओर हो गई है। इस जगत् की ओर उन्होने पीठ कर ली है।" पर्वत से लौटकर नीचे आए लोगो को बडा सन्तोष हो गया कि जिस दर्शन के लिए वे हजारो मील से आए, वह कामना पूर्ण हो गई। कई लोग दूर-दूर से पैदल भी आए। आने वालो मे अजैन भी थे। सब को दर्शन मिल गए, इससे लोगो के मन मे सतोष था, किन्तु रह-रहकर याद आती थी कि यदि ऐसी व्यवस्था पहले हो जाती, तो निराश लौटे लोगो की भी कामना पूर्ण हो सकती थी। वास्तव मे **अतराय कर्म का उदय आने पर समझदार व्यक्तियो का विवेक भी साथ नही देता और अनुकूल सामग्री भी प्रतिकूलता धारण करने लगती है।**

मुझे आशा नहीं थी कि अब पर्वत पर पुन गुरुदेव के पास पहुँचने का सौभाग्य मिलेगा। मै तो किसी-किसी भाई से कहता था - "गुरुदेव तो हृदय मे विराजमान है, वे सदा विराजमान रहेगे। उनके भौतिक शरीर के दर्शन न हुए तो क्या? मेरे मनोमदिर मे तो उनके चरण सदा विद्यमान है। उनका दर्शन तो सर्वदा हुआ ही करेगा।"

कुछ समय के पश्चात् मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक व्यक्ति मेरे पास आया और उसने कहा कि पर्वत पर आपको बुलाया गया है।

परलोक यात्रा के पूर्व

मै पैतीसवे दिन पर्वत पर लगभग तीन बजे पहुँचा और महाराज की कुटी मे गया। वहाँ मुझे उन क्षपकराज के अत्यन्त निकट लगभग दो घटे रहने का अपूर्व अवसर मिला। वे चुपचाप लेटे थे, कभी-कभी हाथो का सचालन हो जाता था। अखण्ड सन्नाटा कुटी मे रहता था। महाराज की श्रेष्ठ समाधि निर्विघ्न हो, उस उद्देश्य से मै भगवान की जाप करता हुआ, उनके शरीर को देखता था।

मेरी विचारधारा

मन मे विविध प्रकार के विचार आ रहे थे। मै सोचता था - "धन्य है ये

महापुरुष, धन्य है इनकी पवित्र श्रद्धा, धन्य हे इनकी लोकोत्तर तपस्या।'' मुझे तो ऐसा लगा कि मै जीवित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के समीप बेठा हूँ। शरीर मात्र भी परिग्रह से पृथक्, रत्नत्रय की ज्योति से समलकृत वह आत्मा ''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि'' रूप सूत्राश का स्मरण कराती थी।

बार-बार मन मे यह विचार आता था कि इस क्षीण शरीर मे कितनी बलवान आत्मा है। वह मृत्यु से अलौकिक युद्ध कर रही है। वह कर्मो की निर्जरा कर रही है। इस आत्मा की दर्शन-विशुद्धता अलौकिक है। महाराज का सशक्त शरीर तो और भी दिन रहता, किन्तु जिनाज्ञानुसार इन्होने अमर सल्लेखना ली। छोटे-छोटे जीवो के प्राण-रक्षण की प्रतिज्ञा रूप प्राणी-सयम की ये सचमुच मे प्राण-पण से रक्षा कर रहे थे। ऐसी ही रत्नत्रय से समलकृत पराक्रमी आत्मा गणधर, तीर्थकर आदि की आध्यात्मिक पदवी को प्राप्त करती है।

महाकवि टेनीसन ने लिखा है -

Self-reverence, Self-knowledge Self-Control,
These three alone lead life to Sovereign power

-आत्म-श्रद्धा, आत्मवोध तथा आत्म-सयम ये तीनो ही जीवन को श्रेष्ठ शक्ति प्रदान करते है। परावलम्बन का त्यागकर वे पूर्णतया स्वाश्रयी हो गये थे। वे सच्चे आत्मयोगी थे।

महाकवि के उपर्युक्त वाक्य महाराज के जीवन मे मूर्तिरूप हो गए थे।

राजा महाबल की तुलना

स्वर्ग प्रयाण करने के चौदह घटे पूर्व जो मैंने दो घटे पर्यत क्षपकराज की शरीर स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण किया था, उसकी तुलना महापुराण मे वर्णित महाबल राजा की बाईस दिन पर्यत चलने वाली समाधि से की जा सकती है। पचम काल मे महान् बल युक्त शरीर सम्पन्न ये साधुराज भी तो महाबल थे। अग्नि मे जैसे वनस्पति भी जल जाती है, उसीप्रकार तपोग्नि मे महाराज का शरीर भी दग्ध सदृश हो गया था। महाबल राजा का जीव दसवें भव मे ऋषभनाथ तीर्थकर हुआ है। महाबल राजा ने स्वकृत और परकृत दोनो प्रकार की परिचर्या से रहित श्रेष्ठ प्रायोपगमन सन्यास मरण का नियम लिया था।

महापुराण का चित्रण

आचार्य महाराज ने इगिनी-मरण लिया था, उसमे दूसरे के द्वारा अपने शरीर

की परिचर्या और सेवा का परित्याग किया जाता है। स्वय शरीर की सेवा का त्याग नहीं होता। महाकवि जिनसेन ने महावल की मानसिक ओर शारीरिक अवस्था का जो चित्रण किया था, वही रूप इन साधुराज के विपय मे भी था। आचार्य लिखते हैं - "कठिन तपस्या करनेवाले महावल महाराज का शरीर तो कृश हो गया था, परन्तु पच परमेष्ठियों के स्मरण के कारण उनके भावो की विशुद्धि बढ रही थी। निरन्तर उपवास करने के कारण उन महाबल के शरीर मे शिथिलता अवश्य आ गई थी, किन्तु ग्रहण की गई प्रतिज्ञा में रचमात्र भी शिथिलता नहीं आई थी। सो ठीक है, क्योंकि **प्रतिज्ञा में शिथिलता नहीं करना ही महापुरुषो का व्रत है**। रक्त, मास आदि के क्षययुक्त तथा रसरहित शरीर शरदकालीन मेघो के समान क्षीण हो गया था। उस समय वह राजा देवों के समान रक्त, मासादि रहित शरीर को धारण कर रहा था। राजा महाबल ने मरण का प्रारभ करने वाले व्रत धारण किए है, यह देखकर उसके दोनो नेत्र मानो शोक से ही कहीं जा छिपे थे। अर्थात् नेत्र भीतर घुस गए थे। वे पहले के विलासो से विरत हो गए थे। महाबल के दोनों गालो के रक्त, मास, चमडा आदि सब सूख गए थे, तथापि उन्होंने अपनी अविनाशिनी कान्ति का परित्याग नहीं किया था।"

ऐसी ही स्थिति हमने महाराज शातिसागरजी के शरीर की देखी थी। शरीर की क्षीणता का तो क्या वर्णन किया जा सकता है? अस्थिपजर मात्र शेष था। दीप्ति अपूर्व थी। रत्नत्रय की अतरग दीप्ति वृद्धिगत हो रही थी। इसका ही सभवत प्रभाव शरीर पर प्रगट हो रहा था।

शरीर की अवस्था

महाबल राजा का वर्णन करते हुए आचार्य लिखते है - "समाधि-मरण ग्रहण के पूर्व जो कधे अत्यन्त स्थूल थे तथा बाहु-बन्ध की रगड से अत्यन्त कठोर थे उस समय वे अतिशय कोमलता को प्राप्त हो गए थे। उसका उदर कुछ भीतर की ओर झुक गया था और त्रिवली भी नष्ट हो गई थी, इसलिए ऐसा जान पडता था, मानो पवन के न चलने से तरग रहित सूखता हुआ सरोवर ही हो। जिस प्रकार अग्नि मे तपाया हुआ सुवर्ण-पाषाण अत्यन्त शुद्धि को धारण करता हुआ, अधिक प्रकाशमान होने लगता है, उसी प्रकार वह महाबल भी तप रूपी अग्नि से तृप्त हो अत्यन्त शुद्धि को धारण करता हुआ अधिक प्रकाशमान हो रहा था।"

"महाबल राजा असह्य शरीर के सताप को लीला मात्र मे ही सहन कर लेता था तथा कभी किसी विपत्ति से पराजित नहीं होता था। इससे उसके साथ युद्ध करते

समय परीषह भी पराजित हुए थे। परीषह उसे अपने कर्तव्य मार्ग से च्युत नहीं कर सके थे।" आचार्य जिनसेन लिखते है -

त्वगस्थीभूतदेहोपि यद्व्यजेष्ट परीषहान्।
स्व-समाधि-बलाद् व्यक्तं स तदासीन्महाबलः ॥५-२४४॥

-यद्यपि उसके शरीर मे चमडा तथा हड्डी मात्र शेष बचे थे तथापि उस महाबल ने आत्मा की समाधि के बल से अनेक परीषहों को जीत लिया था, इस कारण उस समय यह यथार्थ मे "महाबल सिद्ध हुआ था।"

अपूर्व समाधि

यहाँ आचार्य महाराज की भी यही स्थिति थी। महाबल राजा ने बाईस दिन पर्यन्त सल्लेखना की थी, आचार्य महाराज की सल्लेखना तो छत्तीस दिन तक रही। मै उनके समीप बैठा था, वह पैतीसवाँ दिन था। हीन सहनन को धारण करने वाले व्यक्ति का यह निर्मलतापूर्वक स्वीकृत समाधिमरण युग-युग तक अद्वितीय माना जायगा। आचार्य महाराज का मन तो सिद्ध भगवान के चरणो का विशेष रूप से अनुरागी था। वह सिद्धालय मे जाकर अनन्त-सिद्धो के साथ अपने स्वरूप में निमग्न होता था।

महत्त्वपूर्ण चित्रण

महाबल के विषय में महाकवि जिनसेन ने यह महत्त्वपूर्ण कथन किया है -

मूर्ध्नि लोकोत्तमान् सिद्धान् हृदयेऽर्हतः।
शिरः कवचमस्त्रं च स चक्रे साधुभिस्त्रिभिः ॥५-२४५॥

-उसने अपने मस्तक पर लोकोत्तम सिद्ध परमेष्ठी को, हृदय मे अर्हन्त को विराजमान किया था। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु इन तीन परमेष्ठियों के ध्यान रूपी टोप, कवच तथा शस्त्र धारण किए थे।

चक्षुषी परमात्मानं अद्राष्टामस्य योगत.।
अश्रौष्टां परम मंत्र श्रोत्रे जिह्वा तमापठत्॥५-२४६॥

-ध्यान के द्वारा उसके दोनो नेत्र केवल परमात्मा का ही दर्शन करते थे, कान परममत्र को ही सुनते थे और जीभ उसी महामन्त्र का पाठ करती थी।

क्षपकराज की श्रेष्ठ अवस्था

आचार्य महाराज के समीप अखड शाति थी, जो सम्भवत उन शाति के सागर की मानसिक स्थिति का अनुसरण करती थी। उनके पास कोई भी शब्दोच्चार नहीं हो रहा था। शरीर चेष्टारहित था। श्वासोच्छ्वास के गमनागमन कृत देह मे परिवर्तन दिख रहा था। यदि यह चिह्न शेष न रहता, तो देह को चैतन्य शून्य भी कहा जा सकता था। प्रतीत होता था कि वे म्यान से जैसे तलवार भिन्न रहती है, उसी प्रकार शरीर से पृथक् अपनी आत्मा के चिन्तवन मे निमग्न थे। उस आत्म-समाधि मे उनको जो आनन्द की उपलब्धि हो रही थी, उसकी कल्पना आर्तध्यान, रौद्रध्यान के जाल मे फँसा हुआ गृहस्थ क्या कर सकता है? महान् कुशल वीतराग योगीजन ही उस परमामृत की मधुरता को समझते हैं। जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति सूर्य के प्रकाश के विषय मे कल्पना नहीं कर सकता, उसी प्रकार मोहान्ध गृहस्थ भी महाराज की अन्तरङ्ग अवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। बाह्य सामग्री से यह अनुमान होता था कि महाराज उत्कृष्ट योग-साधना में सलग्न हैं। घबडाहट, वेदना आदि का लेश नहीं था।

दुर्भाग्य की बात

लगभग दो घण्टे पश्चात् मै बाहर गया। महाराज की समस्त स्थिति बार-बार मन के आगे घूमती रहती थी। सोचा था, पश्चात् भी महाराज के पास जाकर स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करूँगा, किन्तु ऐसा होना असम्भव था। दुर्भाग्यवश वहाँ जो लोग प्रबन्ध कर रहे थे, वे यह सोच ही नहीं सकते थे कि ऐसे बहुमूल्य क्षणो मे आचार्य महाराज के पास कैसे लोगो को रहना चाहिए। महाराज की जीवन भर उज्ज्वल सेवा करने वाले बडे-बडे व्यक्तियो को ये मूढमति प्रहरी भीतर नहीं जाने देते थे। उस समय विचित्र कर्म-विपाक देखकर आश्चर्य होता था। मन बहुत दु खी भी होता था। भवितव्यता के विरुद्ध किसका वश चलता है।

प्रभात मे स्वर्ग प्रयाण

जैसे ३५ दिन बीते, ऐसे रात्रि भी व्यतीत हो गई। नभोमण्डल मे सूर्य का आगमन हुआ। घडी मे छह बजकर पचास मिनट हुए थे। चारित्र-चक्रवर्ती साधुराज ने स्वर्ग को प्रयाण किया।

कारण ?

यह समाचार सुनते ही मन मे विचार आया कि रात्रि को यमराज अनेक बार

आया किन्तु उसने सोचा कि इन साधुराज के जीवन में सूर्यप्रकाश के बिना अन्धकार में कभी यात्रा नहीं की, तब इस महाप्रयाण का कार्य अन्धकार में करना इनकी चिरकालीन आदत के प्रतिकूल होगा, अत. मानो यमराज रुका रहा और नभामण्डल में प्रभाकर को देखते ही उन्हें ले गया। वह दिन रविवार का था। अमृतसिद्धियोग था। १८ सितम्बर, भादो सुदी द्वितीया का दिन था। उस समय हस्त नक्षत्र था।

मैं तुरन्त पर्वत पर पहुँचा। कुटी में जाकर देखा। वहाँ आचार्य महाराज नहीं थे। चारित्र चक्रवर्ती गुरुदेव नहीं थे। आध्यात्मिकों के चूड़ामणि नहीं थे। धर्म के सूर्य नहीं थे। उनकी पावन आत्मा ने जिस शरीर में ८४ वर्ष निवास किया था, केवल वह पौद्गलिक शरीर था। वही कुटी थी। वह अमर ज्योति नहीं थी। हृदय में बड़ी वर्णनातीत वेदना हुई।

गहरी मनोवेदना

प्रत्येक के हृदय में गहरी पीडा उत्पन्न हो गई। बन्ध के मूल कारण बन्धु का यह वियोग नहीं था। अकारण बन्धु, विश्व के बन्धु आचार्य परमेष्ठी का यह चिर वियोग था। इस मनोव्यथा को कौन लिख सकता है, कह सकता है, बता सकता है। कण्ठ के रुंध जाने से रोया भी नहीं जाता था। वाणी विहीन हृदय फूट-फूटकर रोता था। आसपास की प्रकृति रोतीसी लगती थी। पर्वत का पाषाण भी रोता सा दिखता था। आज कुंथलगिरि ही नहीं, वरन् भारतवर्ष सचमुच अनाथ हो गया, उसके नाथ चले गए। उसके स्वच्छंद जीवन पर सयम की नाथ लगाने वाले सदा के लिए चले गए।

आँखो से अश्रु का प्रवाह बह चला। आज हमारी आत्मा के गुरु सचमुच मे यहाँ से स्वर्ग प्रयाण कर गये। शरीर की आकृति अत्यन्त सौम्य थी, शात थी। देखने पर ऐसा लगता था कि आचार्य शातिसागर महाराज गहरी समाधि में लीन हैं, किन्तु वहाँ शान्तिसागर महाराज अब नहीं थे। वह राजहंस उडकर सुरेन्द्रो का साथी बन गया था।

निधि लुट गई

समाधिमरण की सफल साधना से बडी जीवन में कोई निधि नहीं है। उस परीक्षा मे आचार्यश्री प्रथम श्रेणी मे भी प्रथम आए, इस विचार से तो मन मे सन्तोष होना था, किन्तु उस समय मन विह्वल बन गया था। जीवन से भी अधिक पूज्य और मान्य धर्म की निधि लुट गई, इस मोह तथा ममतावश नेत्रो से अश्रुधारा बह रही थी।

उनके पद्मासन शरीर को पर्वत के उन्नत स्थल पर विराजमान कर सब लोगो को दर्शन कराया गया। उस समय दर्शको को यही लगता था कि महाराज तो हमारे नेत्रो के

समक्ष साक्षात् बैठे है और पुण्य दर्शन दे रहे है। पर्वत पर साधुओ आदि ने दशभक्ति का पाठ पढा, कुछ सस्कार हुए।

बाद मे विमान मे उनकी तपोमयी देह को विराजमान किया गया। यहाँ उनका मानव शरीर काष्ठ विमान मे विराजमान किया गया था। परमार्थत महाराज की आत्मा *सयम-साधना के प्रसाद से स्वर्ग के श्रेष्ठ विमान मे विराजमान हुई होगी।*

निर्ग्रन्थ का शरीर भी मङ्गलमय

निर्ग्रन्थ साधु का प्राणरहित शरीर भी मङ्गलरूप कहा गया है, क्योकि उस शरीर के कण-कण द्वारा जीवन भर मे म अर्थात् पाप को गलानेवाले अथवा मग अर्थात् पुण्य को लाने वाले कार्य हुए। इससे उसे मङ्गलमय कहना युक्तिसङ्गत भी है। **तिलोयपण्णत्ति** मे लिखा है -

सूरिउवज्झयसाहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं ॥१-२०॥

-आचार्य, उपाध्याय तथा साधु का शरीर द्रव्यमङ्गल है।

चरणो को प्रणामांजलि

विमान स्थित आचार्य परमेष्ठी के द्रव्यमगल रूप शरीर के पास पहुँच चरणो को स्पर्श कर मैंने प्रणाम किया। चरणो मे चन्दन लगा था। चरण की लम्बी गज रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। चॉदी के पुष्प भी चरणो पर रखे दिखाई दिए। मुझे अन्य लोगो के साथ उस विमान को कन्धा देने का प्रथम अवसर दिया गया।

'ॐ सिद्धाय नम.' की उच्चध्वनि

धर्मसूर्य के अस्तगत होने से व्यथित भव्य समुदाय ॐ सिद्धाय नम ॐ सिद्धाय नम का उच्चस्वर से उच्चारण करता हुआ विमान के साथ बढता जा रहा था। थोडी देर मे विमान क्षेत्र के बाहर बनी हुई पाडुक शिला के पास लाया गया। पश्चात् पावन पर्वत की प्रदक्षिणा देता हुआ विमान पर्वत पर लाया गया।

महाराज का शरीर जब देखो, ध्यान मुद्रा मे ही लीन दिखता था। दो बजे दिन के समय पर्वत पर मानस्तम्भ के समीपवर्ती स्थान पर विमान रखा गया। वहाँ शास्त्रानुसार शरीर के अतिम सस्कार, लगभग पद्रह हजार जनता के समक्ष, कोल्हापुर जैन मठ के भट्टारक श्रीलक्ष्मीसेन स्वामी ने कराए। आचार्यश्री के पावन शरीर के पृष्ठ भाग का दूध, दही आदि के घडो से सेठ गोविन्द जी रावजी दोसी के परिवार घराने द्वारा अभिषेक हुआ।

अंतिम संस्कार

(पृष्ठ भाग का ही अभिषेक क्यो किया जाय, इस विषय मे आचार्यश्री ने पहले मुझे बताया था कि यदि सामने के भाग का भी अभिषेक कराया जाय और कदाचित् क्षपक के शरीर में सूक्ष्म रूप से प्राण रहे आवे, तो उसकी प्रतिज्ञा भग होने का प्रसग आ जायगा। (इससे पिछले भाग का ही अभिषेक करना चाहिए।))

प्रदीप्त अग्नि

अभिषेक होते ही चदन, नारियल की गरी, कपूरादि द्रव्यो से पद्मासन बैठे हुए उस शरीर को ढाँकने का कार्य शुरू हुआ। देखते-देखते आचार्यश्री का मुखमडल भर जो दृष्टिगोचर होता था कुछ क्षण बाद वह भी उस दाह्य द्रव्य मे दब गया। विशेष मत्र से परिशुद्ध की गई अग्नि के द्वारा शरीर का ४ बजे शाम को दाह सस्कार प्रारभ हुआ।[१] कपूरादि सामग्री को पाकर अग्नि को वृद्धिगत होते देर न लगी। अग्नि पवन का सहयोग पाकर सभी दिग्दिगन्त को पवित्र बना रही थी। देह का दाह सस्कार हो रहा था।

हमे भी समाधिलाभ हो

उसे देखकर लोगो के हृदय में विविध भाव उत्पन्न हो रहे थे। ज्ञानी-जन सोचते थे - हे साधुराज! जैसी तुम्हारी सफल सयम पूर्ण जीवन यात्रा हुई और श्रेष्ठ समाधि रूप अमृत तुमने प्राप्त किया, ऐसा ही जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से हमे भी अपना जन्म कृतार्थ करने का अवसर प्राप्त हो।

जीवन की स्मृति

धीरे-धीरे लोग पर्वत से नीचे उतर आए। रात्रि को लगभग ८ बजे पर्वत पर हम पुन पहुँचे। अग्नि वेग से जल रही थी। हम वहीं लगभग दो घटे बैठे। उठने का मन ही नहीं होता था। आचार्यश्री के जीवन की पुण्य घटनाओ तथा सत्सगो की बार-बार याद आती थी। मनमे गहरी वेदना उत्पन्न होती थी कि इस वर्ष का (सन् १९५५ का) पर्यूषण पर्व इन महामानव के समीप बिताने का मौका ही न आ पाया। अग्नि की लपटे मेरी ओर आती थीं। मैं उनको देखकर चकित था तथा विविध विचारो मे निमग्न हो जाता था।

---

१ आचार्य महाराज के शरीर को भस्मीभूत करने में इस प्रकार सामग्री लगी थी - पच्चीस मन चदन, डेढ मन घी, तीस मन नारियल तथा तीन बोरा कपूर आदि।
गाधी जी के शरीरदाह मे पन्द्रह मन चदन, दो मन धूप, चार मन घी, एक मन नारियल तथा पन्द्रह सेर कपूर लगा था।

मात्वना के विचार

अब महाराज के दर्शन और मत्मग का मौभाग्य मदा के लिए ममाप्त हो गया। इम कल्पना मे अत करण मे अमह्य पीडा होती थी। उम ममय महापुगण का यह कथन याद आता था कि आदिनाथ भगवान के मोक्ष होने पर तत्त्वज्ञानी भरत शोक-विह्वल हो रहे थे। उनको दु खी देखकर वृषभमेन गणधर ने मात्वना देते हुए कहा था - "अरे भरत! निर्वाण-कल्याणक होना आनद की वात है। उममे शोक की कल्पना ठीक नहीं है, "तोषे विषाद कुत ।' पहले उनका शरीर नेत्रगोचर होता था, अव वह भीतरी ज्ञानचक्षुओं द्वारा देखा जा मकता है। तुम उनका मदा दर्शन कर मकते हो।

> प्रागक्षिगोचर. मप्रति चेतमि वर्तते भगवान्।
> तत्र क शोक. पश्यैनं तत्र मर्वदा॥

इसी प्रकार गुरुदेव की ३६ दिन की लम्बी ममाधि श्रेष्ठ रीति मे पूर्ण हो गई। यह महान् सतोष की वात माननी चाहिए। शोक की वात सोचना अयोग्य है। ऐसे विचार आने पर मनोवेदना कम होती थी।

शिष्यो को मंदेश

स्वर्गयात्रा के पूर्व आचार्यश्री ने अपने प्रमुख शिष्यो को यह सदेशा दिया था कि हमारे जाने पर शोक मत करना और आर्तध्यान नहीं करना।

आचार्य महाराज का अमर मदेश तो हमे निर्वाण-प्राप्ति के पूर्व तक का कर्तव्य-पथ बता गया है। उन्होने समाज के लिए जो हितकारी वात कही थी, वह प्रत्येक भव्य के काम की वस्तु है। उमका मूल्य त्रिलोक भर के पदार्थ नहीं है। उसके द्वारा सभी श्रेष्ठ ऋद्धि, सिद्धि, वैभव आदि मिलते हैं। वे वाक्य थे - "सम्यक्त्व धारण करो।" वैसे उनका सारा जीवन ही हमारे लिए, आपके लिए, विश्व के लिए सदेश है।

अमर ज्योति के विषय मे आगम

आचार्यश्री की आत्मा का क्या हुआ यह वात भौतिक नेत्रो से अगोचर होती हुई भी आगम चक्षु के द्वारा देखी जा सकती है। जिनवाणी का कथन है कि इस शरीर को छोडकर जीव तीनसमय के भीतर दूसरे स्थान मे पहुँचकर नवीन शरीर निर्माण के योग्य मामग्री को ग्रहण करने लगता है।

गोम्मटसार मे लिखा है - "जिसने देवायु का बध किया है, वही जीव अणुव्रत

तथा महाव्रत को धारण करता है।''[१] अत· महाव्रती आचार्य महाराज का स्वर्ग मे पहुँचना पूर्णतया सुसगत बात है। तिलोयपण्णत्ति के निम्नलिखित कथन को ध्यान पूर्वक पढने से यह विचार चित्त मे उत्पन्न होता है कि सभवत आचार्य महाराज देवताओ के ऋषि लौकान्तिक हुए होगे। उन्होने निर्दोष रीति से जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन वैराग्य रस से भरा हुआ था।

लौकान्तिक कौन होता है ?

तिलोयपण्णत्ति का कथन इस प्रकार है -

- जो सम्यग्दृष्टि श्रमण, स्तुति और निन्दा मे, सुख और दु ख मे, बधु और रिपु मे समान है, वही लौकान्तिक होता है।

- जो देह के विषय मे निरपेक्ष, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निरारभ और निर्दोष है, वे ही श्रेष्ठ श्रमण लौकान्तिक होते है।

- जो श्रमण सयोग और वियोग मे, लाभ और अलाभ में तथा जीवित और मरण मे समदृष्टि होते हैं, वे ही लौकान्तिक होते हैं।

- सयम, समिति, ध्यान एव समाधि के विषय मे जो निरन्तर उद्यत रहते हैं तथा तीव्र तपश्चरण धारण करते है, वे श्रमण लौकान्तिक होते है।

- पच महाव्रत सहित पच-समितियो का चिरकाल तक आचरण करने वाले और पॉचो इन्द्रिय-विषयो से विरक्त ऋषि लौकान्तिक होते है।

(तिलोयपण्णत्ति गाथा ६४७ से ६५१ तक - आठवॉ अधिकार पृ ८६३ भाग २)

अनुमान

आचार्यश्री के चरणों में बहुत समय व्यतीत करने के कारण तथा उनकी सर्व प्रकार की चेष्टाओं को सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करने के फलस्वरूप ऐसा मानना उचित प्रतीत होता है कि वे लौकान्तिक देव हुए होगे। वे अलौकिक पुरुषरत्न थे, यह उनकी जीवनी से ज्ञात होता है। माता के उदर मे जब ये महापुरुष आए थे, तब सत्यवती माता के हृदय मे १०८ सहस्रदल युक्त कमलों से जिनेन्द्र भगवान की वैभव सहित पूजा करने की मनोकामना उत्पन्न हुई थी। आज के जडवाद तथा विषयलोलुपता के युग मे उन्होने

१ चित्तारिवि खेत्ताइ आउगबधेण होदि सम्मत्त।
अणुवद-महव्वदाइ ण लहइ देवाउग मुत्त॥ - गोम्मटसार की ६५१॥

रत्नत्रय धर्म की प्रभावना की है और वर्धमान भगवान के शासन को वर्धमान बनाया है, उससे तो ये भाविजिनेश्वर या जिनेश्वर के नन्दन सदृश लगते रहे हैं। हमारी तो यह धारणा है कि लौकान्तिक देवर्षि की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् ये धर्म तीर्थंकर होंगे। कुन्दकुन्द ऋषिराज की वाणी महत्त्वपूर्ण है -

> अज्जवि तिरयण सुद्धा अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं।
> लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदि जंति॥
>
> - मोक्ष पाहुड ७७

आज के पचम काल में रत्नत्रय की निर्दोष आराधना करने वाली आत्माएँ इन्द्रपद अथवा लौकांतिक देव पना पाकर वहां से चयकर निर्वाण को पाती हैं।

भट्टारक जिनसेन स्वामी का स्वप्न

कोल्हापुर के भट्टारक जिनसेनजी को ७-७-५३ को प्रभात में स्वप्न आया था कि आचार्य शांतिसागर महाराज तीसरे भव में तीर्थंकर होंगे। भट्टारक महाराज की बात सुनकर आचार्य महाराज ने भी कहा था कि "१२ वर्षपूर्व हमें भी ऐसा ही स्वप्न आया था कि तुम पुष्करार्ध द्वीप में तीर्थंकर पद धारण करोगे।"

जैनागम में वर्णित अष्टांग महानिमित्त ज्ञान में स्वप्न ज्ञान का समावेश है। स्वप्न द्वारा भविष्य का बोध होता है। जो स्वप्न वातादि विकारों से उद्भूत होते हैं, उनकी सत्यता सदा शंकास्पद रहती है। जिनेन्द्र की जननी गर्भ में तीर्थंकर के अवतरण के पूर्व मंगलमय सोलह स्वप्न देखती है। पाश्चात्य लोग भी इस विषय को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। १४ अप्रैल सन् १८६५ को अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहमलिंकन ने उच्च सरकारी पदाधिकारियों की बैठक बुलाकर उनसे कहा कि उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण खबर अवश्य ही सुनने को मिलेगी। उन्होंने बताया कि उन्होंने स्वप्न देखा कि वे ऐसी नाव में बैठे हैं, जिसमें पतवार नहीं है। इस स्वप्न की बात बताने के ५ घंटे बाद ही "जान विल्डीज बूथ की बन्दूक से उनकी हत्या हो गई।"(नवभारत टाइम्स बम्बई, २० नवम्बर १९५५ पृ ८)

संभावित शंका

यह शंका की जा सकती है कि केवली श्रुतकेवली के चरण-मूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ होता है, तब आज उक्त दोनों विभूतियों के अभाव में किस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकेगा?

समाधान

यथार्थ मे शका उचित है, किन्तु इस भव मे तीर्थकर प्रकृति का वध न करके लौकान्तिक पदवी को छोडकर पुन नर पदवी धारण करके तो तीर्थकर प्रकृति का वध हो सकता है। विदेह मे तीर्थकर पचकल्याणक वाले होते है, तीन कल्याणक वाले भी होते है, दो कल्याणक वाले भी होते हैं। गृहस्थावस्था मे यदि तीर्थंकर प्रकृति का वध किसी चरम शरीरी आत्मा ने किया, तो उनके तीन कल्याणक होगे। यदि निर्ग्रथ ने वध किया, तो ज्ञान और मोक्ष रूप दो ही, कल्याणक हो सकेंगे।

इस अपेक्षा से सोचा जाय, तो वे सभी भाग्यशाली हो जाते है, जिन्होने ऐसी प्रवर्धमान पुण्यशाली आत्मा के दर्शनादि का लाभ लिया हो। सवसे वडा भाग्य तो उनका है, जो गुरुदेव के उपदेशानुसार पुण्य जीवन व्यतीत करते है।

देव पर्याय की कथा

औदारिक शरीर परित्याग के अतर्मुहूर्त के भीतर ही उनका वेक्रियिक शरीर परिपूर्ण हो गया और वे उपपाद शय्या मे उठ गए। लगभग ७ वजकर ३५ मिनिट पर उनका दिव्य शरीर परिपूर्ण हो गया। उस समय उन्होंने विचार किया होगा कि यह आनद और वैभव की सामग्री यहाँ केसे आ गई? अवधिज्ञान से उनको ज्ञात हुआ होगा कि मैंने कुथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर यम सल्लेखना पूर्वक अपने शरीर का सयम सहित त्याग किया, उससे मुझे यह देव पर्याय प्राप्त हुई है। इस ज्ञान के पश्चात् वे आनदपूर्ण वाद्यध्वनि तथा जयघोप सुनते हुए सरोवर मे स्नान करते हैं और आनदपूर्वक जिन भगवान की अकृत्रिम रत्नमय प्रतिमाओ के दर्शन-पूजन अभिषेकादि मे मग्न हो जाते हैं। यह वात स्मरणीय है कि जिन प्रतिमा को स्थापना जिन कहते हैं। समवसरण के भगवान भाव जिन है। स्थापना जिन का अभिषेक होता है। आगम मे कहा है -

णाम जिणा जिणणामा ठवणजिणा तहय ताह पडिमाओ।
दव्वजिणा जिणजीवा भावजिणा समवसरणत्था ॥

- अष्टपाहुड टीका पृ ९५

जिनेन्द्र का नाम नामजिन, उनकी प्रतिमा स्थापना जिन, जिनेन्द्र होने वाले द्रव्य जिन तथा समवशरणस्थ भाव जिन हैं।

आगम का कथन

तिलोयपण्णत्ति मे लिखा है कि "वे देव तीन छत्र, सिहासन, भामडल और

चामरादि से सुन्दर जिन प्रतिमाओ के आगे जय जय शब्द को करते है। उक्त देव भक्तियुक्त मन से सहित होकर सैकडो स्तुतियो के द्वारा जिनेन्द्र प्रतिमाओ की स्तुति करके पश्चात् उनका अभिषेक प्रारभ करते हैं।''

(आठवॉ अधिकार भाग २-५८२ से ५८४ तक)

स्वय अभिषेक करना

''उक्त देव क्षीर समुद्र के जल से पूर्ण एक हजार आठ सुवर्ण कलशो के द्वारा महाविभूति के साथ जिनाभिषेक करते हैं।'' अब तक महाराज प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक देखा करते थे। आज वे सुरराज बनकर रत्नबिम्बो का स्वय अभिषेक कर रहे होगे, ऐसा प्रतीत होता था। तिलोयपण्णत्ति के ये शब्द भी महत्त्वपूर्ण हैं –

''सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षय के निमित्त सदा मन मे अतिशय भक्ति से सहित होकर जिनेन्द्रो की पूजा करते है।'' ५८८ ॥ यहॉ ''कम्मक्खवणनिमित्त'' शब्द ध्यान देने योग्य है।

''मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवो के सबोधन से ये कुलदेवता है, ऐसा मानकर नित्य जिनेन्द्र प्रतिमाओ की पूजा करते है।''५८९ ॥

आगम वाणी

महापुराण मे कहा है - राजा महाबल की समाधि के उपरान्त ललिताग देव रूप मे उत्पत्ति हुई थी। इस कथन के प्रकाश में आचार्य महाराज के विषय में हम अपने मनोमदिर मे कल्पना का भव्य चित्र खींच सकते हैं - ''श्रीप्रभ विमान मे उपपाद शय्या पर उस देव का जन्म हुआ। मेघरहित आकाश मे श्वेत बादलो सहित बिजली की तरह उपपाद शय्या पर शीघ्र ही वैक्रियिक शरीर शोभायमान होने लगा। अतर्मुहूर्त मे ही यौवन-पूर्ण, सुलक्षण-सपन्न तरुण के समान वे उपपाद शय्या से उठे। दैदीप्यमान कुडल, केयूर, मुकुट, बाजूबद आदि आभूषण पहिने हुए, माला सहित, उत्तम वस्त्रो को धारण कर वे शोभायमान हो रहे थे। उनके नेत्र टिमकार रहित थे। उस समय कल्पवृक्षो द्वारा पुष्पो की स्वयमेव वर्षा हो रही थी। दुदुभि ध्वनि हो रही थी। सुर समुदाय आकर प्रणाम कर रहा था। उस समय वह देव चकित हो सोचता है - मैं कौन हूॅ, ये सब कौन हैं? मैं कहॉ से आया? यह शय्या तल किसका है?'' तत्काल भवप्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। उससे ज्ञात होता है -

अये तप: फलं दिव्यम् अयं स्वर्गो महाद्युति ।
इमे देवास्समुत्सर्पद-देहोद्योता प्रणामिन ।।५-२६७ ।।

अहो! यह हमारे तप का मनोहर फल है। यह दैदीप्यमान स्थल स्वर्ग है। ये प्रणाम करते हुए दैदीप्यमान शरीर वाले देवता लोग है।

इतने मे देवतागण स्तुति करते हुए कहते है -

प्रतीच्छ प्रथमं नाथ सज्ज मज्जन-मगलम्।
ततः पूजा जिनेन्द्राणां कुरु पुण्यानुबधिनीम्।।५-२७३।।

-हे नाथ! स्नान की सामग्री तैयार है। पहले मगल-स्नान कीजिए। इसके अनतर पुण्यानुबधिनी जिनेन्द्र भगवान की पूजा कीजिए।

इसी प्रकार का परिणमन उस तपस्वी जीव का देव पर्याय मे हुआ, जिसका छह बजकर पचास मिनिट पर १८ सितम्बर सन् १९५५ के प्रभात मे कुथलगिरि पर देहान्त हुआ था, जिसकी आचार्य शातिसागर महाराज कहकर लोग पूजा करते थे।

इस जिनेन्द्र-पूजा के पश्चात् वे अपने प्रासाद मे पहुँचकर सिहासन पर शोभायमान हुए होगे।[१]

यह भी सभव है कि वे शीघ्र ही देवपद-प्राप्ति के उपरान्त पूर्व सस्कारो की प्रेरणा से विदेह क्षेत्र मे गए हों और वहाँ देवों के कोठो मे बैठकर देवाधिदेव सीमधर भगवान के समवसरण में उन्होंने दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया हो। अब वे धर्मवृक्ष के अमृत तुल्य मधुर फलो का रसास्वादन कर रहे हैं। हमारी भौतिक दृष्टि से आचार्य महाराज नहीं हैं, उनका शरीर अग्नि मे भस्म हो गया, किन्तु आगम के प्रकाश से विदित होता है कि उनकी आत्मा अमर लोक मे है और आगे वे तपश्चर्या द्वारा 'जरामरणोज्झित' सिद्ध भगवान बनेगे।

स्वर्ग का आनन्द

आचार्यश्री पहले लोगो को व्रत प्रदान करते समय कभी-कभी कहते थे - "इससे तुमको स्वर्ग में अवर्णनीय आनन्द मिलेगा। सभी इन्द्रियो को सुखप्रद सामग्री

---

१ आणदतूर-जयथुदिरवेण जम्म वि बुज्झ स पत्त।
दट्ठूण सपरिवार गयजम्म ओहिणा णत्वा ।।५५१।।
धम्म पससिदूण णहादूण दहे भिसेयलकार।
लद्धा जिणाभिसेय पूज कुव्वति सद्दिट्ठी ।।५५२।।

-त्रिलोकसार वैमानिक लोकाधिकार।

(संचित कर्म के प्रभाव से अतिशयित वैक्रियिक रूप दिव्यबंध होने के कारण देवो के शरीर मे वर्ण, रस, गध और स्पर्श बाधा रूप नहीं होते।) ।।५६९।। (तिलोयपण्णत्ति भाग २, अध्याय ८)

इस वैक्रियिक शरीर के सम्बन्ध मे जस्टिस जुगमदर लाल जैनी बार-एट-ला के शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

The gods have Vaikriyaka body which they can change at will Milton rightly mentions this as the body of the angels in his Paradise Lost The Christian, Mohammedan and other systems of religion hold a similar view Cabalistic and Mystic systems of ancient Greece, Egypt, Assyria and Babylon also had some sort of faith in this phenomenon of changeable bodies Popular magic, even of the black kind, connected with wizard's lore and witch-craft, also recognised that men can change themselves into animals etc Fables and fictions in the East and the West, all the world over are familiar with this theory of physical trans-figuration The famous Fasana-e-ajayaba (The wonderful tale) of urdu literature richly illustrates this, as the Prince Jane-slam could change himself into monkey and back to his human form again

Thus the changeability of form is a well-known phenomenon The gods in Jainism have all a body, which they can change at will, it is their Vaikriyaka body They possess it universally like their antipodean analogues to the denizens of the nether world, the embodied mundane souls of the hell The body has no flesh, blood and bones and there are no filthy excretions from it It is very lustrous and bright It may be compared to a cloud shot with the shining glory of a rising or setting sun now looking like one living being now changing itself into another form "

The Bright ones in Jainism, page 3

आठ सागर की स्थिति वाले देवों का आहार आठ हजार वर्षों के बाद होता है। आहार के समय उनके कण्ठ मे अमृत झर जाता है, उससे उनको सर्व प्रकार की शाति और आनन्द प्राप्त होता है। इस विषय मे सर्वज्ञ भगवान ने यह बात कही है - "जो देव

जितने मागरोपम काल तक जीवित रहता है, उमके उतने ही हजार वर्षो मे आहार होता है।''
(ति प ५५२-८, ५ ८५२)

उत्तर शरीर सहित वहिर्गमन

इनका मूल शरीर स्वर्ग मे रहता हे। इनके शरीर की विक्रिया वाहर जाती है। आगम मे कहा है - ''गर्भ और जन्मादि कल्याणको मे देवो के उत्तर शरीर जाते हैं। उनके मूल शरीर सुखपूर्वक जन्मस्थानो मे चेष्टा करते है - ''जम्मणट्ठाणेसु मुह मूल-सरीराणि चेट्ठति।''
(ति प ५९५-८, ५, ८५७)

लौकान्तिको की विशेषता

अन्य देव तो आमोद, प्रमोद, क्रीडा आदि द्वारा अपना सागरो का समय पूर्ण करते हैं।

लौकान्तिको के वारे मे तिलोयपण्णत्ति मे लिखा है - ''देवर्षिनाम वाले वे देव सव देवो से अर्चनीय, भक्ति मे तल्लीन और सर्वकाल स्वाध्याय मे निमग्न रहते हैं - ''भत्तिपसत्ता सज्झायसाधीणा सव्वकालेसु'' (६४५)

त्रिलोकसार मे नेमिचद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लिखा है -

ते हीणाहियरहिया, विसयविरत्ता य देवरिसिणामा।
अणुपिक्ख दत्तचित्ता, सेससुराणच्चणिज्जाहु ॥५३९॥

- वे देवताओ के ऋषि हीनाधिकता रहित, विषयो से विरक्त, अनुप्रेक्षाओ की भावना मे लीन तथा शेष देवताओ के द्वारा वदनीय होते हैं। वे देवर्षि यही चाहा करते है कि कब उनको इस स्वर्ग के मनोज्ञ कारागार से मुक्ति मिले और वे नरपर्याय प्राप्त कर पुन अविनाशी मुक्ति की प्राप्ति के लिए तपश्चर्या के पथ मे प्रवृत्त हो।

निर्विकल्प समाधिजन्य आनद का अभाव

स्वर्ग मे सब सुख है, किन्तु वहॉ सयमानुगामिनी निर्विकल्प समाधिजन्य शान्ति नहीं है। यह बात आज शातिसागर महाराज की आत्मा के अनुभव मे आती होगी। आत्मोत्थ आनन्द की समता इद्रियजनित सुख कभी नहीं कर सकता है। एक आनन्द स्वाभाविकता की ज्योति धारण करता है और दूसरा इद्रियजनित सुख विभाव परिणतिरूप है। इस कारण सम्यग्दृष्टि लोग स्वर्ग के सुखो मे भी अनासक्त रहते हैं। पचाध्यायी मे लिखा है -

शक्रचक्रधरादीना केवल पुण्यशालिनाम्।
तृष्णाबीजं रतिस्तेषां सुखावाप्तिः कुतस्तनी ॥

-महान् पुण्यशाली इंद्र, चक्रवर्ती आदि का सुख तृष्णा का बीज है। उनके सच्चे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

भक्तो की आकांक्षा

आचार्यश्री की यमसमाधि के समय एक भक्त ने महाराज से कहा था - "आप देव, देवेन्द्र होगे। वहाँ से यहाँ कभी आकर हम लोगो को अवश्य सबोधने की कृपा कीजिए।" इस प्रलाप को सुनकर महाराज चुप रहे थे। इस काल मे स्वर्ग से कल्पवासी देव यहाँ नहीं आते हैं, ऐसा शास्त्र मे कहा गया है, अत आगम के प्रकाश मे उक्त प्रार्थना वस्तुत सारशून्य ही है।

पदचिह्न

एक बात और ध्यान देने की है कि वे अपना पावन उपदेश दे गए। अपनी जीवनी द्वारा श्रेष्ठ रत्नत्रय धर्म का पालन किस प्रकार हो सकता है, यह बता गए। बस, उनके पद-चिह्नो को देखकर जो जीव आगे बढेगा, वह शान्ति, समृद्धि, वैभव के साथ शिवपुरी का नागरिक भी बन सकेगा। ससार के दु खो से सत्रस्त भव्यात्माओ की वह वाणी चिरस्मरणीय है "बाबा नो! भीऊनका। आत्म चिंतन करो - वत्स! डर मत। आत्मा का चिंतन कर।"

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यश्री नेमिचंद्र के ये शब्द चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर महाराज सदृश उज्ज्वल आत्माओ मे सुघटित होते है -

विविह-तव-रयण-भूसा णाणसुई सीलवत्थ-सोम्मंगा।
जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छीय ॥५५५ - (त्रिलोकसार)

-जो विविध तप रत्न भूषण धारी, पवित्र ज्ञान वाले, शील रूप वस्त्र से सौम्य शरीर वाले होते है, सुरलक्ष्मी तथा सिद्धिलक्ष्मी भी उनके ही आधीन रहती है।

सल्लेखना का संक्षिप्त विवरण

आचार्य महाराज ने कुथलगिरि मे १४ अगस्त रविवार को नियम-सल्लेखना का निश्चय व्यक्त किया था। उन्होने यह सल्लेखना आठ दिन के लिए ली थी। ता १७ दिन बुधवार को उन्होने यम सल्लेखना रूप अपनी प्रतिज्ञा कर ली। उस दिन अमावस्या

थी। उसी दिन वे पहाड़ पर आ गए। वहाँ उन्होंने ता. २० अगस्त को केवल जल लिया था। ता. २३ को पुन: जल ग्रहण किया था। ता. २४ को उन्होंने जल नहीं लिया। उन्होंने ता. २५ से ता. २८ पर्यन्त चार दिन लगातार जल लिया था। ता. २८ रविवार को ब्र. भरमप्पा को क्षुल्लक दीक्षा दी। पश्चात् २९, ३०, ३१ तथा १ सितम्बर, इन चार दिनों में उन्होंने जल नहीं लिया। पश्चात २, ३ तथा ४ तारीख को उन्होंने जल लिया। वही उनका अंतिम जलग्रहण का दिन था। उन्होंने रविवार १४ अगस्त से आहार त्यागकर केवल जलग्रहण करने की छूट रखी थी। ४ सितम्बर का रविवार आया। उस दिन जल लेकर उन्होंने जल भी छोड़ दिया और एक रविवार को छोड़कर दूसरे रविवार को ८४ वर्ष से सुरक्षित शरीर को भी छोड़कर स्वर्ग को प्रयाण किया था।

मृत्यु से युद्ध की तैयारी

महाराज का जीवन बड़ा व्यवस्थित और नियमित रहा है। यम-समाधि के योग्य अपने मन को बनाने के लिए उन्होंने खूब तैयारी की थी। लोणंद में जब आचार्य महाराज फलटण आए, तब उन्होंने जीवन भर को अन्न का परित्याग किया था। कुंथलगिरि पहुँचकर उन्होंने अधिक उपवास शुरू कर दिए थे। श्रावण वदी प्रथमा से उन्होंने अवमौदर्य तप का अभ्यास प्रारंभ कर दिया था। महाराज ने एक ग्रास पर्यन्त आहार को घटा दिया। वे कहने लगे - "यदि प्रति दिन दो ग्रास भी आहार लें, तो यह शरीर बहुत दिन चलेगा। यदि केवल दूध लेंगे, तो यह शरीर वर्षों टिकेगा।"

सल्लेखना का मूल कारण

जब प्राणी संयम नहीं पाल सकता है, तब इस शरीर के रक्षण द्वारा असंयम का पोषण क्यों किया जाय? इस धारणा ने, इस पुण्य भावना ने, उन साधुराज को यम-समाधि की ओर उत्साहित किया था।

सप्ततत्त्व निरूपण का रहस्य

– प्रश्न – "भेद विज्ञान ही तो सम्यक्त्व है, अत: आत्मतत्त्व का ही विवेचन करना आचार्यों का कर्तव्य था, परन्तु अजीव आस्रव, बंधादि का विवेचन क्यों किया जाता है?"

उत्तर – आचार्यश्री से इस प्रश्न का यह समाधान प्राप्त हुआ था, 'रेत की राशि में किसी का मोती गिर गया। वह रेत के प्रत्येक कण को देखता फिरता है। समस्त वालुका का शोधन उसके लिए आवश्यक है, इसी प्रकार आत्मा का सम्यक्त्व रूप रत्न

खो गया है। उसके अन्वेषण के लिए अजीव, आस्रव, बंधादि का परिज्ञान आवश्यक है। इस कारण सप्त तत्त्वों का निरूपण सम्यक्त्वी के लिए हितकारी है।"

आत्मा का ध्यान

प्रश्न - "आप पाय कहा करते हैं - "आत्मा का ध्यान करो", किन्तु यह कार्य बडा कठिन प्रतीत होता है। मैं शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायक स्वभाव, टकोत्कीर्ण रूप हूँ, यह कथन वारवार कहते-कहते शुकवाणीवत् बन जाता है। अत कैसे आत्मा का ध्यान किया जाय?"

उत्तर - "शरीर प्रमाण आत्मा है। उसके बाहर उसका सद्भाव ज्ञात नहीं होता है। संपूर्ण देह मे आत्मा है। उसका चिंतन करो। आत्मा को बाहर मत भटकने दो। भीतर चिंतन करने मे बाहर का विकल्प दूर हो जायगा। आत्मा का निर्विकल्प चिंतन थोडे समय तक ही हो पाता है। प्रारम्भ में बाहर के पदार्थों का पता कुछ-कुछ चलता है, शब्दादि का बोध भी होता है, किन्तु पश्चात् तोप के छूटने पर भी उसका पता नहीं चलता है।" यह कथन अनुभवी ऋषिराज का है। अत महत्त्वपूर्ण है।

आत्मा की खोज सरल है

तिल में तेलवत् इस शरीर मे आत्मा व्याप्त है। अपनी आत्मा क्या अपने को नहीं मिलेगी? समुद्र में मछली की खोज कठिन है, किन्तु लोटे के पानी में वह पडी हो, तो उसे पाना सरल है, इसी प्रकार अपने शरीर में विद्यमान आत्मा की खोज भी सरल है। प्रतिदिन आत्मा का चिंतन करो। कम-से-कम दो घडी प्रमाण मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना इन नवकोटि से सावद्य दोप का त्याग करो।

आत्मध्यान से लाभ

इस ध्यान द्वारा गृहस्थ होते हुए भी तुम महान् निर्जरा करोगे। २४ घटे में आधा घटा, पन्द्रह मिनिट आत्मा का ध्यान करो। इससे असख्यात गुणी निर्जरा होती है। इसके सिवाय भगवान ने मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं कहा है।

पुरुपार्थ के लिए प्रेरक उदाहरण

महाराज ने यह उदाहरण दिया था - "एक राजा था। उसके बुढापे मे एक ही पुत्र हुआ। उसे वडे लाड-प्यार से पाला। उसने खेलकूद मे समय नष्ट कर दिया ओर कुछ भी विद्या नहीं सीखी। एक दिन राजाने दीक्षा ले ली ओर पुत्र को राजा बना दिया। अशिक्षित पुत्र राजा हो गया।

एक वार उस राज्य पर दूसरे राज्य का आक्रमण हो गया। उस समय एक पत्र ऐसा आया जिसे राजा के सिवाय दूसरे को पढने की आज्ञा नहीं थी, अत वह जरूरी पत्र इस नवीन राजा के पास लाया गया। निरक्षर होने के कारण उसे पाते ही इसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। उस समय मन का सताप दूर करने को चतुर मत्री ने इनको वाहर चलने को कहा। ये वाहर भ्रमणार्थ गए। वहाँ देखा-पानी खींचने की कोमल रस्सी से कठोर काले पाषाण मे गड्ढा हो गया है। इसी प्रकार उद्योग मे अज्ञानी पुरुष ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। जैसे नरम डोरी से कठोर श्याम पाषाण मे गड्ढा पड गया। इससे प्रेरित हो उसने विद्या का अभ्यास किया। इसी प्रकार प्रयत्न द्वारा क्या मेरी आत्मा मुझे न मिलेगी? राजा की विद्या सदृश प्रयत्नरत व्यक्ति मे आत्मा का ध्यान भी वनेगा। पुरुषार्थी ही सिद्धि पाता है।

जैसे विषयोपभोग की सामग्री हेतु गृहस्थ दिन-रात प्रयत्नरत रहता है इसी प्रकार धर्म के विषय मे भी उद्योगी रहना चाहिए। विषयोपभोगी धर्मविमुख व्यक्ति ससार-सागर में डूबता है। आचार्य कहते हैं -

जह जीवो कुणड रडं पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु।
तह जड जिणिद धम्मे तो लीलाए सुह लहदि॥

इस गाथा का हिन्दी अनवुाद इस प्रकार है -

जैसे रमणी विषय सुत ममता के आधार।
वैसा यदि जिनधर्म हो शीघ्र होय भव पार॥

पावन-स्मृति

प्रात स्मरणीय आचार्य महाराज तो स्वर्गीय निधि वन गए। अव पावन स्मृति मात्र शेष है। उनके पुण्य जीवन के सस्मरण वडे मधुर, मार्मिक तथा शान्तिदायक हैं। हमने अपने सस्मरणों के साथ अनेक धर्ममूर्ति मुनियो त्यागियो, श्रावको आदि के सस्मरणो का सकलन किया है। इन सस्मरणो के माध्यम से उन महान् तपोमूर्ति गुरुदेव के जीवन की एक झलक प्राप्त होती है। इनके द्वारा मोहमलिन मन को विशुद्धता प्राप्त होती है।

कुंथलगिरि पर्यूषण

कुथलगिरि मे आचार्य शातिसागर महाराज के चातुर्मास मे पर्यूषण पर्व पर ता

१२ सितम्बर सन् १९५३ से ता २६ सितम्बर सन् १९५३ तक रहने का पुण्य सौभाग्य मिला। उस समय आचार्यश्री ने ८३ वर्ष की वय मे पचोपवास मोनपूर्वक किए थे। इसके पूर्व मे भी दो बार पचोपवास हुए थे। करीब १८ दिन का मौन रहा था। भाद्रपद के माह भर दूध का भी त्याग था। पचरस छोडे तो चालीस वर्ष हो गए। नेमिसागर मुनिराज ने भादो भर एक उपवास एक पारणा वाला क्रम रखा। आचार्यश्री ने जन्म भर को अन्न का त्याग कर दिया था।

घोर तप का करना

प्रश्न – "महाराज! घोर तपस्या करने का क्या कारण है?"

उत्तर – "हम समाधिमरण की तैयारी कर रहे हैं। सहसा आँख की ज्योति चली गई, तो हमे उसी समय समाधि की तैयारी करनी पडेगी। कारण, उस स्थिति मे समिति नहीं बनेगी, अत जीवरक्षा का कार्य नहीं बनेगा। हम तप उतना ही करते है, जितने मे मन की शांति बनी रहे।"

निर्वाणभूमि का प्रभाव

प्रश्न – " महाराज! पॉच-पॉच उपवास करने से तो शरीर को कष्ट होता होगा?"

उत्तर – "हमें यहॉ पाँच उपवास एक उपवास सरीखे लगते हैं। यह निर्वाण-भूमि का प्रभाव है। निर्वाण-भूमि मे तपस्या का कष्ट नहीं होता है। हम तो शक्ति देखकर ही तप करते हैं।"

मौन से लाभ

प्रश्न – "महाराज! मौन व्रत से आपको क्या लाभ पहुँचता है?"

उत्तर – "मौन करने से ससार से आधा सम्बन्ध छूट सा जाता है। सैकडो लोगों के मध्य घिरे रहने पर भी ऐसा लगता है, मानो हम अपनी कुटी मे ही बैठे हो। उससे मन की शाति बहुत बढती है। मन आत्मा के ध्यान की ओर जाता है। वचनालाप मे कुछ-न-कुछ सत्य का अतिक्रमण भी होता ही है, मौन द्वारा सत्य का सरक्षण भी होता ही है। चित्तवृत्ति बाहरी पदार्थों की ओर नहीं दौडती है।"

लम्बे उपवासो के सम्बन्ध में महाराज का अनुभव

प्रश्न – "उपवास से क्या लाभ होता है? क्या उससे शरीर को त्रास नहीं होता है?"

उत्तर - "आहार का त्याग करने से शरीर को कष्ट क्यो नहीं होगा? लम्बे उपवासो के होने पर शरीर मे शिथिलता आना स्वाभाविक बात है। फिर उपवास क्यो किया जाता है, यह पूछो तो उसका उत्तर यह है कि उपवास द्वारा मोह की मन्दता होती है। उपवास करने पर शरीर नहीं चलता। जब शरीर की सुधि नहीं रहती है, तो रुपया-पैसा, बाल-बच्चो की भी चिन्ता नहीं सताती है। उस समय मोह-भाव मन्द होता है, आत्मा की शक्ति जागृत होती है। अपने शरीर की जब चिता छूटती है, तब दूसरो की क्या चिन्ता रहेगी?"

इस विषय के स्पष्टीकरणार्थ महाराज ने एक कथा सुनाई - "बन्दर का अपने बच्चे पर अधिक प्रेम रहता है। एक बार एक बॅदरिया का बच्चा मर गया, तो वह उस मृत बच्चे को छाती से चिपकाये रही। उस समय हमने देखा, कुछ बन्दरो ने जबरदस्ती उसके बच्चे को छीनकर नदी मे डाल दिया था। बन्दर को पानी मे तैरना नहीं आता है। यह हमने प्रत्यक्ष देखा है। इतना प्रेम मृत बालक पर बॅदरिया का था।"

दूसरी घटना महाराज ने बताई - "एक समय एक हौज मे पानी भरा जा रहा था। एक बॅदरिया अपने बच्चे को कन्धे पर रखकर उस हौज मे थी। जैसे-जैसे पानी बढता जाता था, वह गर्दन तक पानी आने के पूर्व बच्चे को कधे पर रखकर बचाती रही, किन्तु जब जल की मात्रा बढ गई और स्वय बॅदरिया डूबने लगी, तो उसने बच्चे को पैरो के नीचे दबाया और उस पर खडी हो गई, जिससे वह स्वय न डूबने पावे। इतना ममत्व स्वय के जीवन पर होता है। उस शरीर के प्रति मोह का भाव उपवास मे छूटता है। यह क्या कम लाभ है?"

उपवास की मर्यादा

प्रश्न - "उपवासो मे आपको आकुलता होती है या नहीं?"

उत्तर - "हम उतने ही उपवास करते है, जितने मे मन की शाति बनी रहे, जिसमे मन की शाति भग हो, वह काम नहीं करना चाहिए।"

कष्ट मे पंच परमेष्ठी का नाम-स्मरण

प्रश्न - "महाराज! एक ने पहले उपवास का लम्बा नियम ले लिया। उस समय उसे ज्ञान न था, कि वह उपवास मेरे लिए दु खद हो जायगा। अब वह कष्टपूर्ण स्थिति मे क्या करे?"

उत्तर - "व्रतादि के पालन करने पर जब कष्ट आवे, तो पचपरमेष्ठी का लगातार

ही दूर हो जायगी और शांति मिलेगी।

प्रश्न - "महाराज! कोई-कोई यह सोचते हैं कि संजद शब्द धवल सिद्धान्त में रखने वालों की कार्यवाही से आपने दूध का त्याग कर दिया और लम्बे लम्बे उपवास लिये थे। इसमें क्या सत्य है?

समाधि की तैयारी

उत्तर - "हमने कह दिया है कि उपवास का कारण समाधि की तैयारी है। षोडशकारण व्रत के कारण हमने भादों भर के लिए चार रसों के सिवाय दूध का त्याग किया था।[1] इसमें संजद शब्द का जरा भी विकल्प नहीं है। हम संसार भर की भी चिन्ता नहीं है। अब तो हमें अपनी आत्मा का ही ख्याल है। दुनिया भर की बातों का विचार करने में क्या प्रयोजन है? लिखने वाले सौ को संजद पद के स्थान में तिर्यंचों, नारकियों को भी संजद लिखते रहें, तो भी हमें उसकी चिंता नहीं है। हमें जो कहना था, सो कह दिया, अब हम बार-बार इसमें नहीं पड़ते हैं।"

प्रतिष्ठा ग्रंथों में बहुभाग लोप करना अयोग्य है

पुनः महाराज ने कहा - "संजद शब्द न रहने से क्या सिद्धान्त का लोप हो गया? प्रतिष्ठा ग्रन्थों का बहुत सा भाग काट करके नवीन मनगढ़ंत ग्रन्थ के आधार पर प्रतिष्ठा का कार्य तुम्हारी तरफ किया जाता है। ग्रन्थ का ग्रन्थ काट डाला जाय, किन्तु तुम पंडित लोग इस विषय में अब तक क्यों चुप बैठे रहे? आश्चर्य है कि तीन अक्षर के न रखे जाने पर तो दुनिया भर में हल्ला मचाया गया, किन्तु ग्रन्थ का ग्रन्थ काटकर प्रतिष्ठा जैसे महान कार्य की सप्राणता में क्षति पहुँचाते देखकर भी आप लोग चुप बैठे रहे?"

---

१ समाधिमरण के भक्तप्रत्याख्यान नामक प्रथम भेद के सम्बन्ध में मूलाराधना टीका में इस प्रकार वर्णन किया है-
"भक्तप्रत्याख्यान के १२ वर्ष उत्कृष्ट काल में पहले चार वर्ष तो विविध कायक्लेशों का करे। आगे के चार वर्ष रसादित्याग द्वारा क्षीण करे। आगे के दो वर्ष को आचाम्ल (कांजी आहार) और निर्विकृति (रस, व्यंजनादि रहित भोजन) द्वारा बितावे। एक वर्ष को आचाम्ल द्वारा व्यतीत करे। शेष छह मास को मध्यम तप द्वारा बितावे। अंतिम छह मास को उत्कृष्ट तप द्वारा व्यतीत करे। (पृष्ठ ८७५)
इस कथन से यह ज्ञात हो जाता है कि आचार्य महाराज कठोर संयम-साधना में क्यों संलग्न रहने लगे थे।

महाराज ने कहा - "विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए।"

आत्मध्यान का अधिकारी

ध्यान के वारे मे महाराज ने वडे अनुभव की वात कही - "ऐसा आत्मा का ध्यान निकट ससारी जीव के ही होता है। जिसका भवभ्रमण अधिक शेष है, उससे ऐसा ध्यान नहीं वनेगा।"

जिनप्रभाव की महिमा

प्रश्न – जिन भगवान का नाम, भाव को विना समझे भी जपने से क्या जीव के दु ख दूर होते हैं? यदि जिनेन्द्र गुणस्मरण से कष्टो का निवारण होता है, तो इसका क्या कारण है?

उत्तर – जिस प्रकार अग्नि के आने से नवनीत द्रवीभूत हो जाता है, उसी प्रकार वीतराग भगवान के नाम के प्रभाव से सकटों का समुदाय भी दूर होता है। जिनेन्द्र भगवान एक प्रकार से अग्नि हैं, क्योंकि उनके द्वारा कर्मो का दाह किया जाता है।

आचार्यश्री का समर्थन कल्याणमन्दिर के इस पद्य से होता है -

"आस्तां अचित्यमहिमा जिन संस्तवस्ते, नामापि पाति भवतो भवतो जगति।"

हे जिनेन्द्र! आपके स्तवन की महिमा अचित्य है। आपका नाम मात्र भी जगत् के जीवो का रक्षक है।

इस कारण अज्ञ प्राणी भी 'णमो अरिहताण' के जप द्वारा कल्याण को प्राप्त करता है। सुभग नाम के गोपाल ने 'णमो अरिहताण' की जाप मात्र से सुदर्शन सेठ के रूप में जन्म धारण कर मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रकार वीतराग भगवान के नाम मे भी अचित्य और अपार शक्ति है।

पूजा में आह्वान आदि का रहस्य

प्रश्न – आचार्य परमेष्ठी या साधु परमेष्ठी के प्रत्यक्ष होते हुए उनका आह्वान आदि करना कैसे उचित होगा?

उत्तर – आह्वान आदि तन्दुल मे नहीं किया जाता। पूजक अपने मन मे उक्त आह्वान आदि करता है।

पाप का फल कष्ट

पाप के द्वारा ऊँचे आसन पर अधिष्ठित व्यक्ति भी अवर्णनीय कष्ट को भोगता है। इस विषय में महाराज ने दक्षिण के एक भट्टारक के बारे मे यह बताया था कि हीन आचरण के कारण उनके शरीर मे कीडे पड गये थे। शरीर से असह्य दुर्गन्ध निकलती थी। मरने पर उस कमरे में घुसने की कोई हिम्मत नहीं करता था, जहाँ मृत शरीर पड़ा था। एक शीशी चन्दन का तेल वहाँ छिडका गया। लोगो ने नाक में पट्टी बाँधी और अपने शरीर में चन्दन का तेल खूब लगाकर बडा साहस कर उस शरीर को बाहर निकाला था। पापोदय से ऐसी स्थिति होती है।

विदेह में द्रव्य मिथ्यात्व नहीं है

प्रश्न – विदेह में मिथ्याधर्म का सद्भाव नहीं कहा है, इसका क्या कारण है?

उत्तर – विदेह में द्रव्य मिथ्यात्व नहीं है। कारण, वहाँ विद्यमान तीर्थंकर द्वारा मोक्ष का सच्चा मार्ग बताया जाता है। वहाँ नित्य चतुर्थ काल रहता है, इसलिए जेसे काल परिवर्तन के कारण भरतादिक क्षेत्र में द्रव्य मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है, वेसा वहाँ नहीं होता। भरतादि क्षेत्र में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के परिवर्तनवश मिथ्याधर्मों का आविर्भाव और विलय हुआ करता है।

मार्मिक समाधान

प्रश्न – 'कूटलेखक्रिया' को किस प्रकार अतिचार कहा जायगा?

उत्तर – जैसे आजकल राजकीय कानून के प्रहार से बचने के लिए गृहस्थ देता है हजार रुपया, किन्तु रसीद लिखवाता हे उससे अधिक की, ताकि कचहरी में मुकदमा करने में असल रकम आपत्ति से मुक्त रही आवे। व्रती गृहस्थ का भाव धन के अपहरण का नहीं है, किन्तु कार्य तद्रूप सा दिखता है, इससे इसे अतिचार कहा है। यदि वह गृहस्थ लेख के अनुसार असल से अधिक द्रव्य लेता है, तो वह अनाचार दोष हो जायगा।

प्रश्न – दर्शनविशुद्धि भावना युक्त क्षयोपशम सम्यक्त्वी और उससे रहित क्षायिक सम्यक्त्वी में कौन महान् है?

उत्तर – तीर्थंकर प्रकृति का बध करनेवाला क्षयोपशम सम्यक्त्वी महान् है। कारण, वह स्वय ससार समुद्र के पार जाते हुए अगणित प्राणियो को भी मोक्ष मे पहुँचाता है।

प्रश्न - केवली भगवान के तेरहवें गुण-स्थान में योग का क्या कारण है?

उत्तर-चौरासी लाख उत्तर गुणों की पूर्णता न होने से कर्मों का आस्रव होता है।

दयापूर्ण दृष्टि

लोग महाराज को आहार देने मे गडवडी किया करते हैं, इस विषय मे मैंने श्रावको को जव समझाया कि जिस घर मे महाराज पडगाहे जॉय, वहाँ दूसरों को विना अनुज्ञा के नहीं जाना चाहिए, अन्यथा गडवडी द्वारा दोष का सचय होता है। मैं लोगों को समझा रहा था, उस प्रसग पर आचार्यश्री ने मार्मिक वात कही थी।

महाराज वोले - ''यदि हम इस गडवडी को वद करना चाहे, तो एक दिन में सव ठीक हो सकता है। यदि एक घर के भोज्य पदार्थ का नियम ले लिया, तव क्या गडवडी होगी? लोगो का मन न दुखे और हमारा काम हो जाय, हम ऐसा कार्य करते है।''

प्रमादी साधु की कथा

विपरीत परिस्थिति मे भी क्षमा भाव न छोडना मुनि का धर्म है। इस प्रसग मे एक मुनि की वात महाराज ने वताई, जिनके हाथ मे किसी मूढ स्त्री ने खौलती खीर डाल दी। उस खीर को उन्होने उस स्त्री के ऊपर ही उछाल दिया, वह औरत चिल्ला उठी, तव उन मुनिराज ने कहा - ''तूने हमारे हाथ मे खौलती खीर डालते समय नहीं सोचा, इनका क्या हाल होगा?''

एक वार आचार्यश्री के हाथ मे दक्षिण मे उबलता दूध एक गृहस्थ ने डाला था, उससे वे मूर्च्छित हो गए थे, किन्तु उनमें जरा भी अशाति का आविर्भाव नहीं हुआ था। सचमुच मे आचार्य शातिसागर महाराज का नाम सार्थक था।

वृद्धा की समाधि

कुथलगिरि मे लोणद की करीब ६० वर्ष वाली बाई ने १६ उपवास किए थे, किन्तु १५ वें दिन प्रभात में विशुद्ध धर्मध्यान पूर्वक उसका शरीरात हो गया।

महाराज ने उसके कुटुम्बियो से कहा था - ''हम खातरी से (निश्चय से) कहते है, उस बाई ने देव पर्याय पाई। इतने उपवास से प्राप्त विशुद्धता और निर्वाण भूमि का योग सामान्य लाभ नहीं है। इसके विषय मे तुम लोगो के शोक करने का क्या मतलब?''

आचार्यश्री की विशिष्ट मुद्रा

महाराज के थोडे से प्रबोधपूर्ण शब्दो ने कुटुम्बियो का सारा दु ख धो दिया था। पूज्यश्री की वाणी अपूर्व थी।

नेमिसागर महाराज का केशलोच

व्रतों के बाद कुवार वदी दशमी, शनिवार १७ अक्टूबर १९५३ को मुनि नेमिसागरजी का केशलोच हुआ। नेमिसागरजी का केशलोच बहुत जल्दी हो गया। उस समय मैंने पूछा - "महाराज! आपको केशो को उखाडते देखकर लोगो की आँखों मे पानी आ जाता है, किन्तु आपके मुख पर तनिक भी विकृति नहीं आती, इसका क्या कारण है? क्या कष्ट नहीं होता?"

उत्तर मे उन्होंने कहा - "हमें कोई कष्ट नहीं होता। केशलोच करते बहुत दिन बीत गए। इससे अभ्यास भी हो चुका है।"

उस समय आचार्य महाराज का मार्मिक भाषण हुआ था।

आचार्य महाराज का भाषण

अपने उपदेश मे आचार्य महाराज ने कहा था - "भव्यो! यह जीव चतुर्गति ससार मे परिभ्रमण करता चला आ रहा है। देवगति मे कल्पवृक्षों द्वारा मनोवाछित पदार्थ मिलते हैं। उपपाद शय्या मे सुखपूर्वक जन्म होता है। परिपूर्ण आयु रहती है। बुढापा नहीं होता, किन्तु उसमे बडा दोप यह है कि वह सुख अविनाशी नहीं है। नरक मे जीव मारा-मारी और बैर-भाव आदि के कारण दुख पाता है। उसका वर्णन कोन कर सकता है? तिर्यच पर्याय में बैल, हाथी, भैंसा आदि प्राणी पराधीनता वश पीडा पाते हैं। बहुत से जीव भूख से मर जाते हैं। उनसे शक्ति से अधिक काम लिया जाता है, इससे उन्हे अपार वेदना होती है। उन जीवों मे भय की मात्रा भी बहुत होती है। हरिण को व्याघ्र का भय रहता है। मेढक को सर्प मारता है। मछली को मछली मार कर खा जाती है। मनुष्य गति मे भी स्थायी आनद नहीं मिलता। स्थिर सुख तो पाँचवीं गति मोक्ष मे है। वहाँ पच इन्द्रिय बिना सुख कैसे? भूखे को अन्न देते है, किन्तु क्षुधा की वेदना नहीं है, तो पकवान से क्या प्रयोजन? जहाँ इद्रिय हैं, वहाँ उसे तृप्त करने का दु ख होता है। एक इद्रिय को तृप्त करते ही दूसरी इद्रिय का दु ख उपस्थित होता है। सिद्धो मे असली सुख होता है। वैसा सुख दूसरी जगह नहीं। वहाँ जन्म-मरण नहीं है। होटल मे भोजन के पैसे लेने के बाद स्थान नहीं मिलता है, ऐसे ही देवपर्याय तक मे आयु पूर्ण होने के अनन्तर जीव को क्षण भर भी स्थल नहीं मिलता।

मनुष्य पर्याय के दु ख

मनुष्यों में भोजन, वस्त्र, मकान, धन आदि का दुख रहता है। श्रीमंत को दसगुनी चिंता रहती है। उसके शत्रु भाई बंधु तक बनते हैं। धन को सम्हालने का कम कष्ट नहीं होता।

मोक्षप्राप्ति के अनंतर ही सच्चा सुख मिलता है। उस सुख के लिए क्या करना चाहिए? राजा मांडलिक नरेश, चक्रवर्ती को राज्य की मालिकी का सुख है, किन्तु उनका शत्रु आयु कर्म है। इतना वैभव नवनिधि, १४ रत्न छोडकर जाना पडता है, इसका महान् दुख है। आयु पूर्ण होने पर एक मिनिट भी रुकना असम्भव है।

सदा सुख

इस प्रकार विचारने पर नरक में दु ख, स्वर्ग में दु ख तिर्यंच में दु ख मनुष्य में दु ख, चारों गतियों में दु ख ही दु ख है। खरा सुख सिद्ध पर्याय में है।

मोक्ष का सुख कैसे मिलता है? आचार्य कहते हैं - सम्यक्दर्शन - ज्ञान - चारित्राणि मोक्षमार्ग। पहले मार्ग का वर्णन करना चाहिए। सम्मेदशिखर जाने के लिए पहले उसके मार्ग का वर्णन करना चाहिए।

सम्यक्त्व

सम्यग् दर्शन क्या है? मिथ्यात्व क्या है? यह जानना चाहिए। महाराज ने कहा - "कौन मिथ्यात्वी है? हाथ उठाओ।" उन्होंने पुन कहा, "सम्यक्त्वी कौन है - हाथ उठाओ।" इस पर सन्नाटा छा गया। महाराज के मुखमंडल पर मधुर स्मित आ गया। वे बोले "केवली भगवान, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी जानते हैं कि कौन सम्यक्त्वी है।" पंचाध्यायी में कहा है, "सम्यक्त्व वस्तुत सूक्ष्मं, अस्ति वाचामगोचरं" - "सम्यक्त्व यथार्थ में सूक्ष्म गुण है। वह वाणी के अगोचर है। वह केवली मन पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी के ज्ञानगोचर है। जो दूसरों के सम्यक्त्वी होने का प्रमाण पत्र देता है, वह मिथ्या प्रलाप करता है। पद्मपुराण में कहा है "सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि सुदुर्लभं" - सम्यक्त्व-रत्न साम्राज्य-प्राप्ति से भी सुदुर्लभ है।

मोक्षपाहुड में कुंदकुंद स्वामी ने कहा है -

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होदि सम्मत्तं॥

- अहिसा रूप धर्म, अठारह दोष रहित देव तथा निर्ग्रन्थ वाणी मे श्रद्धान सम्यक्त्व है।

उपाय

"उस सम्यक्त्व का उपाय क्या है? प्रशम, सवेग, अनुकपा और आस्तिक्य ये चार गुण सम्यक्त्वी के है। कषाय का उपशात होना प्रशम है। उसका क्षय १२ वे गुणस्थान मे होता है। केवलज्ञान होने पर कषाय नष्ट हो जाता है। कषाय रूप अग्नि यदि कर्मशत्रु पर लगा दी जाय, तो आत्मा का कल्याण हो जाय।"

सवेग

उन्होंने कहा - "अग्नि पर राख डालने पर वह घात नहीं करती। इसी प्रकार कषायो के उपशम होने पर होता है।" प्रसगवश महाराज ने कुथलगिरि दिवगत लोणद की बाई का उल्लेख करते हुए कहा, "वह भोली सौम्य, सरल बाई थी। 'फार चागली होती' - १६ दिन के पूर्व वह मर गई। क्या तुम नहीं मरोगे? यह अनित्य भावना सदा करना चाहिए। इसे सवेग गुण कहा है।"

अनुकम्पा

अनुकम्पा मे एक इन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक पर दया की जाती है। किसी जीव को दुख नहीं देना चाहिए। खरा करुणाभाव मनुष्य पर्याय में होता है। तिर्यंचो मे करुणा नहीं होती। वहाँ जीव जीव को खाता है। नरक में करुणा कहाँ है? देवो मे हिंसा का सम्बन्ध नहीं है, इसलिए वहाँ जीव-दया का प्रश्न नहीं उठता। यह स्मरण रखना चाहिए कि ऋण, हत्या और बैर कभी नहीं छूटते, इसलिए बैर-विरोध छोड अनुकम्पा धारण करनी चाहिए।

आस्तिक्य

आस्तिक्य नाम का गुण महान् कठिन है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे प्रगाढ़ श्रद्धा होना उसका स्वरूप है।

प्रसङ्गवश महाराज ने कहा - "दशाध्याय सूत्र में द्वादशाग का सार भरा है। गणधरदेव १२ सभा मे स्थित जनता को धर्म बताते थे। कुदकुदस्वामी ने कहा है- "जिसके भेद-विज्ञान है, उसे सम्यक्त्वी जानना चाहिए। प्रत्येक शरीर मे आत्मा पृथक् है। भाव मिथ्यात्व के कारण जीव अजीव को एक मानता है। जडवस्तु आत्मा से अन्य है। दोनो को एक बोलना मिथ्यात्व है।"

महाराज ने कहा - "प्रथमानुयोग मे बताया है, पहले राजाओ की दीक्षा होती थी। आज गरीब ने दीक्षा ली, तो सोचा जाता है कि उसका पेट नहीं भरता होगा। कालदोष से साधु की उत्पत्ति का मूल्य नहीं है। दिगम्बर अवस्था मोक्ष नहीं है। यह मोक्ष का निमित्त है। मिट्टी से घडा बनता है, कुम्भकार निमित्त है। अग्नि सस्कार भी आवश्यक निमित्त है। इसी प्रकार दिगम्बर पर्याय निमित्त है। इसके बिना केवलज्ञान नहीं है।"

भेद विज्ञान

"भेद विज्ञान बिना सम्यक्त्व नहीं होता। आत्मा का अनुभव होने पर अन्तर्मुहूर्त मे कोटि वर्ष पर्यन्त की गई तपस्या से अधिक निर्जरा होती है। आत्मा को कर्मो का निग्रह करना चाहिए।"

गृहस्थ का कर्त्तव्य

गृहस्थ क्या करे? प्रतिदिन आत्मा का चिन्तन करो। कम से कम दो घडी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से सावद्य दोष का परित्याग करो। इस शरीर मे तिल मे तैलवत् सर्वत्र आत्मा है। कौनसा भाग खाली है? राजपुत्र द्वारा विद्या-प्राप्ति के लिए किये गये उद्योग सदृश पहले आत्मा का ध्यान करो। इसमे मुनि की मुद्रा अन्तिम वेष है। आरम्भ, मोह, कषाय के क्षयार्थ यह वेष आवश्यक है। जो इस मुद्रा को धारण नहीं कर सकते, वे गृहस्थ होते हुए आत्मा का ध्यान कर निर्जरा करते हैं। चौबीस घन्टे मे कम-से-कम पन्द्रह मिनिट पर्यन्त आत्मा का ध्यान करो। इससे असख्यात गुणी निर्जरा होती है। इस आत्मा का ध्यान न करने से तुम अनत ससार मे फिरते रहे इसके सिवाय मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा भगवान ने कहा है। इससे अविनाशी, सुखपूर्ण, मोक्ष की प्राप्ति के लिए आत्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिए।

१७ अक्टूबर, १९५३, कुवार बदी दशमी - शनिवार

मैने महाराज को समाचार सुनाया - "महाराज! सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर के पैर की हड्डी टूट गई थी। आपरेशन के उपरान्त उस हड्डी की जगह प्लास्टिक का उपयोग किया गया है।"

महाराज ने कहा - "सचमुच मे आज के जगत् मे अद्भुत वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं।" कुछ क्षण के अनन्तर अत्यन्त गम्भीर मुद्रा मे सहसा उनके मुँह से ये शब्द निकल पडे - "लेकिन जरा दियासलाई लगते ही वह प्लास्टिक भस्मीभूत होता जाता

मन्त्र सम्बन्धी चर्चा

प्रश्न - ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रः शब्दों का क्या भाव है?

उत्तर - ये [illegible] मुनियों के वाचक शब्द हैं।

उपयोगी मन्त्र - "ॐ अर्हत-सिद्ध-साधुभ्यो नमः" - ३५ अक्षर के मन्त्र के जपने से महान् फल होता है, उतना फल छोटे मन्त्र की अधिक जाप द्वारा सम्पन्न होगा।

महाराज ने कहा - "हमने धर्मसंकट आने पर ही उस मन्त्र से सवा लाख जाप किया था, अपने स्वास्थ्य लाभार्थ हमने कभी भी जाप नहीं किया।"

इस वर्ष हमने महाराज में विशेषता देखी। उनकी दृष्टि में अपूर्व परिवर्तन था। महाराज का हृदय वैराग्य और स्वोन्मुखता से अधिक आप्लावित हो गया था।

महाराज के जाप का मन्त्र

मन्त्र - (१) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा महावीरस्वामी धर्मसंकटनिवारणाय सिद्धाधिपतये स्वाहा।

(२) ॐ अर्हत सिद्ध साधुभ्यो नमः।

प्रश्न - महाराज इस महान् तपस्या में शरीर को कष्ट होता है या नहीं?

उत्तर - (उस समय महाराज का मौन था - पाँच दिन का उपवास भी था, इसलिए उन्होंने संकेत द्वारा अपने हृदय की ओर हाथ दिखाते हुए यह सूचित किया - "आत्मा की शक्ति पर भरोसा है।") मैंने यही शब्द कहे, तो महाराज ने सिर हिला कर इसका समर्थन किया। लोगों के बहुत पत्र आते थे। सब उन्हें नमोऽस्तु लिखते थे। एक दिन उन्होंने समुदाय रूप यह आदेश हमें दे दिया - "जो हमें नमस्कार लिखे उसे हमारा आशीर्वाद लिख दो।"

पाँच उपवास के समय मौन की स्थिति में महाराज को मास्टर गोवा बीडकर मधुर स्वर में आध्यात्मिक पद सुना रहे थे। हमने समन्तभद्राचार्य का "सुश्रद्धा " वाला श्लोक सार्थ सुनाया। उस समय उनके मुखमंडल पर आनन्द की ज्योति जग गई।

मौनवृत्ति

एक दिन महाराज ने कहा था - "पहले सोचा था तुम यहाँ व्रतों म आवोगे, इससे मौन नहीं लेना चाहिए, पश्चात् आत्मा की प्रवृत्ति उस ओर हो गई, इसमे मौन ले लिया था।" फिर कहने लगे - "लोगो के साथ वचनालाप करने मे सार क्या है? जिनके कान पर शब्द पडते है, उनके हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं दिखता है। हमारा विचार ता आगे भी ऐसा ही मौन धारण का होता है।"

ईर्यासमिति का भाव

१६ सितम्वर १९५३ भादो सुदी ८ की वात थी। नेमिसागर महाराज पहाड पर जा रहे थे। मैंने पूछा - महाराज! आप लम्वा प्रवास करते समय कैसे ईर्यासमिति का पालन कर सकते हैं?" उत्तर मे उन्होंने वताया - "हम एक घन्टे मे तीन मील चलते हैं। मन्दिर प्रवेश के सम्वन्ध मे वम्वई जाकर सिद्धाग्रह निमित्त हम चले थे। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त सामायिक का काल छोडकर १० घन्टे चलते थे। उपवास था इससे ३० मील तक चले गये थे।"

ईर्यासमिति का भाव स्पष्ट करने के लिए उन्होंने पर्वत पर विना रुके हुए चक्कर वताया, जिससे यह ज्ञात होता था कि शिखरजी की पहाडी पर इन साधुओ को जाते हुए, अल्पकाल मे जीवरक्षा होते हुए, लम्वा विहार कैसे होता था? असल वात यह है कि ये आत्मयोगी साधु चलते समय वीच मे विश्राम लेना या रुकना नहीं जानते। इससे समय वचता है और अधिक यात्रा होती है।

वास्तुशास्त्र-निपुण

पर्वत पर एक शाति कुटी वनी। उसके निर्माण के समय बडे-वडे कान्ट्रेक्टरो से महाराज की जो वात होती थी उससे स्पष्ट होता था कि वे वास्तुशास्त्र मे भी पूर्ण प्रवीण है।

अद्भुत तेज-सम्पन्न शरीर

भादो सुदी नवमी को महाराज शास्त्र सभा मे से वीच मे ही कुछ काल के लिए उठ गए। उनके सिवाय सभी पुरुष तथा महिला मण्डली शास्त्र मे वैठी थी, किन्तु ऐसा लगा कि मानो वहाँ विपुल तेज वाली आत्मा नहीं है। इससे मन मे सूनापन-सा लगता था। थियासफी (Theosophy) वाले जिसे ओजशक्ति (Aura) कहते है, वह महाराज की गजव की वृद्धिगत मालूम पडती है।

शासन सत्ता का दोष

देश के वर्तमान अनैतिक वातावरण पर महाराज ने कहा - "इसमें मुख्य दोष प्रजा का नहीं, शासनसत्ता का है। गांधीजी ने मनुष्य सामान्य पर दया के द्वारा लोक में यश और सफलता प्राप्त की और जगत् को चकित कर दिया। इससे तो धर्म का गुण दिखाई देता है। यह दया यदि जीव मात्र पर हो जाय तो उसका मधुर फल अमर्यादित हो जायगा। आज जो सरकार जीवों के घात में लग रही है, यह अमंगल रूप कार्य है।"

शुभ चिह्न

एक दिन महाराज कहने लगे- "दिन को न सोना शुभ चिह्न है। संघपति गेंदनमल का हमारा करीब ३० वर्ष का परिचय है। वे कभी भी दिन का नहीं सोते, चाहे रात को कितने ही जगे हों।"

जन्मातर का अभ्यास

महाराज ने कुन्थलगिरि के मन्दिर म भगवान के समीप में संघपति सेठ गेंदनमलजी के समक्ष हमसे कहा था कि हमें ऐसा लगता है -"इस भव के पूर्व में भी हमने जिनमुद्रा धारण की होगी।"

हमने पूछा - "आपके इस कथन का क्या आधार है?"

उत्तर - "हमारे पास दीक्षा लेने पर पहले मूलाचार ग्रन्थ नहीं था, किन्तु फिर भी हम अपने अनुभव मे जिस प्रकार प्रवृत्ति करते थे, उसका समर्थन हमे शास्त्र में मिलता था - ऐसा ही अनेक वातो मे होता था। इससे हमे ऐसा लगता है कि हम दो तीन भव पूर्व अवश्य मुनि रहे होगे।"

गृहस्थ जीवन की चर्चा

अपने विषय मे पूज्यश्री ने कहा - "हम अपनी दूकान में ५ वर्ष वैठे। कोई आकर यदि अनाज वगैरह ले जाता था तो हम उसे नहीं रोकते थे। हम तो घर के स्वामी के वदले मे बाडी-वाहरी आदमी की तरह रहते थे।"

दुर्ध्यानो का अभाव

उनके ये शव्द वडे अलौकिक है - जीवन मे हमारे कभी भी आर्तध्यान रौद्रध्यान नहीं हुए। घर मे रहते हुए भी हम सदा उदास भाव से रहते थे। हानि, लाभ, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग आदि के प्रसग आने पर भी हमारे परिणामों मे कभी क्लेश नहीं हुआ।

साधुत्व की तैयारी

हम घर मे ५ वर्ष पर्यन्त एकासन और ५ वर्ष पर्यंत धारणा पारणा अर्थात् एक उपवास, एक आहार करते रहे।

मित्र का चरित्र

रुद्रप्पा नामक मित्र के वारे मे उन्होने वताया - "वह श्रीमत का पुत्र था। वह अपने कमरे का दरवाजा वन्द करके घर मे चुपचाप बैठा करता था। वह और किसी से भी वात नहीं करता था। हम से बात करता था और हम पर वडा स्नेह करता था। वह पक्का सत्यभाषी था।"

अपना स्वभाव

महाराज ने अपने विषय मे कहा - "हम कहते थे तो विना दस्तखत कराए लोग हजारो रुपया दे देते थे। हमारा कभी भी किसी से झगडा नहीं होता था। हम कभी भी दूसरे की निंदा के काम मे नहीं पडे। पिता की मृत्यु के वाद शीघ्र ही हमने दीक्षा ली थी। ५ वर्ष पर्यत हमने केवल दूध और चावल लिया था।" महाराज ने यह भी वताया - "पहले मुनि लोग अपने साथ वस्त्र रखते थे।"

निमित्त कारण भी बलवान है -

महाराज ने कहा था - "निमित्त कारण भी बलवान है। सूर्य का प्रकाश मोक्षमार्ग मे निमित्त है। यदि सूर्य का प्रकाश न हो तो मोक्षमार्ग ही न रहे। प्रकाश के अभाव में मुनियों का विहार आहार आदि कैसे होगे?" उन्होंने कहा - "कुभकार के बिना केवल मिट्टी से घट नहीं बनता। इसके पश्चात उसका अग्निपाक भी आवश्यक है।"

आत्मचिंतन द्वारा निर्जरा

सन् १९५४ के पर्यूषण में फलटण में महाराज ने अपने उपदेश में कहा - "पाँच से पद्रह मिनिट पर्यन्त आत्मचिंतन करो। इससे निर्जरा होती है। इससे सम्यक्त्व होगा। दान पूजा मे पुण्य होता है। जन्म पर्यन्त आत्मा का चिंतन करो।"

शास्त्रदान की प्रेरणा

महाराज कहा करते थे - "शास्त्रदान करो। इसमें बड़ी शक्ति है। शास्त्रदान से केवली होता है। शास्त्र के व्यापार से ज्ञानावरण का बध होता है। शास्त्र के शब्द अंजन चोर के कान में पडे थे। उससे उसकी सद्‌गति हुई। शास्त्र के द्वारा सब जीवों का हित होता है।

मार्मिक विनोद

आचार्यश्री सदा गभीर ही नहीं रहते थे। उनमें विनोद भी था, जो आत्मा को उन्नत बनने की प्रेरणा देता था। कुथलगिरि मे अध्यापक श्री गो वा बीडकर ने एक पद्य बनाया ओर मधुर स्वर में गुरुदेव को सुनाया। उस गीत की पक्ति थी। "ओ नींद लेने वाले, तुम जल्द जाग जाना।" उसे सुनकर महाराज बोले -"तुम स्वय सोते हो और दूसरों को जगाते हो।" 'बगल में बच्चा, गाँव मे टेर' - कितनी अद्भुत बात है। यह कहकर वे हँसने लगे।

चातुर्मास के पश्चात् विहार करते समय

सन् १९५३ में कुथलगिरि में चातुर्मास के उपरान्त महाराज का एकदम प्रस्थान हो गया। उनके मन की बात को साथ के मुनि नेमिसागर महाराज भी नहीं जानते थे। आचार्यश्री ने एकदिन कहा था - "हम किसी की नहीं सुनते हैं। हमारा अत करण जैसा कहता है, वैसा हम करते हैं।" सचमुच में लोकोत्तर पुरुषों की अतरात्मा (inner voice) जो कहती है, तदनुसार उनकी प्रवृत्ति होती है। पुण्य जीवन होने के कारण उनकी पवित्र आत्मा के द्वारा सदा सम्यक् पथ-प्रदर्शन होता है। जाते-जाते वे बोले -

"आम्हीं जात नाही पुन येथे यऊ। मी हे स्थान पसद केल आहे' - "मैं नहीं जा रहा हूं। पुन यहाँ आऊगा। मुझे यह स्थान पसन्द आ गया है।" अपने जाने का कारण मुनिनाथ ने कहा - "मुनि एक स्थान पर निरन्तर नहीं रहते। स्थानान्तर में जाना जरूरी है।"

नदी प्रवाह सदृश

इस प्रसग में मुनि नेमिसागर महाराज ने कहा - "जिस प्रकार नदी का प्रवाह एक जगह स्थिर नहीं रहता है, उसी प्रकार मुनियो का भी सतत विहार होता रहता है।" इस पर एक चतुर भक्त ने कहा-"महाराज! आप नदी हैं कहॉ? आप तो सागर हैं। सागर तो एक जगह रहता है।" यह वात सुनते ही आचार्यश्री के मुखमडल पर मधुर स्मिति की आभा आ गई। उन्होंने कहा-"हम शीघ्र फिर यहॉ आवेंगे।" उनकी वाणी पूर्ण सत्य रही।

आत्मभवन का निर्माता

आचार्यश्री के पास वैठनेवाले छोटे-वडे सभी व्यक्तियों को विशेष स्फूर्ति प्राप्त होती थी। जव महाराज मौन से वैठते थे, तव भी उनके समीप रहने से मन को प्रसन्नता प्राप्त होती थी। महाराज वोलते कम थे, किन्तु जो शव्द निकलते थे, वे नपे तुले रहा करते थे।

एक दिन कुथलगिरि की धर्मशाला में एक जगह ब्र भरमप्पा सीमेंट लगाने में तन्मय थे। एक व्यक्ति वोला -"महाराज! भरमप्पा गौडी - कारीगर है।" दूसरा कहने लगा - "महाराज को अच्छा न लगेगा, ऐसी वात मत कहो।" वीडकर जी ने कहा "महाराज! आपके सत्सङ्ग से भरमप्पा आत्ममदिर की इमारत वनाने का उद्योग कर रहा है। इससे वह कारीगर तो है ही।" महाराज हँस पडे। वास्तव में महाराज ने ब्र जी को क्षुल्लक दीक्षा देकर अन्त में आत्मभवन का शिल्पी वना दिया था।

गुरुदेव की हम पर कृपा

कुंथलगिरि में सल्लेखना धारण करने के कुछ दिन पूर्व पूज्यश्री ने हमारी याद की थी और लोगों से कहा था - "ज्यां ठिकाने आमचा चातुर्मास होतो, त्या ठिकाण चा एक ही भाद्रपद चुकीत नाहींत" - जिस स्थान पर हमारा चातुर्मास होता है, वहॉ एक भी भाद्रमास में आने में यह नहीं चूका है।" उनका विश्वास था कि मैं भाद्रपद में उनके समीप ही पर्यूषण व्यतीत करूँगा, किन्तु पर्यूषण के तीन दिन पूर्व ही वे महर्षि स्वर्गीय निधि वन गए। सवका सौभाग्यसूर्य अस्तगत हो गया।

जीर्णोद्धार की प्रशसा

एक धार्मिक व्यक्ति ने पॉच मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया था। उसके बारे मे आचार्यश्री कहने लगे - "जिनमन्दिर का काम करके इसने अगले भव के लिए अपना सुन्दर भवन अभी से बना लिया है।"

जीव बन्ध तथा मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ है

आचार्यश्री किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए बडे सुन्दर दृष्टात देते थे। एक समय वे कहने लगे - "यह जीव अपने हाथ से सकटमय ससार का निर्माण करता है। यदि यह समझदारी से काम ले, तो उस ससार को शीघ्र समाप्त भी स्वय कर सकता है। एक बार चार मित्र देशाटन को निकले। रात्रि का समय जगल में व्यतीत करना पडा। प्रत्येक व्यक्ति को तीन-तीन घटे पहरे देने को बॉट दिये गए। प्रारम्भ के तीन घटे उसके भाग मे आए, जो बढई का काम करने में प्रवीण था। समय व्यतीत करने को बढई ने लकडी का टुकडा काटा और एक शेर की मूर्ति बना दी। दूसरा व्यक्ति चित्रकला में निपुण था। उसने उस मूर्ति को सुन्दरतापूर्वक रॅग दिया, जिससे वह असली शेर सरीखा जॅचने लगा। तीसरा साथी मत्रवेत्ता था। उसने उस शेर मे मन्त्र द्वारा प्राण सचार का उद्योग किया। शेर के शरीर मे हलन-चलन होते देख मात्रिक झाड पर चढ गया। उसके पश्चात् तीनो साथी भी वृक्ष पर चढ गए। शेर ने अपना रौद्ररूप दिखाना प्रारम्भ किया। चौथा साथी बडा बुद्धिमान तथा तात्रिक था। उसने अपने मित्रो से सारी सकट की कथा का रहस्य जान लिया। उसने मात्रिक मित्र से कहा - "डरने की कोई बात नहीं है। तुमने ही तो काष्ठ के शरीर में अपने मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा की थी। तुम अपनी शक्ति को वापिस खींच लो, तब जडरूप व्याघ्र क्या करेगा?" मात्रिक ने वैसा ही किया। व्याघ्र पुन जड रूप हो गया।

"इस दृष्टान्त का भाव यह है कि जीव स्वय रागद्वेष द्वारा सकट रूप शेर के शरीर मे प्राणप्रतिष्ठा करता है। यह चाहे तो रागद्वेष को दूर करके कर्म रूपी शेर को समाप्त भी कर सकता है। रागद्वेष के नष्ट होने पर कर्म क्या कर सकते हैं? रागद्वेष के नष्ट होते ही शीघ्र ससार-भ्रमण दूर होकर जीव मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त करता है।"

कथा द्वारा शिक्षा

आचार्य महाराज बडवानी की वदनार्थ विहार कर रहे थे। साथ मे तीन सम्पन्न गुरुभक्त तरुण भी थे। वे बहुत विनोदशील थे। उन तीनो को विनोद मे तत्पर देखकर

आचार्यश्री ने एक शिक्षाप्रद कथा कही -

"एक वडी नदी थी। उसमे नाव चलती थी। उम नोका मे एक ऊँट मवार हो गया। एक तमाशेवाले का वन्दर भी उसमे वेठा था। इतने मे एक वनिया अपने पुत्र सहित नाव मे बेठने को आया। चतुर धीवर ने कहा - "इम समय नौका मे तुम्हारे लडके को स्थान नहीं दे सकते। यह वालक उपद्रव कर वेठेगा, तो गडवडी हो जायगी।"

"व्यापारी ने मल्लाह को समझा-वुझाकर नाव मे स्थान जमा लिया। नौका चलने लगी। कुछ देर वाद वालक का विनोदी मन न माना। उसने वदर को एक लकडी से छेड दिया। चचल वदर उछलकर ऊँट की गर्दन पर चढ गया। ऊँट के घवडाने से नौका उलट पडी और सबके सव नदी मे गिर पडे।" ऐसी ही दशा विना विचारकर प्रवृत्ति करने वालो की होती है। अधिक गप्पो मे और विनोद मे लगोगे, तो उक्त कथा के समान कष्ट होगा। गुरुदेव का भाव यह था कि जीवन को विनोद मे ही व्यतीत मत करो। जीवन का लक्ष्य उच्च और उज्ज्वल कार्य करना है।

त्याग की प्रेरणा

आचार्य महाराज सन् १९२४ के लगभग अकलूज मे पधारे थे। वहाँ एक सम्पन्न, धार्मिक तथा प्रभावशाली जैन वधु थे। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति देखकर महाराज ने कहा - "पहले राजा लोग दीक्षा लेते थे। उनका अनुकरण जनता किया करती थी। आज तुम्हारे सरीखे श्रीमत लोग यदि दीक्षा ले, तो दूसरे पुरुष भी तुम्हारी त्याग वृत्ति का अनुकरण करेगे।"

वे जैन भाई कहने लगे - "महाराज! मेरा ध्येय दूसरा है। मै धन कमाना और दान देना अपना कर्तव्य मानता हूँ।"

महाराज -"अरे भाई! कीचड मे गिरना और गगा स्नान करना, चोरी करना और दानशाला का सचालन करने से क्या लाभ? दीक्षा लेकर नरभव को सफल करना चाहिए।"

सुलझी हुई मनोवृत्ति

एक समय एक महिला ने भूल से आचार्य महाराज को आहार मे वह वस्तु दे दी, जिसका उन्होने त्याग कर दिया था। उस पदार्थ का स्वाद आते ही वे अतराय मानकर आहार लेना बन्दकर चुपचाप बैठ गए। उसके पश्चात् उन्होने पाँच दिन का

उपवास किया और कठोर प्रायश्चित्त भी लिया। यह देखकर वह महिला महाराज के पास आकर रोने लगी कि मेरी भूल के कारण आपको इतना कष्ट उठाना पडा।

महाराज ने उस बहिन को बडे शान्त भाव से समझाते हुए कहा - "तू क्यो खेद करती है। मेरे अन्तराय का उदय आने से ऐसा हुआ हे। तूने तो,यदि यथार्थ मे देखा जाय तो मेरा उपकार किया हे। तेरे कारण ही मुझे इस शान्ति तथा आनन्दप्रदाता व्रत लेने का सुअवसर मिला। व्रत मे कष्ट नहीं होता, आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती हे।"

यथार्थ मे आचार्य महाराज निसर्गसिद्ध (Born Saint) साधु रहे हैं। जिस तपस्या को देखकर लोग घवडाते हे, उससे उनके मन को शाति ओर आत्मा को वल प्राप्त होता था। आचार्यश्री अपनी शक्ति के भीतर ही तप करते थे, जिससे सक्लेश-भाव की प्राप्ति न हो।

त्याग और स्वावलम्वन

समाज में त्याग के क्षेत्र मे अद्भुत प्रवृत्ति हे। वहुत से ऐसे भी त्यागी मिलते हैं, जो एक भी प्रतिमा रूप व्रत नहीं लेते हैं; किन्तु भोली समाज के वीच वडे त्यागी के नामसे पूजा-प्रतिष्ठा का रसास्वादन करते हैं। शरीर में शक्ति सामर्थ्य रहते हुए भी हाथ पर हाथ रखकर वैठ जाते हैं और समाज द्वारा भरण-पोषण की अपेक्षा करते हे।

सप्तम प्रतिमा वाला सच्चाई से व्यापार कर सकता है

आचार्य महाराज ने एक गृहस्थ को सातवीं प्रतिमा के व्रत दिये। वह व्यापारी था। महाराज ने उससे कहा - "तुम व्यापार कर सकते हो। न्यायपूर्वक और सत्य रीति से तुमको व्यापार करना चाहिए।" इससे उन लोगों को प्रकाश मिल सकता है, जो नैष्ठिक बनने के पूर्व ही त्यागी-उदासीन का रूप धारण कर स्वावलम्वन की प्रवृत्ति से विमुख हो जाया करते हैं।

मौलिक विचार

महाराज के विचारों मे मौलिकता रहती थी, उनकी अनेक विषयो मे दक्षता देख कर आश्चर्य होता था। वास्तव मे बात यह है कि जैसे उनका चरित्र अपूर्व था, उसी प्रकार उनका क्षयोपशम भी असाधारण रहा है। भारत के कोने-कोने से आगत हजारो व्यक्तियो के नाम आदि उनको ऐसे ही याद रहते थे, जैसे किसी बुद्धिमान तरुण को सब बातें याद रहती हैं।

अद्भुत स्मृति

महाराज ने मुझसे कहा था - "जिस चीज को हम एक बार ध्यान से देख लेत है, उसे नहीं भूलते है।" जब हम महाराज की जन्मभूमि भोज मे पहुँचे थे और इनके विषय मे परिचायक सामग्री का सग्रह कर रहे थे, तब यह ज्ञात हुआ था कि महागज बाल्यकाल से ही असाधारण स्मृति शक्ति समन्वित रहे है। उनकी प्रतिभा शास्त्राभ्यास, धारणा शक्ति आदि के कारण देश के बडे से बडे शास्त्रज्ञ तथा लोकविद्या के निष्णात लोग उन साधुराज के पास से ज्ञान सवर्धक सामग्री का सचय करते थे। उनकी तर्कशक्ति भी महान् थी। श्रेष्ठ कानूनवेत्ता भी उनकी तर्कशक्ति को प्रणाम किए बिना नहीं रहता था।

बाल विवाह प्रतिबंधक कानून के प्रेरक

भारत सरकार के द्वारा बाल-विवाह कानून-निर्माण के बहुत समय पहले ही आचार्य महाराज की दृष्टि उस ओर गई थी। उनके ही प्रताप से कोल्हापुर राज्य में सर्व प्रथम बाल विवाह प्रतिबधक कानून बना दिया था। इसकी मनोरजक कथा इस प्रकार है। कोल्हापुर के दीवान श्री लट्ठे दिगम्बर जैन भाई थे। लट्ठे की बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा महाराष्ट्र प्रान्त मे व्याप्त थी। वहाँ आचार्यश्री विराजमान थे। दीवान बहादुर श्री लट्ठे प्रतिदिन सायकाल के समय महाराज के दर्शनार्थ आया करते थे। एक दिन लट्ठे महाशय ने आकर आचार्यश्री के चरणो मे प्रणाम किया। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा - "तुमने पूर्व मे पुण्य किया है, जिससे तुम इस राज्य के दीवान बने हो और दूसरे राज्यो में तुम्हारी बात का मान है। मेरा तुम से कोई काम नहीं है। एक बात है, जिसके द्वारा तुम लोगो का कल्याण करा सकते हो। कारण, कोल्हापुर के राजा तुम्हारी बात को नहीं टालते।" दीवान बहादुर लट्ठे ने कहा - "महाराज! मेरे योग्य सेवा सूचित करने की प्रार्थना है। महाराज - "छोटे-छोटे बच्चो की शादी की अनीति चल रही है। अबोध बालको-बालिकाओ का विवाह हो जाता है। लडके मरने पर बालिका विधवा कहलाने लगती है। उस बालिका का भाग्य फूट जाता है। इससे तुम बाल-विवाह प्रतिबधक कानून बनाओ। इससे तुम्हारा जन्म सार्थक हो जायगा। इस काम मे तनिक भी देर नहीं हो।" कानून के श्रेष्ठ पडित दीवान लट्ठे की आत्मा आचार्य महाराज की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। मन ही मन उन्होने महाराज की उज्ज्वल सूझ की प्रशसा की। गुरुदेव को उन्होने यह अभिवचन दिया कि आपकी इच्छानुसार शीघ्र ही कार्य करने का प्रयत्न करूँगा।

दीवान श्री लट्ठे की कार्य-कुशलता

गुरुदेव के चरणों को प्रणामकर लट्ठे साहब महाराज कोल्हापुर के महल मे पहुँचे। महाराजा साहब उस समय विश्राम कर रहे थे, फिर भी दीवान का आगमन सुनते ही बाहर आ गए। दीवान साहब ने कहा - "गुरु महाराज 'बाल-विवाह-प्रतिबधक कानून' बनाने को कह रहे हैं।"

राजा ने कहा - "तुम कानून बनाओ। मैं उस पर सही कर दूगा।" तुरन्त लट्ठे ने कानून का मसौदा तैयार किया। कोल्हापुर राज्य का सरकारी विशेष गजट निकाला गया, जिसमे कानून का मसौदा छपा था। प्रात काल योग्य समय पर उस मसोदे पर राजा के हस्ताक्षर हो गए। वह कानून बन गया। दोपहर के पश्चात् सरकारी घुडसवार सुसज्जित हो एक कागज लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ आचार्य शातिसागर महाराज विराजमान थे।

लोग आश्चर्य मे थे कि अशाति और उपद्रव के क्षेत्र में विचरण करने वाले ये शस्त्रसज्जित शाही सवार यहाँ शाति के सागर के पास क्यों आए हैं। महाराज के पास पहुँचकर उस शस्त्रालकृत घुडसवार ने उनको प्रणाम किया ओर उनके हाथ मे एक राजमुद्रा अकित वद पत्र दिया गया। लोग आश्चर्य में निमग्न थे कि महाराज के पास सरकारी कागज आने का क्या कारण है। क्षण भर में कागज पढने से ज्ञात हुआ कि उसमे महाराज को प्रणाम पूर्वक यह सूचित किया गया था कि उनके पवित्र आदेश को ध्यान में रखकर कोल्हापुर सरकार ने बाल-विवाह प्रतिबंधक कानून बना दिया हे। महाराज के मुखमडल पर एक अपूर्व आनद की आभा अकित हो गई।

प्रगतिशील विचारक

भारत सरकार ने जब बाल-विवाह कानून पास किया था, तब समाज के स्थितिपालक दल के लोग उसको अयोग्य बताकर विरोध करते थे। सुधारक कहे जाने वाले भाई उसका स्वागत कर रहे थे। इस प्रसग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उक्त कानून के विचार के जन्मदाता आचार्य महाराज थे। यथार्थ मे वे बडे प्रगतिशील तथा उज्ज्वल मौलिक विचारक थे। उन सरीखा सुधारक कौन हो सकता है, जिन्होंने असयम तथा मिथ्यात्व के विषपान में निमग्न जगत् को रत्नत्रय की अमृत औषधि पिलाई। उन्होने किसी का भय नहीं किया। पचम काल का भी विचार नहीं किया। उनका साहसी तथा जिनेन्द्रभक्त हृदय यह कहता था - "यह पचमकाल का बाल्यकाल है। इससे इसका जोर नहीं चलेगा। यदि प्रयत्न किया जाय, तो धर्म तथा सत्कार्यो के क्षेत्र मे नियम से

सफलता प्राप्त हो सकती हे। डरकर घर मे वेठने से काम नहीं चलेगा।'' सचमुच मे उन महापुरुष ने पचमकाल के कलक को मिटाकर धार्मिक प्रवृत्ति को नवजीवन प्रदान किया। युगधर्म कहकर जहाँ जन-समुदाय पापाचार और विपयो की अध आराधना की ओर जा रहा था, वहाँ ये महापुरुप उस उद्वेलित लोकप्रवृत्ति रूप सिधु के विरुद्ध खडे हो गए और इन्होने ऐसे-ऐसे महान् कार्य किए, जिसको सोचकर जगत् को आश्चर्य हुए विना नहीं रह सकता। वे उन सभी प्रवृत्तियो तथा सुधारो के समर्थक थे, जिनके द्वारा सम्यक्त्व का पोषण होता है, सयम का सवर्धन होता है। महाराज की विशिष्ट विचारकता के कारण वे स्थितिपालको के प्राण थे तो सुधारको के श्रद्धाभाजन भी थे।

दिव्य दृष्टि

आचार्यश्री का राजनीति से तनिक भी सबध नहीं था। समाचार पत्रो में जो राष्ट्रकथा आदि का विवरण छपा करता है, उसे वे न पढते थे, न सुनते थे। उन्होंने जगत् की ओर पीठ कर दी थी। आज की भौतिकता के फेर मे फँसा मनुष्य क्षण-क्षण मे जगत् के समाचारो को जानने को विह्वल हो जाता है। लदन, अमेरिका आदि मे तीन-तीन घटे की सारे विश्व की घटनाओ को सूचित करने वाले बडे-बडे समाचार-पत्र छपा करते हैं। आत्मा की सुध-बुध न लेने वाले लोग अपना सारा समय शारीरिक और लौकिक कार्यों मे ही व्यतीत करते हैं। आचार्यश्री के पास ऐसा व्यर्थ का क्षण नहीं था, जिसे वे विकथाओं की बातों मे व्यतीत करे। फिर भी उनकी आत्मा कई विषयो पर ऐसा प्रकाश देती थी कि विशेषज्ञो को भी उनके निर्णय से हर्ष हुए बिना नहीं रहता था। सन् १९४० मे द्वितीय महायुद्ध छिडा। आचार्यश्री के कानो मे उसके समाचार पहुँचे, तब उन्होंने सहज ही पूछा यह युद्ध आरभ किसने किया? उनको बताया गया कि युद्ध की घोषणा सर्वप्रथम जर्मनी ने की है। महाराज का शुद्ध मन बोल उठा - "इस युद्ध मे जर्मनी निश्चय ही पराजित होगा।" कुछ काल तक जर्मनी की विजय अवश्यभाविनी मानने वाले लोगो को भी यह दिखा कि आचार्यश्री का अत करण सत्य बात को पहले ही सूचित कर चुका था।

पुण्यवान जवाहरलाल

गाधीजी की प्रतिष्ठा देश भर मे व्याप्त थी। उस समय महाराज बोले - "गाधी जी अच्छे आदमी हैं। उनसे अधिक पुण्यवान जवाहरलाल है। वह राजा बनने लायक है। गाधीजी ने केवल मनुष्य की दया को ही ठीक माना है।" मैने पूछा था - "महाराज राजनीति की बातो से तो आप दूर रहते है, फिर आपने जवाहरलाल जी के बारे मे उक्त बाते कैसे कही थीं।

महाराज ने कहा - ''हमारा हृदय जेसा बोलता हे, वेसा हमने कह दिया। हम न गाधी को जानते, न जवाहर को पहचानते।''

आचार्य महाराज सचमुच मे श्रेष्ठ तपस्वी होने के साथ ही माथ अपूर्व पुण्यात्मा भी थे। उनके पुण्य चरणो को सभी सम्प्रदाय वाले पणाम करते थे। बडे-बड़े राजा महाराजा, करोडपति, सेठ-साहूकार, सेनिक सभी वर्ग के लोग उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे।

संघपत्ति का अनुभव

सघपति सेठ गेदनमलजी तथा उनके परिवार का आचार्यश्री के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। गुरुचरणों की सेवा का चामत्कारिक प्रसाद अभ्युदय तथा समृद्धि के रूप में उस परीवार ने अनुभव भी किया हे। सेठ गेदनमलजी ने कहा था- ''महाराज का पुण्य बहुत जोरदार रहा है। हम महाराज के साथ हजारों मील फिरे हे, कभी भी उपद्रव नहीं हुआ है। हम बागड प्रान्त में रात-रात भर गाडियो में चलते थे, फिर भी कोई विपत्ति नहीं आई। बागड प्रान्त में ग्रामीण ऐसे भयकर रहते हैं कि दस रुपये के लिए भी प्राण लेने मे उनको जरा भी हिचकिचाहट या सकोच नहीं होता था। ऐसे अनेक भीपण स्थानो पर हम गए हैं कि जहाँ से सुख-शातिपूर्वक जाना असम्भव था, किन्तु आचार्य महाराज के पुण्य-प्रताप से कभी भी कष्ट नहीं देखा।

''वर्षा का भी अद्भुत तमाशा बहुत वार देखा। हम लोग महाराज के साथ-साथ रहते थे। वर्षा आगे रहती थी, पीछे रहती थी, किन्तु महाराज के साथ मे पानी ने कभी कष्ट नहीं दिया। उनकी हर प्रकार की पुण्याई के दर्शन किये थे।''

''उनकी तपस्या के मन्दिर का कलश देखना और बाकी रहा था। वे कुथलगिरि के पहाड पर बैठकर जो हजारों लोगो को दर्शन देते थे और सबको आशीर्वाद देते थे, वह तो उनके समवसरण सदृश लगता था। उनका यह प्रभाव भी अब देखने का सोभाग्य मिल गया।''

तपस्या द्वारा पुण्य

लोगो की आदत है कि जब कभी पुण्य की महिमा का दर्शन होता है, तो उनका मन उस प्रकार के पुण्य एव वैभव के लिए लालायित हो जाया करता है। प्रभु से वे प्रार्थना कर बैठते हैं, भगवन्! हमें भी ऐसा ही पुण्य प्राप्त हो। वे लोग अपने कर्मो को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते हैं और इसके ही कारण उनकी कामना पूर्ण नहीं होती है।

फोडे उष्णता के कारण आ गए। शरीर के भीतर की स्थिति को कोन वतावे? शरीर की ऐसी कठिन परिस्थिति में भी वे सागर की भाँति गम्भीर ही रहे आए।

दसवे दिन अन्तराय कर्म का उदय कुछ मन्द पडा। उस दिन के दातार गृहस्थ ने महाराज को जल दिया। महाराज ने जल ही जल ग्रहण किया ओर वे वेठ गए। पश्चात् गम्भीर मुद्रा मे उन साधुराज ने कहा - "शरीर को पानी की जरूरत थी ओर तुम लोग दूध ही डालते थे। चलो! अच्छा हुआ। कर्मों की निर्जरा हो गई।" साधुओ का मूल्य आँकने वाले सोचें, ऐसी तपस्या कहाँ है?

शिथिलाचारी का पतन

आज के युग में ऐसी तपस्या एक दिन भी कठिन दिखती हे। लगभग आठ वर्ष हुए उत्तर प्रान्त मे एक प्रख्यात तपस्वी साधु को रात्रि के समय पिपासा की असह्य पीडा उत्पन्न हुई, तो कुछ शिथिलाचारी पडितो ने उनसे कहा - "यह आपत्ति का काल हे। इस समय आपको जल ले लेना चाहिए।" होनहार विचित्र थी। उन विवेकभ्रष्ट पडितो तथा उसी प्रकृति के कुछ धनिको की प्रेरणा पाकर उन साधु ने प्यास की पीडा को सहन करने की असमर्थतावश अपनी महान् प्रतिज्ञा को भ्रष्ट कर दिया। कुछ समय के पश्चात् परलोक प्रयाण किया।

प्रतिज्ञापालन

इस घटना की खवर जव आचार्य शातिसागर महाराज को मिली, तव वे एक तपस्वी के रूप से प्रसिद्ध जीव के पतन को देख विविध प्रकार के विचारो मे निमग्न हो गए।

आचार्य महाराज ने मुझसे कहा था - "कभी भी व्रत को भग नहीं करना चाहिए। प्राण जाते हुए भी प्रतिज्ञा की रक्षा करना चाहिए।" पुराणो मे हम पशुओ आदि का भी उच्च विकास देखते हैं, क्योंकि उन जीवो ने व्रत का पालन करने मे आश्चर्यकारी स्थिरता रखी है।

प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि सयमधारक को व्रतो से डिगने की बात कभी न कहे। इस प्रकार की प्रणाली से स्व तथा पर की निश्चय से दुर्गति हुए बिना नहीं रहती है। पाप पक्ष का समर्थन करके सयमी का पतन कराने वाले व्यक्ति को यमराज का सगा-सम्बन्धी सोचना उचित है। कृत, कारित तथा अनुमोदना मे भी समान फल होता है। पापोदय से शास्त्रज्ञ भी इस तत्त्व को भूल जाता है।

शरीरनिस्पृह साधुराज

महाराज भेद-ज्ञान-ज्योति के धनी थे। वे शरीर को पर-वस्तु मानते थे। उनके प्रति उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। एक दिन पूज्य गुरुदेव से प्रश्न पूछा गया - "महाराज! आपके स्वर्गारोहण के पश्चात् आपके शरीर का क्या करे?"

उत्तर - "मेरी बात मानोगे क्या?"

प्रश्नकर्त्ता - "हॉ महाराज! आपकी बात क्यो न मानेगे?"

महाराज - "मेरी बात मानते हो, तो शरीर को नदी, नाला, टेकडी आदि पर फेंक देना। पशु-पक्षी इसे भक्षण कर लेंगे। चैतन्य के जाने के पश्चात् इसकी क्या चिन्ता करना?"

यह बात सुनते ही प्रश्नकर्ता ने विनयपूर्वक कहा - "महाराज! क्षमा कीजिए। ऐसा तो हम नहीं कर सकते, शास्त्र की विधि क्या है?"

तब उनको दूसरी विधि कही थी कि मृत शरीर को विमान पर पद्मासन से बिठाकर देह का दहन कार्य किया जाता है। फिर बोले - "हमारे पीछे जैसा दिखे वैसा करो।"

पार्श्वमती अम्मा

आचार्य महाराज के लोकोत्तर जीवन-निर्माण मे उनके माता-पिता की श्रेष्ठता को भी एक कारण कहना अनुचित न होगा। पश्चिम के विद्वान, व्यक्ति की उच्चता मे माता को विशेष कारण कहते है। माता सत्यवती की जीवनी लोकोत्तर थी। जिस जननी ने आचार्य शातिसागर और महामुनि वर्धमानसागर सदृश दो दिगम्बर श्रेष्ठ तपस्वियो को जन्म दिया। आज के युग मे ऐसी माता की तुलना के योग्य कौन जननी हो सकती है? माता सत्यवती से क्षुल्लिका पार्श्वमती अम्मा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वे कहती थीं "माता सत्यवती बहुत भोली, मदकषायी, साध्वी तथा अत्यन्त सरल स्वभाव वाली थीं। प्रति दिवस एकासन करती थी। पति की मृत्यु के पश्चात् केश कटवाकर माता ने वैधव्य दीक्षा ली थी। सफेद वस्त्र पहनती थीं। यथार्थ मे माता पिच्छी रहित आर्यिका सदृश थीं। माता की आदत शास्त्र चर्चा करने की थी। महाराज तथा कुमगोडा माता को शास्त्र सुनाते थे। माता बहुत उदार थी। उनके घर मे सदा अतिथि सत्कार हुआ करता था।"

मातगोडा का मधुर चरित्र

"अतिथि-सत्कार तथा साधु की वैयावृत्य करने मे महाराज वहुत प्रवीण थे। साधु को स्वय आहार देते थे। उनमे विनय वहुत थी। महाराज की प्रवृत्ति देखकर सब का मन यह बोलता था कि ये नियम मे महामुनि बनेंगे। वे माता की आज्ञा का पालन करते थे। वडो की वात का आदर करते थे। उनके विषय मे जनता कहती थी - "मातगौडा फार चागला, फार सरल, फार सज्जन आहे" - मातगौडा (आचार्य महाराज का गृहस्थावस्था का नाम) वहुत अच्छे अत्यन्त सरल तथा अधिक सज्जन हैं।

जीवन चर्या

"भोजवासी महाराज को देवता सदृश मानते थे। वे घर मे कम वोलते थे। उनका सवध वैर-विरोध पूर्ण वातो से तनिक भी नहीं रहता था। मधुर भाषा वोलते थे। छेदकरी या पीडादायिनी वाणी नहीं वोलते थे। वे मौन से भोजन करते थे। घर में रहते हुए भी वे घी, नमक, शक्कर तथा हरी शाक नहीं खाते थे। सध्या को पानी तक नहीं पीते थे। घर त्यागने के पाँच छ वर्ष पहले मे वे एक दिन के वाद से भोजन करते थे। सवेरे मदिर जाकर दर्शन, सामायिक करते थे। दस वजे स्नान करके मदिर को पूजा करने जाते थे। वे पूजा करते थे। भगवान का अभिषेक उपाध्याय करता था। हमारे तरफ अभिषेक उपाध्याय (पुजारी) ही करता है। महाराज रात्रि को सव लोगों को शास्त्र सुनाते थे। चातुर्मास के समय अधिक लोग शास्त्र सुनने आते थे। जैन तथा जैनेतरो की दृष्टि में महाराज सत्पुरुष माने जाते थे। भोज ग्राम की जनता भी वहुत धार्मिक है।

"महाराज का कुमगौडा पर वहुत प्रेम था। महाराज के घराने मे तपस्वी होते चले आए हैं। घर के सव लोग महाराज की आज्ञा मे रहते थे। वे इनको साधु सदृश मानते थे। ये कभी भी खेल-तमाशे मे नहीं जाते थे। धार्मिक कीर्तन को अवश्य देखते थे।"

उक्त पार्श्वमती माताजी के भोज में आठ चातुर्मास हो चुके हैं। उन्होने यह भी कहा था - "मैं महाराज को 'अण्णा' (वडा भाई) कहती थी।" भोज के आस-पास की जनता वहुत धार्मिक है। लोग सर्व प्रकार सुखी तथा सपन्न हैं। भोज मे लगभग तीन सौ घर जैनियों के हैं।

वेषभूषा

महाराज वडी, धोती, फेटा, दुपट्टा रखते थे। दीक्षा लेने के १५ या २० वर्ष पूर्व से उन्होने जूता पहनना छोड दिया था।

महाराज के सव से वडे भाई देवगोड़ा (वर्धमानसागरजी) थे। दूसरे भाई आदिगौडा थे। महाराज से छोटी वहिन कृष्णावाई थी। कुमगोडा सवसे छोटे भाई थे। सव भाई-वहिन मिलकर वे ५ व्यक्ति थे।

देवगौडा की सत्यनिष्ठा

वर्धमानसागर महाराज का चरित्र भी बडा मधुर रहा है। वे अत्यन्त सरल ओर दयालु रहे हैं। उनके विषय की एक मधुर चर्चा ज्ञात हुई थी। उनके घर का वँटवारा हो चुका था। सपत्ति के निमित्त को लेकर एक मुकदमा न्यायालय के समक्ष पेश हुआ। यदि ये इतनी वात कह देते कि हमारे घर का वँटवारा नहीं है, तो इनको बहुत धन का लाभ होता। वकील ने इनको खूब समझाया था कि आज पेशी पर तुम इतना अवश्य कहना कि हमारा वँटवारा नहीं हुआ है। ये जव अदालत मे पहुँचे, तो यह कह वेठे कि हमारा वँटवारा हो चुका है। इससे ये असफल हो गए। कचहरी से लोटने पर वकील इनसे वोला- ''आपको कितना समझाया था कि यह न कह देना कि हमारा वँटवारा हो गया है, किन्तु आपने एक न मानी।'' वे वोले - ''क्या करे। जो ठीक-ठीक वात थी, वह कह दी। नुकसान हो गया, तो हो जाने दो। हम खोटी वात नहीं कहेंगे।''

तपस्विनी वहिन

महाराज की वहिन कृष्णावाई के बारे मे कुथलगिरि मे ज्ञात हुआ कि वह वहुत तपस्विनी थी। ९ वर्ष की अवस्था मे कृष्णावाई विधवा हो गई थी। यथार्थ मे वह वाल ब्रह्मचारिणी रही हैं।

भीम के सस्मरण

महाराज के भाई के पौत्र का नाम भीमगोडा है। कुथलगिरि मे भीम ने हमे बताया कि वह कृष्णावाई को आजी कहता था। भीम ने बताया आजी मुझे अण्णा कहती थी, मेरा नाम नहीं लेती थी। कारण, हमारे वावा-प्रपितामह का नाम भीम था। आजी उनका नाम लेने में सकोचवश मुझे अण्णा कहती थी। घर के सभी लोग मुझे 'अण्णा' कहते हैं।

महाराज के परिवार की यह पद्धति रही हे कि पुत्र-पौत्रादि के नाम पिता, पितामह आदि के नामानुसार रखे जाते थे, ताकि उन पूज्य पूर्वजो की स्मृति सदा हरी-भरी रही आवे। क्षत्रचूडामणि मे बताया है कि महाराज सत्यधर के पुत्र मोक्षगामी जीवधर स्वामी हुए हैं। जीवधर स्वामी ने रानी गधर्वदत्ता से उत्पन्न अपने पुत्र का नाम सत्यधर

रखा था, ताकि उनकी स्मृति विलुप्त न हो। इससे उस प्रात की पद्धति का परिज्ञान होता है।

भीम ने सुनाया था - "आजी (माता सत्यवती) आचार्य श्री को 'महाराज' कहती थी। आजी का सारा समय धर्मध्यान मे व्यतीत होता था। आजी ने तीन दिन पर्यन्त सल्लेखना ग्रहणकर शरीर त्याग किया था।"

भीम ने कुथलगिरि मे अपने सगे वावा आचार्य महाराज के दर्शन किए थे। भीम ने कहा - "महाराज ने हम से अधिक वात नहीं की। उन्होने हमे अपना पवित्र आशीर्वाद दिया था।"

आठवे दिन आहार लेने वाले मुनि

कठिन तपस्या करने वाले और भी मुनिराज दक्षिण मे हुए है। वोरगॉव के मुनि आदिसागर आठ दिन के वाद आहार लिया करते थे। जव वे भोज आते थे, तो उनको आहार देने का सौभाग्य 'सातगौडा' को ही प्राय प्राप्त होता था। वे अद्भुत प्रवृत्ति के थे। 'एक-तारा' वाद्य द्वारा भजन गाते थे, इत्यादि।

अविचल निश्चय

मध्यप्रदेश के अर्थमन्त्री तथा भूतपूर्व मुख्यमन्त्री मध्यभारत शासन श्री मिश्रीलाल जी गगवाल ने अपने सार्वजनिक भाषण में इन साधुराज की सुन्दर शब्दो मे स्तुति करते हुए कुथलगिरि मे कहा था - "आचार्य महाराज में निर्भीकता रोम-रोम में भरी हुई है। उनके तर्क के समक्ष आदमी बेजुबान - मूक हो जाता है। वे महान् ज्ञानी और अनुपम त्यागी हैं। तूफान, ऑधी कुछ भी आवे, वे अपने निश्चय पर दृढ रहे हैं। उनकी श्रद्धा अविचल रही है। उन्होने मृत्यु को निमन्त्रण दिया है और हमारे समक्ष ही हॅसते-हॅसते मृत्यु से लड रहे हैं।" श्री गगवाल ने जो आचार्यश्री के विषय में प्रकाश डाला था, वह उनके निकट सम्पर्क तथा परिचय के आधार पर ही कहा था। यह भाषण १७ सितम्बर का था। ता १८ के प्रभात मे महाराज स्वर्गीय निधि बन गए थे।

एकान्तवास से प्रेम

आचार्य महाराज को एकान्तवास प्रारम्भ से ही प्रिय लगता रहा है। भीषण स्थल मे भी वे एकान्त निवास को पसन्द करते थे। वे कहते थे - "एकान्त भूमि में आत्मचितन और ध्यान मे चित्त खूब लगता है।" पूज्यपाद स्वामी ने कहा है- योग साधना में तत्पर योगी, एकान्तवास को पसद करता है। "इच्छत्येकान्त सवास निर्जन।"

प्रशान्त वातावरण मे निर्विघ्न रूप से आत्मचितन तथा आत्मध्यान का कार्य होता है। जनसम्पर्क आत्मनिमग्नता मे बाधक होता है।

जब महाराज बडवानी पहुँचे थे, तो बावनगजा (आदिनाथ की मूर्ति) के पास के शातिनाथ भगवान के चरणो के समीप अकेले रात भर रहे थे। किसी को वहॉ नहीं आने दिया था। साथ के श्रावको को पहले ही कह दिया था, आज हम अकेले ही ध्यान करेंगे।

मनोबली महर्षि

पूज्यश्री की यह विशेषता रही है कि जहॉ एकान्त रहता था, वहॉ उनका ध्यान बढिया होता था, किन्तु जहॉ एकान्त नहीं रहता था, वहॉ भी उनका ध्यान सम्यक् प्रकार से सम्पन्न हुआ करता था। उनका अपने मन पर पूर्ण अधिकार हो चुका था। इन्द्रियॉ उनकी आज्ञाकारिणी हो गई थीं। अत जैसा उनकी आत्मा आदेश देती थी, वैसी ही स्थिति इन्द्रिय तथा मन उपस्थित कर देते थे।

आदर्श ज्ञान

दर्पण जितना स्वच्छ होता है,उतना ही निर्मल प्रतिबिम्ब बाहर के पदार्थ का उसमें स्वत दिखाई पडता है। आचार्यश्री का अन्त करण आदर्श सदृश था। जिनका सारा जीवन आदर्श रहे, उनका हृदय भी सहज ही आदर्श दर्पण रूप हो, यह पूर्ण स्वाभाविक है। उनकी चित्तवृत्ति मे अनेक बाते स्वयमेव प्रतिबिम्बित हुआ करती थी।

प्रतिमाजी

यह उस समय की बात है जब पूज्यश्री का वर्षायोग जयपुरनगर मे व्यतीत हो रहा था। कुडची (दक्षिण) के मदिर के लिए ब्र बडू रत्तू पचो की ओर से मूर्ति लेने जयपुर आए। महाराज के दर्शन कर कहा - ''स्वामिन्! पचो ने कहा है कि पूज्य गुरुदेव की इच्छानुसार मूर्ति लेना।उनका कथन हमे शिरोधार्य होगा।''

महाराज ने कहा - ''वहॉ महावीर भगवान् की मूर्ति विराजमान होगी, ऐसा हमें लगता है, किन्तु तुम तार देकर पचो से पुन पूछ लो।'' महाराज के कहने पर पचो को तार दिया गया। वहॉ से उत्तर आया - ''भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाजी लाना।''

महाराज ने कहा - ''क्यो! हम कहते थे न कि पचो का मन स्थिर नहीं है। अच्छा हुआ, खुलासा हो गया। हमने तुमसे महावीर भगवान की मूर्ति के विषय मे कहा था। कारण, हमें वहॉ के मदिर मे महावीर भगवान की प्रतिमा दिखती थी।''

सत्यवाणी

शिल्पी ने कुछ समय वाद भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा वनादी, किन्तु मूर्ति का फण खडित हो गया। यह समाचार जब कुडची के पचो को मिला, तव उन्होंने तार भेजकर लिखा जो मूर्ति तैयार मिले, उसे ही भेज दो। तदनुसार मूर्ति रवाना की गई। वह मूर्ति महावीर भगवान की ही थी, जिसमे सिह का चिह्न था।

दिव्यज्ञान

मूर्ति को देखते ही सवको आश्चर्य हुआ कि आचार्य महाराज ने पहले ही कह दिया था कि हमे तो महावीर भगवान की मूर्ति दिखती है। ऐसे ही ज्ञान को दिव्यज्ञान कहते है।

हमारी कर्तव्य-विमुखता

आज के राजनीतिक प्रमुखो की क्षण-क्षण की वार्ता जिस प्रकार पत्रो में प्रगट होती है, वैसी यदि सूक्ष्मता से इन महामना मुनिराज की वार्ताओ का सग्रह किया गया होता, तो वास्तव मे विश्व विस्मय को प्राप्त हुए विना नहीं रहता। इस पापप्रचुर पचमकाल मे सत्कार्यो के प्रति बडे-बडे धर्मात्माओ की प्रवृत्ति नहीं होती है। वे कर्तव्य-पालन में भूल जाते हैं।

कई वर्षो से मैं प्रमुख लोगो से, जैन महासभा के कार्यकर्ताओ आदि से, पत्र द्वारा अनुरोध करता था कि आचार्य महाराज के उपदेशो को रेकार्ड किया जाना चहिए, किन्तु आज करते हैं, कल करते हैं, ऐसा करते-करते वह आध्यात्मिक सूर्य हमारे क्षेत्र की अपेक्षा अस्तगत हो गया, यद्यपि उस सूर्य का उदय स्वर्गलोक मे हुआ है।

रिकार्ड भाषण

आचार्य महाराज का २६ वे दिन मगलमय भाषण रेकार्ड हो सका, उसकी भी अद्भुत कथा है। नेता बनने वाले लोग कहते थे, अब समय चला गया। महाराज इतने अशक्त हो गए हैं कि वाणी का रेकार्ड तैयार करना असभव है।

मैने कहा - "सचमुच मे उपदेश नहीं मिलेगा, ऐसा ९९ प्रतिशत समझकर भी यत्र तो लाना चाहिए। शायद एक प्रतिशत की सभावना सत्य हो जाय।" कुछ भाइयो के प्रयत्न से रिकार्ड की मशीन लेकर इजीनियर आ गया। उस समय महाराज के पास प मक्खनलालजी मुरैना और मै पहुँचे। उनसे कुछ थोडे से शब्दो मे सारपूर्ण बात कहने की प्रार्थना की।

उस समय महाराज के थके शरीर से ये शब्द निकले - "अरे! पहले लाये होते, तो दसो उपदेश दे देते।"

इन शब्दो का क्या उत्तर था। मस्तक लज्जा से नत था। सचमुच मे ऐसी भूल का क्या इलाज हो सकता है। धर्म प्रभावना के महत्त्वपूर्ण कार्यो मे ऐसी अज्ञतापूर्ण चेष्टाएँ हुआ करती हैं।

मन मे आया देखो! पूज्यश्री की जयती मनाने मे, उनके लिए गजट का विशेषाक निकालने में धार्मिक संस्था जैन महासभा ने पैसे को पानी मानकर खर्च किया, किन्तु इस दिशा मे जगाए जाने पर भी समर्थ भक्तो के नेत्र न खुले। यथार्थ मे देखा जाय, तो इसमे दोष किसी का नहीं है। जब दुर्भाग्य का उदय आता है, तब हितकारी और आवश्यक बातो की तरफ ध्यान नहीं जाता है।

अमर संदेश

मैंने महाराज से कहा था - "महाराज! दो चार मिनिट ऐसा उपदेश रिकार्ड हो जाए, जिसमें लोगों के मन मे धार्मिक भावना जगे।" महाराज ने कहा - "यत्र लाओ।" यत्र लाया गया।

महाराज ने नेत्रो को बन्द किया। आँखें बन्द किये हुए उन महापुरुष ने २२ मिनिट पर्यन्त ऐसा उपदेश दिया उसमें जिनागम का सार आ गया और अनुभव के स्तर पर कल्याण की सब बाते आ गईं। उस महत्त्व की बेला में महाराज की कुटी में उनके सामने की तरफ बैठने का मुझे सुयोग मिल गया था। उस समय महाराज की वीतरागता उसवाणी द्वारा बाहर आ रही थी। ऐसा लगता था, मानों हम किन्हीं ऋद्धिधारी महर्षि के मुख से उद्गत अमृत वाणी का रसपान ही कर रहे हों। बोलते-बोलते महाराज कुछ क्षण रुक जाते थे।

आज के युग के वक्ता भाषण देते-देते पानी पिया करते हैं। महाराज का यम-सल्लेखना व्रत था। वह उपवास का छब्बीसवॉं दिन था। वे अपने क्षीण तथा शुष्क कण्ठ में बल लाने को 'ॐ सिद्धाय नम ' रूप जिनवाणी का अमृतपान कर लेते थे। और अपना विवेचन जारी रखते थे।

ॐ सिद्धाय नमः

महाराज की कुटी में बहुधा जब कभी महाराज के मुख से कोई शब्द सुनाई पडता था, तो वह ॐ सिद्धाय नम ही था। सिद्ध बनने के सत्सकल्प वाले सत्पुरुष के

मुख से सिद्धो को प्रणामाजलि अर्पित करने वाली वाणी ही पूर्णतया उपयुक्त थी। जब महाराज ने सर्व प्रकार का आहार छोड दिया, तव उनकी दृष्टि ज्ञानसुधा रस पान करने वाले अशरीरी सिद्धो की ओर रहना स्वाभाविक थी।

सिद्धलोक मे आत्मा का ध्यान

वे एक वार कहते थे, हम तो अनत सिद्धो के साथ वैठकर सिद्धलोक में अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं। उनकी दृष्टि से सिद्ध भगवान ही तो सर्वत्र दिखेंगे। वाह्यदृष्टि से उन्होने सिद्धक्षेत्र कुथलगिरि को समाधि का आश्रमस्थल वनाया था।

सल्लेखना के लिए उपयुक्त क्षेत्र

मैंने एक दिन पूज्य गुरुदेव से कहा था - "महाराज! आपने कुथलगिरि को अपनी अमर सल्लेखना का स्थान चुना, इसका कारण मुझे यह लगता है कि देशभूषण, कुलभूषण भगवान वालव्रह्मचारी थे। आप भी उनके समान रहे हैं। आप के जीवन में तो हमे दोनों प्रभुओ का समन्वय प्रतीत होता है। आप देश के भूषण हैं और सम्यक्त्वी जीवों के कुल के भूषण है। आपकी समाधि के कारण इस क्षेत्र को नवीन प्राण प्राप्त हो गया। आप के चरणो का सान्निध्य पाकर हमारा जीवन धन्य है।" मैंने यह भी कहा था - "महाराज! जिनेन्द्र भगवान से हमारी प्रार्थना है कि आप सदृश सद्गुरु के चरणों का शरण भव-भव मे प्राप्त हो।"

महाराज ने कहा था - "तुम्हारे मन मे भक्ति है। इससे तुम ऐसा वोलते हो।"

अप्रतिम साधुराज

वास्तव में विचार किया जाय,तो यह वात प्रत्येक विचारक सोचेगा कि इस काल मे ऐसे सद्गुरु का अव दर्शन सचमुच में दुर्लभ है। पचमकाल के कलुषित वातावरण मे प्राचीन साधुओं की तपस्या तथा पवित्रता को अपनी जीवनी द्वारा वताने वाले महाराज शातिसागरजी के समकक्ष होने की सामर्थ्य किसमे हो सकती है। सचमुच में अलकार शास्त्र की भाषा मे शातिसागर महाराज शातिसागर महाराज सदृश थे।" ऐसा कहना ही पूर्ण सत्य होगा, जिस प्रकार **पूज्यपाद स्वामी** कहते हैं - "स्वर्ग में देवताओ का सुख, स्वर्ग मे देवताओ के समान है - "**नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव।**"

-इष्टोपदेश (५)

युग के श्रेष्ठ मानव

इस युग ने राजनैतिक क्षेत्र मे जगत् को प्रभावित करने वाला गाधी सदृश तेजस्वी पुरुष दिया। काव्य के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ समान विश्व कवि दिया, तो अध्यात्म के क्षेत्र मे साधु-समाज के शिरोमणि महाराज को दिया, जिनकी पुण्यकथा विश्वविदित है।

विविध मनो-विकल्प

कुथलगिरि मे भारत के कोने-कोने से पद्रह-बीस हजार तक लोगो का समुदाय इन साधुराज के पावन दर्शन को इस जगल की पहाडी पर आता जाता था। सब आकुलित थे कि अब इस अपूर्वसूर्य का दर्शन आगे न होगा। भौतिक सूर्य जाने के बाद पुन दर्शन देता है, किन्तु यह धर्म सूर्य पुन यहाँ दर्शन नहीं देगा।

कल्पना

सल्लेखना की वेला मे उन साधुराज की चर्चा स्वर्गलोक में अवश्य हो रही होगी। सौधर्मेन्द्र अपनी सुधर्मा सभा मे बैठकर चर्चा कर रहे होगे कि इस काल मे उत्कृष्ट तप और इद्रिय विजय करने वाला महासाधु शातिसागर के रूप मे भरतखड मे जिनधर्म की प्रभावना करता रहा है। अव हमारे स्वर्गलोक की वह शीघ्र ही श्रीवृद्धि करेगा। वह सुर समाज बडी सजधज से इन अप्रतिम साधुराज के स्वागत के लिए हृदय से तैयारी कर रहा होगा। सचमुच में ससार की दशा निराली है। पूर्णिमा की रात्रि को चंद्रमा अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से विश्व को धवलित करता है। प्रभात होते ही वह अस्तगत होता है और प्रताप पुज प्रभाकर उदित होता है। विश्व मे भाग्यचक्र इस प्रकार बदलता रहता है। अब १८ सितम्बर १९५५ के प्रभात से सुर समाज का भाग्य जागा कि मध्यलोक की विभूति स्वर्गलोग मे पहुँच गई।

स्वर्ग में साथी

स्वर्ग मे वे अनेक महापुरुषों के साथी हो गए, जिन्होने पूर्व मे उनकी ही तरह जिनदीक्षा लेकर जिनधर्म की उज्ज्वल आराधना की थी। महर्षि कुदकुद, समतभद्र, अकलक, जिनसेन, गुणभद्र आदि महापुरुषो ने रत्नत्रय की समाराधना द्वारा देव पदवी प्राप्त की होगी, इसमे सदेह की क्या बात है। सयम और समाधि के प्रसाद से आचार्य शातिसागर महाराज भी उन श्रेष्ठ आत्माओ की मधुर मैत्री का रसास्वाद करते होंगे। उन्होंने तो सीमधर स्वामी आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरो के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य

प्राप्त किया होगा। वहाँ से चय कर वास्तव मे वे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक होगे। इस सम्बन्ध मे दृढतापूर्वक कथन तो प्रत्यक्षवेदी मुनियो का ही हो सकता है। हम लोग तो अनुमान प्रमाण के आधार से ही सोच सकते है।

सयमी का महत्त्व

आचार्य महाराज की दृष्टि मे सयम तथा सयमी का बडा मूल्य रहा है। एक दिन वे अपने क्षुल्लक शिष्य से कह रहे थे - "तेरे सामने मै चक्रवर्ती की भी कीमत नहीं करता। लोग सयम का मूल्य समझते नहीं है। जो पेट के लिए भी दीक्षा लेते है, वे तप के प्रभाव से स्वर्ग जाते है, तूने तो कल्याणार्थ सयम धारण किया है। तू निश्चय से स्वर्ग जायगा, इसमे रत्ती भर शका मत कर।"

प्रिय शिष्य को हितोपदेश

एक बार महाराज अपने एक भक्त गृहस्थ को समझा रहे थे - "तुम घर मे रहते हुए भी एकान्त मे रहा करो। जहाँ भीड हो, वहाँ नहीं रहना। ध्यान, स्वाध्याय करना। दीक्षा लेना। घर मे नहीं मरना। मनुष्य भव बार-बार नहीं मिलता है। मोह ने जीव को पछाड दिया है । अब उस मोह को पछाडना चाहिए। अत सल्लेखना लेकर ही मरण करना।"

मोह मल्ल को पछाडने की कला के ज्ञाता

आचार्य महाराज के भक्त ब्रह्मचारी जिनदास भरडी (बेलगॉव) वाले वहाँ कुथलगिरि मे भी आये थे। वे ब्रह्मचारीजी नामाकित पहलवान रहे हैं। राजदरबारो के समक्ष भी कुश्ती मे वे यशस्वी हुए हैं। मैंने पूछा - "ब्र जी! अब कुश्ती नहीं लडते।" वे बोले - "अब हमने मेहनत करना बद कर दिया। अब हमारे गुरु शातिसागर महाराज हैं। हम उनके पास कुथलगिरि आए है। वे हमे कर्मो से कुश्ती लडने का दाव पेच सिखावेगे। कारण, आचार्य महाराज मोहमल्ल को पछाडने की कला मे अत्यन्त दक्ष हैं।"

महान् आध्यात्मिक उद्योगपति

आचार्य महाराज आध्यात्मिक उद्योगपति थे। आज का उद्योगपति वह होता है, जिसके तत्त्वावधान मे बडे-बडे कारखाने चलते हैं। महाराज का उद्योग पुद्गल के बधन काटने का था। वे मोहारि-विजय के उद्योग में निरन्तर उद्यत रहते थे। उनके जीवन मे विविधता थी। वे आत्मचितक थे, किन्तु जिनेन्द्र के पुण्य नाम स्मरण करने मे भी वे

असाधारण थे। सल्लेखना लेने के पूर्व वे अपने पच परमेष्ठी वाचक विशिष्ट मत्र की १८ कोटि जाप पूर्ण कर चुके थे।

भयंकर ज्वर में भी जाप

उनका जाप का कार्यक्रम निर्बाध गति से चला करता था। भयकर ज्वर चढ़ा है। थर्मामीटर के हिसाब से ज्वर १०४ या १०५ डिगरी को पहुँच चुका है, किन्तु ये मनोवली मुनिराज अपने जाप के काम मे निमग्न रहते थे। एक बार महाराज फलटण से लोणद गए थे, कारण फलटण के हीरक जयती के समय से महाराज को ज्वर आने लगा था। उस समय की स्थिति का ज्ञान होने से मैंने पूज्यश्री से पूछा था - "महाराज! ऐसी ज्वर की भीषण स्थिति मे तो आपका जप कार्य स्थगित होता होगा?"

महाराज - "उस समय भी हम बराबर जाप करते थे। उस समय भी जाप में वाधा नहीं पडती थी।"

धर्मवृक्ष की छाया

शरीर के श्रान्त होते हुए भी उनका मन धार्मिक प्रवृत्तियों के विषय में सदा नव-स्फूर्ति पूर्ण रहता था। आदत मनुष्य के दूसरे स्वभाव (Second nature) सदृश मानी जाती है। जिनेन्द्र भगवान को हृदय में विराजमान कर उनकी जन्मजन्मातर से की गई आराधना का ही यह सुफल रहा है कि वे आत्मकल्याणकारी कार्यों में सदा सफल रहे। इस धर्मवृक्ष की शरण को ग्रहण करने वालों को सदा कल्पनातीत सुफल मिले हैं तथा आगे मिलते रहेंगे।

उपवासों की संपत्ति

उनके द्वारा जीवन में किए गए उपवासों की गणना करना कठिन है। कोई न कोई व्रत चलता ही जाता था। एक उपवास, एक भोजन तो उनके लिए बहुत ही सामान्य बात थी। वह क्रम प्राय चलता था।

महाराज एक दिन कहते थे - "उपवास से शरीर में प्रमाद नहीं रहता। और समय यदि हम दस मील चलते, तो उपवास के दिन शरीर हल्का रहने के कारण सहज ही पद्रह मील चले जाते थे।" उनको हमने कभी भी प्रमादपूर्ण अवस्था मे नहीं देखा। यथार्थ मे प्रमत्त गुणस्थानवर्ती होते हुए भी उनकी चेष्टाएँ सदा अप्रमत्त थीं।

उनकी एक पुस्तक से ज्ञात हुआ कि उन्होंने तीस-चौबीसी भगवान के ७२० उपवास किए थे। ३०×२४ = ७२० उपवास तीस-चौबीसी व्रत मे होते हैं। व्रतो के

१२३४ उपवास हुए थे। सोलहकारण व्रत को १६ वर्ष किया। उसमे उनका एक उपवास, एक आहार का क्रम चलता रहता था। सिहविक्रीडित सदृश कठोर तप उन्होने किया। आष्टाह्निक व्रत, दशलक्षण व्रत, कवलचाद्रायण व्रत, कर्मदहन व्रत, श्रुतपचमी व्रत आदि उन्होने किये थे। गणधरो के चौदहसौ बावन उपवास करने का क्रम चल रहा था, उसमे दो सौ उपवास हो पाए थे। तपस्या के द्वारा मन की मलिनता दूर होती है। आत्मा विशुद्धता प्राप्त करती है। महान् तपस्या के कारण विपत्ति की स्थिति मे उनका मन उनकी आज्ञा के आधीन रहता था। सच्चा साधुत्व तो तभी है, जब विपत्ति के समय वह अपनी प्रतिज्ञा से न डिगे। सकट के समय भी महाराज मे अद्भुत स्थिरता, आत्मविश्वास तथा दृढता का दर्शन होता था। कवि का यह कथन सत्य है -

भक्ति भाव भादो नदी, सबै चली घहराय।
सरिता सोई जानिए, जेठ मास ठहराय॥

धर्मसूर्य

महाराज का जीवन तपोमय था। उन्होने धर्म का सूर्य बनकर स्व तथा पर का प्रकाशन किया। जिस प्रकार प्रभापुज भास्कर भी कुछ जीवो की दर्शन शक्ति मे बाधक बन जाता है, इसी प्रकार ऐसी भी आत्माएँ मिलेगी, जो इस तेजोमय विभूति के महत्त्व को स्वीकार करने मे अक्षम हो। जिन जीवो को कुयोनियों मे परिभ्रमण करना है, उनकी आत्मा सत्कार्यो से द्वेष करती है। अच्छी बातो के बारे मे अनुभूति की क्षमता उनमे नहीं रहती है, जैसे पक्षाघात लकवा पीडित व्यक्ति के अङ्गो मे सप्राणता की शून्यता आ जाती है।

आश्चर्यप्रद योगीश्वर

महाराज कोगनोली मे क्षुल्लक के रूप मे थे। वे मदिर मे बैठे थे। वहॉ एक बडा सर्प आया। उसने उस पाट को घेर लिया, जिस पर वे बैठे थे। वह १२ बजे से ३ बजे दिन तक वहॉ रहा आया। महाराज भी आसन पर चुपचाप बैठे रहे। उपाध्याय वहॉ आया, तो महाराज ने उसे पास मे आने से मना किया। कारण सॉप पास मे फिर रहा था। महाराज शात थे, इनमे ऐसी महानता थी। ये महान् साधु बने, महाव्रती हुए, आचार्य हुए, चारित्र चक्रवर्ती हुए, इनकी गहराई और ऊँचाई को कौन नाप सकता है? आज का समुद्र अधिक से अधिक पॉच मील गहरा कहा जाता है और सबसे ऊँचा कहा जाने वाला हिमालय भी पॉच मील के लगभग है, किन्तु आचार्य महाराज इतने उन्नत और गम्भीर

रहे है कि उनका माप नहीं किया जा सकता। एक शास्त्रकार का कथन है कि महापुरुष मेरु से भी अधिक उन्नत और सागर से भी अधिक गम्भीर होते हैं। यह उक्ति आचार्यश्री के पूर्ण जीवन को देखते हुए अत्युक्ति नहीं लगती है।

आचार्यश्री का प्रभाव

कूपजल - आचार्य महाराज कटनी चातुर्मास के पश्चात् जबलपुर आते समय जब बिलहरी ग्राम पहुँचे, तो वहाँ के लोग पूज्यश्री की महिमा से प्रभावित हुए। वहाँ के सभी कुए खारे पानी के थे। एक स्थान पर आचार्य महाराज बैठे थे। भक्त लोगों ने उसी जगह कुआ खोदा। वहाँ बढिया और अगाध जल की उपलब्धि हुई। आज भी गॉव के लोग इन साधुराज की तपस्या को याद करते हैं।

बालक सुरक्षित - प जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने बताया कि कटनी की जैन शिक्षासस्था के २० फुट ऊँचे मजिले पर एक ३ वर्ष का बच्चा बैठा था। एक समय और बालकों ने आचार्य महाराज का जयघोष किया। वह बालक भी मस्त हो महाराज की जय कहकर उछला और नीचे ईट, पत्थर के ढेर पर गिरा। सुयोग की बात जिस कोने पर वह गिरा, उस जगह पत्थर आदि का अभाव था। सब कह बैठे यह आचार्य महाराज के पुण्यनाम का प्रभाव है।

वृक्ष का चमत्कार - कटनी मे एक प्राणहीन सरीखा आम का वृक्ष था। वह फल नहीं देता था। एक बार उस वृक्ष के नीचे आचार्यश्री का पूजन हुआ। तब से वह डाल फल गई, जिसके नीचे साधुराज विराजमान हुए थे। इस घटना से सभी कटनीवासी परिचित हैं।

सिंह की दृष्टि तत्त्व पर रहती है। वह लाठी प्रहार करने वाले या बन्दूक मारने वाले पर प्रहार करता है। इसी प्रकार महाराज सकट के समय दूसरो को दोष न देकर, अपने कर्मो को ही उस विपत्ति का कारण मानते थे। दूसरो पर दोष रखकर अपने को उज्ज्वल बताने की लौकिक प्रवृत्ति उनमे नहीं पाई जाती थी।

संवेग भावना

एक बार महाराज, नेमिसागर महाराज तथा ब्र बडू रत्तू सागली की तरफ जा रहे थे। मार्ग मे तीन हरिजन स्त्रियो ने इन मुनियुगल को देखा और तिरस्कारपूर्वक इन दिगम्बर साधुओ का महान् उपहास किया। उस समय महाराज ने आपस मे चर्चा करते

हुए कहा - "हमने अनादिकाल से मसा' भर की हँसी की। अव हमारी हँसी हो रही है, यह उसका ही तो फल है। इममे हमारा क्या नुकसान है?"

कुछ समय के पश्चात् कुछ मुसलमान आ गए। उनकी डॉट से वे नीच नारियाँ चुपके से चली गई।

मुनियो के अकेले रहने से हानि

साधुओ को अपने मन को सदा सावधान रखना आवश्यक है। न जाने कव इन्द्रिय रूपी डाकू आक्रमण कर उनकी सयमनिधि को लूटने को तैयार हो जॉय? आचार्यश्री सदा कहा करते थे कि मुनियो को मघ मे रहना चाहिए। शत्रु भी यदि साधु वने, तो उसे भी सघ मे विहार करने को कहना चाहिए।

आज मुनियो मे स्वतन्त्र विहार की प्रवृत्ति वढ रही है। आचार्य महाराज की दृष्टि से मुनियो का कल्याण तथा धर्म सरक्षण इसमे है कि वे सघ वनाकर रहें। ऐसे प्रसग पर जव मनुष्य का पतन दुर्वलतावश होता है या दुष्टो का समागम होता है, तव सघस्थ साधु सुरक्षित रहता है और उसे अपनी धार्मिक मर्यादा मे स्थिर रहने की वहुत प्रेरणा मिलती है।

बालक का समाधान

आचार्य महाराज सन् १९५३ मे वारसी मे विराजमान थे। उत्तर भारत का एक बालक अपने कुटुम्वियो के साथ गुरुदेव के दर्शन को आया। वह बच्चा लगभग ५ वर्ष का था। उसने पहले महाराज का सॉपयुक्त चित्र देखा था। इससे वह महाराज से बोला - "तुम्हारा सॉप कहॉ है?" महाराज बच्चे के आशय को समझ गए। वे मुस्कराते हुए बोले - "वह सॉप अब यहॉ नहीं है। वह तो चला गया।"

महान् जिनेन्द्रभक्ति

कुथलगिरि मे आचार्यश्री की इच्छानुसार मैसूरराज्य से एक १५ फुट ऊँची प्रतिमा लाने का विचार चला था। बाहुबली स्वामी की एक सुन्दर मूर्ति मिल गई है। उस प्रतिमा की फोटो आचार्यश्री के समक्ष एक सितम्बर १९५५ को दिखाई गई। वह उपवास का १९ वॉ दिन था। फोटो देखते ही उनके नेत्रो से आनदाश्रु की धारा प्रवाहित हो गई। महाराज बोले - "मेरी इच्छा पूर्ण हो गई।" सच्चे सम्यक्त्वी को जिस प्रकार वीतराग की छवि आनद देती है, उसी प्रकार का आनद इन साधुराज का था। महाराज को विश्वास दिलाया गया था कि शीघ्र ही मूर्ति कुथलगिरि आ रही है, किन्तु उनके दिवगत होने के बाद भी वह मूर्ति नहीं आ पाई। इसका रहस्य क्या है, यह अज्ञात है।

इन्द्रियो का गुलाम दु:खी है

एक व्यक्ति ने महाराज के समक्ष प्रश्न किया - "महाराज! आपके बराबर कोई दु खी नहीं है। कारण, आपके पास सुख के सभी साधनो का अभाव हे।" महाराज - "वास्तव मे जो पराधीन है, वह दु खी हे। जो स्वाधीन हे, वह सुखी है। इद्रियो का दास दु खी है। हम इद्रियों के दास नहीं है। हमारे सुख की तुम क्या कल्पना कर सकते हो?"

विशुद्ध जीवन का प्रभाव

आचार्यश्री ऐसे निरीह और निस्पृह तपस्वियो मे थे, जो अपने तप के द्वारा प्राप्त फल या विशेष सामर्थ्य के विषय में पूर्णतया निरपेक्ष रहते थे, फिर भी कुछ लोगो ने साधुराज के उज्ज्वल व्यक्तित्व द्वारा लाभ उठाया है।

मस्तक पीडा निवारण

वेडणी ग्राम के एक धनिक बधु विपुल द्रव्य खर्च करते-करते थक गए थे, किन्तु उनके सिर की पीडा नहीं जाती थी। उसने आचार्य महाराज के चरणो मे नम्र भाव से विनती की और अपनी दारुण व्यथा सुनाई। दयार्द्र भाव से आचार्यश्री ने उस व्यक्ति के सिर पर अपनी पिच्छी रख दी। तत्काल वह हमेशा के लिए उस पीडा से छूट गया। वास्तव में जड प्रयोग जहॉ हार जाते हैं, वहॉ पर योगियो का चमत्कार जगत् को चकित कर देता है।

सर्पदश का जीवन-रक्षण

फलटण के श्री तलकचद देवचद गाधी के यहॉ के दस वर्ष के बालक को सॉप ने काट लिया। आचार्य महाराज के समक्ष वह बालक लाया गया। उसे ध्यान से देखकर महाराज ने कहा - "चिन्ता मत करो। यह ठीक हो जायगा।" इसके पश्चात् वह बालक निर्विष हो गया।

कुष्ठ रोगी

नसलापुर में एक व्यक्ति पापोदय से गलित कुष्ठ की बीमारी से दु खी हो रहा था। वह महाराज की सेवा मे पहुँचा। उसने बहुत अनुनय-विनय की। गुरुदेव ने उसे ब्रह्मचर्य व्रत देते हुए कहा - "तू छहमाह के भीतर ठीक हो जायगा।" महाराज की वाणी के अनुसार वह स्वस्थ हो गया।

मृगी रोगी

एक व्यक्ति मृगी के रोग के कारण अपार व्यथा पा रहा था। सभी लोगो को ऐसा लगता था कि वह व्यक्ति न जाने कहाँ गिरकर मृगी के कारण मर जायगा। उसने महाराज की सेवा मे रहकर वहुत दिन गुरुदेव के प्रसादार्थ प्रार्थना की। एक समय महाराज वाहर जा रहे थे। वह उनके पीछे लग गया और अपनी विनय स्वामी की सेवा मे सुनाई।

आचार्यश्री ने कहा - "तू पूजन किया करना। थोडे समय मे ठीक हो जायगा।" थोडे समय मे वह उस भीषण व्याधि के कुचक्र से वच गया। महाराज के हृदय से निकली हुई वाणी का अद्भुत प्रभाव देखा गया है।

वानर वृन्द पर प्रभाव

शिखरजी की तीर्थ वदना से लौटते हुए महाराज का सघ सन् १९२८ में विध्यप्रदेश मे आया। विध्याटवी का भीषण वन चारो ओर था। एक जगह सघ पहुँचा, वहाँ ही आहार वनाने का समय हो गया। श्रावक लोग चिन्ता मे थे कि इस जगह वानरों की सेना का स्वच्छन्द शासन तथा सचार है, ऐसी जगह किस प्रकार भोजन तैयार होगा और किस प्रकार इन साधुराज की शास्त्रानुसार आहार की विधि सपन्न होगी? उस स्थान से आगे चौदह मील तक ठहरने योग्य जगह नहीं थी।

सघपति सेठ गेदनमलजी जवेरी आचार्यश्री के समीप पहुँचे। उन्होने कहा- "महाराज! यहाँ तो बदरो का वडा कष्ट है। हम लोग किस प्रकार आहारादि की व्यवस्था करेगे।"

महाराज बोले -"तुम लोग शीरा, पूडी उडाते हो। बदरो को भी शीरा पूडी खिलाओ।" इसके बाद वे चुप हो गए। उनके मुख मडल पर स्मित की आभा थी। वहाँ सघ के श्रावको ने कठिनता से रसोई तैयार की, किन्तु डर था कि महाराज के हाथ से बदर ग्रास लेकर न भागे, तब तो अतराय आ जायगा। इस स्थिति मे क्या किया जाय? लोग चितित थे।

अस्तु, चर्या का समय आया। शुद्धि के पश्चात् आचार्य महाराज जैसे ही चर्या के लिए निकले कि सैकडो बदर स्वयमेव अत्यन्त शान्त हो गए और चुप होकर महाराज की चर्या की सारी विधि देखते रहे। बिना विघ्न के महाराज का आहार हो गया। इसके क्षण भर पश्चात् बदरो का उपद्रव पूर्ववत् प्रारभ हो गया। गृहस्थ बदरो को रोटी खाने को देते जाते थे और स्वय भी भोजन करते जाते थे। ऐसी अपूर्व दशा महाराज के आत्म-विकास तथा आध्यात्मिक प्रभाव को स्पष्ट करती है।

आत्मध्यान का उपाय

एक दिन आर्यिका विशालमती अम्मा ने पूज्य गुरुदेव से पूछा - "महाराज! आप आत्मा का ध्यान करो, यह कहते है। किस प्रकार आत्मा का ध्यान किया जाय?"

महाराज ने सूत्ररूप मे एक महत्त्व की बात कही - "गप बसाला सीखा - पूर्ण चुपचाप रहना सीखो।" इन थोडे सारपूर्ण शब्दो मे योगिराज ने योगविद्या का रहस्य कह दिया। चुप बैठकर अतर्जल्प बन्द करना सामान्य बात नहीं है।

अनुभवपूर्ण कथन

इस विषय को समझाते हुए महाराज ने कहा था - "स्त्रियो को अपने हृदय मे स्फटिक की मूर्ति विराजमान करके उसका ध्यान करना चाहिए। पुरुषो को अपने शरीर मे विद्यमान आत्मा के भीतर ही देखना तथा विचारना चाहिए। कायगुप्ति, वचन गुप्ति तथा मनगुप्ति पालन करना चाहिए। अतर्जल्प को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करते-करते मुक्ति मिलेगी।"

योगिराज का अपूर्व अनुभव

उन्होंने यह अनुभव की बात कही थी - "सबेरे आठ बजे सूर्य की तरफ पीठ करके खडे हो जाओ। कायोत्सर्ग होकर १५ मिनिट पर्यन्त आत्मा का ध्यान करो। कुछ अभ्यास के बाद तुमको शरीर बराबर स्फटिक की मूर्ति दिखाई पडेगी।"

शिक्षण के विषय में आदर्श विचार

आचार्य महाराज की आदत रही है कि जो भी काम किया जाय, वह श्रेष्ठ हो। वे सख्या (quantity) के स्थान पर गुण (quality) को महत्त्व देते थे। श्रीशातिसागर अनाथाश्रम शेडवाल के सचालक महोदय को महाराज ने कुथलगिरि मे कहा था - "शेडवाल आश्रम मे पॉच छात्र रहे, तो भी अच्छी तरह उसे चलाना। अधिक सख्या का मोह मत करना। कार्य अच्छा होना चाहिए।"[१]

---

१ विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'विश्वभारती' विद्यालय मे पहले केवल पाँच ही विद्यार्थी थे। उनमें एक कविवर का पुत्र था, "During the first year Rabindranath had only five pupils, one of whom was his own son"। कविवर के समक्ष एक विशेष आदर्श था। सख्या का मोह न था। आज वह सस्था विश्वविद्यालय बनकर अत्यन्त समृद्ध स्थिति में है। जो लोग सख्या की ममता के बीमार हैं, उनको आचार्य महाराज तथा लौकिक-जगत् में विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्र की दृष्टि से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

-Rabindranath Tagore by Sykes, page 52

शिक्षण के विषय मे महाराज की दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट थी कि विद्यार्थी को ऐसा ज्ञान दिया जाय, जिससे वह आत्मा का कल्याण करते हुए अपने नरभव को सफल बना सके। जिसके द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण न कर सके, ऐसी पढाई, ऐसे तत्त्वदर्शी मुनिनाथ को कैसे पसन्द आ सकती थी? जिन महात्मा ने ससार-सुखो का परित्याग करके परमार्थ की सिद्धि मे जीवन लगा दिया, उन पुरुषरत्न की दृष्टि विषयासक्त साक्षरो से भिन्न होना स्वाभाविक है।

महाराज के विचारानुसार धार्मिक समाज के विपुल धन द्वारा पोषित बडे-बडे विद्यालय तक योग्य चरित्रनिष्ठ विद्वान बनाने के क्षेत्र मे पिछडे हुए हैं। आज सस्थाओं से जो छात्र विद्वान बनने का प्रमाण-पत्र लेकर बाहर आते हैं, उनमे बहुतो का सयम से तनिक भी प्रेम नहीं रहता, न सयमियो की सेवा-भक्ति के लिए उनके मन मे सद्भावना रहती है।

जिनेन्द्र-भक्ति को भी वे समाज के सपूत विपत्ति मानते हैं। ऐसे स्वच्छन्द ज्ञाताओ की, चरित्रभ्रष्ट कथित त्यागियो तथा धनिको से खूब पटती है। इससे अधर्म की ओर लोगो का झुकाव होता है। इस कारण आचार्यश्री उस शिक्षा को कल्याणप्रद कहते थे, जो 'चारित्त खलु धम्मो' की हृदय से प्रतिष्ठा करती है। ऐसी पाप-पोषिणी-विद्या, जिसे सीखकर पश्चात् जन्मान्तर मे जीव नरक या तिर्यच पर्याय की शोभा बढावे, धर्मगुरु को कैसे इष्ट हो सकती है?

कर्णधारो का कर्त्तव्य

आज वास्तव मे समाज के कर्णधारो का कर्तव्य है कि अपने ज्ञानकेन्द्रो की बारीकी से जॉच करके उनको इस रूप मे चलावे कि आचार्यश्री के दृष्टिकोण से उसकी अनुकूलता हो।

महान् आचार्य जिनसेन स्वामी ने बताया है कि आदिनाथ भगवान ने अपने परिवार के बालक-बालिकाओ को विविध शास्त्रो मे निपुण बनाया था, किन्तु उनकी दृष्टि से लोकविद्या के साथ परमार्थ विद्या का भी शिक्षण आवश्यक है। आदिपुराण के ये शब्द विशेष हितप्रद है -

राजविद्यापरिज्ञानादैहिकार्ये दृढा मतिः।
धर्मशास्त्र-परिज्ञानमतिर्लोकद्वयाश्रिता।। पर्व ४२-३४

-राजविद्या के ज्ञान से लौकिक वस्तुओं के विषय मे बुद्धि सुदृढ़ बनती है, किन्तु धर्मशास्त्र के परिज्ञान से उभय लोकों के विषय मे बुद्धि को दृढ़ता प्राप्त होती है।

(१) "आचार्य यतिवृषभ कहते हैं कि आगम के अध्ययन से 'अण्णाणस्स विणासो - 'अज्ञान का विनाश, "णाण-दिवायरस्स उप्पत्ती" ज्ञान दिवाकर की उत्पत्ति, "देवमणुस्सादीहि-सततमब्भाच्चण्पयागणि" - देव तथा मनुष्यों के द्वारा सदा पूजा एव "पडिसमय-असखेज्ज-गुणसेढिकम्मणिज्जरण" प्रति समय उत्पन्न होने वाली असख्यात गुणश्रेणि रूप कर्मनिर्जरा का प्रत्यक्ष लाभ होता है। आगामी काल मे श्रेष्ठ अभ्युदय तथा सिद्धत्व की प्राप्ति होती है।

परमार्थ ज्ञान

लौकिक ज्ञान का सिंधु परमार्थ ज्ञान के बिन्दु की महत्ता को भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इस भोगप्रधान युग की दृष्टि अनर्थ के जनक अर्थ की आराधना में अत्यधिक सलग्न पाई जाती है, इससे तीर्थंकरों की पुण्य सस्कृति का अवबोध कराने वाली विद्या की भी दृष्टि अर्थ की समाराधना में तत्पर पाई जाती है। यथार्थ में जगत् का कल्याण अर्थ की अन्ध आराधना में नहीं है। सपत्ति सत्पात्रों का अनुगमन करती है। लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम हुए बिना द्रव्य की उपलब्धि नहीं होगी। वादीभसिंह सूरि ने लिखा है - "पात्रता नीतमात्मान स्वय यान्ति हि सपद " - जो आत्मा अपने को सत्पात्र बनाता है, उसके समीप सपत्ति स्वयमेव आती है।

ज्ञानधन के विषय में पडित टोडरमल जी

जिन विद्याप्रेमियो की दृष्टि लक्ष्मी की चकाचोध से चकित हो उठी हो, उन्हे पडितप्रवर श्री टोडरमलजी सचेत करते हुए कहते हैं - "रे पापी! धन किछू अपना उपजाया तो न हो है। भाग्यतें होय है, सो ग्रन्थाभ्यास आदि धर्मसाधन ते जो पुण्य उपजे ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है, तो शास्त्राभ्यास किए कैसे न होगा? अर न होना है, तो शास्त्राभ्यास न किये कैसे होगा? तातें धन का होना न होना उदयाधीन है। शास्त्राभ्यासविषै काहे कौं शिथिल हूजे। बहुरि सुन, धन है सो तौ विनाशीक हे, भयसयुक्त हे, पापते निपजै है, नरकादिक का कारण है। अर यहु शास्त्राभ्यास रूप ज्ञान-धन हे जो अविनाशी है, भयरहित है, धर्म रूप हे, स्वर्ग मोक्ष का कारण है। सो महन्त पुरुष तो धनादिकको छोड शास्त्राभ्यास विषै लगे है, सो तू पापी शास्त्राभ्यास को छुडाय धन उपजावने की बडाई करे है।"

शास्त्रज्ञ की महत्ता

वे आगे यह भी लिखते हैं - "बहुरि तै कह्या धनवान के निकट पडित भी आनि प्राप्त होइ, सो लोभी पडित होहु अर अविवेकी धनवान होहि तहाँ ऐसे हो है। अर शास्त्राभ्यास वालो की तो इद्रादिक सेवा करै है। इहाँ भी बडे-बडे महन्त पुरुष दास होते देखिये है, तातै शास्त्राभ्यास वालो तै धनवान को महत मति जानो।" उनका यह कथन भी चिरस्मरणीय है - "देखो, शास्त्राभ्यास की महिमा, जाकौ होते परपरा आत्मानुभव दशा कौ प्राप्त होइ सो मोक्षमार्ग रूप फल निपजै है, सो तो दूर ही तिष्ठौ, तत्काल इतने गुण हो है, क्रोधादिक कषायन की मन्दता होय है। पच इन्द्रियन की विषयनि विषै प्रवृत्ति रुकै है अति चचल मन भी एकाग्र होय है। हिसादि पच पाप न प्रवर्तै है, हेयोपादेय की पहिचान होय है, आत्मज्ञान सन्मुख होय है।" जिनवाणी का अभ्यास और उसके परिशीलन के विषय मे उपर्युक्त कथन भ्रम भाव को दूर किए बिना नहीं रहेगा।

लौकिक शास्त्रो का अभ्यास

आत्म-कल्याण-कारिणी विद्या के अभ्यास के साथ प्रतिभाशाली गृहस्थ के लिए अन्य लौकिक शास्त्रो का अध्ययन भी उचित कहा गया है। महापुराणकार भगवज्जिनसेन स्वामी ने, उपासकाचार एव अध्यात्म शास्त्र के साथ शब्दविद्या, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, गणितशास्त्र, छदशास्त्र, शकुनशास्त्र आदि का अभ्यास भी उपयोगी बताया है।

वीरसागर की देशना

शिक्षा के सम्बन्ध मे आचार्य वीरसागर महाराज का यह कथन भी तत्त्वचिंतको के लिए माननीय है - "जैनधर्म के महत्त्व को बढाने के लिए हमे गुरुकुल चाहिए, जो हमारे पूर्णतया स्वाधीन हो। वहाँ जैनधर्म के ज्ञाता सच्चरित्र विद्वान् तैयार किये जावे,जो यह बतावे कि जैनधर्म कितना महत्त्वपूर्ण है। आज लोग अपनी सस्थाओ को सरकार के आधीन करदेते है। सरकार का स्वामित्व रहता है। उनकी ही शिक्षा रहती है। हमारी स्वाधीनता कहाँ रही, हमारी सस्था तो पूर्णतया हमारे स्वाधीन रहनी चाहिए।"

अत धन की लोलुपतावश सस्थाओ का भाग्य अनुभव-शून्य धनिको की इच्छा पर न छोड़कर सद्गुरु के कल्याणकारी सकेत के अनुसार प्रवृत्ति होनी चाहिए। बहुत विद्यार्थियो के बदले चरित्रवान श्रद्धालुधार्मिक थोडे भी छात्र सस्कृति-सरक्षण की दृष्टि से हितकारी होगे। धर्म और सस्कृति के सरक्षणार्थ विद्वानो का अभाव बढने लगा

है, अत इस प्रश्न को सुलझाने की ओर धार्मिक बंधुओं का गंभीर ध्यान जाना उचित है, आवश्यक भी है।

सेवा द्वारा सुफल लाभ

आचार्य महाराज तो वीतराग भाव वाले मुनि रहे है, किन्तु उनकी शरण मे आने वालो को समृद्धि मिली है और उनसे विमुख होने वालों को विपत्ति। महाकवि धनंजय ने कहा है - "हे जिनेन्द्र! आपके उन्मुख रहने वाला सुख पाता है। और विमुख बनने वाला कष्ट भोगता है। आप दर्पण के समान उन दोनों के समक्ष एक रूप में रहते हैं।" -दर्पण के समक्ष जैसा मुख व्यक्ति का रहता है, वैसा वह दिखता है। वह मुख को अच्छा बुरा नहीं बनाता है। महान् आत्माओं की ऐसी ही कीर्ति सुनी जाती है। उनसे रूठने वाला अहंकारी व्यक्ति कष्ट भोगा करता है।

आचार्य महाराज की सेवा में संलग्न रहने वाले अनेक व्यक्ति यदि अपनी-अपनी कथा लिखें, तो एक पुराण बन जाय, जिससे यह पता चलेगा कि किस प्रकार हीन या मध्यम परिस्थिति से वे संपन्न तथा समृद्ध हुए। अजैनों ने भी महाराज की भक्ति और सेवा से आनंद लिया है। धर्म और धार्मिक का शरण लेने वाला यथार्थ मे सुख को प्राप्त करता है।

भक्त-अभक्त

नसलापुर में एक मुसलमान था। वह महाराज के दर्शन के पश्चात् ही शुद्ध भोजन करता था। उस भक्त की बहुत उन्नति हुई। वहाँ एक दर्जी भी था, जो द्वेष भाव धारण करता था। एक वर्ष मे ही उसका बहुत पतन हुआ। ऐसी ही अनेक स्थानों की बाते सुनी जाती है।

वास्तव, में प्रशममूर्ति आचार्यश्री महान् आध्यात्मिक विभूति थे। उपनिषद् मे जिसे पराविद्या कहा है, उसके वास्तव मे आचार्य थे। यथार्थ मे वे इस भौतिकवादी युग मे लोकोत्तर महामानव थे।

श्रमणों के संस्मरण

❊❊❊

तपोमूर्ति महामुनि
श्री वर्धमानसागर महाराज के संस्मरण

(स्वर्गीय वर्धमानसागर महाराज आचार्य शातिसागर महाराज के जयेष्ठ बधु थे)

बाहुबली क्षेत्रदर्शन

इन परमपूज्य साधुराज का दर्शन १५ फरवरी सन् १९५७ को ८ बजे सुबह बाहुबली क्षेत्र (कुम्भोज ग्राम जिला कोल्हापुर) मे शुक्रवार के दिन हुआ था। उस दिन जिनेन्द्र पचकल्याणक मे जन्मकल्याणक का महोत्सव हो रहा थाा इनका शरीर सुडौल, गेहुआवर्ण युक्त था। ज्येष्ठ सुदी दशमी शक सवत् १७८५ ईसवी सन् १८६३ मे इनका जन्म हुआ था। ६४ वर्ष की जिनकी अवस्था हो, दिगम्बर शरीर और मन भी जिनका दिगम्बर हो ऐसे साधुराज के दर्शन से बडी शान्ति मिली।

वर्धमान भगवान के शासनकाल मे वर्धमान वय वाले सकल सयम की साधना मे अत्यन्त वर्धमान, वर्धमान स्वामी के दर्शन से अन्त करण का आनन्द भी वर्धमान हुआ। उनकी स्थिरता निर्मलता और सर्वाङ्गीण साधुता का परिचय पाकर मन आनन्दित होने के साथ चकित भी होता था। अधिक वृद्ध व्यक्ति से चला नहीं जाता, शरीर अपना वीभत्स रूप दिखाता है और वह तो अर्धमृतक (मृतप्राय) सा लगता है, उस शरीर मे श्रावक के सामान्य सयम का अभ्यास भी आज दिन शक्य नहीं होता। मृत्यु के पास पडा हुआ वह वृद्ध औषधियो आदि के द्वारा जीता हुआ मरणप्राय प्रतीत होता है, किन्तु ९४ वर्ष की अवस्था मे इस हीन काल मे असप्राप्तासृपाटिका सहनन वाले शरीर मे विद्यमान वर्धमान वयवाले वर्धमान सागर जी सचमुच मे आज के भोगी युग के लिये आश्चर्य की वस्तु थे। उनके मुखमण्डल पर विलक्षण तेज था। अद्भुत शान्ति से सुसज्जित उनका शरीर, अग प्रत्यग तथा आत्मा थी। यदि कोई देखता, तो उसे लगता मानो वह सचमुच मे शान्ति के सागर शान्तिसागर महाराज के पादपद्मो के पास पहुँच गया है। आचार्य महाराज की स्वर्गयात्रा के पश्चात् गुरुदर्शन न होने से व्यथित मन को इनके पास ऐसा लगा मानो जीवनप्रद सामग्री मिल गई।

वार्तालाप

मैने उन्हे प्रणाम किया और कुछ उच्च स्वर से उनके पास कहा - "महाराज! सुमेरुचन्द्र दिवाकर अपने गुरु के चरणो को प्रणाम करता है।" मेरे शब्द सुनते ही उन्होने बडे ध्यान से मेरी ओर देखा और उनके मुख मण्डल पर एक गहरी प्रसन्नता आ गई।

वे बोले - "बडा अच्छा हुआ आ गये। हमने तो बहुत पहले तुम्हारे आने का समाचार सुना था। बहुत दिन तक प्रतीक्षा भी की, फिर सुनने मे आया कि तुम जापान चले गये और अब एकदम तुम हमारे पास आ गये। हमे ऐसा लगता था कि शायद बडे महाराज के स्वर्गगमन के बाद तुम हमे भूल गये होगे।"

मैंने कहा - "महाराज! आपको कैसे भूल सकता हूँ? प्रतिदिन अभिषेक तथा पूजा के समय आपके पवित्र चरणो का स्मरण कर परोक्ष रूप से आपको अर्घ दिया करता था। आज आपको साक्षात् देखकर मेरे नेत्र धन्य हो गये। भारत के बाहर जापान आदि देशो मे, मैं अवश्य गया था, किन्तु आप सदृश गुरु के चरण मुझे वहाँ भी याद आते थे। अनेक जापानी मित्रों को - भाइयो और बहिनो को, आपकी फोटो बतलाता था और कहता था कि सौ के समीप वय वाले वर्धमान महाराज की अप्रतिम, नैसर्गिक सौन्दर्य सम्पन्न छवि को देखो। लोग देखकर हर्षित होते थे। उनके चेहरे पर विस्मय का भाव आ जाता था। इतनी अवस्था में वस्त्र आदि साधनो से रहित चौबीस घण्टे मे एक बार खडे होकर अपने हाथो की अजुलि मे विशेष नियमो के साथ आहार ग्रहण करने वाले ऐसे नररत्न आज जगत् में विद्यमान हैं, यह सचमुच मे बडे अचरज की चीज दिखती है।

मैंने शिमजू नगर जापान की विश्वधर्म परिषद् के केन्द्र को सन् १९६५ मे **चारित्र चक्रवर्ती** ग्रन्थ भेट किया था, उसमे आपका चित्र था। उसे देखकर किन्हीं को ऐसा लगता था कि यह कोई मूर्ति का चित्र है, जिसमे कारीगर ने ज्ञान, वैराग्य और तपस्या का अपूर्व भाव केन्द्रित कर दिया है।

कुछ भ्रान्त भाइयों को मैंने कहा था - "अरे भाई! यह तस्वीर नहीं है। यह शिल्पी की कृति नहीं है। यह हमारे गुरुदेव स्वर्गीय आचार्य शान्तिसागर महाराज के विद्यमान ज्येष्ठ बन्धु की असली फोटो है, जिन्होने श्रीमन्त परिवार मे जन्म धारण किया, किन्तु आत्म-विकास के लिए तृष्णा और दु ख के बीज भोगो को छोडकर दिगम्बर मुद्रा धारण की है।" महाराज! आपको इस जन्म में क्या शायद जन्मान्तर मे भी न भूलूँ।

इसके पश्चात् मैंने उनसे कहा - "आचार्य शान्तिसागर महाराज के स्वर्गवास होने के पश्चात् मेरे हृदय मे अनेक वार अवर्णनीय पीडा ओर वेदना उत्पन्न हुआ करती थी, क्योंकि अव उन महामुनि के सान्निध्य और सम्पर्क का सोभाग्य सदा क लिए समाप्त हो गया। कभी मन मे आता था, अनेक शास्त्रों को पढ कर मै अज्ञान के अन्धकार मे डूबा हूँ। जिनका जीवन समाधिमरण की अत्यन्त जाज्वल्यमान ज्वाला मे जलने के कारण अत्यन्त निर्मल शुभ्र और महाधवल वन चुका, उन क्षपकराज का चिन्तन कर चित्त मे सन्ताप आना अशोभन कार्य है, अमगल की वात हे, अभद्र चेष्टा है, किन्तु क्या किया जाय? मन मे प्राय प्रतिदिन अनेकवार गुरुदेव के स्मरण के साथ इस प्रकार की व्यथा उत्पन्न हुआ करती थी।

महापुराण का आख्यान

मै एक दिन महापुराण पढ रहा था। उसमे एक मार्मिक वर्णन आया। उसे पढकर मेरे व्यथित मन को वडी शान्ति मिली। महाकवि जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि - कैलाश पर्वत पर आदितीर्थकर वृषभनाथ भगवान विराजमान है। सयोगी-जिन के वाद वे अयोगी जिन हुए और क्षणभर मे लोक के अग्रभाग मे जा अनन्त सिद्धो की समिति मे पहुँच गये। उस अवसर पर देवो ने, देवेन्द्रो ने, नरो ने, नरेन्द्रो ने, सभी ने हर्ष और उत्साह से निर्वाण कल्याणक मनाया।

सौधर्मेन्द्र सोचता था, आज का दिन धन्य है! आज के सदृश अवसर कब आयगा, जब कि मोह कर्म का नाश करने वाले वृषभनाथ भगवान ने विकार भाव का अभाव किया और अब वे नित्य, निरजन, निराकार, विशुद्ध सिद्ध बन गये। चारो ओर आनन्द का सिन्धु उद्वेलित होरहा था। सचमुच मे वह दिन अन्वर्थ रूप मे स्वाधीनता (स्व+अधीनता) दिवस था। एक आत्मा अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले पर-पदार्थो का त्याग कर स्वाधीन बनी। अब वह पराधीन नहीं रही। ज्ञानवान के लिए अवर्णनीय आनन्द का वह दिन था। भक्तजन आज भी उस मगल दिवस को कालमगल मानकर हर्षित होते है और उसे पूज्य मानते है।

उस समय एक कल्पनातीत आश्चर्यप्रद घटना हुई। तत्त्वज्ञानियो का शिरोमणि, षट्खड का स्वामी, चक्रवर्ती, नहीं-नहीं आध्यात्मिक जगत् का चूडामणि भरतेश्वर, जो प्रभात मे प्राची के प्रागण मे उषा के आगमन पर लालिमा को देखकर वृषभनाथ प्रभु के चरणो को स्मरण करता था, प्रभापुज प्रभाकर को उदित होते हुए देखकर कवि जगत् के द्वारा वर्णित प्राची वधूटी का रत्नदीप न सोचकर, उसे वृषभनाथ भगवान के कैवल्य सूर्य

की प्रतिकृति विचारता था। वह महाज्ञानी भरत, प्रभु की निर्वाण वेला मे साश्रुनेत्र हो रहा है। उसका मन बडा दुखी है। ज्ञानी भरत की व्यथा को आनन्द सिन्धु मे निमग्न सुरेन्द्र नहीं समझ पा रहे है। वे आश्चर्य मे है। आज भरत क्यो शोकसिन्धु मे डूबा है? आज बुद्धिमान् भरत क्यो पागलसा बन गया है? भरत विचारवान थे। उन्हे लगता था कि अब भगवान चले गये। अब उनके दर्शन नहीं होगे। अपने पिता वृषभदेव को, नहीं-नहीं, भगवान आदिनाथ को मैं कहाॅ पाऊँगा? अब उनकी कहाँ पूजा करूगा? अब उनकी दिव्य-ध्वनि सुनकर अपने मोहाकुल मन को कैसे नवजीवन प्रदान करूगा? ऐसे विचारो से भरत बडा दुखी था। सब ने समझाया लेकिन किसी की भी बात भरत के मन को प्रभावित न कर सकी।

भरत के बन्धु, मुनियों के चूडामणि, सकल मुनिसघ के नायक वृषभसेन गणधर ने भरतेश्वर को समझाते हुए कहा - ''अरे भरत, आज तुम्हे क्या हो गया है? 'तोषे विषाद कुत ' - इस आनन्द की बेला मे, खेद क्यो करते हो। अरे! भगवान अपने पास तो सदा हैं। तुम इस भ्रम मे क्यों हो कि भगवान यहाॅ से चले गये और अब उनका दर्शन नहीं होगा। मैं तो उनका अभी भी दर्शन कर रहा हू और सदा दर्शन करता रहूँगा। भरत! थोडा विचार से काम लो। उन्हे चर्म चक्षुओं से मत देखो। सिद्धि के नाथ वृषभनाथ अब चर्म चक्षुओं से देखने योग्य नहीं हैं। अब वे सिद्ध भगवान बन गये हैं। उन्हे ज्ञान नेत्रो से देखो।'' वृषभसेन गणधर के ये शब्द बडे महत्त्व के हैं- ''अब वे ध्यानगम्य-ध्यानगोचर हो गए हैं।''

य: प्रागक्षिगोचर: सम्प्रत्येष चेतसि वर्तते।
भगवान् तत्र क: शोक: पश्यैन तत्र सर्वदा ॥४७-५८९ ॥

-जो भगवान पहले चर्मचक्षुओ के द्वारा देखे जाते थे, अब वे अन्त करण में विराजमान है, इसलिए तुम क्यों शोक करते हो? जब जी चाहे,तब उनका दर्शन कर सकते हो।

इस गुरुवाणी ने भरत के शोकाश्रुओ को आनन्दाश्रुओ के रूप मे परिणत कर दिया। ऐसी अलौकिकता उनमे न होती, तो वे आदिजिनेन्द्र के सकल श्रमण-सघ के शिरोमणि प्रथम गणधर कैसे बनते? वे चार ज्ञान के स्वामी थे।

मैंने वर्धमानस्वामी से कहा - ''महाराज! वह श्लोक मेरे लिए बडा शान्तिदाता बन गया। मैं सोचने लगा, कुथलगिरि में चर्मचक्षुओ की दृष्टि से शान्तिसागर महाराज

की सल्लेखना हुई है किन्तु मेरे मनमन्दिर में मेरे आराध्यदेव शान्तिसागर महाराज विराजमान है। वे तो विद्यमान ही हैं इसलिए अब मुझे शान्तिसागर महाराज का स्मरण कर अशान्ति नहीं शान्ति ही मिलती है।"

मार्मिक बात

गहरी साँस लेते हुए, वर्धमानसागर महाराज ने कहा - "अरे पंडितजी! महाराज तो गये। प्रत्यक्ष और परोक्ष दर्शन में बड़ा अन्तर है। क्या महाराज का प्रत्यक्ष दर्शन होता है? वह तो गया। उन्होंने गजब की तप साधना की थी।"

सन्देश

प्रश्न - "आचार्य महाराज ने सल्लेखना के काल में आपको कोई विशेष संदेश भेजा था? प्रार्थना है कि उस पर थोड़ा प्रकाश डालें।"

उन्होंने कहा - "महाराज ने कहा था कि निरन्तर आत्मा का ध्यान करना। आर्तध्यान मत करना। इसी प्रकार आत्म-चिन्तन में लगे रहना, जैसे भरत महाराज उसमें लगे रहते थे। आत्मा का दर्शन करो। लगातार आत्मा का ध्यान होगा नहीं, इसलिए शुभ कार्यों में भी लगे रहना। महाराज ने एक बात कही थी कि आत्मा का चिंतन करो। मन को फिरने मत दो। आत्मा में लीन होओ। यह बात हमने अच्छी तरह पकड ली और अब इसी में लगे रहते हैं। कभी-कभी मन बाहर भी घूमता है। हम उसको पकड कर जबरदस्ती आत्मा की ओर लगाते हैं।"

उन्होंने बताया कि एकाग्रचित्त होने पर शरीर की कुछ खबर नहीं होती। अब हमारा शरीर बहुत कमजोर हो गया है। उसमें शक्ति नहीं रही है किन्तु वृद्ध शरीर में स्थित आत्मा में शक्ति है। कभी-कभी सारी रात ध्यान में बीत जाती है। तीन घंटे तक तो सहज ही ध्यान में बैठ जाता हूँ। यह आत्मशक्ति का फल है।

प्रश्न - "महाराज! आप ध्यान कब करते हैं? मेरा अभिप्राय रात्रि के समय से है।"

उत्तर - "हम रात को १२ बजे ध्यान को बैठ जाते हैं और करीब तीन घंटे तक आत्मचिंतन तथा आत्मध्यान में संलग्न रहते हैं।"

प्रश्न - "महाराज! शरीर आपको कष्ट देता है या नहीं?"

उत्तर - "व्यवहार दृष्टि से यह कष्ट देता है, निश्चय से वह हमारा क्या बिगाड

सकता है? अब हम आत्मशक्ति से ही काम लेते हैं, अन्यथा बाहर शौच को जाने की शक्ति भी अब शरीर मे नहीं है।''

प्रश्न – ''महाराज! आजकल लोग व्यवहार को अहितकारी कहते है। निश्चय को ही कल्याणकारी कहते हैं। शास्त्रों के स्वाध्याय और अनुभव के आधार पर आपका मनोगत जानने की इच्छा है।''

उत्तर – ''व्यवहार दृष्टि से पाप विष का कुम्भ है और पुण्य अमृत का कुम्भ है, किन्तु शुद्ध उपयोग की स्थिति में पाप और पुण्य दोनो विष के कुभ हैं। प्रारम्भ की अवस्था मे पुण्य अमृत-कुभ है और पाप विष-कुम्भ है, इसलिए उन्होने कहा - ''बाबा! एकान्त नको - अरे भाई, एकान्त पक्ष नहीं पकडना। एकान्त का पक्ष पकड लिया, तो 'मिथ्यात्वी झाला' - मिथ्यात्वी हो गये।'' कितना सुन्दर समन्वय उन्होंने किया। प्रारम्भिक अवस्था में पाप के मार्ग से हटकर पुण्यपथ में लगो। इसके पश्चात् आत्मभाव के जागृत होने पर अशुभ के समान शुभ को छोड शुद्ध मे लग जाओ। जो व्यवस्थित रूप से सीढियों पर पैर रखे बिना एकदम उछल कर उच्चतम स्थल पर पहुँचना चाहते हैं, वे चपल बालक सदृश भूतल पर गिरकर अपने प्रमाद और अतिरेक के कारण दु खी होते हैं और हाथ पैर टूटने से कष्ट भी पाते हैं। महाराज ने सूत्र रूप में कह दिया, 'एकान्त नको' - एक पक्ष पकडने की जिद्द छोडो। स्वामी समन्तभद्र ने श्रावकाचार मे पाप-निरोध को महत्त्व दिया है। वहाँ पुण्य-निरोध की चर्चा नहीं की है। उनके शब्द है -

यदि पापनिरोधोन्य-संपदा कि प्रयोजनम्?
अथ पापास्रवोस्त्यन्यसंपदा कि प्रयोजनम्?

जन्म कल्याणक

कुछ समय चर्चा के उपरान्त महाराज भगवान के जन्म कल्याणक महोत्सव के लिए चले। वे वृद्ध पितामह सदृश साधुराज ईर्यापथशुद्धि पूर्वक बहुत धीरे-धीरे बडी सावधानी से पैर उठाते हुए दो सौ गज की दूरी पर स्थित विशाल पण्डाल मे पहुँचे। जन्मकल्याणक का पावन दृश्य देखकर भिन्न-भिन्न प्रान्तो से आगत जनता हर्षित हो रही थी। चार दिगम्बर मुनिराज वहाँ थे। क्षुल्लक एव आर्यिका आदि उच्च त्यागी समुदाय पचास से अधिक सख्यामें उस पावन प्रसग पर विद्यमान था। कोल्हापुर मठ के स्वामी क्षुल्लक जिनसेन महाराज तथा श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज भी थे, जिनके तत्त्वावधान मे पचकल्याणक का कार्य हो रहा था। मैं भी शास्त्र में वर्णित जिनेन्द्र पचकल्याणक और

मेरु पर किये गये प्रभु के अभिषेक आदि के पावन प्रसग को अपने स्मृति पटल मे लाकर देखता था। मैं वर्धमानसागर महाराज के चरणो के पास ही बैठा था। बार-बार आँखें उनके मनोज्ञ वीतराग मुखमण्डल पर जाती थीं। एक प्रश्न मन में आया। कुछ देर तक तो मैंने उसे दबाया, किन्तु तीव इच्छा होने पर मैने वर्धमानसागर महाराज से निवेदन किया।

प्रश्न - "भगवान के जन्म कल्याणक का वैभव गृहस्थ आदि लौकिक जनों को स्वभावत अच्छा लगेगा। आप परम तपस्वी हैं, इसलिए तपकल्याणक आपको प्रिय होना था, जन्मकल्याणक मे आने मे आपको क्या लाभ हुआ?"

पहले तो मै सोचता था कि मेरा प्रश्न कहीं अर्थ का अनर्थ न कर दे, क्योंकि कभी-कभी कई विचित्र बुद्धिमान् लोग ऐसा करके अमृत को विष बनाने में आनन्द लेते हैं, किन्तु यहाँ मुझे कोई भय नहीं था। कारण, मैं महाराज को जानता था कि वे शान्ति के सागर गुरुदेव के छोटे नहीं, बडे भाई हैं। वे मुझे भी जानते थे, इसलिए मेरा प्रश्न महाराज ने बडे प्रेम से सुना।

प्रश्न - "उन्होंने मुझ से पूछा, यह बताओ हम जगत् मे हैं या जगत् के बाहर हैं?"

उत्तर - मैं गहरे विचार में पड गया कि महाराज क्या पूछ रहे हैं? मेरा प्रश्न कुछ और है और उस पर प्रतिप्रश्न कुछ विलक्षण है। क्या उत्तर दूँ? सोचकर मैंने कहा - "महाराज! आप जगत् मे हैं।"

तब उन्होंने कहा - "ठीक बात है, हम जगत् में हैं। तब जिनेन्द्र भगवान के जन्म होने पर सुर, असुर, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी,नारकियो को भी सुख और शान्ति मिली, सभी जीवों को आनन्द मिला, तो बताओ हमको क्यों नहीं आनन्द मिलेगा?" उनके उत्तर को सुनकर मैं तो आनन्द विभोर हो गया और मैंने उनकी साधुत्व से प्रेरणाप्राप्त प्रतिमा को प्रणाम किया। औरों को भी यह उत्तर सुनाया। सुनते ही सब बडे प्रसन्न हुए।

तप कल्याणक के दिन मैं महाराज के पास बैठा था। सोच रहा था, कुछ प्रश्न पूछूँ। लेकिन कोई बात मेले की भीड मे पूछने योग्य चित्त में नही आ रही थी। मै उनके चरणो को क्षण भर धीरे-धीरे देखने लगा। उस समय मुझे एक प्रश्न सूझा। मैंने कहा - "महाराज! आपके चरण बहुत अच्छे लगते हैं।"

उत्तर - "अरे! पाँव चमडे का है, इसमे क्या अच्छापन है?"

मैंने कहा - "महाराज! इसमे हमारे देवता रहते हे।"

उत्तर - "अरे बाबा, यह शरीर चमडे का है। भक्ति करो तो देवता है, नहीं तो कुछ नहीं है। इसे ध्यान में रखो, जैसा भाव होता है, वैसा पदार्थ प्रतीत होता है।"

अपूर्व केशलोच

ता १८ फरवरी सन् १९५७ को उन्होने केशलोच किया। दूर-दूर से हजारो स्त्री-पुरुष केशलोच देख रहे थे। मैने देखा कि आधे घण्टे के भीतर ही उन्होने केशलोच कर लिया। किसी की सहायता नहीं ली। चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं थी। धीरता और गभीरता की वे मूर्ति थे। जैसे कोई तिनका तोडता है उस तरह झटका देते हुए सिर तथा दाढी के बालो को उखाडते जाते थे। लो! केशलोच हो गया। उन्होने पिच्छी हाथ मे लेकर जिनेन्द्र को प्रणाम किया। तीर्थंकरो की वन्दना की।

अब उनका मौन नहीं है, ऐसा सोचकर धीरे से मैंने पूछा - "महाराज! अभी आप केशलोच कर रहे थे, उस समय आपको पीडा होती थी कि नहीं?"

उत्तर - "अरे बाबा! रचमात्र भी कष्ट नहीं होता था। लेशमात्र भी वेदना नहीं थी। हमें ऐसा नहीं मालूम पडता था कि हमने अपने केशो का लोच किया है। हमे तो ऐसा लगा कि मस्तक पर केशो का समूह पडा था, उसे हमने अलग कर दिया। बताओ, हमने और क्या किया? देखो एक मर्म की बात बताते है। शरीर पर हमारा लक्ष्य नहीं रहता है। केशलोंच शुरू करने के पहिले हमने जिन भगवान का स्मरण किया और शरीर से कहा - अरे शरीर! हमारी आत्मा जुदी है, तू जुदा। 'का रडतोस' - अरे! क्यो रोता है? हमारा तेरा क्या सम्बन्ध? बस केशलोच करने लगे। हमे ऐसा नहीं मालूम पडा कि हमने अपना केशलोंच किया है।"

उनकी अत करण की बाते सुनकर यह समझ में आता था कि ये विशुद्ध वाक्य, यह पीयूषगर्भिणी वाणी, आत्मामृत का रस पान करने वाली सुरेन्द्र वन्दित अन्तरात्मा की है। जो बहिरात्मा, अतरात्मा का अभिनय करते हुए विषयो मे आसक्त हो अध्यात्म की आकर्षक शब्दो में स्तुति करते है और लोगो से प्रशसा का प्रशस्ति-पत्र प्राप्त करते है, उनकी कथा, उनका चरित्र और इन अन्त बाह्य दिगम्बरत्व को धारण करने वाले साधुराज में इतना ही अन्तर है जितना कि काक और कोकिला में, पीतल और स्वर्ण मे, चूना और दूध में, आकाश और भूतल मे है। उनका उत्तर सुनकर मुझे स्मरण आ गया वह क्षण, जब मैं १९५५ के सितम्बर में सल्लेखना के ३५ वे दिन क्षपकराज

श्रीशान्तिसागर महाराज की कुटी मे करीव तीन घण्टे वैठा था, उन वीतराग वाणी की श्रद्धा से परिपूर्ण लोकोत्तर आत्मा के समीप। उसी जाति की श्रद्धा इन महाराज की भी प्रतीत हुई। माता सत्यवती ने ये दोनो विलक्षण आध्यात्मिक रत्न विश्व को दिये जिससे जैन सस्कृति कृतार्थ हुई। अद्‌भुत नि स्पृहता और वीतरागता उनमे विद्यमान थी।

पचकल्याणक महोत्सव मे रहते हुए यह इच्छा बनी रहती थी कि वर्धमानसागर महाराज के पास पहुँचकर कोई-न-कोई निधि प्राप्त करलूँ। एक बडी कठिनता मेरे मार्ग मे थी। उन्हे कन्नड भाषा वोलने का अच्छा अभ्यास था। मराठी भी वे वोलते थे। हिन्दी भाषा से उनका वहुत कम परिचय था। इसलिए अपने प्रश्न को साफ तौर पर अपने शब्दों मे पहुँचाने मे वडी विषम समस्या उपस्थित होती थी। अनुवादक-दुभाषिया सज्जन की कृपा और कुशलता द्वारा मेरा भाव गुरुदेव जानते थे। कभी-कभी कोई सज्जन मेरे प्रश्न को विना समझे ही विघ्न रूप वन जाते थे। वे कहते थे - पण्डितजी! महाराज थके हैं, अभी प्रश्न रहने दीजिये, फिर कभी पूछना। इस तरह अनेक वार मनोकामना पूर्ण नहीं होती थी। एक वार मैने विघ्नकर्ता से कहा - "मेरे पूछने मे आप विघ्न रूप क्यों बनते है?"

मेरे शव्दो को सुनकर महाराज वोले - "हमारी कोई परवाह न करो। तुमको लाभ मिलता है, तो ले लो। हमारा इसमें क्या नुकसान है? हम जानते हैं, तुम बडी दूर से, वडे प्रेम से और भक्ति से आए हो।" इससे मेरे मार्ग का विघ्न ढीला हो गया।

प्रश्न - "महाराज! मै तो आचार्य महाराज के बारे मे कुछ जानना चाहता हूँ। यह तो बताइये कि स्वप्न मे उनका दर्शन होता है या नहीं?"

उत्तर - "जागृत अवस्था के भाव स्वप्न मे आते हैं। अनेक बार उनका दर्शन होता है। वे यही कहते है - अपने व्रत मे स्थिर रहकर आत्मचिन्तन करो।"

रुद्रप्पा की समाधि

उन्होने आचार्य महाराज के गृहस्थ अवस्था के मित्र लिंगायत धर्मावलम्बी श्रीमन्त रुद्रप्पा की वात सुनाई। सत्यव्रती रुद्रप्पा वेदान्त का बडा पडित था। वह अत्यन्त निष्कलक व्यक्ति था। वह अपने घर मे किसी से बात न कर दिन भर मौन बैठता था। कभी-कभी हमारे घर आकर आचार्य महाराज से तत्त्वचर्चा करता और उनका उपदेश सुनता था।

प्रश्न - "महाराज! जिनवाणी के ग्रन्थ तो सभी अच्छे है, किन्तु यह वताइये कि किस शास्त्र पर आपका विशेष प्रेम है?"

धवल शास्त्र

उत्तर - "जिस ग्रन्थ द्वारा मेरा कल्याण हो, वही प्रिय है। हमे आत्मकल्याण की बात बतानेवाले शास्त्र सुनकर आनन्द आता है। समयसार अच्छा ग्रन्थ है, अन्य ग्रन्थो मे आनन्द आता है, किन्तु धवल ग्रन्थ सुन कर बहुत आनन्द आता है। उसका सूक्ष्म वर्णन जब हम सुनते है, तब उसमे मन खूब लगता है। उस भगवद् वाणी को सुनकर हृदय अत्यन्त हर्षित होता है।" उन्होने यह भी बताया - "बाल्यकाल से ही भक्तामर पर हमारा बडा विश्वास रहा है, प्रारम्भ से ही उसमे आनन्द आता था।"

उन्होने कहा - "हमारे परिवार के लोग रात्रि-दिन धर्मकार्य मे मग्न रहते थे। कोई निर्ग्रन्थ आते, तो उपाध्याय आकर हमारी मातुश्री को कहता था - "आइ (माँजी) साधु महाराज आये हैं। वे हमारे घर की तरफ आते, तब हमारी माता सदा उनको आहार दिया करती थी।"

आत्मीयतापूर्ण दृष्टि

वहाँ बाहुबली मे मैने देखा, अपार जन समुदाय वर्धमानसागर महाराज के दर्शनो को आता था। आसपास के सैकडो गॉवो से लोग उनके समीप बडे प्रेम, भक्ति और आत्मीयता से आते थे। उनको देखकर महाराज ने हम से कहा - "यह सब हमारे मित्र, प्रेमी लोग है। आसपास के लोग हमसे मिलने आये है। ये हमारे मित्र हैं। इससे यह नहीं समझना कि हमारा इनके प्रति मोह है। ये ही क्यो, सारा जगत् हमारा बन्धु है। प्राणी मात्र हमारे मित्र है। बताओ! शत्रु कौन है? हमारे शत्रु तो आठो कर्म हैं। उनके सिवाय सारे जगत् मे सब हमारे बन्धु है, मित्र है।"

कुछ लोग उनसे बाते करते थे तब उनके कोई हितचिंतक चाहते थे कि वे लोग चुप रहे। महाराज बोले - "हमे कष्ट पडता है, इसकी कोई चिन्ता नहीं है। लोगो का समाधान होना चाहिए।" अनेक लोग जब एक साथ बोलते थे, तब महाराज कहते थे - "अरे भाई! मुख तो एक है, किस-किस से बोले?" फिर भी वे सब को सान्त्वना देते थे। मधुर शब्द बोलते थे। कहते थे - "देखो! बेचारे बडी भक्ति से आते है, प्रेम से बोलते है, उनको कठोर बात कैसे कहूँ?"

इनका स्वभाव सदा से बडा मृदुल रहा है। बालमडली का इन पर बडा प्रेम रहता था। अपनी माता से भी अधिक इनके प्रति बच्चो का प्रेम रहता था। सब इनके पास आकर प्रसन्न रहा करते थे। इनके पास आने वाला हर्षित ही होता था।

दीक्षा की चर्चा

वे कहते थे - "मुझ पर सब का बडा प्रेम था, किन्तु मैने जिस दिन घर छोडा, तो कुटुम्ब परिवार की तरफ फिर दृष्टि नहीं दी। छोटा भाई कुमगोडा रोता था। वह तो मूर्छित हो गया था। बहिन कृष्णाबाई जोर-जोर से रो रही थी। मैंने वैराग्य मे प्रवेश करते समय पीछे नहीं देखा। एक झटका देकर सारे प्रेम के बन्धन को तोड दिये।"

मार्मिक उपदेश

२० फरवरी को वर्धमानसागर महाराज का बडा मार्मिक उपदेश हुआ। वैसे वे उपदेश कम देते थे। कारण, आचार्य महाराज ने उन्हे आत्म-रत रहने को कहा था, अत वे आत्मा के ध्यान मे सदा सावधानी रखते थे। अनुराग शरीर पर नहीं था। या तो आत्मरत थे, या परमात्मरत थे। मेरे निवेदन पर उन्होने उपदेश देना स्वीकार किया और कहा - "भव्य जीवो! इस पचकल्याणक मे आकर तुमने पुण्य का बन्ध किया। यह जीव चौरासी लाख योनियों मे भटकता रहा है। कभी पुण्य किया, कभी पाप कमाया। पाप तो पाप है ही, परमार्थ से पुण्य भी उसी प्रकार है। दोनो एक रूप है। अपनी आत्मा का कल्याण करो। आत्मा का चितन किये बिना पाप का नाश नहीं होता। आत्मध्यान करने से मोक्ष मिलेगा। बाबा! हमारा कहना है कि मोक्ष को जाने का प्रयत्न करो। जब आत्म-ध्यान न बने तो धर्मध्यान करने का उद्योग करो।"

प्रश्न - "महाराज! कृपाकर बताइए, क्या आपका मन लगातार आत्मा मे स्थिर रहता है या वह अन्यत्र भी जाता है?"

उत्तर - "हम आत्मचिंतन करते हैं। कुछ समय के बाद जब ध्यान छूटता है, तब मन को फिर आत्मा की ओर लगाते हैं। कभी-कभी मोक्षगामी त्रेसठ शलाका पुरुषो का चिंतवन करता हूँ। कभी-कभी बुरा भी चितवन हो जाता है। उस समय मै मन को कहता हूँ, अरे बिना कारण बुरे ध्यान मे क्यो रहता है, शुभ ध्यान मे रह। इससे मन फिर ठिकाने पर आ जाता है। मैंने भला बुरा सब कुछ आप से कह दिया।"

अपने अन्त करण का कितना निर्मल, सच्चा और प्रामाणिक वर्णन इन साधुराज ने किया, यह विचारवान ही सोच सकता है। उनके जीवन मे कृत्रिमता तथा कुटिलता का

जग भी सवध नही था। जनसाधारण क लिए जटिल वाता का निम्पण करना, ऐसी वाते कहना जो उनकी समझ म न आये, ओर व भ्रम भँवर मे फँस जॉय, यह वात वे ठीक नहीं समझते थे। उन्होंन कहा था - "सर्व साधारण को सीधा रास्ता वताओ। धीरे-धीरे प्रयत्न करने पर कठिन मार्ग भी साध्य हो जाता है।"

प्रश्न - "महाराज! आपके जाप का क्या क्रम रहता हे?"

उत्तर - "प्रभात मे अठारह माला, मध्याह्न मे ५ माला, सध्या के समय ३६ माला, मध्यरात्रि मे ५ माला फेरता हूँ ओर अन्य समय मे मै आत्मा का ध्यान करता हूँ।"

जो लोग सोचते है, आत्मा की वाते करो, सयम में क्या धरा है, शरीर को खूव माल खिलाओ। जगत् का वेभव, जड पुद्गल का रागरग देखो, ओर आत्मा का आनन्द लूटो, वे लोग असली तत्त्व के समीप नहीं पहुँच पाये। वर्धमानसागर महाराज के जीवन का निकट से निरीक्षण करने पर यह ज्ञात हुआ कि असयमी जीवन को छोडकर सयम की शरण को ग्रहण करनेवाला विचारवान व्यक्ति आत्मा को विषयो की दासता से निकालकर अपने स्वरूप के उन्मुख वनाने का सुअवसर प्राप्त करता है। परिग्रह का पिशाच सहज चचल मन को और शेतान वना देता है। अव तो लोग उस शैतान मन के समर्थन मे शास्त्रो का आधार खोजते फिरते है। यह मार्ग ठीक नहीं है। सयम से जीवन को समलकृत करनेवाला साधु किस प्रकार निराकुल हो आत्महित मे सलग्न हो जाता है, यह बात ऐसे सद्गुरु के जीवन को देखने से भली प्रकार समझ मे आ जाती थी।

बाहुबली क्षेत्र मे पचकल्याणक के पश्चात् महाराज लोगो के आग्रह पर समीपवर्ती कुम्भोज ग्राम मे गये। जाते समय एक धर्मात्मा विद्वान् महाराज के समीप लाये गये, जिनके अधोभाग को लकवा (पक्षाघात) ने बेकाम बना दिया था। उन्होंने उन साधुराज को प्रणाम किया। महाराज ने कहा - "तुमने पहिले पुण्य किया था, तो तुमको धन-वैभव सभी कुछ मिला, किन्तु तुमसे कोई पाप बन गया, जिससे तुम्हारे आधे अङ्ग मे पक्षाघात का कष्ट हो गया। अब तुम सदा धर्म का ध्यान रखना।"

उद्बोधक चर्चा

महाराज काष्ठ के आसन पर अवस्थित थे। उनके निकट एक घडी रखी थी। घडी को देख मैने उनसे मधुर उत्तर पाने की लालसावश पूछा - "महाराज! यह घडी आपकी है?"

उत्तर - "यह घडी मेरी केसे? पास म बैठा हुआ क्षुल्लक इसमे चावी देता हे। अँधेरे मे यह चमक्ती है। जिनसेन भट्टारक ने यह घडी लाकर दी थी। पहिले यह घडी आचार्य महाराज के यहाँ थी। इसका हमारा क्या सम्बन्ध हे?"

प्रश्न - "महाराज! यह घडी आपकी नहीं हे, हम तो आपके हे न?"

उत्तर - सस्मित वदन से वे बोल उठे - "आप भी हमारे हो, तो हमारे साथ चलो। हमारे साथ क्यो नहीं रहते? अरे बाबा! इस जगत के मध्य में यह शरीर भी माझा नाहीं, मेरा नहीं हे। कोई भी पदार्थ मेरा नहीं हे। 'अन्तकाले कोणी नाही, जासी एकला' - अन्तकाल में जीवका कोई साथी नहीं है, वह अकेला जायगा।"

एक साधारण से प्रश्न पर केसी ज्ञान भरी बातें वर्धमानसागरजी के मुख से मिलीं। इन्हीं गुणो के कारण तो इनके नाम मे सागर शब्द हे। ससार-प्रसिद्ध सागर मे खारा पानी रहता है, किन्तु इस सागर मे प्रेम भरा मधुर जल विद्यमान हे, जिसका पान करने से संसार की तृषा मिटती हे। वर्धमानसागर महाराज आचार्य शान्तिसागर महाराज के वडे भाई थे। दोनो समान दिखते ही नहीं थे, वरन् दोनो के अन्त·करण में भी समानता का दर्शन होता था। मे सोचता हूँ, इस काल मे मुमुक्षुओं के लिए शान्तिसागर महाराज सूर्य थे, तो वर्धमानसागर महाराज चन्द्र सरीखे लगते थे।

नांद्रे में चातुर्मास

भादो सुदी पचमी २९ अगस्त सन् १९५७ के प्रभात मे नाद्रे जनपद दक्षिण सातारा जिला में वर्षाकाल व्यतीत करने वाले महामुनि आचार्यकल्प १०८ श्री वर्धमान सागर महाराज के चरणों की अभिवदना करने का मुझको पुन परम सोभाग्य मिला। उनके मुख पर दिव्य आभा थी। शरीर सतेज था। ९५ वर्ष की अवस्था मे भी उनका शरीर पूर्णतया नीरोग देख आश्चर्य हुआ। आजकल लगभग ६० वर्ष की अवस्था वाला व्यक्ति पर्याप्त वृद्ध दिखने लगता हे, किन्तु ९५ की आयु मे निर्ग्रन्थ-शिरोमणि वर्धमानसागर महाराज की शरीर-स्थिति आश्चर्य उत्पन्न करती थी। निर्दोष रीति से महाव्रतो के पालन द्वारा उनकी आतरिक स्वस्थता अपूर्व थी। ऐसी अलोकिक पूज्य आत्मा के सान्निध्य से अवर्णनीय शाति मिली। लम्बे प्रवास का कष्ट तो उनके दर्शन से तथा उनके मगलमय आशीर्वाद से तत्काल दूर हो गया।

मै वर्धमानसागर महाराज के पास एक विशिष्ट उद्देश्य से गया था। स्व आचार्य शान्तिसागर महाराज के तपोमय उज्ज्वल जीवन के विषय मे उनसे कोई बात ऐसी मिल

जाय, जो स्व-पर कल्याण की महत्त्वपूर्ण सामग्री रूप हो तथा वर्धमानसागर जी के जीवन को निकट से देखने पर यह पता चलेगा कि माता सत्यवती ने कैसे विलक्षण पुत्रो को जन्म दिया कि जिनकी आतरिक विभूति की समता करने वाला समस्त जगत् मे कोई नहीं है। दो सगे भाइयो का इस हीन सहनन तथा चचल चित्तवाले काल मे निर्दोष दिगम्बर योगिराज का जीवन व्यतीत करना सचमुच मे अद्भुत बात है। वर्धमानसागर महाराज को देखकर भी आचार्यश्री की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है।

वर्धमानसागर महाराज की मातृभाषा कानडी है। उस प्रात मे यह एक विलक्षण बात है कि जैन लोगो की घरेलू बोली कानडी है, किन्तु जब वे अन्य लोगो से बातचीत करते है, तो मराठी भाषा का प्रयोग करते है। उस प्रात मे रहनेवाले, जैनो तथा हिन्दू आदि जैनेतरा की सख्या की दृष्टि से अनुपात उत्तर प्रात की अपेक्षा विपरीत है। बहुत से ऐसे ग्राम है, जहाँ ८० प्रतिशत, ९० प्रतिशत सख्या जैनो की पाई जाती है। शेष सख्या इतर सप्रदाय वालो की है।

करुणापूर्ण हृदय

मेरे प्रणाम करने पर महाराजश्री ने अपना मगलमय पवित्र आशीर्वाद देते हुए घर मे सबका कुशल वृत्तान्त पूछा। मैने विनयपूर्वक कहा - "महाराज! आज दशलक्षण पर्व का प्रारम्भ है। मैने आज उपवास का निश्चय किया है।"

वे बोले - "तुम हजार-आठ सौ मील की दूरी से अनेक कष्टो तथा असुविधाओं को सहन करते हुए यहाँ आए हो, आजका उपवास ठीक नहीं है। तुम्हे शास्त्र वाचन का भी परिश्रम उठाना है।"

मैने कहा - "महाराज! कल सध्या को बारामती के पास लासुर्णा ग्राम मे १०८ तपस्वी गुरु धर्मसागर महाराज का दर्शन हुआ था। उन्होने कहा - पचमी महापर्व का प्रारभिक दिन है, इसलिए उपवास करना चाहिए।" मैंने उनसे कहा था - "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" मेरी यह बात सुनकर वर्धमान महाराज का करुणापूर्ण हृदय प्रभावित हुआ।

वे बोले - "पचमी महापर्व का प्रथम दिवस है, किन्तु अन्य बाते भी विचार योग्य हैं। आचार्य धरसेन स्वामी के पास जब भूतबलि-पुष्पदत दो मुनिराज सुदूर प्रदेश से यात्रा करते हुए पहुँचे थे, तब आचार्य ने उन शिष्यो को भी दो दिन विश्रान्ति का समय दिया था।"

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज

वयबुद्धिवृद्ध वर्धमान महाराज

आचार्य धर्मसागरजी महाराज
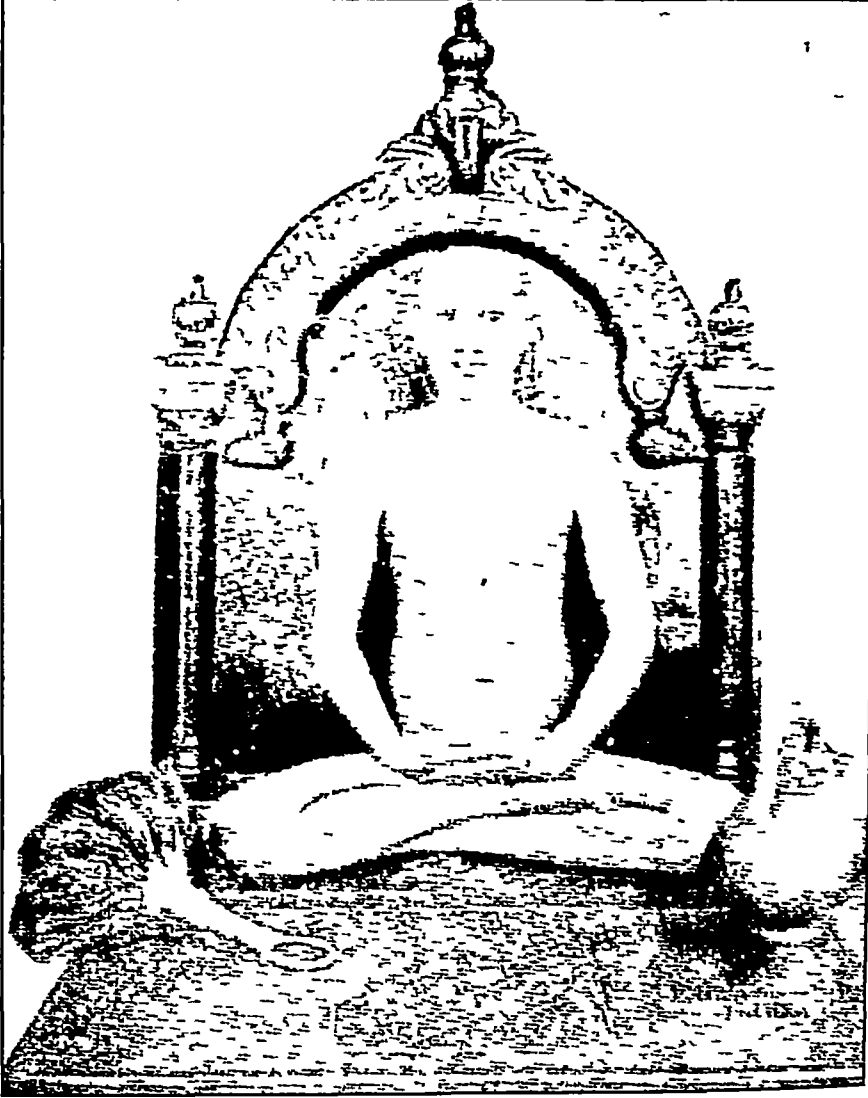
परम कारुणिक नेमिसागर महाराज

पायसागर महाराज आहार ले रहे है

वैराग्यमूर्ति पायसागर महाराज

तपोधन धर्मसागर महाराज

यतिराज पूज्य ज्ञानभूषण महाराज
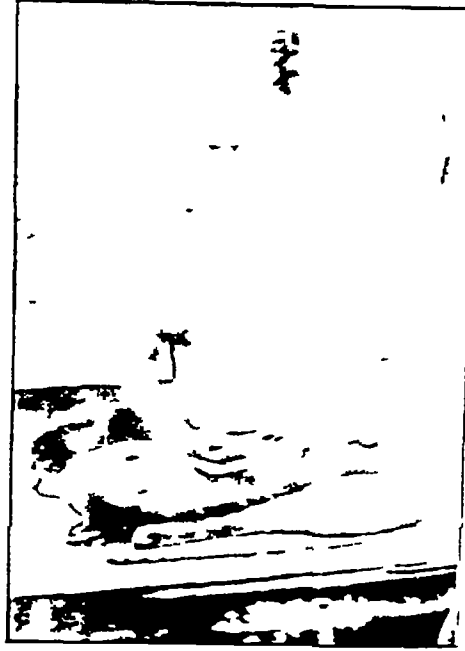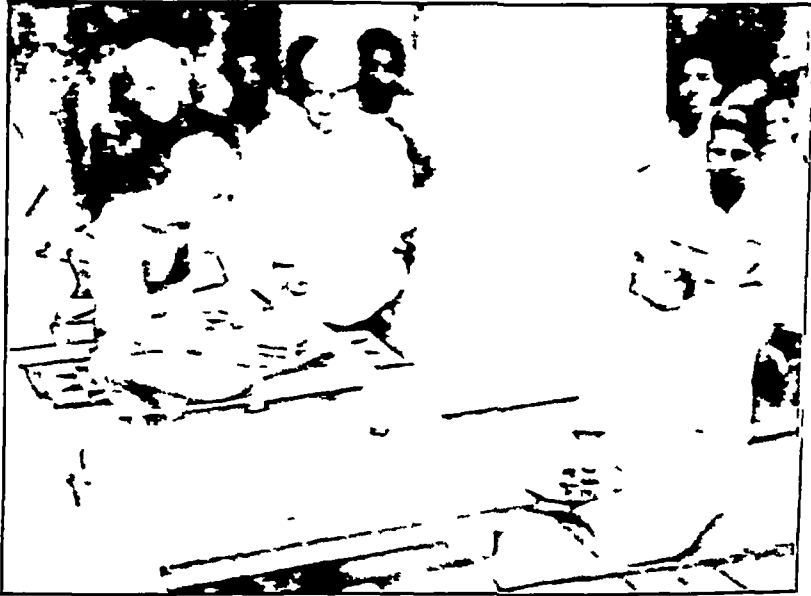
आचार्य धर्मसागर महाराज
लेखक के पूज्य पिताश्री कुँअरसेन जी को सम्बोधित करते हुए

मै चुप हो गया। कुछ न कहकर मैं अन्य चर्चा मे लग गया। मैने प्रतिज्ञानुसार उपवास किया ही। यह एक छोटी सी बात है, किन्तु इससे वर्धमानसागर महाराज के परम कारुणिक अत करण की एक झलक प्राप्त होती है।

महाभिषेक

कुछ समय के पश्चात् वर्धमान महाराज जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के दर्शनार्थ उठे। बडे वैभव से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक हुआ। महाराज बडे ध्यान से देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक देख रहे थे। महाराज की ओर देखने से कभी-कभी ऐसा लगता था कि कहीं हम आचार्यश्री शातिसागर महाराज के समीप ही तो नहीं बैठे है। विशेषकर जब वर्धमान महाराज गर्दन झुकाकर भगवान को प्रणाम करते थे, तब ऐसा लगता था, मानो शातिसागर महाराज का ही दर्शन हो रहा हो। यहाँ भगवान के अभिषेक मे दूध से परिपूर्ण घडो का उपयोग होता था। दही, घी, इक्षु रस आदि से पूर्ण घडो से प्रभु का अभिषेक होता था।

पंथभेद से परे

उत्तर प्रान्त के कुछ बधु कहते हैं कि यह पद्धति दक्षिण के जैनो ने प्रचलित की है। आगम से इसका कोई सबध नहीं है। कोई-कोई कहते हैं कि यह तो बीस-पथ की मान्यता है। हमारे तेरा-पथ मे ऐसा नहीं बताया। एक बार मैंने महामुनि धर्मसागर महाराज से पूछा था - "महाराज आप तो दक्षिण के निवासी हैं, अत आप बीस-पथ को मानते हैं या तेरा पथ को।" वे कहने लगे - "हमने सारा ससार का प्रपच छोडा। पथभेद से या प्रातीयता से हमारा क्या प्रयोजन है? हम तो आगम में कही बात को मानते है। आर्ष परपरा को शिरोधार्य करना ही हमारा पथ है।" कुदकुद स्वामी ने लिखा है -

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खु सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।। प्रवचनसार - २३४

- साधु का नेत्र आगम है। सर्व जीवो के नेत्र चक्षु इन्द्रिय रूप है। देवो के अवधिज्ञान रूप नेत्र हैं। सिद्ध भगवान के सर्वत्र नेत्र हैं।

आगम पथी

इस प्रसग मे आचार्य वीरसागर महाराज की एक मधुर उक्ति स्मरण आती है। जयपुर में अप्रेल सन् १९५७ मे उन्होने मुझसे कहा था - "हम तो तेरा-पथी हैं। तुम

जिनेन्द का अभिषेक देखते थे। वह उपवास का २८ वाँ दिन था। जब मै महाराज के ठीक समीप खडा था। मैंने निकट से देखा कि वे अभिषेक को अत्यन्त तल्लीनता से देख रहे थे। उससे स्पष्ट होता था कि इन निर्ग्रन्थराज को सल्लेखना की उत्कृष्ट तपोमयी वेला मे भी इस महाभिषेक दर्शन से महान लाभ होता था, अत. गृहस्थो को तो यह अभिषेक अनन्त कल्याणदाता अवश्य होगा। इस सम्बन्ध मे पक्ष का मोह छोडकर हमे आगम से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

आगम और पंचामृत अभिषेक

कोई-कोई स्वाध्यायप्रेमी भाई कहते है, आगम में दूध, दही, रस आदि से अभिषेक नहीं लिखा है। उन बधुओ के लिए हम अपने मान्य ग्रन्थो के दो चार प्रमाण देते हैं।

हरिवंश पुराण आचार्य जिनसेन स्वामी रचित है। वे महाज्ञानी एव आगम के मर्मज्ञ दिगम्बर जैन आचार्य हुए हैं। उनके हरिवश पुराण के बाईसवे सर्ग मे कहा है कि वासुपूज्य भगवान के जन्म से पुनीत चपापुरी में वसुदेव ने गधर्वसेना के साथ फाल्गुन के अष्टाह्निका महापर्व में जिन मदिर मे जाकर बड़े हर्ष से क्षीर, इक्षु रस, दधि, घृत, जलादि के द्वारा जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। उन्होने हरिचदन की गध, शालि तदुल, नाना प्रकार के पुष्प, निर्दोष नैवेद्य, दीपक, धूप से भगवान की पूजा की थी। ग्रन्थ के ये शब्द ध्यान देने योग्य है -

क्षीरेक्षुरस-धारोघै-र्घृतदध्युदकादिभिः।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चिता नृसुरासुरै. ॥२१॥

हरिचंदन-गंधाद्यै गंधशाल्यक्षताक्षतैः।
पुष्पैर्नानाविधैरुद्धैर्धूपै. कालागरूद्भवैः ॥२२॥

दीपैर्दीप्त-शिखाजालै-र्नैवेद्यैर्निरवद्यकैः।
तावानर्चतुरर्चां तामर्चना-विधिकोविदौ ॥२३॥

पूजा के अत मे वसुदेव ने अढाई द्वीप के १७० धर्मक्षेत्रो मे त्रिकाल सम्बन्धी जिनेन्द्रादि की इन भव्य शब्दो द्वारा वदना भी की थी -

द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु स-सप्ततिशतात्मके।
धर्मक्षेत्रे त्रिकालेभ्यो जिनादिभ्यो नमोस्त्विति ॥१७॥

समाज का अत्यन्त आदरणीय ग्रंथ पद्मपुराण भी इस विषय में हरिवंशपुराण का समर्थन करता है -

राम के वनवास के पश्चात् भरत शासन करते थे। भरत ने द्युति नाम के महान् आचार्य के समीप नियम लिया कि 'पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनिताम्'' - राम के दर्शन मात्र से ही मुनिव्रत धारण करूंगा। उस समय आचार्य द्युति महाराज ने कहा था, कि इसके पूर्व तुमको श्रावकों के व्रत धारण करना चाहिए। उन्होंने उपदेश में कहा था - ''अर जो रात्रि कूँ आहार का त्याग करै सो गृहस्थ पद के आरंभ विषै प्रवृत्ते है तो हू शुभ गति के सुख पावै। जो पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगंध पुष्पनिकरि भगवान कू अरचे सो पुष्पक विमान कूं पाय यथेष्ट क्रीडा करै।''

(दौलतराम जी की भाषा टीका पृ. ३०८ पर्व ३२)

रविषेणाचार्य रचित मूल पद्मपुराण के वाक्य ध्यान देने योग्य हैं -

य. करोति विभावर्यामाहारपरिवर्जनम्।
सर्वारंभप्रवृत्तोपि यात्यसौ सुखदां गति॥ सर्ग ३२-१५७॥

सामोदैर्भूजलोद्भूतै. पुष्पैर्योजिनमर्चयति।
विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम्॥१५९॥

इस आगम के प्रकाश में पुष्पों द्वारा भी भगवान की पूजा का निषेध नहीं होता है। जिन सिद्ध पूजा को श्रावक लोग बडे चाव से पढते है, उसमें भी मंदार, कुंद, कमल आदि वनस्पति से उत्पन्न पुष्पों द्वारा सिद्धचक्र की वंदना की गई है -

मन्दार-कुंद-कमलादिवनस्पतीनाम्, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम्॥

अभिषेक का महाफल

पद्मपुराण की भाषा टीका में दौलतराम जी ने लिखा है - ''जो नीर कर जिनेन्द्र का अभिषेक करै, सो देवनिकर मनुष्यनिर्तें सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्याभिषेक देव-विद्याधर करैं। अर जो दुग्ध करि अरहंत का अभिषेक करैं, सो क्षीरसागर के जल समान उज्ज्वल विमान विषैं परमकांति धारक देव होय, वहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अर जो दधिकर सर्वज्ञ वीतराग का अभिषेक करै, सौ दधि समान उज्ज्वल यशकू पाय करि भवोदधि कू तरै। अर जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै, सो स्वर्ग विमान में महाबलवान देव होय परम्परा अनंतवीर्यकू धरै। अर जो ईख रसकर जिननाथ का

अभिषेक करे, सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वरपद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभाव करि अनेक भव्यजीव देव अर इद्रनिकर अभिषेक पावते भए, तिनकी कथा पुराणनि मे प्रसिद्ध है।'' (पृष्ठ ३०९)।

मूल सस्कृत ग्रथ के ये पद्य पढने योग्य हैं -

अभिषेक जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा।
अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥

अभिषेकं जिनेन्द्राणा विधाय क्षीरधारया।
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥

दधि-कुंभैर्जिनेन्द्राणा यः करोत्यभिषेचनं।
दध्याभ-कुट्टमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥

सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योभिषेचनम्।
कातिद्युति प्रभावाद्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

अभिषेकप्रभावेण श्रूयते बहवो बुधाः।
पुराणेनतवीर्याद्या द्युभूलब्धाभिषेचना· ॥१६९॥

विचारकों को आचार्य देवसेनकृत भावसग्रह की ४४२ गाथा तथा जटासिहनदि आचार्य के वरांगचरित्र के सर्ग २३ के श्लोक ७७ को देखकर ज्ञात होगा, कि यह परपरा आगम पर आश्रित है। कल्पना नहीं है।

अत्यन्त पूज्य माने जाने वाले ग्रन्थराज जयधवला में तो चदन लगाना, पुष्प चढाने आदि का वर्णन आता है, जिसे लोग बीस पथियो की मान्यता कह दिया करते हैं। आगम के विचार करते समय हमें न्याय बुद्धि से अपने पक्ष का मोह छोडकर आगम की ओर अपनी बुद्धि को लगाना चाहिए। जयधवला टीका की रचना करने वाले आचार्य वीरसेन मूल सघ के महान् आचार्य हुए हैं, जिनकी बुद्धि के कोशल को देखकर सर्वज्ञ के सद्भाव मे शका दूर हो जाती थी। लिखा है -

यस्य नैसर्गिकी प्रज्ञा दृष्ट्वा सर्वार्थगामिनीम्।
जाताः सर्वज्ञसद्भावे निरारेका मनीषिण· ॥२१॥

(जयधवला प्रशस्ति)

जयधवला टीका का यह कथन ध्यान पूर्वक मनन योग्य है।

शका - छहकाय के जीवो की विराधना के कारणभूत श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले होने से चौबीसो तीर्थकर सदोष है। यथा - दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावको के धर्म है। इन चारो मे भोजन पकाना, पकवाना, अग्नि सुलगाना, अग्निका जलाना, अग्नि का खूतना, खुतवाना आदि व्यापारो से होने वाली जीव विराधना के बिना दान नहीं बन सकता। उसी प्रकार वृक्ष काटना, कटवाना, ईट का गिराना, गिरवाना तथा उनको पकाना, पकवाना आदि छहकाय के जीवो की विराधना के कारणभूत व्यापार बिना जिनभवन का निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता।'' इसके पश्चात् का यह कथन ध्यान देने योग्य है -''अभिषेक करना, अवलेप करना, समार्जन करना, चदन लगाना, फूल चढाना और धूप जलाना आदि जीववध के अविनाभावी व्यापारो के बिना पूजा करना नही बन सकता।''

(जयधवला पृ १०० भाग १)

प्रतिशंका - शील का रक्षण करना सदोष कैसे है?

शंकाकार - नहीं, क्योकि अपनी स्त्री को पीडा दिए बिना शील का परिपालन नहीं हो सकता, इससे शील की रक्षा भी सावद्य है।

प्रतिशंका - उपवास सावद्य कैसे है?

शंकाकार - नहीं, क्योकि अपने पेट मे स्थित प्राणियो को पीडा दिए बिना उपवास बन नहीं सकता, इसलिए उपवास भी सावद्य (सदोष) है। अथवा स्थावर जीवो को छोडकर केवल त्रस जीवो को ही मत मारो, इस प्रकार का श्रावको को उपदेश देने से जिनदेव निरवद्य (निर्दोष) नहीं हो सकते। अथवा अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति-परिमख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, वृक्ष के मूल में, सूर्य के आताप मे, खुले हुए स्थान मे निवास करना, उत्कुटिकासन, पल्यकासन, अर्धपल्यकासन, खड्गासन, गवासन, वीरासन, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय ध्यानादि क्लेशो में जीवो को डालकर उन्हे ठगने के कारण भी जिन भगवान निरवद्य नहीं हैं और इसलिए वे वदनीय नहीं है।'' ऐसी शका उठाई गई है।

इस विवेचन के प्रकाश मे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान ने दान, पूजादि का उपदेश अवश्य दिया है। यह कार्य करने पर भी वे निर्दोष है। इसमे यह हेतु दिया गया है कि - ''यद्यपि भगवान पूर्वोक्त प्रकार का उपदेश देते है, तो भी उनके कर्मबन्ध नहीं होता

है, क्योकि जिनदेव के तेरहवे गुणस्थान मे कर्मबन्ध के कारणभूत मिथ्यात्व, असयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोडकर शेष समस्त कर्मो का बन्ध नहीं होता है।"

उपर्युक्त कथन पर सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर यह ज्ञात होता है कि भगवान के समीप पुष्प चढाना आदि क्रियाएँ जयधवला के रचयिता वीरसेनस्वामी को मान्य थीं। यह उनकी व्यक्तिगत कल्पना नहीं थी। उन्होने परम्परा से प्राप्त आगम के अनुसार ही कथन किया है। उनकी धवला, जयधवला टीकाओ से स्पष्ट होता है कि जहाँ उनको अनेक परम्पराओ का ज्ञान हुआ है, वहाँ उन्होने विविध परम्पराओ को जैसा का तैसा बताया है, अत उनकी प्रामाणिकता पर आशका करना जिनेन्द्रभक्त को शोभा नहीं देता।

उपर्युक्त सक्षिप्त कथन का भाव यह है कि ऋषि-परम्परा को देखकर हमें अपनी मान्यताओं, प्रवृत्तियों या धारणाओ का सशोधन करना चाहिए। आगम के आदेश का उल्लघन करना अकल्याणकारी है।

ऋषिवाणी की मान्यता

कहा जाता है कि कुछ प्रसिद्ध पडित महोदयो ने जो लिखा है, उससे आर्ष परम्परा का समन्वय नहीं बैठता, तब क्या किया जाय? इस शका का समाधान स्पष्ट है कि **दिगम्बर गुरु परम्परा के अनुकूल कथन को ही प्रमाण मानना चाहिए। पंडितों की वाणी यदि आर्ष-परम्परा के अनुसार है, तो वह आदरणीय है, अन्यथा उसे वीतराग की वाणी न समझकर ग्रहण नही करना चाहिए।** निर्ग्रन्थ गुरु की वाणी पूज्य है। परिग्रही व्यक्ति श्रावक है, गुरु नहीं है। वह सत्य महाव्रती नहीं है। मुनि सत्य महाव्रती होते हैं।

रूढिवादी न बनो

यह समझना तथा तर्क करना कि दक्षिण के साधुओ ने प्रात मोह से दक्षिण की ही पद्धति का प्रचार करना ध्येय बनाया है, अयथार्थ है। आचार्य शान्तिसागर महाराजने आगम के प्रकाश मे दक्षिण मे प्रचलित अनेक मूढताओ का त्याग कराया है। दक्षिण मे अनेक आगम विपरीत रूढियाँ प्रचलित थीं, जिनमे आचार्य महाराज के निमित्त से शास्त्रोक्त सुधार हुआ। वे गुरुदेव कहते थे - "सदा आगम की आज्ञानुसार श्रद्धा तथा आचरण करना चाहिए। धर्मात्मा का प्राण आगम है, रूढि नहीं है।" इस कथन का

निष्कर्ष इतना ही है कि आज के विविध ज्ञान-अध्ययन-अनुसन्धान के युग मे हमे अपने पक्ष का मोह छोडकर आर्ष-परम्परा के अनुसार श्रद्धान करना चाहिए।

तपस्या द्वारा ज्ञान-विकास

वर्धमान महाराज का अनुभव महान् था। वे शास्त्रो के पडित नहीं थे, किन्तु अनुभवपडित तो क्या, उसके वे आचार्य थे। तपस्या के प्रभाव से उनके ज्ञान-चक्षु और विशुद्ध हो गए थे। जिस समय उन्होने ७० वर्ष की अवस्था मे घर छोडकर क्षुल्लक दीक्षा ली थी, उस समय उनकी स्मरणशक्ति सामान्य वृद्ध पुरुषो के समान क्षीण हो गई थी। क्षण भर की बात याद नहीं रहती थी। उस समय महाराज के छोटे भाई श्री कुमगोडा पाटील को खास चिन्ता हुई थी कि इस जराजीर्ण देह के द्वारा महान् तपस्या का भार कैसे उठाया जायगा? किन्तु ९५ वर्ष की वय मे उनकी स्मरण शक्ति मे आश्चर्यप्रद परिवर्तन दिखाई पडता था। उनकी स्मृति मे अद्भुत विकास हो गया। यह देखकर आगम की कथनी पर विश्वास होता है कि **ज्ञानावरण के ह्रास और विकास पर स्मृति का विकास और ह्रास निर्भर है।** तपोग्नि द्वारा कर्मो का दाह किए जाने पर आत्मा के गुण जगमगाने लगते है। ऐसे तपश्चर्या के धनी गुरुजनो के समीप सद्गुणो का अद्भुत भडार रहता है। यथार्थ मे वे गुरु रत्नकरड बन जाते है।

पत्रों मे मुनियो की निन्दा न छापे

वर्धमान महाराज कहने लगे - "आजकल साधु के चरित्र पर पत्रो में चर्चा चला करती है। उनके विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषो का विवरण छपता है। इस विषय मे उचित यह है कि अखबारो मे यह चर्चा न चले, ऐसा न करने से अन्य साधुओ का भी अहित हो जाता है। मार्ग-च्युत साधु के विषय मे समाज मे विचार चले, किन्तु पत्रो मे यह बात न छपे। इससे सन्मार्ग के द्वेषी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।" उन्होने यह भी कहा था कि - "किसी भी साधु का आहार बन्द नहीं करना चाहिए।" यथार्थ बात यह है कि इस सम्बन्ध मे खून की तेजी वाले युवको को नेतृत्व न देकर धार्मिक, शान्त, ज्ञानी एव अनुभवी व्यक्तियो से परामर्श कर कार्य करना चाहिए। साधु के सम्बन्ध की बात बहुत गम्भीर है। दिगम्बर मुनि का पद खिलवाड नहीं है।

मुनिपद की कठिनता

महाराज ने कहा था - "मुनि धर्म फार (बहुत) कठिन है। मुनि होकर पैर फिसला, तो भयकर पतन होता है। नेत्रो को जागृत रखना चाहिए। ज्ञान आदि की बातो

मे चूक हो गई, तो उतनी हानि नहीं होती, जितनी सयमपालन मे प्रमाद करने पर होती है। तलवार की धार पर सम्हालकर पैर रखा, तो ठीक, नहीं तो पैर नियम से कट जाता है। मुनिपद में चारित्र को बराबर पालना चाहिए।'

निर्मोही गृहस्थ

मैने चर्चा की - "महाराज! आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है - निर्मोह गृहस्थ मोक्षमार्गस्थ, मोहवान् मुनि न मोक्षमार्गस्थ।"

महाराज ने कहा - "यदि मोहवान् मुनि है, तो वह नरकादि कुगति का पात्र है। मुनि यदि मोही बना, तो महापाप होता है। वह पाप वज्रलेप होता है। स्वच्छ वस्त्र का दाग सबको दिखता है। शीघ्र दूर नहीं होता है।" कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार मे कहा है, जो पूर्व आचार्य परम्परा के विपरीत कथन करता है वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। इस काल में सम्यक्त्वी मुनि और श्रावक थोडे हैं, मिथ्यात्वी सुलभ है। (गाथा ३ तथा ५९)

मुनि बनने की तैयारी

उनका आत्मध्यान का अभ्यास बहुत विलक्षण रहा है। इसके लिए उन्होने बहुत कठिन परिश्रम उठाया था। जब वर्धमान महाराज जयसिंगपुर (मिरज के समीप) मे रहते थे, तब वे बस्ती से दूर जाकर पार्क के मैदान में मध्याह्न की तेज धूप में दिगम्बर मुद्रा में बैठकर ध्यान का अभ्यास करते थे।

वैराग्य का जागरण

उन्होंने कहा था - "आचार्य शातिसागर महाराज सघ सहित जब शिखरजी के लिए रवाना हुए, तब हमारे मन में वैराग्य के भाव विशेष बढे और हमने महाव्रती बनने हेतु अभ्यास आरभ किया था।" अत उनकी आत्मा अत्यन्त विकसित तथा सुसस्कृत हो गई थी। इस निष्कर्ष का आधार निम्नलिखित चर्चा है।

समन्वय वचन

दशलक्षण पर्व ता ८ सितम्बर को पूर्ण हो चुका था। मैंने प्रभात मे गुरुदेव से कहा - "महाराज! आपके चरणो के समीप पर्व सानद पूर्ण हो गया।"

महाराज बोले - "तुम्हारे आने से लोगो का बडा हित हुआ। मिथ्यात्व का त्याग हुआ। धर्मबुद्धि बढी।" मैंने कहा - "मुझे तो आपके दर्शन का अपूर्व लाभ

मिला।" महाराज बोले - "अच्छा दोनों का लाभ हुआ। तुम्हारा तथा लोगों का भी।" मैंने कहा - "बिल्कुल ठीक बात है।"

महाराज बोले - "हम खोटी बात क्यों बोलेंगे?" कितना सुन्दर, मधुर तथा यथार्थ उत्तर था उनका।

उच्च ध्यानी

मैंने पूछा - "महाराज कल रात्रि को आपकी कुटी के अत्यन्त समीप मेरा दो घंटे के लगभग भाषण हुआ था। विषय था 'ब्रह्मचर्य धर्म।' क्या आपने सुना था?"

महाराज - "मैं ध्यान में बैठा था। मुझे तुम्हारे व्याख्यान का कुछ भी पता नहीं चला। ध्यान में बैठने पर पास में तुम नक्कारा भी बजाओ, तो पता नहीं चलता है। नदी या तालाब के जल में डुबकी लगाने पर बाहर का पता नहीं चलता। मैं आत्मचिंतन में निमग्न था। उस समय बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं था। हम जैसा होता है, वैसा बताते हैं।"

मैं आश्चर्य में पड गया। महाराज के अति समीप उच्च स्वर में दिए गए लम्बे भाषण का भी उनको आत्मचिंतन काल में पता नहीं चला। धन्य है ऐसी आत्मध्यान की अपूर्व क्षमता। स्व. आचार्य शान्तिसागर महाराज भी अपने ध्यान के विषय में ऐसा कहते थे कि - "हम बीच बाजार में बैठकर आत्मा का ध्यान कर सकते हैं। आत्मा में निमग्न होने पर बाजार क्या बाधा उत्पन्न करेगा।' इस कथन का प्रत्यक्षीकरण वर्धमान स्वामी में हमने देख लिया। भेदविज्ञानी साधु अभ्यास के द्वारा असंभव बातों को संभव कर लिया करते हैं।

संसार का खेल

व्रतों की द्वादशी को मन्दिरजी के चौक में स्थानीय श्राविकाश्रम की छोटी-छोटी बालिकाओं ने कुछ खेल दिखाए। उसे देखते हुए महाराज ने मुझसे कहा - "यह तो बच्चों का खेल है, किन्तु यह संसार ही एक खेल है, आत्मा इस खेल से पृथक् है। इसको हम नहीं भूलते हैं। संसार में जीव मोह के कारण नाचते-कूदते हैं।" वास्तव में स्वतत्त्व की जिनको उपलब्धि हो चुकी है, उनकी दृष्टि, उनकी वाणी, उनकी चर्या में एक विलक्षण ज्योति, मधुरता, सरसता तथा सजीवता का दर्शन होता है।

विनम्रता

एक दिन प्रभात काल मे महाराज कहने लगे - "नाम सोनूबाई और पास मे सुवर्ण न हो, उसी प्रकार मै सामान्य स्थिति का हूँ और लोग मुझे बडे-बडे नामो से पुकारते है। कोई मुझे 'चारित्र चूडामणि' कहता है, कोई 'आचार्य' कह बैठता है। अरे बाबा! ये बहुत बडे पद हैं। मै इतना महान् नही हूँ।"

मुनिपद का रहस्य

८ सितम्बर को आहार के उपरान्त महाराज ने कनडी मे मुझसे कुछ कहा। मैने पूछा - "महाराज, आपने यह क्या कहा?"

उन्होने कहा - "बैठ जाओ, यह कहा है।" बैठने के पश्चात् उन्होंने हम से पूछा - "बताओ, हमने घर छोड़कर मुनि का पद क्यो धारण किया? क्या भोजन के लिए? लज्जा छोडकर दूसरे के घर में खडे भिक्षावृत्ति से आहार के लिए क्या मुनिपद लिया? क्या हमारे घर मे कमी थी, जो ऐसा किया?"

मैं प्रश्न सुनकर चुप था। क्या उत्तर देता। मैने कहा - "महाराज! आप ही इस प्रश्न का समाधान कर सकते हैं।"

उन्होने कहा - "हमने आत्मकल्याण के लिए यह पद ग्रहण किया है। आगमानुसार प्रवृत्ति के लिए यह मुद्रा धारण की है। आचार्यो ने कहा है २८ मूल-गुणो का पालन करते हुए आत्मकल्याण करो, इससे मै ऐसा करता हूँ। यश, मान, सम्मान के लिए यह पद अगीकार नहीं किया है। यश तथा सम्मान में क्या है? आहार के पश्चात् तुमने पूजा स्तुति की या नहीं की, इसमे क्या है? आगम कहता है - मुट्ठी भर अन्न खा और जा। इससे आत्मकल्याण की साधना के एक मात्र उद्देश्य से हमने दिगम्बर मुद्रा धारण की है।"

कितना मार्मिक तथा वास्तविकता से परिपूर्ण यह उत्तर था। जिनका जीवन मायाजाल मे उलझा रहता है, उनके पास ऐसा उत्तर नहीं मिलता। उलझा व्यक्ति सुलझी बात कैसे करेगा? सुलझे साधु के पास जाने से बडे-बडो की जीवनगुत्थी सुलझ जाती है। इस सम्बध मे एक महत्त्वपूर्ण घटना देने योग्य है।

सांगली नरेश को कल्याणकारी उपदेश

नान्द्रे मे मानस्तम्भ पूजा उस वर्ष सन् १९५७ के ज्येष्ठ मास मे वर्धमान स्वामी के

धन्य है, आत्मा के विपय मे ऐसी लोकोत्तर स्थिरता। जहाँ वुढापा मनुष्य को देह का दास बनाता है, और आत्मचितन असभव बन जाता है, वहाँ अत्यन्त वृद्धावस्था वाले मुनि वर्धमान महाराज आत्मचितन तथा आत्म-विचार मे इतने व्यस्त रहा करते थे कि शरीरादि की खबर तक नहीं रहती थी। ऐसा दिखता है कि मछली को पानी मे तैरने मे कोई कष्ट नहीं होता, इसी प्रकार वर्धमान महाराज की आत्मध्यान रूप सरोवर मे स्थिति होती है। इस कथन की पुष्टि एक घटना से भी होती है।

महत्त्वपूर्ण घटना

एक दिन श्रीवालगोडा पाचोरे ने महाराज से प्रार्थना कर आचार्य शातिसागर महाराज के सवध की कुछ विशेष वार्ता पूछने के लिए एक वजे दिन का समय निश्चित कराया। दो बजे तक महाराज कुटी मे ही रहे आए। पश्चात् शास्त्र का समय हो गया। महाराज से चर्चा का अवसर नहीं मिला। श्री पाचोरे ने महाराज से सध्या के समय कहा - "पडितजी का आज का दिन चला गया। ८०० मील से आपके पास आए है। कम से कम इनको आधा घटा विशेष चर्चा को कल से अवश्य दीजिए।"

ध्यान मे रस

इस पर वर्धमानसागर महाराज के उद्गार ध्यान देने योग्य है - "अरे! क्या बताऊँ, भूल हो गई। मै ध्यान मे लग गया। इससे ऐसा हो गया। कल समय अवश्य दूगा।"

जो आत्मध्यान हमारे लिए बडा विकट दिखता है, वह उन साधुराज के लिए अत्यन्त सरल रहा है। हमे आत्मध्यान शब्द तो अत्यन्त सरल दिखता है, किन्तु उसका अभ्यास आरभ करते समय अत्यन्त कठिनता का अनुभव होता है। कुंदकुंदस्वामी ने समयसार मे लिखा है कि इस जीव ने काम तथा भोग सबधी कथा का अनत बार अनुभव किया है, उसे सुना है। अखण्ड एकत्व युक्त आत्मा का परिचय नहीं हुआ, अत वह इसे अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। पूज्यपाद ऋषिराज का कथन ध्यान देने योग्य है, कि योग-ध्यान की प्रारभिक अवस्था मे बडी कठिनता का अनुभव होता है। इस स्थिति मे बाहर सुख प्रतीत होता है और अतरग मे स्थिति दु खद लगती है, किन्तु सम्यक् अभ्यास होने पर स्वरूप मे अवस्थिति आनदप्रद होती है और स्वरूप से च्युत होकर बहिर्मुख होना अप्रिय लगता है।"

आत्म-निमग्नता का उपाय

ऐसी स्थिति मे प्राय सभी लोग पूछते है कि आत्मा मे किस प्रकार लीनता हुआ करती है? मन की चचलता क्षण भर दूर नहीं होती। उस चचलता को कैसे दूर किया जाय? इस प्रश्न का सुन्दर समाधान वर्धमानसागर महाराज के पास से मुनिदीक्षा लेने वाले १०८ पूज्य समतभद्र महाराज के उस कथन से हो जाता है, जो उन्होने भद्र परिणामी फ्रास के विद्वान् लियोन वेनसाइमन को बाहुबली क्षेत्र मे आने पर दिया था।

कषाय निग्रह

समतभद्र महाराज ने कहा था - "मानसिक शाति का एक मात्र उपाय कषायो -क्रोधादि विकारो की मदता है। इन कषायो की मदता केवल इच्छा करने से नहीं होती, किंतु दैनिक अभ्यास द्वारा सपन्न होती है। प्रति दिन का सस्कार आवश्यक है। इन क्रोध मान, माया तथा लोभ रूप कषायों से ही आत्मशुद्धि मे विकृति उत्पन्न होती है और मन क्षुब्ध होकर अशात बनता है। वह चित्त को सम और सतुलित नहीं रहने देता, प्रत्युत् विचार, वाणी तथा आचार त्रयी की सुसगति को नष्ट करके विरोध उत्पन्न करता है। विसवाद का निर्माण करता है। जीव के सारे दु खो तथा विफलताओ का मूलकारण यही है। अत जितने अश मे कषाय को दूर किया जाता है, उतने अश मे मनुष्य सुख और शाति पाता है। मानवीय मन से जहाँ कषाय दूर हुए कि इस मानव का अन्तर्देव ईश्वर हो चमकता है, अत यदि सुख-शाति चाहते हो, तो सब से पहले कषायों को जीतो। जैनधर्म का साररूप सदेश यही है।"

"अतर्मुखी दृष्टि (Introvert) करके आत्म-स्वरूप का चितवन करने से मन व्यर्थ के कल्पना जाल में नहीं फँसता। ज्यो-ज्यो दृष्टि अतर्मुखी होगी, त्यो-त्यो निरर्थक विचार न्यून होंगे और मन स्वय स्वस्थ होगा।"

"स्वाध्याय द्वारा भी निरर्थक विचार रुकते हैं। मनुष्य का मन बदर जैसा चचल है, सदा भटकता रहता है। जिधर लक्ष्य हुआ, उधर ही मन दौड जाता है, अतएव मन को अच्छे स्थान पर लगाना चाहिए। यदि अतर्मुख होकर आत्मचितन का अभ्यास नहीं होता, तो धर्मचर्चा तथा स्वाध्याय मे मन को लगाना श्रेयस्कर है। स्वाध्याय में लगे रहने से मन में निरर्थक विचार उठने का अवसर ही नहीं रहता।"

"अन्य प्रकार का बाह्य उत्कर्ष कितना भी हो, उस पर आत्मविकास निर्भर नहीं है। आत्मविकास के लिए परिणामो में विशुद्धि आवश्यक है। विकारी मानव कितना

ही बडा और मान्य हो, अध्यात्मक्षेत्र मे वह अबोध बालक ही है। वहॉ उसकी कुछ भी महत्ता नहीं है। वह विकार के वश मे है, जिसका मुख्य कारण मन की निर्बलता और वस्तु-स्थिति का अज्ञान है। जिसका मनोबल बढा है तथा जिसको वस्तुतत्त्व का वास्तविक ज्ञान है, वह सहसा विकार के आधीन नहीं होता। प्रबल कर्मोदय से कदाचित् विकार उत्पन्न होवे, तो भी वह तत्त्वज्ञान के बल से उस पर अधिकार प्राप्त करता है। इसके विपरीत यदि अतरग शक्ति व ज्ञान का विकास नहीं हुआ है, तो छोटे छोटे कारणो से ही मनुष्य विकार के वश होकर पतनोन्मुख होता है। अत आत्म विकास की इच्छा करनेवालो को तत्त्वाभ्यास द्वारा मनोबल को बढाने का प्रयत्न करना उचित है।''

आचार्य शातिसागर महाराज कहते हैं, जिस प्रकार बार-बार रस्सी की रगड से कठोर पाषाण मे गड्ढा पड जाता है, इसी प्रकार अभ्यास द्वारा इद्रियॉ वशीभूत होकर मन मे चचलता नहीं उत्पन्न करती हैं। एक बार मैंने आचार्य महाराज से पूछा था कि - ''आप सतत स्वाध्याय करते हैं, क्या मन रूपी बदर की चचलता दूर करने को यह कर रहे है।'' महाराज ने कहा था - ''हमारा मन हमारे आधीन है। वह चचल नहीं है।'' अतएव आत्मचितन के विषय मे ऐसे योगियो का अनुभव ही जन-साधारण का मार्गदर्शक बन सकता है। पूज्यपाद स्वामी का कथन है - ''रागद्वेषादि की लहरो से जिनका मन रूपी जाल चचल नहीं है, वे आत्मतत्त्व का दर्शन करते हैं।'' अतएव सच्चा आत्मचितन का अभ्यास सराग मार्ग का आश्रय छोड वीतराग के चरणो का शरण अगीकार करने से प्रारभ होता है। अनेक लोग आत्मचितन तथा ब्रह्मदर्शन की लम्बी चौडी बाते हॉका करते है, किन्तु यथार्थ बात यह है कि सर्वज्ञ, वीतराग भगवान के मार्ग मे चलने वाले जीव को ही यह सौभाग्य मिलता है, अन्य को नहीं। मद कषायजन्य शाति को लोग ब्रह्मदर्शन कहा करते है। आत्मानद मिथ्यात्वी को नहीं होता।

एक बात यह भी है कि पुरुषार्थी तथा उद्योगी व्यक्ति ध्येय को सिद्ध करता है। प्रमादी तथा विषयो का दास बडी-बडी बाते बनाया करता है। उसे सफलता कभी नहीं मिलती। वर्धमानस्वामी की आत्मा उच्च तथा सुसस्कृत स्वय सरलता से नहीं बन गई है, इस कार्य के लिए उन्होने बहुत पुरुषार्थ भी किया था।

उपसर्ग की चर्चा

मैने २ सितम्बर को कहा - ''महाराज! कहते है आचार्य शातिसागर महाराज के समान आप पर भी सर्पादि का उपसर्ग आया था।''

महाराज बोले - "तुम्हे कैसे मालूम? किसने कहा?"

मै चुप हो गया, महाराज गम्भीर थे। मैने कहा - "महाराज! आत्मदेव ने कहा है।" वे शात हो कहने लगे - "हम क्षुल्लक दीक्षा लेने के पश्चात् दक्षिण के बाहुबली भगवान की वन्दना निमित्त कुछ श्रावको के साथ दक्षिण कर्नाटक प्रान्त की तरफ गए थे। सब श्रावक एक जगह १० बजे ठहर जाते थे। उस समय हम एकान्त स्थान को देखकर ११ बजे से १ बजे दिन तक ध्यान करते थे। २ बजे वापिस आकर आहार करते थे। हुम्मच पद्मावती के स्थान पर हम पहुँचे। वहाँ हम दोपहर को एक पहाडी पर चढे। वहाँ चार-पाँच हाथ लम्बा बडा मोटा सर्प मिला। मुख से वह फुस-फुस शब्द करता था। वह हमारे पास आया। एक गज की दूरी पर था वह। हमे देखता रहा था। उसने शरीर का स्पर्श नहीं किया। कुछ समय बाद वह मन्दिर मे चला गया। हम उस पहाडी पर आगे बढे। वहाँ पर एक व्याघ्र मिला था किन्तु हमे कोई बाधा नहीं हुई। इसके पश्चात् हम नीचे आ गए।"

उष्ण परीषह

महाराज ने दावणगिरि की यह घटना सुनाई थी। एक बार महाराज वापसी मे दावणगिरि आए। अपने क्रम के अनुसार वे एक पहाडी पर चढ गए। ऊँचा पहाड था। भीषण गर्मी थी। पहाडी पर एक जगह बैठकर ध्यान करने लगे। भीषण उष्णता के कारण इनको चक्कर आ गया। आँखो से दिखना बन्द हो गया। ये मूर्छित हो गए। गिर जाने से इनका मस्तक एक चट्टान से टकरा गया। रक्त की धारा वेग से बहने लगी। इनको कुछ भी पता नहीं था। कुछ समय पश्चात् हवा के लगने से होश आया। उस समय इनके सघ का एक भक्त श्रावक इनको खोजता हुआ सुयोग से वहाँ आ गया। महाराज के मस्तक को तथा आसपास की भूमि को रक्तरजित देखकर वह बहुत दु खी हुआ। सामायिक का काल पूर्ण होने पर वह महाराज को नीचे लाया तथा योग्य परिचर्यादि का कार्य किया गया।

इस प्रकार के विकट प्रसग इन महामुनि के जीवन मे अनेक बार आए, किन्तु उनका विवरण सुनने को नहीं मिल पाया। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश मे उनके उग्र तपोमय जीवन की झलक मिलती है। मुनि जीवन की कठिनाइयो की भोगी विषयाध गृहस्थ क्या कल्पना कर सकता है?

आगम के अनुसार ये सदा सावधानीपूर्वक कार्य किया करते थे। एक दिन चर्चा चली कि दुष्ट कल्की राजा मुनिराज के हाथ का प्रथम ग्रास कर के रूप में ग्रहण करता है?[1]

मैंने पूछा - "महाराज! प्रथम ग्रास यदि टेक्स के रूप में चला गया, तो दूसरा ग्रास मुनिराज ने क्यों नहीं लिया? राजा ने प्रथम ग्रास टेक्स रूप में इसमें लिया था कि वह जूठा नहीं था।"

अन्तराय

इस पर महाराज बोले "आगमानुसार प्रथम ग्रास छिन जाने पर अतराय हो जाता है।" उन्होने अपने जीवन की एक घटना बताई - "वे चर्या को निकले थे। एक गृहस्थ के घर मे विधि मिल गई। वे आहार को खडे हो गए। एक महिला ने हाथ मे दूध डाला। उस दूध मे गाढी मलाई आ गई। महाराज ध्यान से देखने लगे कि इसमे कहीं कोई अशुद्धि तो नहीं है? उनको शोधते देख उस स्त्री के मन मे अद्भुत भाव उत्पन्न हुए, उसने तुरन्त वह मलाई अजुली मे से बाहर निकाल ली। ऐसा होने पर महाराज तुरन्त बैठ गए। उन्होंने आहार नहीं किया और उसे अतराय रूप मे माना।" इस घटना से पता चलता है कि सतत सावधान रहने वाले प्रमादरहित साधु के जीवन मे सदा कष्ट, अतराय आदि आपत्तियाँ आया करती है। बात यह है कि तप-बल से यह आगामी उदयावली मे आने वाले अतरायादि कर्मों की उदीरणा भी करते हैं। इससे विविध उपसर्ग इन वीतराग साधुओं का पीछा नहीं छोडते। आज का हीन काल है। सहनन भी हीन है, फिर भी सच्चे जैन मुनि अपनी अलौकिकता से आज भी जगत् को चकित करते हैं।

दीर्घ जीवन का रहस्य

वर्धमान महाराज से मैंने पूछा - "महाराज! आजकल दिन-रात भक्ष्याभक्ष्य का बिना विचार किए लोग शरीर की सतत सेवा मे सलग्न रहते हैं, फिर अल्प अवस्था मे भयकर रोगो से आक्रान्त हो काल के गाल मे समा जाते है। आप कठोर सयमी होते हुए भी ९५ वर्ष की अवस्था मे पूर्ण स्वस्थ हैं। बाह्य तथा अतरग नीरोगता आपको प्राप्त हुई है। इसका क्या रहस्य है? आपकी जीवनचर्या किस प्रकार की रही है?"

महाराज ने बताया - "सयमी जीवन दीर्घायुष्य का विशेष कारण है। हम रात को ९ बजे के पूर्व सो जाते थे और तीन बजे सुबह जाग जाया करते थे। ३५ वर्ष की

---

१ तेषा पाणिपुटे प्राच्य पिण्ड शुल्को विधीयताम् - उत्तरपुराण।

अवस्था मे हमने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। हमारे शरीर मे कभी रोग नही हुआ। गृहस्थ-अवस्था मे हम एक दिन मे ४५ मील बिना कष्ट के सहज ही चले जाते थे। २५ वर्ष की अवस्था मे हम भोज से ५॥ बजे सवेरे चलकर शाम को ४५ मील दूरी पर स्थित तेरदाल ग्राम मे जाकर भोजन करते थे। पहले हमारे शरीर का चमडा इतना कडा था कि शरीर मे अलग से चमडा नहीं खिचता था। लेकिन अब तो वृद्ध-अवस्था आ गई है।" आज के विटेमिन भक्तो तथा डाक्टरो के उपासको को साधुराज के दिव्य जीवन से शिक्षा लेना चाहिए। नीरोगता का बीज परिश्रम, ब्रह्मचर्य परिमित आहार-विहार है। महाराज ने बताया था कि वे स्नान के पश्चात् देवाराधना के अनन्तर भोजन करते थे। एक बार सध्या को भी भोजन करते थे। बार-बार भोजन की आदत नहीं थी।

मैने पूछा - "महाराज! आपके मन मे वैराग्य भाव जगाने मे क्या आचार्य महाराज शान्तिसागर कारणरूप हुए?"

महाराज ने कहा - "यथार्थ मे आचार्य महाराज के दीक्षित होने का हमारे मन पर बडा असर पडा।"

आचार्यश्री की विरक्ति का क्रम

मैंने कहा - "आचार्य महाराज की विरक्ति तथा आत्म-साधना पर कुछ प्रकाश डालिए। आप ही तो इस विषय में प्रामाणिकतापूर्वक कथन कर सकते है। वर्धमान महाराज ने कहा - "घर मे कपडा की दूकान पर कुमगोडा तथा महाराज बैठते थे। मे खेती का काम देखता था। मैं उपवासादि नहीं करता था। पिता की महाराज ने तथा मैंने सेवा की। उनकी मृत्यु के उपरात महाराज चार-पॉच वर्ष घर मे और रहे, कारण मातुश्री जीवित थीं। महाराज बहुत उपवास करते थे। उनको उपवास करते देख माताजी भी उपवास किया करती थीं।"

स्तवनिधि

माघ मास मे माता की मृत्यु होने के पश्चात् महाराज के हृदय मे वैराग्य भाव वृद्धिगत हुआ। भोज से २२ मील दूर स्तवनिधि क्षेत्र है। उन्होने प्रत्येक अमावस्या को स्तवनिधि जाने का व्रत ले लिया। वे बहिन कृष्णाबाई को साथ मे भोजन बनाने को ले जाते थे। स्तवनिधि की यात्रा का आश्रय ले उन्होने प्रपच से छूटने का निमित्त ढूँढ निकाला था। वे स्तवनिधि में एक दिन ठहरा करते थे। वे ज्येष्ठ मास पर्यन्त स्तवनिधि गए। इस बीच मे उन्होने बहिन से कहा - "अक्का! अब हम अकेले ही स्तवनिधि

जायेगे।'' अत स्वय भोजन साथ मे रखकर ले गए। महाराज ने कुमगोडा से कह दिया, मेरा भाव व्यापार का नहीं है।

स्तवनिधि के निमित्त ये घर से गए थे, किन्तु इनका मन वैराग्य से परिपूर्ण हो चुका था। इससे ये समीपवर्ती उत्तूर ग्राम मे गए, जहॉ बाल ब्रह्मचारी मुनि देवेन्द्रकीर्ति महाराज, जिन्हे देवप्पा स्वामी कहते थे, विराजमान थे। देवप्पा स्वामी का महाराज पर बडा वात्सल्य भाव था, कारण वे भोज मे कभी-कभी माह पर्यन्त रहा करते थे। वे सातगोडा की विरक्ति तथा धार्मिक प्रवृत्ति से सुपरिचित थे। जब महाराज ने दीक्षा धारण करने का अपना विचार व्यक्त किया, तो देवप्पा स्वामी को अपार खुशी हुई। उन्होने लोगो से कहा भोजकर पाटील आए है। इनकी सब व्यवस्था करो। पाटील ने (महाराज ने) देवप्पा स्वामी से प्रार्थना की, कि अब हमे क्षुल्लक दीक्षा दीजिए।

दीक्षा मडप की रचना

देवप्पा स्वामी पाटील की परिणति से पूर्ण परिचित थे, अत उनके इशारे पर उत्तूर मे दीक्षा मडप सजाया गया। पाटील को तालाब पर ले जाकर स्नान कराया गया। पश्चात् वैभव के साथ उनका जुलूस निकाला गया। उन्होने स्वच्छ नवीन वस्त्र धारण किए थे। गाजे-बाजे के साथ जुलूस दीक्षा मण्डप मे आया, जहॉ इनको क्षुल्लक दीक्षा दी गई, तथा इनका नाम शातिसागर रखा गया।

अब महाराज तो क्षुल्लक हो गए। उन्होने घर पर कोई समाचार तक नहीं भेजा। भेजते क्यो? जब घर का - द्रव्यघर तथा भावरूप घर का भी त्याग कर दिया, तब वहॉ खबर भेजने का क्या प्रयोजन? किन्तु उत्तूर का समाचार भोज आ ही गया। चिट्ठी मे लिखा था कि महाराज ने क्षुल्लक दीक्षा ली है। उनकी दीक्षा ज्येष्ठ सुदी तेरस को हुई थी।

वर्धमान स्वामी ने बताया कि हमे समाचार ज्येष्ठ सुदी चौदस को प्राप्त हुआ। पत्र पहले पोस्टमेन ने भाई कुमगोडा के हाथ मे दिया। उसे पढकर कुमगोडा बहुत रोए। वे अकेले थे। सवेरे उनका उतरा चेहरा देखकर अक्का ने (बहिन ने) पूछा - ''तुम्हारा मुख उदास क्यो है?'' कुमगोडा ने कहा - ''अप्पा दीक्षा घेतली'' - अर्थात् महाराज ने दीक्षा ले ली। जिसको यह समाचार मिले, उसके मोही मन को अपार सन्ताप पहुँचा।

हम, कुमगोडा और उपाध्याय के पुत्र को साथ लेकर उत्तूर गये। रात को सौंदलगा ग्राम मे मुकाम किया। वहॉ के मराठो ने कहा - ''भोज का स्वामी हुआ है।'' - दक्षिण मे दीक्षा लेने वाले को स्वामी कहते है। यथार्थ साधु बनने पर वह व्यक्ति

इन्द्रियो का दास नहीं रहता है, स्वामी बनता है। अत स्वामी शब्द का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

क्षुल्लक रूप मे दर्शन

उत्तूर पहुँचकर महाराज को देखते ही हमारी आँखो मे पानी आ गया।

महाराज ने कहा - "यहाँ क्या रोने को आए हो? तुमको भी तो हमारे सरीखी दीक्षा लेनी है। रोते क्यों हो?" हम सब चुप हो गए। हमने रसोई तैयार की। हमारे चौके मे महाराज का आहार हुआ। हमने आहार मे गोवा चे आम्बे - (गोवा के आम) भी महाराज को दिये थे।

देवप्पा स्वामी ने हमे बताया कि यह छोटा सा ग्राम है, अत चातुर्मास के लिए तुम शातिसागर महाराज को निपाणी तरफ ले जाओ। उस समय कुमगोडा ने महाराज की दीक्षा समारम्भ में खर्च हुई सामग्री आदि का मूल्य उत्तूर वालो को देकर महाराज के साथ मे प्रस्थान किया।

वह अद्भुत युग था। महाराज को देने योग्य कमडलु तक न था, अत पास के लोटा में सुतली बाँधकर उससे कमडलु का कार्य लिया था। देवप्पा स्वामी ने अपनी पिच्छी मे से कुछ पख निकालकर पिच्छी बनाई थी और महाराज को दी थी।

महाराज कापसी ग्राम मे ठहरे। कुमगोडा ने कहा - "मैं कोल्हापुर जाकर कमडलु लाता हूँ। आप भोज जाओ।" भूपालप्पा जिरगे ने एक कमडलु भेट किया। कुमगोडा ने कापसी ग्राम मे जाकर महाराज को कमडलु दे दिया।

"महाराज का प्रथम चातुर्मास कोगनोली मे हुआ।"

प्रथम चातुर्मास

वर्धमानसागर महाराज ने बताया कि "घर आने पर महाराज के अभाव मे मेरा मन बेचैन हो गया। कुमगोडा ने दुकान के सब सामान को तथा कपडो से भरी आलमारी को इकट्ठी ही एक मारवाडी को बेच दिया। उस समय सबका मन अत्यन्त व्यथित हो रहा था।"

इसके अनतर वर्धमान महाराज ने बताया

सयम का अभ्यास

मैं कोगनोली मे महाराज के पास गया और दीक्षा मागने लगा। इस पर महाराज

ने कहा - "दीक्षा लेना कठिन काम है। तुम मेरी तरह घर मे ही रहकर पहले सयम का अभ्यास करो।"

घर मे आकर मैंने एक वार का आहार रखा। मै खेती का काम देखता था, तो कुमगोडा कहता था - "अण्णा! अव तुम यह काम मत करो।" कुमगोडा ने भोज का रहना छोडकर कोल्हापुर मे व्यापार करना प्रारम्भ किया। मै वहिन कृष्णावाई के साथ कोल्हापुर आया जाया करता था। कुमगोडा अत्यन्त चतुर था। उसने पहले वर्ष साझेदारी मे आढत की दुकान की, पश्चात् अपना स्वतत्र व्यवसाय प्रारम्भ किया।

ध्यान-साधना

कुमगोडा ने जैसिगपुर मे अपना कार्य जमाया। मैं वहॉ रहने लगा। मै ११ वजे से १ वजे दिन तक पर्वत पर ध्यान करता था। मन की चचलता को रोकता था। मै सात वर्ष जैसिगपुर मे रहकर ध्यान का अभ्यास करता था। महाराज (शातिसागर जी) कुभोज-वाहुवली आए। वे निर्ग्रन्थ हो चुके थे। मै उनके दर्शन को वहॉ गया।

गहरी विरक्ति

वहॉ कलप्पा भरमप्पा निटवे शास्त्री, महाराज के पास वैठे थे। वे मुझे नहीं पहिचानते थे। मुझे देखकर शास्त्री जी ने महाराज से पूछा - "ये कौन हैं?"

महाराज ने यह नहीं कहा कि ये हमारे भाई है, किन्तु कहा - "ये भोज के पाटील हैं।" इतनी गहरी विरक्ति तथा अनासक्ति महाराज के मनमे विद्यमान थी।

महाराज सघ सहित जब शिखरजी के लिए रवाना हुए थे, तब बाहुवली से वे जैसिगपुर भी पधारे थे। उन्होने सन् १९२७ मे शिखर जी के लिए जब प्रस्थान किया, तब हमारे मन मे गहरा वैराग्य उत्पन्न हो गया था।

उत्तर भारत मे विहार करते हुए जब महाराज का चातुर्मास जयपुर मे हुआ तब, कुमगोडा तथा ब्र जिनदास समडोलीकर महाराज के दर्शन को गए। उस समय हमने उक्त दोनो व्यक्तियो को कुछ न कहकर साथ मे जाने वाले बालगोडा को कहा कि महाराज को नमोस्तु कहकर उनसे मेरी दीक्षा के लिए प्रार्थना करना।

जयपुर जाकर जब महाराज को मेरी प्रार्थना सुनाई गई, तब महाराज बोले - "क्या अब भी उनके मन मे वैराग्य का भाव विद्यमान है?" इसके अनन्तर जब महाराज से निवेदन किया गया कि - "वैराग्य का भाव पक्का है। उन्होने पुत्तूर के स्वामी नेमिसागर

जी निर्ग्रन्थ मे दीक्षा मॉगी थी; किन्तु वे आपकी आज्ञा के विना दीक्षा नहीं देते हैं। इसमे आपसे ही दीक्षा देने की प्रार्थना करते है।" इस पर आचार्य महाराज ने पुत्तूर ग्राम वाले नेमिसागरजी को समाचार दिया कि तुम इनको (वर्धमानसागरजी को) दीक्षा दे सकते हो।

इस प्रसग मे यह बात ज्ञातव्य हे कि वर्धमानसागर महाराज ने दीक्षा की स्वीकृति अपने सगे भाई कुमगोडा पाटील तथा निकट परिचित ब्र जिनदासजी के द्वारा प्राप्त न कराकर अन्य व्यक्ति द्वारा कार्य क्यों सम्पन्न कराया?

इसमे एक रहस्य हे। ज्ञानार्णव मे कहा है - "बंधवो वधमूलम्" - वधु-वाधव वन्ध के कारण होते हैं, अत आत्मसाधना के कार्य मे उनसे विघ्न की अधिक सम्भावना रहती है। मोहवश इष्ट व्यक्ति जो उपाय वताता है, वह वास्तव मे आत्मा के लिए हितकारी नहीं रहता है। इससे वर्धमान महाराज ने अपने वन्धु तथा वन्धुतुल्य व्यक्ति के माध्यम से दीक्षा की अनुज्ञार्थ उद्योग करना उपयुक्त नहीं समझा था।

सत्तर वर्ष की अवस्था में क्षुल्लक दीक्षा

इस समय वर्धमानसागर जी ७० वर्ष के हो चुके थे। अवस्था तो श्रेष्ठ तपस्या के प्रतिकूल प्रतीत होती थी, किन्तु आत्मवल एवं वैराग्य के आश्रय से उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा के महान् भार को अगीकार करने का सुदृढ निश्चय कर लिया। मुनि नेमिसागर जी पुत्तूरकर ममडोली मे विराजमान थे। अत· वे नेमिसागर महाराज के पास दीक्षार्थ गए।

उस समय कुमगोडा पाटील के मन मे अवर्णनीय सन्ताप हुआ। वे जमीन पर गिर गए, फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय का करुण दृश्य इन स्थिर-वेराग्यवाले महापुरुष पर कुछ भी प्रभाव न डाल सका।

विरागी की मनोदशा

उन्होंने ब्र जिनदास जी को कहा - "इधर मत देखो, आगे वढो।" उस समय वे सोचते थे - "अहमिक्को णाणमओ" - ज्ञानमयी मैं अकेला हूँ। "एक एव जायेहं, एक एव म्रिये, न मे कश्चित् स्वजन: परिजनो वा" - में अकेला उत्पन्न हुआ हूँ। अकेला मरण करता हूँ। मेरा कोई भी कुटुम्बी, बन्धु नहीं है। इस स्थिति मे किसका भाई और किसकी बहिन? यह सब मोह तथा अज्ञान का जाल है। उससे जकडा जीव पर-वस्तुओं में अपनापन उत्पन्न करता हे। अब मेरी आत्मा में सच्चे ज्ञान की ज्योति जगी है। मेरा कुटुम्व परिवार दूसरा हे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये मेरे बन्धु हें। सच्चे कुटुम्बी हैं।

त्रिकाल मे भी इनका साथ नहीं छूटता है। लौकिक वन्धु ग्मशान तक साथ देते है। मेरा हस अकेला ही कर्मो के अनुसार दूसगी पर्याय धारण करता है। वहॉ इसके अन्य कुटुम्वी तथा इष्ट जन वन जाते है। अव मै इस मोह के प्रतारणापूर्ण मायाजाल मे नहीं फॅसूॅगा। इस प्रकार ज्ञान का निर्मल निर्झर उनके अन्त करण मे वह रहा था।

समडोली मे दीक्षा

उनकी क्षुल्लक दीक्षा यथाविधि समडोली मे हो गई। चार वर्ष पर्यन्त ये क्षुल्लक रहे।

चातुर्मास गुरु के समीप हुए। पॉचवॉ चातुर्मास डिग्रज ग्राम मे हुआ। वहॉ बडगॉव के धर्मात्मा श्रावक वावूराव मार्ले आए और मोटर मे इनको वैठाकर गजपथा ले गए। वहॉ आचार्य शातिसागर महाराज विराजमान थे।

अनुज को प्रणाम

गजपथा पहुॅचकर इन ज्येष्ठ वयवाले बन्धु ने अनुज बन्धु आचार्य शान्तिसागर महाराज को प्रणाम किया। दीक्षा लेने के बाद भाई-वन्धु आदि के कौटुम्बिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। एक प्रकार से यह एक नवीन जन्म तपस्वी के रूप मे होता है। कानून मे इसे (Civil death) सिविल डेथ (मृत्यु) माना है। अत गृहस्थावस्था के छोटे भाई सातगोडा अब आचार्य शातिसागर के रूप मे है, उनका आत्मा ही भाई है, बधु है, अन्य कोई भाई नहीं है।

इसी कारण वर्धमान महाराज ने आचार्य महाराज को धर्मगुरु के रूप मे ही देखा, अनुभव किया तथा उसी रूप मे उनके चरणो की वदना की।

दीक्षा की महत्ता

बडी नम्रतापूर्वक गुरुचरणों मे उन्होने प्रार्थना की - "महाराज! क्षुल्लक पद लिये चार वर्ष व्यतीत हो गए। अब ऐलक दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिए।"

आचार्य महाराज बोले - "यह दीक्षा बहुत कठिन है। तुम्हारी अवस्था ७५ वर्ष की हो गई।"

वर्धमान महाराज ने बारबार विनय कर आचार्यश्री के मन मे यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि यदि इनको यह पद दिया गया, तो यह उसे निर्दोष रूप मे पालेगे, फिर भी आचार्य महाराज इनकी दीक्षा के बारे मे गम्भीरतापूर्वक विचार करते रहे।

गजपथा मे वर्धमान महाराज को सोने के लिए रात के समय एक चटाई दी गई थी। वे उस पर न सोकर जमीन पर ही निद्रा ले रहे थे।

मध्यरात्रि मे उठकर आचार्य महाराज ने देखा कि वर्धमानसागर जी जमीन पर सो रहे हैं। चटाई अलग है। इससे उनके हृदय मे यह भाव उत्पन्न हुआ कि इनके विरागी मन मे सयम के प्रति प्रगाढ प्रेम है।

ऐलक दीक्षा

गहराई से विरक्तमन की परीक्षा के वाद दीक्षा का निश्चय हुआ। आपाढ सुदी त्रयोदशी को गुरुप्रसाद से वर्धमानसागर महाराज क्षुल्लक से ऐलक वन गए। अव इनके पास लगोटी, पिच्छी और कमडलु मात्र सामग्री रह गई। भोतिक दृष्टि से इनकी अकिचनता वढी, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ये विशिष्ट सयम-लक्ष्मी के स्वामी वन गए। आचार्य महाराज ने इनको आदेश दिया कि यहाँ से वापिस दक्षिण जाने के पश्चात् फिर कभी मोटर आदि में नहीं वैठना।

ये वहाँ से लौटे। इनके हृदय मे वडी विशुद्धता थी। अपार आनन्द था। जेसे कोई लखपति करोडपति बनने पर अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करता है, इसी प्रकार क्षुल्लक के स्थान में ऐलक पद प्राप्त करके इनके हृदय मे हर्ष हुआ था।

धनी व्यक्ति की धनलाभ के वाद तृष्णा जागती है, उसी प्रकार इनके मन मे यह भाव उत्पन्न होता था - "हे जिनेन्द्र देव! आपके चरणप्रसाद से मुझको शीघ्र ही दिगम्बर अवस्थापूर्ण निर्वाण मुद्रा धारण करने का सोभाग्य प्राप्त हो।" अत करण की सच्ची भावना फलवती होती है। ऐलक अवस्था मे एक वर्ष व्यतीत हुआ। दूसरा वर्ष प्रारभ हुआ।

बारामती में मुनि दीक्षा

चातुर्मास पूर्ण होने के उपरान्त मार्गशीर्ष मास मे ऐलक वर्धमानसागरजी महाराज गुरुदेव आचार्य शान्तिसागर महाराज के समीप बारामती पहुँचे और अत्यत विनयपूर्वक मुनिमुद्रा प्रदान करने की प्रार्थना की। जिनमुद्रा धारणकर निर्दोष रीति से उसके महान् नियमो का पालन करना इस कलिकाल मे बहुत कठिन कार्य है। दूसरी बात यह भी है कि वर्धमानसागर महाराज का ७८ वॉ वर्ष चल रहा था। इतनी वृद्धावस्था मे महाव्रत का भार आज का बुद्धिजीवी वर्ग सोच नहीं सकता। जगत् तो बूढे आदमी का इसी रूप मे सर्वत्र चित्र देखा करता है -

अग गलित पलित मुड, दशनविहीन जात तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्ड, तदपि न मुंचत्याशा-पिण्डम्॥

- अग गल गए है, मस्तक सफेद हो गया है, मुख दत-शून्य हो गया है तथा चलने के लिए हाथ मे दण्ड है, ऐसा व्यक्ति वृद्ध होने पर भी आशापुज का परित्याग नहीं करता है।

उद्बोधक उत्प्रेक्षा

वर्धमानसागर महाराज के वृद्धत्व के सम्बन्ध मे उपर्युक्त दोष-मालिका का अभाव था। उनके विषय मे सोमदेवाचार्य के यशस्तिलक मे प्रतिपादित ये वाक्य चरितार्थ होते थे -

मुक्तिश्रिय· प्रणयवीक्षणजाल-मार्गा ।
पुसा चतुर्थपुरुषार्थतरुप्ररोहा.॥
नि. श्रेयसामृतरसागमनाग्रदूता:।
शुक्ला· कचा· ननु तपश्चरणोपदेशा.॥२,१०४॥

- ये केश तुम्हे तपश्चर्या का पाठ सिखाने आए है। ये मुक्तिलक्ष्मी के प्रेमपूर्वक दर्शन हेतु झरोखे सदृश है। मोक्ष रूप चतुर्थ पुरुषार्थ रूप वृक्ष के अकुर समान है। परम कल्याण निर्वाणमय रूप आनद रस के आगमनद्योतक अग्रदूत है।

अत ७६ वर्ष की वर्धमान अवस्था मे वर्धमान महाराज ने मगसिर सुदी षष्ठी सवत् १८७९ अर्थात् सन् १९३६ मे बारामती मे मुनिमुद्रा धारण की। ऐसे अवसर पर लोग दोनों आदर्श मुनिबधुओ की जननी माता सत्यवती और पिता भीमगोडा के पवित्र वश का स्मरण करते थे कि जिनके यहाँ ऐसे त्रिभुवनवदित और सम्यक् चारित्र समलकृत दो वीतराग साधुराज उत्पन्न हुए थे। ऐसा सौभाग्य किस वश को प्राप्त होता है?

आदर्श वैराग्यभाव

मोह का लेश भी उत्पन्न न हो, इससे दीक्षा के पश्चात् गुरु की आज्ञा से वर्धमान मुनिमहाराज दक्षिण तरफ चले गए। दोनों सगे भाई यदि साथ-साथ रहते है, तो सम्भव है मन में मोह का भाव कुछ जागृत हो जाय, इसीलिए प्रतीत होता है कि परम अनुभवी तथा गम्भीर विचारक आचार्य महाराज ने वर्धमान स्वामी को अपने पास आश्रय देना उचित नहीं समझा और उन्हे अन्यत्र रहने का आदेश प्रदान किया।

अद्भुत मनोविकल्प

एक समय ता. ३१ अगस्त को छोटे भाई कुमगोंडा के पुत्र जिनगोंडा की पत्नी लक्ष्मीबाई महाराज के पास लगभग १५ मिनिट पर्यन्त कुछ चर्चा करती रही। उस समय महाराज के मन में संभवतः ऐसा विकल्प आया कि अपने गृहस्थावस्था के भतीजे की स्त्री से इतनी देर बात करना ठीक नहीं था। मेरा अब कोई लौकिक कुटुम्बी एवं बंधु नहीं

रहा है। इससे मुझे लक्ष्मीवाई से विशेष वार्तालाप नहीं करना था। आचार्य महाराज तो निर्ग्रन्थ वनने पर मुझे भाई न मानकर भोज का पाटील कहते थे, तव मेरी दृष्टि भी ऐसी ही होनी चाहिए। सभवत कुछ ऐसे महान् विचार उनके मन मे आए। उन्होंने शीघ्र कुटी मे जाकर वहुत समय तक आत्म-ध्यान किया। पश्चात् समीपवर्ती विचारवान भक्त गृहस्थ से कहने लगे - "आज वहुत भूल हो गई थी। मै कहाँ से कहाँ चला गया था? यथार्थ मे मेरा कोई नहीं है। मै भी किसी का कुछ नहीं हूँ।" उस समय मुझे पता चला कि इनका मन स्फटिक सदृश स्वच्छ है।

सरलता की मूर्ति

वे सरलता की मूर्ति है। एक दिन मेरे भाई प्रोफेसर सुशीलकुमार दिवाकर का पत्र आया। उसमे महाराज को नमोस्तु लिखा था। मैंने सुनाया - "महाराज, छोटे भाई ने आपको नमोस्तु कहा है।" महाराज ने कहा - "उनको हमारा आशीर्वाद लिख देना। तुम्हारे घर मे भी सबको आशीर्वाद लिख देना। एक वात और ध्यान मे रखना, हमारे लिए जो नमोस्तु लिखे, उसे तुम स्वय हमारा आशीर्वाद लिख देना, भूलना नहीं।"

मार्मिक उक्ति

मै शास्त्र पढता था। उस समय महाराज के मुख से समयोचित तथा अनुभवपूर्ण अनेक मार्मिक वाते निकलती थीं, जिससे महाराज का उच्च अनुभव और तपस्या के प्रसाद से वर्धमान क्षयोपशम का सद्भाव सूचित होता था। उन्होंने कहा था - "सिद्ध भगवान लोक के शिखर पर बैठकर ससार का नाटक देखते है और सरागी भगवान स्वय नाटक करते है। जैन आगम छोटासा जलाशय नहीं है, वह तो सिन्धु से भी वडा है। सम्यक्त्वी जीव अव्रती होते हुए भी अन्य व्रती को देख ऐसा हर्षित होता है, जैसे माता रुक्मिणी चिरवियुक्त पुत्र प्रद्युम्न की भेट होने पर आनन्दित हुई थी।" वर्धमान महाराज जव किसी कथा को कहते थे तो उसमे स्वाभाविकता तथा चरित्र-चित्रण का अपूर्व माधुर्य पाया जाता था।

उपयोगी जिज्ञासा

भादो सुदी दशमी को आचार्य महाराज के विषय मे मैंने एक प्रश्न पूछा - "समाधि लेने के पूर्व आचार्य महाराज शेडवाल, सागली आदि स्थानों मे गए थे। नाद्रे मे वे श्री वालगोडा के अत्यन्त विशाल, भव्य तथा फलो से लदे हुए रम्य वगीचे मे २१ दिन ठहरे थे। उसके पश्चात् वे आगे विहार कर गए। उस समय आपकी और उनकी अतिम भेट हुई थी। प्रार्थना है कि उस समय हुई वातचीत का कुछ दिग्दर्शन करे?

अतिम वार्तालाप

वर्धमान महाराज ने कहा - "हमने महाराज से पूछा, क्या फिर इधर आवेगे, हमारी आपकी अब कब भेट होगी?"

आचार्य महाराज ने उत्तर दिया था - "अब हमारी तुम्हारी भेट यहाँ नहीं होगी। अब स्वर्ग मे ही अपनी भेट होगी।" इस चर्चा के उपरान्त वर्धमान स्वामी की मुद्रा बहुत गम्भीर हो गई। इससे मैने पुन अन्य प्रश्न नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता था मानो वर्धमान महाराज के समक्ष अपने दिवगत गुरुदेव का चित्र आ गया हो।

तात्त्विक बात

तात्त्विक चर्चा में महाराज ने कहा - "दान-पूजा आदि षट्कर्मो के द्वारा मोक्ष नहीं मिलता, स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है। हिसा, चोरी, लबारी, कुशील सेवनादि से पाप होता है, उसका फल नरक गति, तिर्यच गति के दु ख है। एक दृष्टि से पुण्य अमृतकुभ है और पाप विषकुभ है। दूसरी दृष्टि पुण्य-पाप दोनो को विषकुभ मानती है। शुद्ध दृष्टिमात्र अमृतकुभ है। गृहस्थ जीवन मे षट्कर्म रूपी कृषि, वाणिज्यादि लोहे को धारण करने वाला पुण्यकर्म रूपी सुवर्ण को नहीं छोडेगा। उस स्वर्ण का भी त्याग करने वाला आत्म-रत्न की उपलब्धि के हेतु उद्योग करता है। यदि कोई आदमी लोहे का सग्रह करते हुए सुवर्ण के त्याग की बात करता है, तो उसे झूठा मानना चाहिए, इसी प्रकार पाप कर्मो मे निमग्न रहने वाला यदि पुण्य रूप सुवर्ण को छोडने की चर्चा करता है, तो उसे भी विश्वास योग्य नहीं समझना चाहिये। आत्मा का चिंतन करना कल्याण का सच्चा मार्ग है। जग का चितन त्याग कर आत्मा का ध्यान करना चाहिए।

चोर पर भी करुणा

आचार्य शातिसागर महाराज के गृहस्थ जीवन की एक घटना पर वर्धमान महाराज ने इस प्रकार प्रकाश डाला था - "एक दिन महाराज, शौच के लिए खेत मे गए थे, तो क्या देखते हैं कि हमारा ही नौकर एक गट्ठा ज्वारी का चोरी करके ले जा रहा है। उस चोर नौकर ने महाराज को देख लिया। महाराज की दृष्टि भी उस पर पडी। वे पीठ करके चुप बैठ गए। उनका भाव था, बेचारा गरीब है, इसलिए पेट भरने को ही अनाज ले जा रहा है। उस दीन पर विशेष दया भाव होने से महाराज ने कुछ नहीं कहा, किन्तु वह चोर नौकर घर आया और हमारे पास आकर बोला - "अण्णा! भूल से मै खेत से ज्वार ले रहा था, महाराज ने मुझे देख लिया, किन्तु उन्होने कुछ नहीं कहा।"

दीनो के बधु

वर्धमान महाराज ने बताया कि - ''सदा से गरीबो पर हमारे परिवार का विशेष ध्यान रहा है। लगभग ८० वर्ष पूर्व भयकर दुष्काल आया था। अनाज नहीं पका था। गरीब लोग नागफणी के मध्य के लाल भाग तक को खाया करते थे। उस दुष्काल के समय हमारे पिताश्री की आज्ञा से हम ज्वारी की एक बडी रोटी तथा दाल सदृश पेय पदार्थ प्रत्येक व्यक्ति को देते थे। वह दुष्काल बडा भयकर था। रोटी बनाने को दो नौकर रखे थे। गरीबो को भोजनदान का काम मै स्वय अपने हाथ से करता था।''

आचार्यश्री के घरलू जीवन के सस्मरण

वर्धमान सागर महाराज ने आचार्य महाराज के बारे मे इस प्रकार सस्मरण बतलाये -

''मैने उसे गोद मे खिलाया, गाडी मे खिलाया। वह हमारे साथ-साथ खेलता था। बहुत शात था। रोता नहीं था। मैने उसे रोते कभी नहीं देखा, न बचपन मे और न बडे होने पर। उसे कपडे बहुत अच्छे पहिनाए जाते थे। सब लोग उसे अपने यहाँ ले जाया करते थे। हमारा घर बडा सम्पन्न था।''

''एक बार कुमगोडा पानी मे बह गया था, तब सब काम छोडकर महाराज ने पानी मे घुसकर उसे बचाया था। कुमगोडा की रक्षार्थ चौथी कक्षा के बाद इन्होने पढाई बद कर दी थी।''

''इनकी शादी की बात आती थी, तब कहते थे - 'मी लग्न करणार नाहीं।' मै विवाह नहीं करूँगा। कारण शास्त्र मे लिखा है, 'ससार खोटा है।' यह बात सुन हमारे माँ-बाप के आँसू आ गये। वे बडे ही धर्मात्मा थे, इसलिए मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। शरीर बल मे कोल्हापुर जिले में उनकी जोड का कोई नहीं था। चॉवल का पूरा बोरा उठाकर अपने कधे पर रख लिया था। इस पर जब उनको चादी के कडे इनाम देने लगे, तो उन्होने लेने से इकार कर दिया था।''

जन्म कुण्डली

''उनकी जन्म-पत्री से ही मालूम हो गया था कि वे मुनि हो जायेंगे। सूर्य निकलते समय उनका जन्म हुआ था। उपाध्याय ने जन्मकुडली बनाई और कहा - यह जगत् मे प्रकाश देगा। इससे माता-पिता हर्षित हुए थे।''

शक्ति की परीक्षा

एक वढई ने भोज मे आकर शक्ति-परीक्षण हेतु एक लम्बा खूटा गाडा था। वह गॉव मे किसी ने न उखडा, उसे नागपचमी के दिन महाराज ने जरा ही देर मे उखाड दिया था और वे चुपचाप घर आ गये थे, जब खूँटा उन्होने उखाडा तव मेने कहा था - 'ऐसा काम नहीं करना चोट आ गई तो?' उन्हे कीर्ति नहीं चाहिए थी। उनका मेरे प्रति सवसे अधिक प्रेम था। कुमगोडा पर भी प्रेम था।

जव उन्होने दीक्षा ली थी, तव उत्तूर से पत्र आया था, घर भर के लोग रोने लगे थे। हमारे भी नेत्रो में ऑसू आ गये थे, वाद मे हम उनके पास गये थे।

सर्पराज का शरीर पर से जाना

"तरुण वय मे वे खेत मे लेटे थे, उस समय एक वडा सर्प उनके गाल को स्पर्श करता हुआ पास के विल में घुसता और वार वार निकलकर उनको देखता था। वे स्थिर थे। यह बात महाराज ने हमसे कही थी। मै उन्हे सातगोडा कहता था और वे मुझे अण्णा कहते थे। उनकी दृष्टि थी कि यह शरीर नौकर हे। नौकर को भोजन दो और काम लो। आत्मा को अमृत पान कराओ।"

भादो सुदी त्रयोदशी को महाराज ने समयसार के प्रवचनकाल मे कहा था - "द्रव्यानुयोग के अभ्यास के लिए प्रथमानुयोग सहायक होता है। उसके अभ्यास से द्रव्यानुयोग कठिन नहीं पडता।

भोजन लोलुपी की कथा

महाराज ने प्रसगवश कहा था - "ज्ञानी पुरुष अवमौदर्य तप करता हे। भूख से कम आहार लेता है। अज्ञानी पुरुप पेट फटने पर्यन्त भोजन करता है, इससे वह दु खी होता है।" महाराज ने ८० वर्ष पूर्व की एक घटना बताई - "कोन्नूर मे बाबाभट्ट नाम के भोजनलोलुपी ब्राह्मण थे। उन्होंने लोटा भर घी खूव शक्कर मिलाकर खाया। भोजन की तीव्र गृद्धतावश उसने खूव घी भी पिया। पश्चात् वहॉ से चलकर भोज आते समय वेदगङ्गा-दूधगङ्गा नदी के सङ्गम मे से घुसकर भोज आया। शीतल जल पेट मे लगने के कारण खाया गया सब घी जम गया। इससे वह ब्राह्मण बडा दु खी हो छटपटाने लगा ऐसा दिखने लगा कि अब वह नहीं बचेगा।"

"भोज मे एक चतुर वैद्य था। वह बुलाया गया। बाबाभट्ट से शरीर व्यथा का कारण ज्ञात कर वैद्यराज ने एक खाट पर बाबाभट्ट को लिटवाया और नीचे अग्नि रखकर

पेट का खूब सिकाव करवाया। उष्णता से पेट में जमा घी पतला हो गया और उसके बाद विरेचन हुआ। इस प्रकार उसके प्राण बचे, नहीं तो उस ब्राह्मण की आशा नहीं रही थी। उसने भोजन खाया, किन्तु अतिरेक होने से भोजन ही उसे खा रहा था, इसलिए भोजन मे गृद्धता को छोडकर भूख से कम खाना कष्टप्रद नहीं होता है।"

मर्यादित जीवन

गृहस्थ के कल्याण हेतु महाराज ने कहा - "यदि हम बाल से वृद्ध पर्यन्त सबको ही ब्रह्मचर्य का उपदेश देंगे, तो कार्य कैसे बनेगा? सीढी पर पैर रखते हुए आगे बढना चाहिये। गृहस्थ को विषयसेवन मे बहुत मर्यादा रखना चाहिए। अधिक विषय-भोग से शरीर का रक्त नष्ट होता है और आदमी रोगी होकर शीघ्र मरण को प्राप्त करता है।"

आदर्श पथ

वर्धमान महाराज ने बताया था कि ३६ वर्ष की अवस्था में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। यदि वर्धमान महाराज का आदर्श आज का गृहस्थ स्मरण रखे, तो उसकी सतति-वृद्धि जनित विविध प्रकार की आकुलताएँ अनायास दूर हो जॉय और तब वह मनुष्य अपने जीवन का स्वकल्याणार्थ उपयोग कर सकता है, अन्यथा वह परिवार की सेवा चाकरी में दिनरात व्यतीत कर कोल्हू के बैल के समान अमूल्य जीवन को समाप्त करता है।

वर्धमान महाराज की धर्मपत्नी लगभग १६ वर्ष पर्यन्त जीवित रही थीं। उनसे एक पुत्र बालगोडा हुए थे, जो अभी जीवित हैं। वे अत्यन्त भद्र परिणामी हैं। वर्धमान महाराज ने बताया था कि उन्होंने मुनि आदिसागर जी बोरगॉवकर से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था। वर्धमान महाराज खेती का काम देखा करते थे। नौकर चाकर तथा गरीब इनसे बडे प्रसन्न रहते थे, कारण ये उनको खाने-पीने को मुक्तहस्त होकर अनाज दिया करते थे। हरिजन आदि गरीबो पर आचार्य महाराज की विशेष दयादृष्टि रहती थी। वे कठोर वाणी नहीं बोलते थे। उनका आहार-पान सामान्य था। उनकी दृष्टि घर में आचार्य शांतिसागर महाराज को अच्छा भोजन कराने की ओर विशेष रहती थी।

सत्यप्रिय जीवन

वे सत्यता और सरलता की तो प्रारम्भ से ही मूर्ति रहे हैं। उन्होंने बताया कि - "हमारे पिताजी मिथ्या नहीं बोलते थे। मैं भी असत्य भाषण नहीं करता था।" इस सत्य

पचमकाल मे चतुर्थकाल की छटा बिखेरने वाला पूज्य 108 वर्धमानसागरजी महाराज के सघ का पुण्यदर्शन

भाषण के कारण वर्धमान महाराज को लगभग लाख रुपए की सम्पत्ति से हाथ धोना पडा था। वकील ने कहा था - महाराज! एक शब्द थोडा बदलकर बोल देना। मै सब सम्हाल लूँगा। कोर्ट मे आने पर जब न्यायाधीश ने सत्य बोलने की शपथ दिलाई, तो वकील साहब के द्वारा पढाया गया सब पाठ विस्मरण हो गया और उन्होने ठीक-ठीक बात कह दी। वकील ने महाराज से कहा - गवाही देते समय आप भूल गए। महाराज ने उत्तर दिया - मै भूला नहीं। मैंने ठीक-ठीक उत्तर दिया है। वास्तव मे वे माता सत्यवती के आदर्श आत्मज थे। महाराज की इस सत्यता की अभी भी पुराने लोग उस प्रात मे चर्चा करते है।

आज के दम्भप्रधान युग मे थोडे से रुपयो के लिए बडे-बडे लोग झूठ बोल देते हैं। सचमुच में वर्धमान महाराज सदृश महापुरुष बिरले ही होते है। उनकी धारणा रहती है, 'पुण्यानुसारिणी लक्ष्मी' - पुण्य के अनुसार लक्ष्मी का लाभ होता है। भाग्य का चक्र विचित्र रहता है। इस विषय में महाराज ने कोल्हापुर के राजा शाहू महाराज का एक बडा रोचक तथा मार्मिक कथन सुनाया -

कोल्हापुर नरेश का संस्मरण

एक बार कोल्हापुर के राजा शाहू महाराज से उनके राजपडित ने निवेदन किया - "श्रीमत सरकार! आप अन्य लोगो को हजारो रुपया दान मे दिया करते हैं। मुझ गरीब ब्राह्मण पर भी ऐसी कृपा क्यो नहीं करते?" शाहू महाराज बडे अनुभवी और विचारशील शासक थे। उन्होने कहा - "क्या करूँ, आपको अधिक द्रव्य देने का भाव ही नहीं होता।" पडित की समझ मे शाहू सरकार का कथन नहीं आया। अत पडित के भाग्य की परीक्षा के हेतु राजाज्ञा से दो ढेर भूसा के लगवाए गए। एक मे केवल भूसा था, दूसरे मे सुवर्ण रखा था। ऊपर से देखने मे दोनों ढेर समान ही दृष्टिगोचर होते थे। शाहू महाराज ने ब्राह्मण से कहा - "जो ढेर तुम्हें पसद आये, उसे उठा लो।" पडित महोदय ने भूसा वाला ढेर उठाया। सुवर्ण वाला ढेर उठाने के उनके परिणाम नहीं हुए। इस पर शाहू महाराज ने कहा - "हम क्या करे, आपका दैव ही ठीक नहीं है।"

भर्तृहरि ने कहा है कि जीव पूर्व कर्म के अनुसार सपत्ति प्राप्त करता है। घट लेकर कोई व्यक्ति कुए पर जाता है, पश्चात् उस घट को लेकर समुद्र के समीप पहुँचता है, तो भी समान ही जल प्राप्त होता है, इसी प्रकार अपने पूर्व पुण्य के अनुसार जीव को सम्पत्ति मिलती है। बडे-बडे सपत्ति के केन्द्र रूप महानगरो मे दीन-हीन भिक्षुको का अस्तित्व यह बताता है कि पुण्य की सपत्ति जिनके पास है, उनको ही बाह्य भौतिक सपत्ति भी प्राप्त होती है। इस तथ्य को भूलकर मनुष्य छल-कपट द्वारा धनवान बनने की

व्यर्थ चेष्टा करता फिरता है तथा असफल होने पर दु खी होता है। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि न्यायोचित मार्ग पर आश्रय लेकर धनोपार्जन करे। पाप का पथ स्वीकार करने पर जीव दु ख के ही बीज बोता है। उचित यह है कि मनुष्य देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति करके आगामी सुख के कारण पुण्य की पूजी एकत्रित करे। सोमदेव सूरि का कथन है - "देवान् गुरून् धर्म च उपाचरन् न व्याकुलमति स्यात्" - देव, गुरु तथा धर्म की आराधना करने वाला व्यक्ति व्याकुल परिणाम वाला नहीं होता है। वर्धमान महाराज तथा आचार्य महाराज की गृहस्थ जीवन मे उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार प्रवृत्ति रहती थी।

शिथिलाचार तथा अज्ञान का युग

वर्धमान महाराज ने वताया था कि जब आचार्य महाराज ने मुनि देवेन्द्रकीर्ति स्वामी से क्षुल्लक दीक्षा ली थी, उस समय देवेन्द्रकीर्ति स्वामी एक बार पचमुष्ठी वनाकर कुछ केशो का लोच करते थे। पश्चात् कैची से शेष केशो को बनवाते थे। सचमुच में वह अद्भुत अज्ञान का युग था। उस समय उत्तर भारत के लोग तो मुनि पद के अस्तित्व की भी कल्पना नहीं करते थे और दक्षिण मे जो निर्ग्रन्थ गुरु थे, उनकी क्रियाएँ अनेक बातों मे विचित्र थीं। मुनि जीवन से शिथिलाचार को दूरकर आगमानुसार प्रवृत्ति को पुन प्रचलित करने का श्रेष्ठ कार्य आचार्य शातिसागर महाराज ने किया था।

गुरुदेव का महत्त्वपूर्ण संस्मरण

आचार्य महाराज ने भौसेकर आदिसागर मुनिराज से यरनाल ग्राम मे मुनि दीक्षा ली थी।

(इस प्रसग मे सघस्थ आर्यिका विशुद्धमतीजी ने जब 'ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती' पुस्तक का लेखन आचार्यश्री के जीवन के सम्बन्ध मे उपलब्ध साहित्य के आधार पर किया था, तब पूज्य शान्तिसागरजी महाराज के निर्ग्रन्थ दीक्षादाता गुरु के सम्बन्ध में यह कथन देखकर दिवाकरजी से पत्रव्यवहार किया गया। उत्तर मे उनसे प्राप्त पत्र यहाँ ज्यों का त्यो प्रस्तुत है – चे प्र पा)

विद्वत्‌रत्न सुमेरुचन्द्र दिवाकर शास्त्री
बी ए, एल एल बी, धर्म दिवाकर, न्यायतीर्थ

दिवाकर सदन
सिवनी (म. प्र.)
२६-६-१९९२

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विशेष विज्ञप्ति – पू. माता विशुद्धमतीजी ने परम पूज्य १०८ श्रमणशिरोमणी साधुराज आचार्य शांतिसागर महाराज के बारे में मेरे द्वारा लिखी गई रचना चारित्रचक्रवर्ती की ओर जनता का परिज्ञान प्रदानार्थ उपयोगी कार्य किया है।

यह बात उल्लेखनीय है कि शांतिसागर महाराज को मुनि दीक्षा प्रदाता देवेन्द्रकीर्ति महाराज थे।

निवेदक - सुमेरुचंद्र दिवाकर

शांतिसागर महाराज के निर्ग्रन्थ दीक्षादाता गुरु भोज ग्रामवासी आदिसागर जी की दीक्षा की अदभुत कथा सुनने को मिली। वर्धमान महाराज ने बताया था कि आदिसागर जी ने मुनिपद ग्रहण कर लिया पश्चात् उन्होंने कहीं यह सुना कि पंचमकाल में ११ कोटि मुनीश्वर मरण करके नरक जाते हैं। इस बात को ज्ञातकर उनके मन में अदभुत परिवर्तन हुआ। वे सोचने लगे - यदि शास्त्र यह कहता है कि मुनि पदवी धारण करके नरक जाना पडेगा, तो मुनिपद का त्याग करना ही अच्छा है। ग्रामवासी उस भोली आत्मा को सत्पथ बतानेवाला कोई न मिला। अपनी विचित्र धुन मे मग्न हो उन्होंने घर पर आकर मुनिपद का त्याग करके कंबल ओढ लिया और स्त्री से कहा - ''भाकरी आण'' - खाने के लिए ज्वार की रोटी दे।

बेचारी स्त्री घबडा गई। पतिदेव मुनि बने थे। उस पद मे तो मागकर भोजन नहीं होता ये कैसे मागकर खाने को तैयार हो गए। उस बाई ने गॉव के पचो को सूचना दी। सब चिन्ता मे निमग्न हो गए। उस गॉव मे एक चोगुले नामक चतुर गृहस्थ थे। उन्होंने आदिसागर जी से चर्चा कर सब बाते समझ लीं।

श्री चोगुले ने भद परिणामी आदिसागरजी को समझाते हुए कहा कि शास्त्र में लिखा है कि मुनिपद को धारण करके स्वर्ग जावेगे। शास्त्र मे यह भी लिखा है कि यदि कोई मुनिपदवी धारण कर उसे छोडेगा तो वह व्यक्ति नरक जायगा। आगम के अनुसार मुनिपद धारण करने वाला स्वर्ग जायगा शास्त्र की परवाह न कर स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वाला मुनि नरक जायगा। इस बात को सुनकर उन भोले-भाले आदिसागरजी का भ्रम दूर हुआ और उन्होंने पुन मुनिचर्या को पालना प्रारम्भ कर दिया। मागूर ग्राम मे उनका स्वर्गवास हुआ था। उन्हे लम्बे समय तक समाधिमरण का उद्योग नहीं करना पडा था। एक उपवास पूर्वक उनका मरण हुआ था।

धर्म के विषय मे सतर्कता

वर्धमान महाराज ने उपदेश देते समय एक दिन कहा था - ''आत्मा शैव नहीं है बौद्ध नहीं है, यवन नहीं है, बाल नहीं है वृद्ध नहीं है। आत्मा स्वयभू है। आत्मा का कल्याण धर्म के द्वारा होता है। खरे-खोटे धर्म की परीक्षा करना चाहिए। तुम बाजार जाते हो। अल्प मूल्य वाले मिट्टी के बर्तन को खरीदते समय उसे बजाकर देखते हो कि कहीं यह फूटा तो नहीं है। नारियल को लेते समय उसे भी बजाकर देखते हो तब फिर जिस धर्म के द्वारा आत्मा का भविष्य उज्ज्वल बनता है, उसके सम्बन्ध मे परीक्षा की दृष्टि नहीं रखना चतुर व्यक्ति का कर्त्तव्य नहीं है।''

किसान का उदाहरण

महाराज ने एक सुन्दर बात कही थी कि एक बार एक किसान अपनी स्त्री से कह रहा था कि अपना छोटा सा परिवार है, थोडी सी खेती का काम है, उसकी बहुत आकुलता रहती है, तब बडे भारी राज्य के स्वामी महाराज भरत को कितनी चिन्ता रहती होगी? चक्रवर्ती को नींद भी दुर्लभ होगी। भरतेश्वर ने अपने अवधिज्ञान से यह बात जान ली।

उन्होंने उस किसान को राज-भवन म बुलवाया। उसके सिर पर एक घड़ा पानी रखवाया और उसे राजमहल के सुन्दर दृश्य देखने का आदेश दिया। आसपास नृत्य होता था। अनेक प्रकार उत्सव होता था। सम्राट् ने अपने सिपाही को प्रगट रूप में आज्ञा दी कि यदि इस किसान के घडे से पानी की एक बूंद भी गिरी, तो तलवार से इसका शिरच्छेद कर देना। अलग बुलाकर सिपाही से भरतेश्वर ने यह भी कह दिया कि यह आदेश किसान के मन में भय पैदा करने को दिया गया है। इसका उपयोग नहीं करना है। इसके पश्चात उस किसान को राजमहल में सुन्दर दृश्य बताए गए। मधुर-मधुर गीत सुनाए गए।

अन्त मे भरतेश्वर ने उस किसान से पूछा - "तुमने क्या-क्या देखा?"

वह किसान बोला - "महाराज! मै कुछ भी नहीं देख सका। पानी की बूंद गिरने पर सिर कटने का जो दण्ड आपने बता दिया था, उससे मैं डर गया था। मेरा ध्यान पानी के घडे पर ही था। मैं कुछ भी दृश्य नहीं देख सका।"

भरतेश्वर ने कहा - "जिस प्रकार प्राण जाने के डर से तुम सब दृश्य समक्ष होते हुए भी उनको नहीं देख सके, इसी प्रकार मेरा भी ध्यान है। सारे राज्य वैभव के मध्य रहते हुए भी ससार के दु खो का स्मरण करने के कारण मेरा ध्यान अपनी आत्मा के बाहर नहीं जाता है।"

इस उदाहरण के द्वारा चक्रवर्ती की विरक्ति का भाव स्पष्ट होता है।

महाराज ने कहा - "जिस समाधि मे शरीर का मोह नहीं रहता, आत्मा के सिवाय अरहत भगवान का भी ध्यान नहीं रहता, वही सच्ची समाधि है। आत्मा के स्वरूप में निमग्न होने वाले को बाहर का पता नहीं चलता है। यहाँ तुम बोलते हो, तो हमारा उपयोग तुम्हारे कथन पर रहता है, इसी प्रकार आत्मा पर लक्ष्य रहने पर बाहर का ध्यान नहीं रहता है। उस ध्यान के समय हमे आने-जाने वालो का भी पता नहीं रहता है।

को वे प्राणों से भी अधिक महत्त्व देते रहे हैं। ऐसी महान् आत्मा के आदेश, उपदेश तथा जीवन प्रवृत्ति को अपने लिए हितकारी समझने में तथा यथाशक्ति पालन करने मे हमारा कल्याण है।

पक्षी समुदाय

मैंने देखा - वर्धमान महाराज के पास आकर अनेक पक्षी चुपचाप बैठ जाते थे। चिडिया भी उनसे नहीं डरती थी। कभी-कभी चिडिया सिर पर, कधे पर बैठ जाती थी। मैने इसका कारण पूछा।

महाराज ने कहा - "पक्षी आता है, तुम उसे भगाते हो, वह बेचारा डरकर भाग जाता है। हम उनको नहीं भगाते हैं। किसी को कष्ट क्यो दें? इससे वे बेचारे हमारे पास आते हैं, बैठते हैं। उनको डर नहीं लगता है।"

उत्तर की यात्रा

सन् १९२७ मे वर्धमान स्वामी गृहस्थावस्था मे कुमगोडा के साथ शिखरजी की यात्रा को गए थे। सोनागिरि गए थे। अजमेर की नसिया का दर्शन किया था। नागपुर के पास के अतिशय क्षेत्र रामटेक भी गए थे।

प्राणायाम

वर्धमान महाराज क्षुल्लक की अवस्था में मोटर द्वारा ऐलक दीक्षा लेने कोल्हापुर के श्रावको के साथ गजपथा आचार्य महाराज के पास गए थे। मोटर कितने वेग से चलती थी इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया था कि मील का खम्भा देखकर कभी-कभी हम श्वास रोकते थे, तो दूसरे मील का खम्भा आने पर हम श्वास छोडते थे। इस विषय को लिखने का हमारा उद्देश्य इतना ही है कि पाठक देखे कि साधु बनने वाले सत्पुरुषों के कार्य ऐसे अद्भुत हुआ करते हैं कि उनके बारे मे अन्य साधारण व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

अन्तिम दर्शन

पर्युषण पूर्ण होने पर नाद्रे से कोल्हापुर के लिए प्रस्थान करते समय मैने वर्धमान महाराज से आशीर्वाद की प्रार्थना की, तो आशीर्वाद देते हुए महाराज ने कहा - "पुरुषार्थ भी करो। हमारा आशीर्वाद तो है ही। हमारा तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम जहाँ भी जाओ जैन-धर्म की ध्वजा को सदा ऊँचा रखना। एक बात और ध्यान में रखना कि यहाँ से जाने

के बाद हमारा पता लेते रहना और जब समाधि का समय निकट रहे, उस समय अवश्य आना।"

अन्तिम प्रयाण वेला

इसके पश्चात् ऐसा अद्भुत कर्मोदय आया कि फिर वर्धमानस्वामी का दर्शन नहीं हुआ। उनकी कुशलता के समाचार, पत्रों तथा तार द्वारा प्राप्त करता था। दुर्भाग्यवश २६ फरवरी १९५९ को सायकाल के समय १०८ वर्धमानसागर महाराज की प्रकृति अकस्मात् बिगड गई। उसके पहले गुरुदेव उस गुरुवार को अनेक लोगो के साथ धार्मिक चर्चा करते रहे। थोडा-सा ज्वर-मात्र था। सन्ध्या को अधिक मल-विसर्जन होने से क्षीणता वृद्धिंगत होने लगी। रात्रि भर शरीर क्षीण होता चला गया। शुक्रवार के प्रभात मे सामायिक के लिए बैठते-बैठते शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया। परलोक प्रयाण का सूचक श्वास चलना प्रारम्भ हुआ। पच-नमस्कार का जाप चल रहा था कि ६ बजे साम्यभाव पूर्वक पूर्व के देवगोडा नामधारी वर्धमानसागर महाराज नामवाली ज्योतिर्मयी वीतराग परिणति विभूषित आत्मा ने ९७ वर्ष वाली देहरूपी जीर्ण कुटी को त्यागकरके देवपर्याय प्राप्त की। सयम के माध्यम से देवगोडा ने देवेन्द्र पदवी प्राप्त की होगी। आचार्य शातिसागर महाराज ने सकल सयम की समाराधना द्वारा प्रभात मे प्राणों का परित्याग किया था। आगम के प्रकाश मे देखा जाय, तो अब ये दोनों मुनिबन्धु दिव्यलोक मे जाकर अवश्य मिले होगे।

समाधिमरण की वेला मे इन महामुनि साधुराज की सेवा का उज्ज्वल सौभाग्य १०८ मुनि नेमिसागर महाराज (दक्षिण), ऐलक कुलभूषण जी, क्षु सन्मतिसागर जी, क्षु जयसेन जी तथा ब्र जिनदास जी समडोलीकर को प्राप्त हुआ था। ब्र जिनदासजी को कुथलगिरि मे योगिराज शातिसागर महाराज की अन्तिमसेवा का भी श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके विशेष सहयोग तथा परिश्रम के फलस्वरूप ही हम आचार्यश्री की जीवन सामग्री एकत्रित कर सके। वे कन्नड, मराठी तथा हिन्दी जानते थे। अत वे हमारे लिए दुभाषिये के रूप मे बडे उपकारी तथा उपयोगी रहे। हम उनके अत्यत कृतज्ञ हैं।

भोज निवासी साधुराज का प्राणोत्क्रमण कुभोज ग्राम के जिनालय के बाहर के कमरे मे हुआ था। २॥ बजे दिन तक हजारो लोग वहाँ आ गए। विमान मे मङ्गलमय सकलसयमी का शरीर विराजमान किया गया। श्रीविमान चार बजे बाहुबली क्षेत्र पर पहुँच गया। श्रीमती सरस्वतीबाई आरवाडे ने ९०१ रु देकर उस पवित्र शरीर की अन्तिम अभिषेकादि विधि सम्पन्न की। १०८ मुनि नेमिसागर महाराज तथा ऐलक कुलभूषण

महाराज के तत्त्वावधान मे योग्य रीति से सर्व कार्य सम्पन्न हुआ। पद्रह सहस्र से अधिक धार्मिक जन-समुदाय उस समय एकत्रित हुआ था। ऐलक कुलभूषण महाराज मुनिरूप मे सन् १९८० के लगभग शिखर जी से लौटते हुए सिवनी पधारे थे। नागपुर मे उनका चातुर्मास हुआ था।

समाधि स्थान का दर्शन

वर्धमान महाराज का स्वर्गारोहण कुभोज ग्राम मे हुआ था। उनकी समाधि के स्थल का दर्शन करना आवश्यक था। श्री गणपति रोटे, शाहपुरी कोल्हापुर बहुत सज्जन, गुरुभक्त तथा स्नेही व्यक्ति के पास हम ठहरे थे। उन्होने अपनी मोटर द्वारा हमारा कार्य अल्पकाल में सम्पन्न करा दिया। हम कुभोज ग्राम गए। मदिरजी मे प्रवेशकर भगवान के दर्शन किए। इसके बाद उस स्थान पर गए, जहाँ वर्धमान महाराज विराजमान रहते थे, किन्तु हमें वर्धमान महाराज नहीं मिले। वे महामुनि, वे अलौकिक साधुराज इसी कमरे मे रहे थे, किन्तु अब वे यहाँ नहीं हैं। यहाँ ही यमराज उनके पास आया था। समतापूर्वक उनका समाधिमरण यहाँ ही हुआ था। उस कमरे मे विविध विचार पैदा होते थे।

स्मृतियाँ

उनके पुण्य जीवन की स्मृति सजग हो उठी। ९७ वर्ष की अवस्था मे भी शातिभाव से तथा निर्दोष रीति से दिगम्बर मुद्रा धारण कर केवल दिन मे करपात्र द्वारा आहार ग्रहण करना, स्वाध्याय करना, आत्मचिन्तन करना उनकी चर्या थी। वे सारी दुनियाँ में एक थे। उनकी आत्मा सजीव अध्यात्म शास्त्र थी।

हमे यह ज्ञातकर बडा आश्चर्य हुआ कि सोनगढ के सत्पुरुष अपने विशाल सघ सहित बाहुबली आए थे। वहाँ से करीब २ मील की दूरी पर कुभोज ग्राम है, जहाँ अध्यात्म की विभूति वर्धमान महाराज थे। सघ ने विविध स्थानो को देखा था, किन्तु वे कुभोज नहीं गए। लोगो ने कहा भी कि कुभोज मे महान् विभूति विद्यमान है, किन्तु 'आत्मार्थी सत्पुरुषो' का चित्त वहाँ जाने का नहीं हुआ। अध्यात्म-मूर्ति, सकल सयमी साधुराज के दर्शन के परिणाम न होना, उस ओर से विमुख होना, क्या यह नहीं सूचित करता कि आत्मा का नाम लेना, आत्मदेव की लम्बी चर्चा करना तथा आत्मा की उपलब्धि मे महान् अन्तर है। यह बात विचारक स्वय सोच सकता है।

उस कमरे में वर्धमान महाराज के भौतिक-शरीर का दर्शन नहीं हुआ, किन्तु स्मरण द्वारा उनका पुण्य जीवन समक्ष आ गया। सफल समाधिमरण द्वारा नरभव रूपी

भवन पर सुवर्ण कलश लगाने वाले उन गुरुदेव को मैने प्रणाम किया। वाह रे यमराज! तू किसी को नहीं छोडता। ऐसे अच्छे साधुगज को भी तू ले गया। अच्छा! तेरी कृति का यह फल होगा कि थोडे समय मे वे ही साधुराज अपनी रत्नत्रय रूपी तलवार द्वारा तेरा ध्वस करके 'मृत्युजय' वनेगे।

समाधि के सस्मरण

वहॉ मदिर मे क्षुल्लक जयसेन जी विराजमान थे। वे वर्धमान महाराज के अत पर्यन्त उनके समीप रहे थे। उन्होने वताया - "वर्धमानसागर महाराज की मृत्यु के पूर्व दिन सध्याकाल पर्यन्त शास्त्र चर्चा चलती रही थी। उसमे महाराज उपस्थित रहे। रात्रि को उनकी प्रकृति कुछ बिगडी। मुनि नेमिसागर जी, क्षु सन्मतिसागर जी, मैं तथा ब्रह्मचारी जिनदास पास मे थे। कोई भीषणता नहीं थी। यह रात्रि महाकाल रात्रि रूप है, ऐसी कल्पना तनिक भी नहीं होती थी। रात को १२ बजे अपने सदा के क्रमानुसार वे उठे और ध्यान मे बैठ गए। दो घटे के पश्चात् वे कुछ समय लेटे। उस समय वे बहुत शान्त थे। घवडाहट का नाम भी नहीं था।"

परलोक प्रयाण

"सबेरे चार बजे उनकी सामायिक प्रारभ हो गई। सवा छह बजे शरीर चैतन्यशून्य हो गया। हम देखते ही रह गए। महाराज तो चले गए। उनको कुटी से वाहर लाया गया। नेत्र, मुख सभी बराबर थे। देखने पर ऐसा लगता था मानो वे सामायिक ही कर रहे हों। कह नहीं सकते, कैसे प्राण गए?"

शरीर और आत्मा एक नहीं हैं, जुदे-जुदे हैं, ऐसी बात उस समय प्रत्यक्षगोचर होती थी। क्षणभर पूर्व चैतन्यमूर्ति आत्मा शरीर मे थी। अब शरीर शून्य हो गया। शरीर और चैतन्य एक होते, तो चैतन्य के साथ शरीर भी चला जाता। 'शरीरे तदवस्थेपि जीवे विकृतिदर्शनात्'। शरीर तदवस्थ था, जीव मे विकृति हो जाती है, ऐसी आर्षवाणी प्रत्यक्षगोचर हो रही थी।

क्षुल्लकजी ने कहा - "ऐसी अद्भुत, शातिपूर्ण, कष्टरहित, सावधानीयुक्त समाधि नहीं देखी। यमराज ने उन पर आक्रमण किया हो, ऐसा एक भी चिह्न नहीं दिखता था। शरीर जैसा का तैसा ही प्रतीत होता था।"

ध्यान के सागर

क्षुल्लक जी ने बताया - "मै आचार्य शातिसागर महाराज के साथ जाना चाहता था। आचार्य महाराज ने नाद्रे मे कहा था - तुम वर्धमानसागर के पास रहो। मेरे साथ क्या चलते हो? इससे मै वर्धमान स्वामी के समीप ही रहा। वर्धमान महाराज का अध्यात्म रस का प्रेम अपूर्व था। आत्मचर्चा और आत्मध्यान मे उनकी महान् रुचि थी। वास्तव मे वर्धमानसागर महाराज ध्यान के सागर थे। उनकी सरलता अद्भुत थी। उनका भाव एक दिन पूर्व आहार को नहीं जाने का था। सबने प्रार्थना की - महाराज! आहार को अवश्य जाना चाहिए। उस समय पुण्यमूर्ति महाराज ने कहा - तुम्हारी सबकी मरजी है, तो आहार को चले जायँगे।"

वास्तव मे विचार किया जाय, तो जैसे शातिसागर महाराज की समाधि अलौकिक तथा चिरस्मरणीय रही, उसी प्रकार उनके ज्येष्ठ बन्धु अथवा शिष्य वर्धमान स्वामी की समाधि भी अपूर्व रही। 'भोज' के स्वामी की समाधि 'कुभोज' मे हो गई, किन्तु उनके अन्तिम सस्कार बाहुवली क्षेत्र की छोटी सी पहाडी पर किए गए थे।

बाहुबली पर्वत

मैं बाहुबली पहुँचा। पहाडी पर चढते समय भगवान बाहुबली स्वामी की अप्रतिष्ठित विशाल मूर्ति भूतल पर पडी हुई थी। उस मूर्ति को प्रतिष्ठित किए जाने आदि की योजना चल रही थी। अब वह मूर्ति खडी हो गई है और अत्यन्त मनोज्ञ तथा प्रभावक वह मूर्ति प्रतिष्ठित भी हो गई। आगे बढने पर वह भूतल का खण्ड आ गया, जहाँ सुरेन्द्र-पूज्य, सयम-पालक वर्धमानसागरजी का शरीर लाया गया था और उस पौद्गलिक शरीर का दाह-सस्कार हुआ था। अग्नि के द्वारा भस्म किया गया शरीर असयुक्त हो गया। पवनादि की सहायता से उस पावन देह का पुद्गल विश्वव्यापी हो गया। उस जगह आकर मन मे अन्तर्वेदना हुई। वहाँ लगा, कि हमारे महाराज का पौद्गलिक शरीर यहाँ ही पर्यायान्तर को प्राप्त हुआ था। जब शरीर मे चैतन्य का वास था, तब प्राणपण से भी उसकी रक्षा के लिए सभी भव्य भक्त तैयार थे। चैतन्य चले जाने के बाद इसी पहाड पर हजारों भक्तों ने उसी शरीर को भस्म कर दिया। पदार्थ का स्वरूप अद्भुत है। अनुप्रेक्षा की ये पक्तियाँ स्मरणपथ में आती हैं -

> जनमै मरै अकेला चेतन सुख-दुख का भोगी।
> और किसी का क्या, इक दिन यह, देह जुदी होगी॥

कमला चलत न पैड, जाय मरघट तक परिवारा।
अपने-अपने सुख को रोवे, पिता पुत्र दारा॥

ये शब्द भी बडे मर्मस्पर्शी हैं -

ज्यो मेले मे पंथीजन मिल नेह धरे फिरते।
ज्यो तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते।

कोस कोई, दो कोस कोई उड फिर, थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस, सङ्ग मे कोई न पर मारे॥

सच्चा हंस

मरनेवाली आत्मा को पक्षी की उपमा देते हुए कहते हैं - प्राणपखेरू उड गए। कवि ने हस रूप आत्मा के परलोक प्रयाण की बात कही है। सूक्ष्मता से विचार करे, तो प्रत्येक आत्मा को हस नहीं कहेंगे। जो बहिरात्मा है, पुद्गल मे आसक्त है, आर्तरौद्रध्यान मे निमग्न है, परिग्रहानद रूप महापक का कीडा है, वह हस नहीं है। उसमे विकार को त्यागकर आत्मस्वरूप रूपी क्षीर पान की योग्यता कहाँ है? वह तो काक, बक या गिद्ध के समान जीवन वाला होने से कुगति को जाता है। सच्चे हस तो वर्धमानसागर महाराज सदृश सत्पुरुष हैं, जो जीवन भर आत्मरस का पान करते रहे तथा अपने ब्रह्म स्वरूप का दर्शन करते हुए शान्तिपूर्वक परलोक को चले गए।

पर्वत का सदेश

बाहुबली का स्थान मुमुक्षुओ तथा आत्म साधको को सदा यह कहेगा कि - "आत्मबली, ९७ वर्ष की अवस्था मे भी निर्दोष रीति से रत्नत्रय की साधना करनेवाली आत्मा के शरीर का अन्तिम सस्कार मुझ पर हुआ था। अरे विषयान्ध! भोगप्रिय मानव! यहाँ आकर कुछ आत्म-सस्कार की वस्तु लेता जा। अब मैं सामान्य पाषाणपुञ्ज नहीं हूँ, अब मै पावन स्थल बन गया हूँ। आत्मज्योति जगा ले। ब्रह्मदर्शन के महान् कलाकार महात्मा के तपोपुनीत शरीर से यह स्थान कृतार्थ हुआ है।" अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा तपस्वियो के पितामह तुल्य वर्धमान महाराज का स्मरण कर हमने उनको प्रणामाजलि अर्पित की। धन्य था उनका जीवन। उनकी स्मृति भी सच्चे आत्मार्थियो के लिए मङ्गल दीप समान है।

आचार्य महाराज की मगल भावना

पर्वत से उतर कर हम नीचे आए। वाहुवली गुरुकुल की भव्य सस्था को देखा। वहाँ आचार्य महाराज का महत्त्वपूर्ण सस्मरण सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ। गुरुकुल के स्नेही वन्धुओं ने बताया - आचार्य शातिसागर महाराज सन् १९५५ के अप्रेल मास मे यहाँ (वाहुवली) पधारे थे। समीप के खेत में वे विराजमान थे। उनकी आत्मा मे धर्म तथा सस्कृति के रक्षणार्थ एक भव्य भावना उत्पन हुई।

उन्होंने कहा - "मेरी एक इच्छा है, उसकी पूर्ति करने का विचार हो तो मे यहाँ ठहरता हूँ।" यह विचार सायकाल मे व्यक्त किए गए। पूज्य १०८ मुनि समतभद्र महाराज के समीप एकत्रित होकर विचार चला। आश्रम के बुद्धिमान तथा विवेकी व्यवस्थापको ने प्रभात मे गुरुदेव के समीप विनयपूर्वक निवेदन किया - "महाराज! आपकी आज्ञानुसार हम सेवा को तैयार हैं। क्या अभिलाषा है आपकी?" महाराज ने कहा - "शास्त्र मे कहा है दक्षिण में धर्म रहने वाला है। इस वचन पर विश्वास करो। यहाँ पच्चीस फुट ऊँची वाहुवली की मूर्ति विराजमान कराना चाहिए।" धर्ममूर्ति आचार्य परमेष्ठी की वीतराग भाव को जगाने वाली उज्ज्वल अभिलाषा की पूर्ति का अभिवचन दिया गया। उसी समय सव प्रकार की योजना वन गई। धन की व्यवस्था भी तत्काल हो गई।

मूर्तिरूपी कल्पवृक्ष

आचार्य महाराज के श्रीमुख से अनमोल वोल निकले थे - "मैं यहाँ वाहुवली की मूर्तिरूपी कल्पवृक्ष का वीजारोपण कर रहा हूँ। इस प्रतिमारूपी कल्पवृक्ष के सानिध्य में हजारों विद्यार्थी आकर अपना जीवन मगलमय वनावेंगे।"

वर्धमान महाराज की चर्चा चलने पर आश्रम वालो ने वताया कि दो मील से भी कम दूरी पर रहने वाले हम आश्रमवासियो को महाराज की वीमारी या अस्वस्थता का पता नहीं चला। सवेरे अचानक यह भयावह वार्ता सुनी कि महाराज का स्वर्गवास हो गया।

पन्द्रह वीस हजार जनता के साथ उनका पवित्र शरीर अन्तिम सस्कार हेतु यहाँ लाकर पर्वत पर रखा गया। उस शरीर के पीछे कोई आश्रय नहीं था। वह पद्मासन मुद्रा मे था। स्वाश्रयी शरीर को अर्धनिमीलित नेत्रों सहित देखकर ऐसा लगता था कि वर्धमानसागर महाराज अपने प्रिय निर्ग्रन्थ शिष्य समतभद्र महाराज के आश्रम मे आकर आज पर्वतपर वैठकर ध्यान कर रहे है। प्राणहीन शरीर जीवितसा लगता था, तव सप्राण अवस्था के प्रभाव की मुमुक्षुजन कल्पना कर सकते है।

मार्थक विनोद

श्री गणपति रोटे दि जैन श्रावक के साथ हम कोल्हापुर लौट रहे थे, उस ममय उन्होंने वर्धमान महाराज का मंस्मरण सुनाया - "आठ दिन पूर्व मैं सपरिवार वर्धमान महाराज के पास कुंभोज आया था। मेरे चिरंजीव अजित ने महाराज की पिच्छी पकड ली। वह उसे छोडता नहीं था। उस तीनवर्ष के वालक से महाराज कहने लगे - "वेटा! अभी पिच्छी लेने के लिए कुछ अवधि शेष है। अभी समय नहीं आया है।" यह कहकर वे हँसने लगे। यथार्थ में महाराज का विनोद मधुर होने के साथ अर्थपूर्ण था। आठ वर्ष अतर्मुहूर्त के उपरान्त मनुष्य को दीक्षा लेने का अधिकार है, उसके पहिले पात्रता नहीं रहती है। इस आगमोक्त आज्ञा को ध्यान में रखकर महाराज ने उपर्युक्त मधुर वात कही थी।

मुनि नेमिसागरजी का मंस्मरण

वर्धमान महाराज के समीप दक्षिण के १०८ मुनि नेमिसागर जी अत तक रहे। उनको मुनिदीक्षा वर्धमान महाराज ने दी थी। ये कुडची वाले महातपस्वी नेमिसागर महाराज से भिन्न हैं जो शांतिसागर महाराज से दीक्षित हुए थे। उनको मुनि हुए तीस वर्ष से अधिक काल हो गया। इन नेमिसागर जी की दीक्षा उसी वर्ष वैशाख में हुई थी। ये नेमिसागर महाराज किनी में विराजमान थे। मैं पाँच अक्टूबर सन् १९५९ को उनके पास पहुँचा। वहाँ क्षु सन्मतिसागर जी भी विराजमान थे। उन्होंने वर्धमानसागर जी की अन्त तक सेवा की थी।

मुनिदीक्षा प्रदान

वर्धमान महाराज के विषय में उन मुनि महाराज ने कहा - "वर्धमान महाराज ने मेरा वडा उपकार किया। उन्होंने शक सम्वत् १८८० वैशाख सुदी नवमी को मुझे दिगम्वर दीक्षा दी। दीक्षा के सभी संस्कार दुधगाँव में हुए थे। मेरे केशों का लोच वर्धमान महाराज ने ही किया था। दीक्षा के पूर्व मैंने उनसे प्रार्थना की थी - "महाराज! मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा दीजिये। ससार-समुद्र से पार कीजिए।"

वर्धमान महाराज ने कहा था - "अच्छा है, दीक्षा ले लो। ऐसा समय पुन प्राप्त नहीं होगा। अपना नरजन्म सार्थक करो। एक वात स्मरण रखो, पच महाव्रतों का पालना वहुत कठिन कार्य है। इनके सम्हालने की शक्ति हो, तव ही निर्ग्रन्थ दीक्षा लेना।"

नेमिसागर जी ने पुन कहा - "महाराज! प्राण जाते तक महाव्रतो की रक्षा करूँगा। मेरी पूरी तैयारी है। तब उन्होने मुझे दीक्षा दी। मेरी दीक्षा होने पर महाराज को अपार आनन्द आया। वे बडे प्रसन्न दिखे। जैसे किसी को उसका सगा-सम्बन्धी मिलने पर हर्ष होता है, उस समय उनको भी ऐसी ही खुशी हुई थी।"

मुनि नेमिसागर जी महाराज ने कहा - "आचार्य शातिसागर महाराज जब नाद्रे पधारे थे, तब मैंने उनसे मुनिदीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उस समय आचार्य महाराज ने कहा था - "तुम वर्धमानसागर से दीक्षा ले लेना, मै अब दीक्षा नहीं देता।" उसके पूर्व शेडवाल मे ब्र बालगोडा शेडवाल वालो की मुनिदीक्षा हुई थी। आचार्य महाराज की आज्ञानुसार वर्धमान महाराज ने उनको दीक्षा दी थी और आदिसागर नाम रखा था। मैने भी दीक्षा मागी थी, किन्तु उस समय उन्होने कहा था, कुछ दिन के पश्चात् दीक्षा लेना। दुधगॉव में मेरा भाग्योदय हुआ, तब वर्धमान महाराज ने मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ किया।"

आनंदमयी मूर्ति

मैंने वर्धमानस्वामी को सदा आनदमयी मूर्ति के रूप मे देखा। वे आत्मचिन्तन तथा शास्त्र-स्वाध्याय मे सलग्न रहते थे। हमेशा धर्मध्यान युक्त उनकी परिणति रही है। आचार्य शातिसागर महाराज के समान ये भी आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान रूप परिणामो से जुदे रहते थे। शरीर अत्यन्त वृद्ध था। बुढापे में शरीर किस प्रकार के कष्ट देता है, यह वह वृद्ध व्यक्ति ही जानता है। देहस्थिति में अनेक कारणो से गडबडी होने पर भी उन महामना गुरुदेव की आत्मसाधना निश्चल रहती थी।

९७ वर्ष की अवस्था होते हुए भी वे प्रमाद तथा शिथिलता से रहित थे। एक आसन से बैठकर उनके चार पॉच घटे सहज ही व्यतीत हो जाते थे।

उनकी प्रेरणा

"बाहुबली क्षेत्र मे विशाल बाहुबली की प्रतिष्ठा शीघ्र करो" - यह वे बार-बार कहा करते थे। "बडे महाराज चले गए। देखो! देर करोगे, तो हम भी दर्शन का लाभ नहीं प्राप्त कर सकेगे। जब ब्र जिनदास समडोलीकर ने महाराज को चातुर्मास के समय कहा था कि सिवनी से दिवाकर शास्त्री आपके पास आने की भावना करते हैं, इसको ज्ञातकर उनको बडा आनन्द हुआ था।"

विपत्ति काल में विचार

जब धर्म पर सङ्कट आता था, अथवा धर्मात्माओं पर विपत्ति आती थी, तो वे कहा करते थे - "यह पंचमकाल है। इसमें ऐसा ही परिणमन हुआ करता है। धर्मात्माओं को घबड़ाकर धर्म में विचलित नहीं होना चाहिए। धर्म का मूलतः नाश कभी नहीं होगा।"

"उनके जाप का मुख्य मन्त्र अपराजित णमोकार मन्त्र था। रात्रि के समय वे बहुत ध्यान करते थे। ध्यान में चुप बैठकर वे तत्त्वविचार तथा आत्मचिन्तन करते थे। उस समय जप का कार्य नहीं होता था। जब वे एक आसन से बैठकर दो तीन घंटे ध्यान करते थे, तब उनको बाहर का कुछ भी पता नहीं चलता था।"

अवर्णनीय आनन्द

"कभी ध्यान द्वारा अवर्णनीय अमृत रस को पान करके पश्चात् वे कहते थे - "नेमिसागर! आज रात्रि की सामायिक में बहुत आनन्द आया।" हम पूछ बैठते थे - "महाराज! कैसा आनन्द आया?" वे कहते थे - "हम अपना आनन्द तुमको कैसे कहें? बाबा! आनन्द अनुभव की वस्तु है। 'सागता एत नाहीं' - उसका वर्णन नहीं हो सकता।'

"भक्तामर स्तोत्र पर उनकी बहुत रुचि रही है। वे प्रसिद्धि के तनिक भी प्रेमी नहीं थे। कहते थे - "बाबा! माझी प्रसिद्धी नको - मुझे प्रसिद्धि नहीं चाहिए। उसके होने पर मन में अहंकार उत्पन्न होने लगता है।" उनमें बड़ी बात यह थी कि वे आत्म-प्रशंसा तथा पर-निन्दा से दूर रहते थे। कभी-कभी भी दूसरों की निन्दा नहीं करते थे। अपने को सबसे छोटा संयमी मानते थे। पराक्रमी पुण्यात्मा पुरुषों की कथा कहने में, सुनने में उनको बहुत प्रसन्नता होती थी। पांडव पुराण, हरिवंश पुराण, प्रद्युम्न चरित्र, जीवंधर चरित्र, श्रीपाल चरित्र आदि की कथाएँ उनको खूब याद थीं।"

वर्धमानस्वामी क्षुल्लक दीक्षादाता निर्ग्रन्थगुरु पुत्तूर ग्रामवासी नेमिसागरजी तथा ऐलक-दीक्षा और मुनिदीक्षा दाता आचार्य शांतिसागर महाराज का कृतज्ञतापूर्वक प्रतिदिन स्मरण कर उनको प्रणाम करते थे।

अन्तकाल

"२७ फरवरी सन् १९५९ शुक्रवार को सवा छह बजे उनका स्वर्गवास हो गया था। उस दिन माघ सुदी पंचमी (उत्तर के हिसाब से फाल्गुन वदी पंचमी) थी। अन्तकाल

तक वे सावधान रहे। पौने छह बजे उनको पद्मासन मुद्रा मे बिठाया गया था। मैंने पूछा था - 'क्या णमोकार मन्त्र सुनावे?' उन्होने कहा था। मैं णमोकार मन्त्र पढता था, मेरे साथ क्षु सन्मतिसागरजी भी पढते थे। महाराज भी हम दोनो के साथ-साथ णमोकार मन्त्र पढते जाते थे। अन्त तक उन्होने णमोकार का पाठ किया। अन्तिम पाठ के एक मिनिट बाद ही शरीर से श्वास निकल गई, फिर लौटकर वह श्वास नहीं आई। यह उनकी अन्त समय की स्थिति रही थी। वे पूर्ण सावधान थे।''

मैंने पूछा - ''रात्रि को शरीर मे कुछ कफ आदि की बाधा रही थी या नहीं?'' महाराज नेमिसागरजी ने बताया - ''खाँसी आदि का कोई विशेष उपद्रव नहीं हुआ। रात को २ बजे के करीब अल्प प्रमाण में खाँसी आई थी। उस समय १०५ डिगरी ज्वर हो गया था। ठड लगती थी, किन्तु वे स्थिर थे। सामायिक को बैठते समय ज्वर कम हो चला था। ठड भी कम हो गई थी। शरीर भी कुछ-कुछ ठण्डा पडने लगा था। यह सब कुछ होते हुए भी ऐसी अवस्था नहीं थी, जिससे कोइ यह अनुमान करता कि अभी ही ये महापुरुष चले जायेंगे।''

क्षुल्लक जी का अनुभव

क्षुल्लक सन्मतिसागर महाराज ने कहा - ''क्या बतावे, हमने महाराज से मुनि दीक्षा मागी थी। हमने सोचा था, अब आगे उनसे मुनि दीक्षा प्राप्त करेंगे। वे चले गए। उन जैसा महान् गुरु कहाँ प्राप्त होगा?''

धन्य है इन सयमी महान् आत्माओ का जीवन। इनकी कथा सुनते ही मुमुक्षुवर्ग, धन्य-धन्य कह बैठता है।

भट्टारक लक्ष्मीसेन जी के विचार

भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी कोल्हापुर ज्ञानवान, सुसस्कृत, सुरुचि-सपन्न तथा निरहकारी मठाधिपति हैं। उनके साथ तत्त्वचर्चा में बहुत आनन्द प्राप्त होता है। उनकी दृष्टि बडी पैनी है। मार्मिक चर्चा करते हैं। मैं एक अक्टूबर १९५९ को स्वामी जी के मठ मे रहा था। चर्चा के प्रसग मे उन्होने वर्धमान महाराज के विषय मे कहा - ''मैं कुभोज दो बार उनके पास गया था। उनको ज्वर आ गया था। वे बीच-बीच मे सुन्दर शका किया करते थे। उनकी शका प्रमुख रूप से आत्मा से सम्बन्धित रहा करती थी।''

कष्ट में सावधानी

''उनकी पीठ में बहुत दर्द था, फिर भी वे दृढतापूर्वक अपने सयम मे सावधान

थे। व्यवस्थित सामायिक तथा आत्मध्यान का कार्यक्रम बराबर चलता था। बड़े ध्यानपूर्वक शास्त्र को सुनते थे। उनकी शंका सूक्ष्म तथा मार्मिक रहती थी। उनके साथ चलने वाली चर्चा में उनके आत्मिक अनुभव की गहरी छाप रहती थी। उससे यह स्पष्ट हो जाता था कि उन्होंने अध्यात्म का गभीर मनन तथा चिंतन के साथ ही गभीर अनुभव भी किया है। उनकी वाणी मधुर लगती थी। उनकी वाणी से परमागम की प्रगाढ श्रद्धा टपकती थी। चर्चा के समय उनमें उत्तेजना नहीं आती थी। उस समय वे शांत, मृदु तथा गभीर रहते थे। उनका मुझ पर बड़ा अनुग्रह था।"

"कभी-कभी चर्चा के समय वे प्रसंग के अनुकूल मधुर धार्मिक विनोद भी करते थे, उससे चर्चा सजीव तथा सरस बन जाया करती थी। ऐसा ही पवित्र विनोद स्व आचार्य शांतिसागर महाराज की वाणी में भी प्राप्त होता था।"

मुनिदीक्षा

"वर्धमान महाराज की मुनिदीक्षा के समय मैं भी बारामती में था। उस समय आचार्य शांतिसागर महाराज ने शास्त्रानुसार दीक्षा-विधि सम्पन्न करने की आज्ञा मुझे प्रदान की थी। वर्धमान महाराज तथा बड़े महाराज अपने अन्तरङ्ग की गम्भीर वार्तों पर मुझ से परामर्श किया करते थे। उन महान् मुनीन्द्रों की मुझ पर बड़ी कृपा थी।

"वर्धमानसागर जी की मुनिदीक्षा की विधि सम्पन्न हो चुकी। उसके अनन्तर आचार्य महाराज ने वर्धमानसागर जी को दूसरी जगह विहार करने का आदेश दिया था। आचार्य महाराज बहुत बड़ी विभूति थे। रागभाव उत्पन्न होने की परिस्थिति तक को भी उत्पन्न नहीं होने देते थे। अपनी पवित्र वृत्ति की रक्षार्थ वे सर्वदा जागृत रहते थे।"

पूर्व परिचय

"वर्धमानसागर महाराज को मैंने सद्गृहस्थ रूप में भी देखा था। साधुपदवी स्वीकार करने के उपरान्त उनके गुणों में अपूर्व वृद्धि देखकर मुझे उनका 'वर्धमान' नाम सार्थक लगता था। अत्यन्त वृद्ध होते हुए भी उनकी स्मृति असाधारण थी। उनके समीप सैकडों स्थानों के लोग आया-जाया करते थे। आने वाले व्यक्तियों के नाम को लेकर वे उनसे चर्चा तथा वार्तालाप किया करते थे। उनके पास छोटे-बड़े सभी लोग बड़े प्रेम से पहुँचते थे। किसी को भीति नहीं होती थी। वे प्रेम-मूर्ति थे। उनके पास दूर-दूर के तथा समीप के बहुजन समाज को अत्यन्त प्रेम तथा प्रसन्नतापूर्वक आते देखकर ऐसा लगता था, मानों लोग अपने अत्यन्त वृद्ध धर्म पितामह की शरण में आ रहे हों। उनके मुखमण्डल

पर विषाद, चिन्ता, क्रोधादि विकारो का अभाव था। वहाँ सदा प्रसन्नता तथा सौम्यभाव का निवास रहता था।''

चारित्र-चूडामणि

''आचार्य महाराज की महिमा तो वर्णन अगोचर है। वे अपूर्व साधु हो गए। ऐसी ही महान् उज्ज्वल आत्मा वर्धमानसागर महाराज की थी। वे भद्र परिणामी, परम शात, वीतराग, आदर्श तथा उच्चकोटि के निर्ग्रन्थ थे। अत्यन्त वृद्ध अवस्था में महाव्रतो, समिति, गुप्ति आदि मूलगुणो का निर्दोष रीति से पालन करनेवाले वर्धमानसागर महाराज सचमुच मे 'चारित्र चूडामणि' थे।''

आचार्यरत्न देशभूषण महाराज के विचार

आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ने कोल्हापुर मे बडी महत्त्वपूर्ण बाते कही थीं। उन्होने बताया था - ''वर्धमान स्वामी शातिप्रिय थे। समाधान बुद्धि थे। वे उपदेश सुनने के प्रेमी थे। बहुत अनुभवी थे। बहुत कम बोलते थे। मार्मिक वचन कहते थे। वृद्ध होते हुए भी उनकी आत्मरुचि अच्छी थी।''

विनयसम्पन्नता

''मैं उनसे पूर्व दीक्षित था, अत आगम के अनुसार वे पहले मुझे प्रणाम करते थे। मैं उनको प्रतिवदना करता था। उनकी प्रिय वस्तु आत्मा की चर्चा थी। दूसरो को वे आत्मरुचि के लिए प्रेरणा प्रदान करते थे। वे वृद्ध साधु थे। मैं उनकी वैयावृत्य किया करता था। पायसागर महाराज वय में छोटे थे, किन्तु सयम की अपेक्षा वृद्ध थे। अपने को सयम की अपेक्षा लघु अनुभव कर वर्धमान स्वामी पायसागर जी सदृश बडे सयमी की योग्य विनय करने में सावधान रहते थे। उनके बैठने पर पीछे स्वय बैठते थे। वे विनय गुण की आदर्श मूर्ति थे। उनकी आत्मा मे साहस तथा स्थिरता भी थी। पहले अनन्तमती अम्मा उनके पास शास्त्र पढती थी। उस समय उन्होने कहा था - ''जब इस अम्मा को इतना शास्त्र का विषय आता है, तो मुझे क्यो नहीं आयगा? मै अभ्यास करूँगा, तो मेरी बलवान आत्मा को क्यो न ज्ञान प्राप्त होगा।''

''उनका सयम का प्रेम अपूर्व था। वे सदा सयमी व्यक्ति का सहवास पसन्द करते थे। सयमरहित को पास मे नहीं रखते थे।''

भाऊसाहब लाटकर ने - वर्धमान महाराज के विषय मे इस प्रकार सस्मरण

मुनाए - ''वर्धमान स्वामी वहुत शान्त, परिमित भाषी, मृदुवाणी वाले तेजस्वी साधु थे। वे कभी भी दूसरे के चित्त को नहीं दुखाते थे। अपने भावों को सदा उज्ज्वल रखने मे सावधान रहते थे। मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, यह बात उनकी दृष्टि मे सर्वोपरि थी। इस कारण वे अपने जीवन को विशुद्ध रखते थे तथा सबको मनुष्य जन्म को कृतार्थ करने के लिए कहा करते थे।''

''कन्नड भाषा मे समझाते हुए वे कहते थे - ''तुमको यह मनुष्य जन्म मिला है। उसमे मोक्षदायक जैनधर्म प्राप्त हुआ है। उसमे लाभ लेने का प्रयत्न करो। पाँचों इन्द्रियों को अनुकूल विषय प्रदान करने के कार्य मे तुम्हारी कितनी शक्ति जाती है, कितना समय व्यतीत होता है। इस कार्य मे तुम महान् कष्ट उठाते हो। बाबा! थोडासा कष्ट अगर अपनी आत्मा के लिए उठाओ, तो तुम्हारा जीवन सदा के लिए सुखी बन जायगा।''

''उनकी सदा यह भावना रहती थी कि किस प्रकार समस्त प्राणियों का कल्याण किया जाय? वे बहुधा कहा करते थे, यह काल बडा कठिन है। इसमे धर्म मे स्थिर रहना विशेष आत्मबल की अपेक्षा रखता है।''

रोग पर विचार

''मृत्यु के दो माह पूर्व वे बहुत बीमार हो गए थे। उस समय कहते थे - यह रोग पूर्व मे बाँधे गए कर्मो के फल रूप है। यह असाता कर्म फल देकर निर्जरा को प्राप्त हो रहा है। इससे कर्मभार दूर होने से आत्मा हल्की हो रही है। इस कारण रोग को क्यो कष्टप्रद मानना? हमने ही कर्म बाँधे थे, किसी दूसरे ने तो कर्मो का बंध नहीं किया था, अतएव हमे ही अपने बाँधे गए कर्मो का फल भोगना पडेगा। इस स्वाभाविक कार्य-कारण भाव को सोचकर अशुभ कर्म के विपाककाल मे हमे खेद नहीं करना चाहिए। खेद करने मे कोई लाभ नहीं है। खेद करने मे बहुत हानि है, क्योकि आगामी कष्ट परम्परा की पुन जड जम जाती है। इस प्रकार वे जागृत रहा करते थे।''

धन से निस्पृहता

''उनकी दृष्टि बडी स्वच्छ थी। वे लेन-देन के चक्कर से दूर रहते थे। जो त्यागी होकर ऊँचे पद को धारण करते है, किन्तु जिनका रुपया पैसा का लेन-देन कार्य चला करता है, उनके बारे मे वे कहा करते थे - ''एक म्यान मे दो तलवारें नहीं रहती हैं। ऐसे ही आत्महित मे सलग्न साधु की दृष्टि धन-सचयादि के कार्यो से पृथक् रहती है। जिनकी दृष्टि धन की ओर उन्मुख रहती है, उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं रहता, अतएव

उनका आदेश था कि त्यागी व्यक्ति को धन के चक्कर म नहीं पडना चाहिए। अपना सयम जिस प्रकार निर्मल रहे उस प्रकार का काम करना चाहिए। सयम की रक्षा न होती हो, तो प्राणो की परवाह नहीं करनी चाहिए। मोक्ष का मार्ग और बध के मार्ग जुदे-जुदे है। मोक्षाभिलाषी को धन का अभिलाषी नहीं होना चाहिए। मोक्ष का मार्ग सरल नहीं है। मोह के आश्रय से मोक्ष का कपाट कभी भी नहीं खुलेगा।

श्री धर्मपाल पाटील नाद्रेकर ने वर्धमानसागर महाराज के पास नाद्रे चातुर्मास में रहने के कारण उनके जीवन का निकट से निरीक्षण किया था। बाहुवली क्षेत्र मे भी उनके सत्सग का लाभ लिया था।

मार्मिक उपदेश

श्री धर्मपाल ने कहा - "वर्धमान महाराज के करकमलों से बाहुवली भगवान की मूर्ति की शिलान्यास विधि हुई। उस समय वर्धमान स्वामी ने वडी मधुर तथा अर्थपूर्ण वात कही थी। - "कितने भाग्य की वात है कि आचार्य महाराज ने इस मूर्ति की कल्पना की थी, किन्तु वे मूर्ति का दर्शन न कर सके और चले गए। अव इस प्रकार वह दिन भी आएगा, जव हम चले जाएँगे, किन्तु इस मूर्ति की छत्र-छाया मे हजारो जीव अपना उज्ज्वल जीवन वनाते रहेगे। यह क्षेत्र अध्यात्म की भूमि है। यहाँ तपस्या करने वाले वाहुवली मुनिराज भी आध्यात्मिक व्यक्ति हुए हैं।"

ऐसे कार्य का सचालन आध्यात्मिक दृष्टि वालों के नेतृत्व मे होना हितप्रद तथा उचित है। भोगियों के वदले त्यागियो के हाथ मे यहाँ की वागडोर हितकारी रहेगी।"

"वर्धमान महाराज का मन बाहुवली की मूर्ति की ओर वहुत समय से लगा हुआ था। वे नाद्रे ग्राम में विराजमान थे। यह विशालकाय मूर्ति जयपुर से चली। मिरज स्टेशन को आते समय रास्ते में नाद्रे रेलवे स्टेशन पड़ता है। उस समय मूर्ति के दर्शन की भावना से वर्धमान महाराज स्टेशन तक गए। स्टेशन पर मालगाड़ी के ठहरने की योजना नहीं थी।"

न्यायपूर्ण दृष्टि

"लोग प्रयत्नशील थे, किन्तु वर्धमान स्वामी ने स्टेशन मास्टर से कहा - "यदि गाडी रोकने से तुम्हारा नुकसान होता हो, तो गाड़ी मत रोको। हमारा ख्याल मत करो। कायदे के अनुसार काम करो, जिससे तुम्हारी नौकरी को धक्का न लगे। हमे क्या है? मूर्ति सामने से गाडी मे रखी गई चली गई, इतनी कल्पना से भी हमे सन्तोष होगा।

हमें कोई आकुलता नहीं है। सहज ही दर्शन हो जायगा, इस विचार से हमारा यहाँ आना हो गया और कोई बात नहीं है।"

मूर्ति-दर्शन मे अपार आनद

"वर्धमान महाराज के वचनो को सुनकर स्टेशन मास्टर की आत्मा द्रवित हो गई। उसने अपने अधिकार मे पर्याप्त समय तक गाडी रोक ली। लगभग तीस फुट लम्बी सफेद सगमरमर की मूर्ति को देखकर वर्धमान स्वामी का वडा आनन्द प्राप्त हुआ।"

वाहुवली की वडी मूर्ति को रेलवे स्टेशन से वाहुवली क्षेत्र तक ले जाना वडा कठिन कार्य था। भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति कल्पनातीत फलदायिनी है। इस श्रद्धा से प्रेरित हो कुछ लोगो ने एक सूचना छपा दी - वर्धमानसागर महाराज की आज्ञा है कि मूर्तिस्थापना के कार्य मे विघ्न-निवारणार्थ प्रत्येक जैन को णमोकार का स्मरण करना चाहिए। सवालाख णमोकार के जाप की योजना भी की गई है। यह छपी सूचना वर्धमान महाराज को दिखाई गई। उस समय महाराज ने कहा - "ऐसा आदेश हमने कव दिया था। आदेश छपाने के पश्चात् तुम हमारी स्वीकृति माँगते हो।" लोगों ने कहा - "सद्भावनावश तथा सत्कार्य की सिद्धि को लक्ष्य मे रखकर हमने ऐसा किया है। आपके नाम का प्रभाव रहेगा इससे हमने आपका नाम छाप दिया। आप की आज्ञा के विना हमने जो कार्य किया उसके लिए हम क्षमा प्रार्थना करते हैं।" इस पर महाराज ने कहा "हमारा सव पर सदा क्षमा भाव है। क्रोध का भाव नहीं है। क्षमा माँगने का क्या प्रयोजन? तुम पर सर्वदा क्षमा भाव है।" ऐसा मधुर स्वभाव तथा पवित्र मनोवृत्ति उनकी थी।"

अजातशत्रु

"यथार्थ मे अपनी प्रवृत्ति, वाणी, सरल व्यवहार आदि के कारण वर्धमान स्वामी अजातशत्रु रहे। उनका कोई भी विरोधी नहीं। वे भी किसी के विरोधी नहीं रहे। उनका विरोध कर्मों के प्रति अवश्य रहा है। उसी कर्म-शत्रु को नष्ट करने के लिए उन्होंने रत्नत्रय रूपी तलवार हाथ मे ली है। निश्चय से वे शीघ्र ही कर्मों का क्षय कर अपने सच्चे घर मुक्ति मदिर मे पहुँच जायेगे।"

"एक दिन उनकी प्रकृति वहुत विगड गई। उष्णता का जोर था। कठ सूख गया। श्वास लेना भी कठिन हो चला। उस समय एक वैयावृत्त्य करने वाले भक्त ने पानी मे कपडा भिगोकर गले पर रख दिया। महाराज विचारमग्न थे। उनको पता नहीं चला।

शीघ्र ही नींद की एक झपकी सी आ गई। कुछ क्षणो के उपरान्त वे सावधान हो गए। उनको भान हुआ कि शरीर पर कुछ है। उन्होने पूछा - गर्दन मे क्या लगाया है? और कहा "बाबा! यह महाव्रत है। इसमें ऐसी गडबडी नहीं चलती।" यह कहकर उन्होने वह पट्टी दूरकर दी। पश्चात् प्रायश्चित्त के रूप में वे महामत्र का जाप करने लगे। उनको अपने व्रतो की शुद्धता का बडा ध्यान रहता था।"

सामान्यतया आहार में वे दूध चॉवल लेते थे। ९६ वर्ष की अवस्था वाले दिगम्बर मुनिराज खडे खडे बिना किसी के सहारे के अपने हाथों मे आहार लेते थे। हाथ कपित होते थे। दूध का बहुभाग गिर जाता था। थोडा सा उनके काम मे आ पाता था। अल्प आहार लेने के पश्चात् कभी-कभी वे कहते थे - मेरे शरीर को जितना आवश्यक है, उतना आहार मेरे हाथ में रह जाता है। अनावश्यक भाग अपने आप नीचे चला जाता है। आहार धैर्यपूर्वक होता था। आहारदाता को तनिक भी आकुलता नहीं होती थी। उनका आहार भी अपूर्व शान्तिपूर्वक तथा निराकुलतापूर्वक होता था।

वृद्धों के मध्य में

वर्धमान महाराज के समवयस्क दक्षिण के कुछ वृद्धजन उनके पास आकर बैठ जाते थे। उन सात-आठ वृद्धों से घिरे हुए वर्धमान महाराज अपूर्व लगते थे। कहॉ सयम तथा वय-वृद्ध ये तपोमूर्ति साधुराज और कहॉ वे वयोवृद्ध असयमी गृहस्थ?

श्री भाऊसाहब पाटील द्वारा मार्मिक चित्रण

आचार्य शातिसागर महाराज के चचेरे भाई श्री भाऊसाहब देवगोडा पाटील भोज ग्रामवासी से कोल्हापुर में मैंने आचार्य महाराज अथवा वर्धमानसागर महाराज के विषय में कुछ सामग्री देने का अनुरोध किया। उन्होने कहा - "आचार्य महाराज तो निसर्ग से महान् थे, वर्धमानसागरजी भी अत्यन्त सरल थे।" आचार्य महाराज का नाम सातगोडा था, वर्धमानसागर जी का नाम देवगोडा था। इससे पाटील महाशय ने पुराने घरेलू नाम को लेते हुए कहा - "सातगोडा फार ज्ञानी, आणि शहाणा, देवगोडा भोला आणि मृदु" - शातिसागर महाराज महान् ज्ञानी तथा बुद्धिमान् थे। वर्धमान महाराज भोले तथा दयालु स्वभाव के थे। भोज ग्राम में लिंगायतों के बडे-बडे विद्वान् आते थे। ब्राह्मणो के भी प्रमुख पण्डित लोग आते थे। शातिसागर महाराज के साथ उनकी खूब चर्चा चला करती थी। वेदान्त की चर्चा चलती थी। उस समय महाराज के द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का सुन्दर तथा मार्मिक निरूपण होता था, उसे सुनकर बडे बडे अन्य धर्मियो को सतोष होता था, उनका मुख बद हो जाता था।"

एक माह पूर्व उन्होने कहा था - "हम आहार लेने के बाद दूसरे दिन तक सल्लेखना ले लेते हैं। हमने भी आचार्य महाराज के समान १२ वर्ष की सल्लेखना का व्रत लिया है। उस समय उनका आहार कम होने लगा था। इससे उन्होने सोचा कि अब हमारे दिन नजदीक हैं। दूध और ज्वार का आहार लेते थे, पाव भर दूध और छटाँक भर ज्वार। इतना अल्पआहार हो गया था। बाहुबली में एक दिन उन्हे चक्कर आ गया था। उनके पेट में भी पीडा हो रही थी। कहने पर भी वे नहीं लेटते थे। शास्त्रसभा मे दो बजे से पाँच बजे तक एक आसन में बैठते थे। भट्टारक लक्ष्मीसेन जी से चर्चा करते थे।"

शास्त्र-चर्चा का रस

लोगो ने विनय की, कि आपका शरीर कमजोर है, उसमे पीडा है इसलिए चुप बैठने की प्रार्थना है, तब वे कहते थे - "शास्त्र का विषय है, उसे सुनकर चर्चा किए बिना चुप नहीं रहा जाता।" वे कहते थे कि - "नाद्रे मे सिवनी के पडित दिवाकर जी आए थे। उनके साथ बडी अच्छी चर्चा होती थी।" बाहुबली से महाराज कुभोज आ गए। वहाँ के मन्दिरजी मे एक योग्य स्थान पर ठहरे थे। उनके पास पन्द्रह त्यागी आकर इकट्ठे हो गए थे। अन्त समय पर नवदीक्षित मुनि नेमिसागर जी, ऐलक कुलभूषण जी, क्षुल्लक सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक जयसेन जी तथा शातिमती अम्मा वहाँ थी। नेमिसागरजी को महाराज ने दुधगाँव में निर्ग्रन्थ बनाया था।"

"अन्त समय पर हमें उनकी सेवा का सौभाग्य नहीं मिला। उनके पास से फलटण पचकल्याणक में जाने के लिए जब पूछा, तब उन्होंने हमे आज्ञा दी थी और कहा था, "अभी प्रकृति ठीक है।"

हमने कहा - "आपकी तबियत कमजोर है, इसलिए आपका साथ छोडने की इच्छा नहीं होती। अभी हम आपके पास रहेगे।"

वे बोले - "हम तो अकेले जाने वाले हैं, लेकिन यह शरीर यहाँ ही पडा रहेगा।"

उनके पास दूर-दूर से लोग दर्शन के लिए आते थे। हम लोग महाराज से कहते थे - आप चुप रहिए तो ठीक होगा। वे दया भाव से कहते थे कि लोग दूर-दूर से आए है, उनको दो शब्द भी नहीं बोलेगे, तो उनको कैसे शाति होगी? हमारे चार शब्द कहने से उनको शाति हो जाती है।

क्या सीखा?

एक दिन वे कहने लगे - "वावा मैंने कुछ नहीं सीखा। तुम लोगो ने तो खूव वाते सीखी है। मैने तो एक वात सीखी है कि अनात्म भाव मे नहीं जाना चाहिए, अपने स्वभाव मे अपने को रखना चाहिए 'या सिवाय मला काही एत नाहीं, वावा तुर्मी सगडे सीखला।'

वे कहते थे - "हम तो लघु मुनि हैं, हम क्या समझते हैं?"

सुन्दर शास्त्र-ज्ञान सम्पादन करने के पश्चात् भी उनकी वाणी इतनी अहकार-रहित होती थी।

आत्मरूप मे स्थिति

उन्होने एक दिन भट्टारक लक्ष्मीसेन जी से कहा था - "तुम मुझको आत्मध्यान की वाते सुनाते हो, मैं भी सुनता हूँ। जव मै अपने रूप मे स्थिर रहता हूँ तव खरा (सच्चा) ध्यान होता है।" उनसे वाहुवली मे अधिक समय तक ठहरने के लिए कहा कि सोनगढ के कानजी आने वाले हैं, आप ठहरिये। वे वोले - "वावा कोई भी आए हमें द्वेष नहीं, प्रेम नहीं। हमे क्या करना है, हम तो अपने मे रहने वाले हैं।"

उनको आत्मा की चर्चा करने मे वडा आनन्द आता था। उनमें आत्म-स्थिरता वहुत थी। मुनि समतभद्रजी ने उनसे कहा कि - "आप वाहुवली मे ही रहिए। आपकी देह यहाँ ही पडना चाहिए। यहाँ ही समाधि हो।"

वर्धमान महाराज ने कहा - "जहाँ देह का पतन होना होगा, वहाँ ही होगा। हम क्या कह सकते है?"

प्रश्न - अब आप वृद्ध हो गए, अधिक इधर-उधर न जाकर यहाँ ही रहिए।

आत्मशक्ति का विश्वास

वे बोले - "त्यागी के शरीर मे जब तक शक्ति है, तब तक उसे नदी के समान गमन करते ही रहना चाहिए। अभी मेरी आत्मा मे शक्ति है। शरीर मात्र क्षीण हुआ है। मैं तुमको थका सा दिखता हूँ, किन्तु मेरी आत्मशक्ति बढी है, न्यून नहीं हुई है।"

वाहुबली क्षेत्र मे बाहुबली भगवान की विशाल मूर्ति के आने पर वे बहुत आनदित हुए और कहने लगे, "आचार्य महाराज के उपदेश से कितनी महान् और

सुन्दर मूर्ति आ गई और उस पर पानी की तरह रुपयो की वर्षा होने लगी। सचमुच में आचार्य महाराज का पुण्य अपूर्व था। उनके वचनो से ऐसा हो गया।''

शेडवाल की श्रावक मडली महाराज के पास शेडवाल चलने की प्रार्थना करने को आई। श्रावक समुदाय ने प्रार्थना की - ''महाराज! शेडवाल मे चलिए, वह समाधि के योग्य स्थान है।'' वर्धमान महाराज ने कहा - ''हमे कहीं भी समाधि लेनी है। हमे स्थान का मोह नहीं है।''

महाराज को देखने के लिए डाक्टर आया, तब वर्धमान महाराज ने विनोदपूर्ण भाषा मे कहा - ''जब इस जड शरीर को ठीक नहीं कर सकते, तब मेरी आत्मा के रोग को दूर कर उसे कैसे रोग-मुक्त बना सकोगे?''

कार्कल मे सर्प का आगमन

वर्धमान स्वामी ने किनी मे कहा था - ''मैं क्षुल्लक अवस्था मे कार्कल गया था। मैं बाहुबली की मूर्ति के पास एक शिला पर सामायिक के लिए बैठा था। वहाँ एक बहुत मोटा सर्प फण ऊँचा उठा कर फुस्-फुस् शब्द करता हुआ सामने आया। मेरी सामायिक समाप्त हो चुकी थी। मैं स्तुति पाठ कर रहा था। मैंने उसे देखा मेरे चित्त मे भय नहीं उत्पन्न हुआ। भय क्यो उत्पन्न हो? वह मेरा क्या करेगा? शरीर को कुछ करेगा, तो शरीर मेरा नहीं है। यह विचार कर मै नेत्र बद करके ध्यान मे बैठ गया। पाँच बजे शाम तक मै ध्यान में बैठा रहा। आँखें खोलने पर देखा, तो सर्प वहाँ नहीं था। वह चला गया था।''

वे कहते थे - ''प्रारम्भ में मुझे शास्त्र का अल्प-बोध था। एकान्त मे बैठकर ध्यान करने की रुचि थी। एकान्त मे जाना तथा कठोर तप करने की बहुत इच्छा रहती थी।'' बाबूराव मार्ले, अतूबाई पाटील किनी, क्षु सन्मतिसागरजी तथा मुनि नेमिसागरजी ने वर्धमान महाराज की खूब सेवा की।

सन्मतिसागरजी ने वर्धमान महाराज से मुनि दीक्षा मागी, तब महाराज बोले - ''पहले मुझे पार लगादो, फिर दीक्षा लेना।''

ग्रामवास

वर्धमान महाराज बहुधा ग्राम मे निवास करते थे। उनके पास बच्चे आकर बडे प्रेम से इस प्रकार बैठ जाते थे, जैसे वे अपने माता-पिता के समीप स्नेहवश बैठते है।

ममडोली चातुर्माम के पश्चात् महागज कुभोज पहुँचे। उम ममय वाहुवली आश्रम मे अनेक लोग उनके पाम गए औग वाहुवली क्षेत्र पग चलने की प्रार्थना की।

मार्मिक उद्‌गार

वे वोले - "ममतभद्र वहॉ ही हैं। वे आश्रमरूपी तवू के मुख्य म्तभ हैं और आप लोग उमकी खूटी हो। खूटी पक्की होनी चाहिए। ग्म्मी भी मजवूत रहना चाहिए। तुम लोग आश्रम की खूटी हो। खूँटी ढीली पडी, तो खम्भा क्या करेगा? तुम लोगो ने आश्रम को जीवन दिया है। अपने चाग्त्रि में अच्छे रहना और धर्म का उद्धाग कग्ना।" लोग धर्म का उद्धार करना चाहते हैं, किन्तु म्वय के चारित्र को उज्ज्वल रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं कग्ते। वर्धमान महाराज की दृष्टि में यह महत्त्व की वात थी कि पहले अपने को मच्चरित्र वनाओ, पश्चात् धर्म की उन्नति करो।

ऐलक कुलभूपणजी वर्धमानमागर महाराज के अन्त समय तक उनके समीप थे। उन्होंने वताया कि - "वर्धमान महागज अन्त तक पूर्ण सावधान थे। वे अत्यन्त सरल तथा पवित्र वृत्ति के मत्पुरुष थे।"

वास्तव में, वे अलौकिक महापुरुष हो गए। उनको प्रकाश तथा अन्त प्रेरणा आचार्य शातिमागर महाराज से मिली थी। वे धन्य थे।

आचार्य वीरसागर महाराज

मुझे सात अप्रेल १९५७ के प्रभात मे जयपुर की खजाची की नसिया मे ८२ वर्ष की वय वाले महातपस्वी निर्ग्रन्थ गुरु तथा स्वर्गीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी के उत्तराधिकारी आचार्य वीरसागर महाराज के पुण्यदर्शन का सौभाग्य मिला। वयोवृद्ध होते हुए भी उनके सारे शरीर में विशेषतया मुख पर एक विशेष दीप्ति दिखाई पडती थी, जो उच्च तपस्वियो मे पाई जाती है। मैंने उनको प्रणाम किया और उनसे कुछ चर्चा प्रारम्भ हुई। उससे मन को बडी शाति मिली, अन्तःकरण को अपूर्व आनद मिला और विचारो को महत्त्वपूर्ण सामग्री मिली। उनकी आचार्य शातिसागर महाराज मे अगाध भक्ति थी।

मुनिमार्ग के सच्चे सुधारक

वे कहने लगे - "आचार्य महाराज ने हम सबका अनन्त उपकार किया। उन्होने इस युग मे मुनिधर्म का सच्चा स्वरूप आचरण करके बतलाया। उनके पूर्व उत्तर मे तो मुनियों का दर्शन नहीं था और दक्षिण मे जहाँ कहीं भी मुनि थे, उनकी चर्या विचित्र प्रकार की थी। वे मुनि आहार को उस जगह जाते थे, जहाँ उपाध्याय जाकर पहिले से आहार की पक्की व्यवस्था कर लेता था और आकर कहता था 'वर री स्वामी'-महाराज चलो। लोगो को पडगाहने की विधि नहीं मालूम थी। उपाध्याय उस समय मुनि को आहार कराता था और स्वय भी माल उड़ाता था। इस वातावरण को देख शातिसागर महाराज के मन ने यह अनुभव किया कि यह तो निर्ग्रन्थ मुनि की चर्या नहीं हो सकती। उन्होंने उपाध्याय के द्वारा पूर्व निर्णीत घर मे जाना एकदम छोड दिया। दिगम्बर मुद्रा धारण कर उन्होंने आहार के लिए विहार करना प्रारम्भ किया। लोगो को विधि मालूम न होने से वे उनको यथाशास्त्र नहीं पडगाहते थे। इससे महाराज लौट करके चुपचाप आ जाते। शान्त भाव से वह दिन उपवास पूर्वक व्यतीत करते थे। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। धर्मात्मा गृहस्थों मे चिन्ता उत्पन्न हो गई। फिर भी वे नहीं जानते थे कि इनके उपवास का क्या कारण है? क्योकि वे गुरुदेव शान्त थे और किसी से अपनी बात नहीं कहते थे। उनकी चर्या को देखकर कोई भी आदिप्रभु के युग को स्मरण करेगा। ऐसी परिस्थिति के मध्य जब चार दिन बीत गये, तब ग्राम के प्रमुख पाटील ने उपाध्याय को बुलाकर कडे शब्दों मे कहा --"साधूल मारतोस काय? विधि सागा" साधु को मारता

अपार वेदना को शान्त भाव से सहन करने वाले और आगम की आज्ञा को पालन करनेवाले उन गुरुदेव के मनोबल और उज्ज्वल श्रद्धा की कौन कल्पना कर सकता है? उस समय महाराज दूध चावल लेने के बाद एक उपवास करते थे, फिर आहार और फिर उपवास, इस प्रकार धारणा-पारणा का क्रम चलता रहता था। उस जमाने मे अन्य साधुओ को आहार कराने के लिए उपाध्याय को पॉच रुपये फीस देनी पडती थी। आचार्य महाराज ने जो पद अङ्गीकार किया, उसमे उपाध्याय का रञ्चमात्र हस्तक्षेप नहीं था।

वीरसागर महाराज ने एक महत्त्व की बात कही थी कि - ''वाणी का सयम सुमधुर फल प्रदान करता है।'' वे बोले - ''समितियो में भाषा समिति, गुप्ति में मनोगुप्ति और महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ है।''

गुरु की शिष्य-वृत्ति

आचार्य महाराज ने देवप्पा स्वामी से सर्वप्रथम क्षुल्लक दीक्षा ली थी, किन्तु दीक्षा के उपरान्त उनके सयमी जीवन की कीर्ति साधु समाज मे खूब फैली। उनके गुरु देवप्पा स्वामी तक उनके पुण्य जीवन से प्रभावित हुए। श्रवणवेलगोला मे जब आचार्य महाराज गये थे, तब देवप्पा स्वामी भी वहॉ पहुँचे थे। देवप्पा स्वामी ने शातिसागर महाराज के पास आकर बडी नम्रतापूर्वक एक बात कही - ''इतने दिन मैं आपका गुरु था, लेकिन अब आप मेरे गुरु हैं। मेरी जीवन-चर्या मुनिपद के अनुरूप नहीं है, इसलिए अब दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिये।'' देवप्पा स्वामी के अत्यन्त आग्रह पर शातिसागर महाराज ने उन्हे पुन दीक्षा दी थी।

कितनी अद्भुत बात है, गुरु भी इन साधुराज के समीप आकर शिष्य बनकर इन्हें गुरुदेव मानने लगे।

मैंने अनेक बार देवप्पा स्वामी के बारे मे आचार्य महाराज से चर्चा चलाई, तो वे गम्भीर मुद्रा धारण कर चुप हो जाते थे और कुछ नहीं कहते थे, क्योंकि उस वर्णन मे स्वप्रशसा और अपने दीक्षागुरु का अगौरव छिपा हुआ था, इसलिए वे उस चर्चा से विमुख रहते थे।

व्रतदान

आचार्य महाराज का जीवन चुम्बक की तरह मन को आकर्षित करता था। एक दिन प धन्नालालजी काशलीवाल बम्बईवाले महाराज के पास गये और बोले -

''महागज, मुझे ब्रह्मचर्य प्रतिमा दीजिए।'' महाराज ने कहा - ''इसके लिए मुहूर्त देखेगे।'' पडितजी ने विनयपूर्वक कहा - ''महाराज, आज मेने आपके चरण पकड लिये, मेरे लिए, इससे बढकर क्या मुहूर्त होगा।'' पडित जी की तीव्र लालसा देखकर उन्हे उसी समय ब्रह्मचर्य प्रतिमा दी गई। दो माह के पश्चात् पण्डित धन्नालालजी का स्वर्गवास हो गया। व्रतयुक्त उनकी मृत्यु हुई। इस प्रकार महाराज ने वहुत से व्यक्तियो का कल्याण किया।

वीरसागर महाराज ने कहा - ''आचार्य महाराज के शरीर पर सर्प लिपटा था, किन्तु उसने कुछ उपद्रव नहीं किया, इसका कारण उन्होने वताया - ''अतरङ्ग मे निर्मलता है, तो बाहर वाले मे भी निर्मलता आ ही जाती है, इसलिए वह सर्प अभिभूत हुआ।''

मुनिजीवन मे क्या कष्ट है?

मैने कहा - ''महाराज, आचार्यश्री ने आपको मुनि वनाकर, आपको कष्ट दिया या आनन्द प्रदान किया? उत्तर देते हुए वीरसागर महाराज बोले - ''हमे कौनसी बात का कष्ट है? हम तो तुम्हारी तकलीफ देखते है और उसे छुडाना चाहते हैं। तुम परिग्रह और आकुलता के जाल मे जकडे हुए हो। तुम्हे क्षण भर भी शान्ति नहीं है।''

''देखो! साधु के परिषह होती है, गृहस्थ भी कम परिषह सहन नहीं करता। जितना कष्ट गृहस्थ उठाता है तथा जितना परिग्रह का ध्यान वह करता है, उतना कष्ट यदि मुनि सहन करे और निज गुण का ध्यान करे, तो उसे मोक्ष प्राप्त करने मे देर न लगे। देखो! चिल्हर का व्यापार करने वाला बीच बाजार मे बैठता है। हर एक ग्राहक को देता है, लेता है, परन्तु अपने धन कमाने के ध्येय को नहीं भूलता है। कितनी सावधानी रखता है वह?''

''दूसरी बात - गृहस्थ जेठ महीने मे दस बजे दूकान पर जाता है। सूर्य की गर्मी बढती जाती है। ग्राहको की भीड लगी हुई है। उस समय नौकर आकर कहता है, पानी ले लो, तो वह सुनता नहीं, बहिरा बन जाता है। पुन कहता है, तो वह डॉट देता है या उसकी ओर ध्यान नहीं देता है। ध्यान है ग्राहक पर। इस प्रकार वह अपने लाभ की ओर चित्त लगाए हुए रहता है और कष्ट की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। यह दृष्टि का फेर है। आत्मकल्याण मे लगने पर साधु आरम्भ क्रियाओ को छोड देता है और आत्मकल्याण के कार्यो मे आगत विघ्नो को सहज ही सहन करता है।''

द्वारा परोपकार

वीरसागर महाराज के छोटे-छोटे वाक्यो मे मार्मिकता ओर गम्भीरता पाई
। थी। वे कहने लगे - "शील बडा धन है। उस धन के कारण शीलवती दरिद्र रहकर
लभूषित कुलटा के पद को तुच्छ मानती है। साधु स्वत के लिए क्षमा धारण करता
दूसरो के दु ख निवारण के लिए यदि कुछ न करे, तो धर्म की क्या अवस्था होगी?
विष्णुकुमार मुनि अकम्पनाचार्यादि सात सो मुनियो पर उपसर्ग आने पर चुप रहे
ने तो क्या होता? उन्होने परोपकार के लिए वेष छोडा, साधुओ की रक्षा की, पश्चात्
पस्थापना की।"

"अयोग्य चिकित्सक के हाथ मे जाकर शस्त्र रोगी के विकार को दूर न कर
य चिकित्सक का घात कर बैठता है। इसी प्रकार आज समयसार सदृश महान् शास्त्र,
त्र बनाया जा रहा है। वह कर्मो का सहारक है, किन्तु आज वह विलास का विकासक
र हित का विनाशक बनाया जा रहा है। समयसार ऐसा नहीं है।"

ल मनोवृत्ति

प्रश्न - "महाराज! मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, अधिक पूछूँ या नहीं?"

उत्तर - "खूब पूछो, गुरु को और माता को सताओ, तब इष्ट वस्तु मिलती
।" उन्होने कहा - "जैन साधु से क्षमा मत मॉगो।"

मैने पूछा - "क्यो?"

उत्तर मिला - "इसका अर्थ यह है कि उनमे क्रोध है। ऐसी कल्पना भी ठीक
हीं है। उनसे प्रायश्चित्त मॉगो।"

वे कहने लगे - "नेत्र सदृश सज्जन नहीं और कान सरीखा दुश्मन नहीं। बैर
ढाने वाला कान कच्चा है।" कान का कच्चा नहीं होना। शरीर का दोगला उतना बुरा
हीं, जितना कान का कच्चा है।"

मधुर वाणी

आचार्य महाराज के विषय मे वे कहने लगे - "उनकी वाणी मे कितनी मिठास,
कितना युक्तिवाद और कितनी गम्भीरता थी, यह हम नहीं कह सकते। महाराज जब
आलद (निजाम राज्य मे) पधारे, तब उनका उपदेश वहॉ के मुस्लिम जिलाधीश के
समक्ष हुआ। उस उपदेश को सुनकर वह अधिकारी और उनके सहकारी मुस्लिम कर्मचारी

इतने प्रभावित हुए, कि उन्होने महाराज को साष्टाग प्रणाम किया और बोले, "महाराज जैनो के ही गुरु नहीं हैं, ये तो जगत् के गुरु हैं। हमारे भी गुरु हैं।"

आचार्य महाराज समय को देख सुन्दर ढङ्ग से इस प्रकार तत्त्व वतलाते थे कि शङ्का के लिए स्थान नहीं रहता था। मैंने पूछा - "उस भाषण में महाराज ने क्या कहा था?" वे वोले - "आचार्य महाराज ने देव, गुरु तथा शास्त्र का स्वरूप समझाया था।"

उन्होने कहा था - "जो हमारे ध्येय को पूरा करे वही देव है। जितने ध्येय हैं, उतने देव मानने पडेंगे और उनकी पूजा करनी पडेगी। कुंजडी को देव मानना होगा, तव इष्ट साग आदि की पूर्ति होगी। पूजा का स्वरूप लोगो ने समझा नहीं, पूजा का अर्थ योग्य सम्मान है।"

जैन की दृष्टि

वीरसागर महाराज ने प्रसङ्गवश यह कहा - "मॉगने वाला जैन नहीं और जैन मॉगने वाला नहीं है। जैन नौकर नहीं है और नौकर जैन नहीं है। नौकर की दृष्टि वेतन पर होती है, काम पर नहीं होती। जैन की दृष्टि कार्य पर होती है, वेतन पर नहीं। जैनों की गौरवपूर्ण स्थिति का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि संवत् १९५६ में जो भयकर दुष्काल आया था, उस समय सवने सरकार का माल खाकर अपने प्राणों की रक्षा की, किन्तु उनमे जैनो का नाम नहीं था।"

"जिसकी पूजा हो, उसे नमस्कार हो, न भी हो। नमस्कार के साथ देवपने का अविनाभाव नहीं है। जो दूसरे को तिरस्कार की दृष्टि से देखे, वह जैन नहीं। सम्यक्त्वी की पहिचान मुख पर है। जिसके मुख में प्रेम भरा हो, वह जैन है। जिसके मुख पर ग्लानि है, वह सम्यक्त्वी नहीं है। वह वात्सल्याग नहीं रखता है। वात्सल्य के लिए गाय को क्या कुतिया को देखो। बच्चे काटते हैं, तो भी कुतिया उनको पकड-पकड कर दूध पिलाती है।"

वात्सल्य का भण्डार

"आचार्य महाराज में वात्सल्य का अपूर्व भडार था। कई बार मैंने महाराज से कहा था - महाराज आपकी शान्ति हमारा नाश करती है।"

महाराज कहते थे - "हमारा धर्म ही शान्ति है।"

उपयोगी शिक्षा

महाराज ने कहा था - "गुरु को तीन वाते ग्रहण करनी चाहिए और तीन वाते

छोडनी चाहिए। उसे ज्ञान मे, ध्यान मे ओर तप मे सलग्न रहना चाहिए। उसे विषयो को छोडना चाहिए, आराम को छोड़ना चाहिए ओर परिग्रह को त्यागना चाहिए।''

''जिसमे पूर्वापर विरोध नहीं हे, वही शास्त्र हे,जो शुरू से अन्त तक एक समान हो।''

उन्होंने बताया - ''हम शिखर जी गये थे। रास्ते में १००-१५० वेलो का झुड मिला। चार मस्त वेल भागे, महाराज की तरफ आये ओर उनकी तरफ मुँह करके प्रणाम करके खडे रह गये। देखने वालों के नेत्रो मे आँसू आ गये। लोग कहने लगे - इन जानवरों को इतना ज्ञान हे कि साधुराज को प्रणाम करते हे ओर मनुष्य की इसके विपरीत अवस्था है।'' वीरसागर महाराज ने कहा था कि उस परिस्थिति में आचार्य महाराज पूर्ण शान्त थे।

कारुण्य मूर्ति

वे वोले - ''आचार्य महाराज ने दक्षिण के जेनों का वडा उपकार किया हे। उन्होने पत्थर को रत्न वनाया है। किसी-किसी जगह जेन लोग वलिदान मे सम्मिलित होते थे। आचार्य महाराज ने उस समय यह नियम किया था कि जो जीवहिंसा का त्याग करेगा, मिथ्यात्व का त्याग करेगा ओर पुनर्विवाह का त्याग करेगा, उसके हाथ का ही आहार लेंगे।''

''एक समय की वात है, छिपरी गॉव का पाटील वलिदान सपर्क छोड नहीं रहा था। उस समय महाराज ने प्रतिज्ञा की थी कि जव तक यह नियम नहीं करेगा, तव तक मेरे अन्नजल का त्याग हे।'' स्मरण रहे कि यह उस समय की वात है, जव गाँधीजी के पास सत्याग्रह रूपी हथियार नहीं पहुँचा था। उन्होने जीवहित के लिए जिस मार्ग को अपनाया था, उसे आजकी दुनिया सत्याग्रह कहती है। ''पहिले दिन पाटील पर कोई असर नहीं हुआ। आज महाराज का उपवास है, केवल इसलिए, कि ग्रामनायक ने हिंसा-सपर्क का त्याग नहीं किया। दूसरा दिन आया, फिर भी महाराज आहार को नहीं उठे, क्योंकि पाटील का मन पत्थर की तरह कडा है ओर वह परिवर्तन को तैयार नहीं है। जीवदया से प्रेरित अन्त करण और पाटील के उद्धार करने मे दृढप्रतिज्ञ वे साधुराज और कडे हो गये। सारी बस्ती में गहरी चिन्ता छाई हुई थी। ऐसे अवसर पर वह पाटील चुपके से कोल्हापुर भाग गया। ''तीसरा दिन आया, फिर भी महाराज का आहार नहीं हुआ, तब तो सारे ग्रामवासी बेचैन हो गये। कोल्हापुर जाकर लोग पाटील को पकडकर लाये

और बोले - क्या साधु के प्राण लेना है? क्यो नहीं नियम लेता है। वह वज्रहृदय कोमल बन गया। महाराज के चरणो को प्रणाम कर उसने सर्वदा के लिए पाप का त्याग किया, तब महाराज आहार को उठे। वीरसागर महाराज बोले - "आचार्यश्री के जीवन की ऐसी अनमोल अनेक घटनाएँ है। वे अपने ढङ्ग के एक ही थे, उन सदृश श्रेष्ठ आत्मा का दर्शन कहाँ होगा?"

शिष्य बनो

वीरसागर महाराज बोले - "जो अपने को गुरु मानता है, वह उन्नति नहीं कर पाता। शिष्य बनोगे तो तुम्हारा हित होगा। शिष्य बनने पर अपनी गलती मालूम पडती है। गुरु बनने पर कैसे पता लगेगा?"

प्रश्न - "आचार्य शातिसागर महाराज मे गुरुपना था या शिष्यपना।"

उत्तर - "हमारे लिए तो वे गुरु थे, किन्तु स्वय को गुरु नहीं मानते थे। अपने को गुरु मानने वाले का कल्याण नहीं है।"

जैनधर्म अनुभवपूर्ण है

मैने कहा - "महाराज! आप बडी गहरी बात करते हैं?"

महाराज बोले - "जैनधर्म मे कौन बात गहरी नहीं है? यदि अनुभव करो, तो पता चले। **जैनधर्म अनुभव की ही तो वस्तु है। वह वाणी का या बुद्धि का वैभव नही है। यह अनुभव के रस से भरा है। लोग आज आगम को बुद्धि के अनुकूल बनाते है, बुद्धि को आगम के अनुकूल नही बनाते, यही बडी भूल है।"**

रोग के विषय मे अपूर्व दृष्टि

प्रश्न - "महाराज, आपका स्वास्थ्य खराब रहता है, इससे चिन्ता होती है।" उत्तर मे महाराज ने यह महत्त्व के शब्द कहे - **"त्यागी को रोग वैराग्य के लिए होता है और भोगी को रोग रोने के लिए होता है।"** इसके सिवाय उन्होने और कुछ नहीं कहा। ऐसी बात सुनकर समझ मे आया कि आचार्य शान्तिसागर महाराज ने इनको अपना उत्तराधिकारी बनाकर कितना उचित कार्य किया। आचार्य महाराज ने किसी के कहने से इन्हे आचार्य नहीं बनाया। उन्होने मेरे समक्ष कहा था कि "हम अपने स्वत के सतोष से वीरसागर को आचार्य पद देते है।" आचार्य महाराज के पवित्र अन्त करण ने वीरसागर महाराज को रत्न रूप मे परख लिया था, इसलिए उन्होने उनको श्रमण सघ के शिरोमणि की प्रतिष्ठा दी थी।

स्वप्न मे गुरुदर्शन

प्रश्न - "आचार्य महाराज का कभी स्वप्न मे दर्शन होता है क्या?"

उत्तर - "मनींवसे स्वप्नींदिसे - जो बात मन मे जमी रहती है, स्वप्न मे उसका दर्शन होता है। इस नियमानुसार गुरुदेव का स्वप्न में अनेकबार दर्शन होता है। हमारी उनसे बातचीत भी हुआ करती है।"

शत्रु पर प्रेम

उन्होने कहा - "आचार्यश्री का जीवन अनमोल था। उनका अनुभव-ज्ञान अद्भुत था।" उन्होने बताया कि "राजाखेडा मे जब ५०० गुण्डो के साथ छिद्दी ब्राह्मण आक्रमण के लिए शस्त्रो से सज्जित होकर आने की तैयारी कर रहा था, उस समय आचार्यश्री की अतरात्मा को विलक्षण प्रकाश मिला। ठड के दिन थे, गगनमण्डल मे कुछ बादल देख उन गुरुदेव ने आदेश कर दिया कि सघ के त्यागी आज कोठरी के भीतर ही ध्यान करेगे। १५ मिनिट बाद ही उपद्रव आरम्भ हुआ, किन्तु उपद्रवकारी विफल रहे। वे जिन साधुओं पर उपसर्ग करना चाहते थे, वे तो कमरे के अन्दर थे, इसलिए उनकी दुर्भावनाएँ मन की मन मे रह गई। उस समय पुलिस का अधिकारी महाराज के पास आकर बोला - "इस छिद्दी को क्या करना चाहिए? आज्ञा दीजिए।" महाराज ने कहा "मेरी मानोगे क्या?" पुलिस कप्तान ने कहा -"आपकी आज्ञा का हम परिपालन करेगे।" महाराज बोले -"छिद्दी को छोड दो।"

इस प्रकार प्राण लेने वाले पर भी प्रेम का भाव धारण करनेवाले गुरुदेव सचमुच मे शान्ति के सागर ही थे।

अचिंत्य आत्मबल

आचार्यश्री मे एक दूसरी विशेषता उन्होने बतलाई, वह था उनका आत्मबल। उनका आत्म-विश्वास अचिन्त्य था। जिनवाणी पर श्रद्धा रखकर आत्मबल के आश्रय से वे अपना मार्ग निर्धारण करते थे। उस समय उनके विरुद्ध यदि सारा ससार हो, तो भी उन्हे उसका भय नहीं था।

शिक्षा

वीरसागर महाराज ने जैनधर्म के महत्त्व की चर्चा करते हुए कहा था - "जैनधर्म का महत्त्व बढाने के लिए हमें गुरुकुल चाहिए, जो हमारे पूर्ण स्वाधीन हो। वहाँ जैनधर्म

को समझने वाले विवेकी सच्चरित्र विद्वान् तैयार करो जो यह बतावें कि जैनधर्म कितना महत्त्वशाली है।" उन्होंने कहा - "हमारा माल खरा है, जिसे लेना है, परीक्षक बन कर ले परीक्षक बनने की योग्यता साथ में अवश्य चाहिए।" वे कहने लगे - "अपनी संस्थाओं को हम शासन के आधीन कर देते हैं, सरकार स्वामी बनती है। शिक्षा उनकी रहती है। हमारी स्वाधीनता कहाँ रही? हमारी संस्था पूर्णतया हमारे आधीन रहनी चाहिए।"

ऐसे ही विचार स्वर्गीय शान्तिसागर महाराज ने शेडवाल में हमें सुनाए थे। आजकल धार्मिक विद्यालय सरकार से सम्बन्धित होकर कार्य की दृष्टि से जैनत्व रहित होकर नाम के लिए जैन संस्था रह जाते हैं। यदि यही ढंग रहा, तो जिनशासन के ज्ञाताओं का सहसा अभाव हुए बिना न रहेगा। संस्कृति के संरक्षण तथा धर्म प्रभावना के लिए ऐसे त्यागी, परोपकारी और निस्पृही व्यक्तियों को ज्ञान देना चाहिए, जो अपनी वाणी और जीवनी के द्वारा तीर्थङ्करों की शिक्षा को बता सकें।"

अद्भुत दृष्टि

वीरसागर महाराज ने कहा - "संतोष के सब गुण गाते हैं, किन्तु हमारा कहना है, जिसके संतोष है, वह सम्यक्त्वी नहीं है।"

प्रश्न - "यह तो बड़ी अद्भुत बात आपने कही।"

उत्तर - "पर-पदार्थों के विषय में सन्तोष चाहिए, जो भी वस्तु मिली उसमें संतुष्ट रहना चाहिए किन्तु ऐसा संतोष आत्मोन्नति के विषय में नहीं रहना चाहिए। आत्मा की उन्नति में यदि संतोष कर लिया, तो सम्यक्त्वी का उपबृंहण अंग नहीं बन सकता।"

"सम्यक्त्वी के भय नहीं रहता, किन्तु देखा जाय, तो संसार का भय उसके पास रहता है। सीता को मरण का भय नहीं था। हरण किये जाने पर मन्दोदरी ने सीता को अबला जान डराना चाहा और कहा कि रावण बड़ा बलवान और वैभवशाली है। उस समय सीता ने निर्भय होकर मन्दोदरी से कहा था -

"तुमने यहाँ आकर कुट्टिनी का काम किया, यह तुम्हारे योग्य नहीं था। तुमने राजा मय के उज्ज्वल वंश को कलंक लगाया।"

उनका तत्त्व-निरूपण बड़ा सुन्दर रहता था। आचार्य शांतिसागर महाराज

कुथलगिरि मे हजारो के द्वारा हल्ला मचने पर भी शात थे। मैंने कहा था - "महाराज! हल्ला बहुत होता है, इससे आपके ध्यान मे विघ्न आता होगा? इस पर उन गुरुदेव ने कहा था - "भीतर शाति है, तब बाहर का हल्ला क्या करेगा?" इसी प्रकार के विचार वीरसागर महाराज की अनुभवपूर्ण वाणी से निकले। वे कहने लगे - "हमारा एकान्त हमारे हृदय मे है, बाहर का पदार्थ हमारा क्या कर सकता है? दुर्वल मन वालों के लिए बाहर जाने की आवश्यकता पडती है।" वीरसागर महाराज का आध्यात्मिक जगत् का अनुभव भी लगभग ४० वर्ष का हो गया, इसलिए उनकी जीवनी और अनुभव मुमुक्षु के बडे काम के है, उनका हृदय बडा विशाल था।

मार्गदर्शन

जयपुर में दस अप्रैल सन् १९५७ मे अध्यात्मप्रेमियो के आराध्य तथा असयमप्रेमी स्वामी जी पधारे थे। उनका भाषण मैंने सुना। भाषण की चर्चा वीरसागर महाराज के समक्ष मैंने चलायी। मैंने कहा - "महाराज! मुझे तो भाषण मे रस नहीं आया। 'समझ में आया', शब्द की सैकडों बार आवृत्ति मन को बडी अप्रिय लगती थी। उनकी 'पिप्पली' का उदाहरण बारबार सामने आता था।" और भी जो बात मुझे ठीक नहीं लगी, मैंने हृदय खोलकर उनके सामने रखदी, जिस प्रकार कोई शिष्य अपने गुरु को अपना हृदय सुना देता है। मेरी दृष्टि किसी भक्त को ठीक न लगे, किन्तु वह मेरी दृष्टि है। जो मुझ पर प्रभाव पडा, मैंने गुरुदेव को सुना दिया।

मेरी बात सुनकर वे गम्भीर स्वभाव वाले साधुराज कहने लगे - "पण्डितजी! शास्त्र में स्थितीकरण और उपगूहन दो अग बतलाए हैं, उनका ध्यान हमेशा रखना चाहिए। सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य है कि साधर्मी की बात देख कर उपगूहन अग को न भूले।"

मेरे कथन से उनके वीतराग मन में प्रसन्नता नहीं हुई। मेरी समझ में आया कि सचमुच में ये साधारण पुरुष नहीं हैं। किसी महापुरुष को २ मिनिट मे नहीं समझा जा सकता - 'सोना जानिए कसे, आदमी जानिए बसे' यह सूक्ति अपना गहरा अर्थ रखती है। मुझे एक विद्वान्, वीरसागर महाराज के बारे मे अपना अल्पकाल का ऐसा अनुभव सुना रहे थे, जिससे मेरा मन उनके विषय मे उज्ज्वल भावों से शून्यसा बन गया था, किन्तु निकट से उनके सर्वांगीण जीवन को देखने पर ऐसा लगा, कि मैं सचमुच में एक महान् आत्मा के चरणों के पास बैठा हूँ। वहाँ सुनने मे आया कि वीरसागर महाराज को उष्णता के कारण बहुधा चक्कर आ जाया करते हैं। उसी मूर्छा की स्थिति में भी उनकी अगुली जाप करती हुई मालूम पडती है। ओष्ठ भी पचपरमेष्ठी के नाम की आराधना करते हैं।

हितशत्रु

उनके एक भक्त-विद्वान्-त्यागी के समक्ष मैंने महाराज से कहा, "आपके सिर मे ब्राह्मी तैल सदृश कोई औषधि अवश्य लगना चाहिए।" वे बोले - "हमें अपने शरीर की अवस्था मालूम है। ये हमारे हितैषी बनकर अपनी बातें सुनाते हैं। मैं तो इनको अपना हित-शत्रु समझता हूँ।" हितैषी के लिए हित-शत्रु शब्द को सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, इसलिए मैंने पूछा - "आपने यह कैसे कहा?" उत्तर - "ये बताते हैं हित और करते हैं हमारे हित का घात। प्रमाद को बढ़ाने वाले कार्यों की ओर मुझे ले जाना चाहते हैं। उनसे मेरा घात होता है। इसलिए मैंने सोच-समझकर इन्हें शत्रु कहा है।" इसके पश्चात् वे कहने लगे - "दिवाकर जी! मेरे पास एकान्त नहीं है मैं अनेकान्त दृष्टि से सोचता हूँ।"

पिच्छी की प्रतिष्ठा

आचार्य वीरसागरजी ने पिच्छी धारण करने वाले उच्च त्यागियों को दृष्टिपथ में रखते हुए कहा - "साधु को अपने पदस्थ का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।" पिच्छी हाथ में लेकर उन्होंने मुझसे पूछा - "हमारे हाथ में क्या है?" फिर बोले - "इस पिच्छी को हाथ में लेकर जिसने करुणा नहीं की, उसने क्या किया।" वे बोले "हमारा तो यह कहना है, पिच्छी को लजाओ मत।"

इस सूत्र में बड़ा रहस्य भरा हुआ दिखता है। वास्तव में उच्च संयम की श्रेणी पर चढ़कर करुणा के प्रतीक और उपकरण पिच्छी को हाथ में लेने वाले सत्पुरुषों को महाराज की बात सदा दृष्टिपथ में रखनी चाहिए, कि वे ऐसा कोई काम न करें, जिससे पिच्छी की प्रतिष्ठा को धक्का लगे। उसका धारण करना सचमुच में खिलवाड़ नहीं है। साधु का स्वभाव पिच्छी मे लगे हुए मयूर पंख के समान कोमल, मृदुल तथा मधुर होना चाहिए।

प्रश्न - "क्या आचार्य शान्तिसागर महाराज सामायिक के पूर्व वीतराग स्तोत्र पढ़ा करते थे।"

उत्तर - "हमारे लिए तो सभी स्तोत्र वीतराग स्तोत्र हैं।"

उनकी वीतराग भक्ति अपार थी। प्रतिदिन अस्सी माला णमोकार मंत्र की जप करते थे। तीन बजे रात से इनके जप का कार्य प्रारम्भ होता था। शील, संयम, तप, जिनभक्ति तथा आत्मचिंतन की पवित्र सामग्री के द्वारा उनका जीवन निर्मल होता जा रहा था, इसीलिए उनकी बातों में बड़ा रस आता था। उन्हें लोक का भी बड़ा अनुभव था।

वे कहने लगे - "अपने हानि-लाभ का विचार करने वाला बनिया सबसे चतुर होता है। मुमुक्षु को अपने आत्म-हित के बारे मे इसी प्रकार सोचना चाहिए।" उन्होने कहा - "बनियो से स्याना अजब दीवाना।" पश्चात् बोले - "बनिया प्रारम्भ से चतुर रहता है और जाट पीछे समझदारी पाता है।" उनके शब्द थे - "बनियो मूल मे स्यानो, जाट आखीर मे स्यानो।"

गृह मे मूर्ति

मैंने कहा था "महाराज - हमारे पिता जी बहुत वृद्ध हो गये, शरीर शिथिल हो गया, घुटनो मे दर्द रहने के कारण जिनमन्दिर जा नहीं सकते, क्या उनकी धर्मसाधना के हेतु घर मे जिन भगवान की मूर्ति ला सकते है?"

उत्तर मे उन्होने कहा - "अवश्य मूर्ति विराजमान करो।" बाद मे उन्होंने एक मराठी की कहावत सुनाई - "ज्याच घरी नाहीं जिना च दर्शन। जनावे श्मशान घर त्याचे - जिनके घर मे जिन भगवान की मूर्ति नहीं, वह घर तो श्मशान तुल्य है।"

आगमानुसार प्रवृत्ति

मन्दिर मे प्रवेश करते समय प्रत्येक विचारवान गृहस्थ "नि सही" उच्चारण करता है, उसका लक्ष्य यह है कि जिन भगवान की वन्दनार्थ यदि कोई देवता आया हो, तो वह सूचना पाते ही सामने से अलग होकर पूजक को स्थान दे दे। इस सम्बन्ध मे वीरसागर महाराज ने कहा कि - आप लोग तो एक ही समय नि सही कहते हो और हमे तो अनेक बार नि सही बोलना पडता है।

प्रश्न - "यह कैसे?"

उत्तर - "हम यदि बाहर जाते है, लघु या दीर्घशङ्का निमित्त, तो वहॉ हमें नि सही कहना पडता है कि उस स्थल पर यदि कोई देवता हो, तो वह अलग हो जावे। कार्य पूर्ण हो जाने पर हमे "असही" कहना पडता है, जो इस बात का सूचक है कि हमारा कार्य पूर्ण हो गया। इस प्रकार आगम की आज्ञानुसार हमे बहुधा इस शब्द का प्रयोग करना पडता है।"

उन्होने कहा - "प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह गृहस्थ हो या मुनि, अपने पद के अनुसार क्रिया करना चाहिए। अपने पद के अनुसार आचरण करते हुए मृत्यु अच्छी है, अपने पद को छोडकर जीवन धारण करना योग्य नहीं है।"

इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा - "इसी बात को ध्यान मे रखकर आचार्य शातिसागर महाराज ने सल्लेखना ली थी, क्योकि नेत्रो की ज्योति नष्ट होने पर महाव्रती साधु का दयामय जीवन असभव था। एषणा आदि समितियो का पालन हो नहीं सकता था। जीवन रक्षा करते, तो पद का गौरव नहीं था, इसीलिए जीवन के मोह को धारण कर पद को छोडने के बदले इन्होंने पदयुक्त हो सल्लेखना का ग्रहण किया।"

प्रश्न - "महाराज, यदि उच्च त्यागी मोटर, रिक्शा आदि का उपयोग करे, तो उसमे क्या दोष है?"

उत्तर - "मोटर रिक्शा आदि का उपयोग व्यक्ति को पराधीन बनाता है। जैनधर्म स्वाधीनता का सदेशवाहक है। वह 'पर' की अधीनता छुडाकर 'स्व' की अधीनता को स्वीकार करने का मार्ग सुझाता है।"

प्रश्न - "सन्ध्या के समय यदि शास्त्र का स्वाध्याय किया जाय, तो क्या दोष है?"

उत्तर - "अकाल मे अध्ययन करना आगम मे निषिद्ध है। सन्ध्या का काल भगवान की दिव्यध्वनि की बेला है। भगवान ने क्या कहा, यह सोचने का समय है, पढने का समय नहीं।"

मन्त्र चर्चा

भक्तामर स्तोत्र पर इनका प्रारम्भ से ही ममत्व रहा है। वे कहने लगे - "भक्तामर मे बहुत लालित्य है, उसका एक-एक काव्य स्वय मत्ररूप है। मन्त्र की सिद्धि के लिए मुद्रा आदि का ध्यान रखना भी उपयोगी है।"

प्रश्न - "महाराज, मुद्रा मे क्या तत्त्व है?"

मुद्रा

उत्तर - "मुद्रा मे बहुत कुछ है। हाथ उठाकर पॉचो ॲगुली किसी के सिर के सामने रखने पर उसे आशीर्वाद मुद्रा मानकर वह व्यक्ति सन्तोष प्राप्त करता है, किन्तु यदि उनके स्थान मे एक तर्जनी को ही उठाया जावे या दिखाया जावे, तो वह धमकी का द्योतक बनती है। ऐसा करना बैर का कारण बन जाता है। इससे मुद्रा का महत्त्व नहीं भूलना चाहिए।"

प्रश्न - "महाराज! णमो अरहताण अच्छा लगता है या 'अरिहताण'?"

अरहंताणं

उत्तर - "अरि शब्द, मोह का वाचक है। उसके नाश करने वाले जिनेन्द्र का द्योतक अरिहताण है। अरहत मे आगत 'अ' शब्द अरि रूप मोहनीय का द्योतक है और र शब्द अन्तराय (रहस्य), ज्ञानावरण, दर्शनावरण का द्योतक है। इस प्रकार अरहत मे चार घातिया कर्म के नाश करने वाले जिनेन्द्र का स्वरूप कहा गया है।"

अनादि मूलमन्त्र

प्रश्न - "कुछ लोग कहते हैं, यह णमोकार मन्त्र तो पुष्पदन्त आचार्य ने बनाया, क्या यह ठीक है?"

उत्तर - "यह अनादि मूलमन्त्र है। साधुओं के प्रतिक्रमण आदि मे णमोकार मन्त्र का निरन्तर उपयोग होता है। सामायिक प्रकीर्णक का मङ्गलाचरण यह णमोकार मन्त्र है। सामायिक दडक के प्रारम्भ मे भी यह मन्त्र है। और भी कारणो से इसे अनादि मूलमन्त्र मानना चाहिए।" 'अनादिमूलमन्त्रोऽय'

सम्यक्त्व खेल नहीं है

प्रश्न - "महाराज! आज सम्यक्त्व का बाजार बडा गरम है। उसका हर जगह नाम सुनाई पडता है सो क्या बात है?"

उन्होने उत्तर में सूत्र रूपसे ये शब्द कहे - "सम्यक्त्व खेल नहीं है, वह बहुत बडी चीज है।"

प्रश्न - "आज हरएक आदमी कहने लगता है, अमुक साधु मे इस प्रकार दोष हैं, उसको ठीक करना समाज का कर्त्तव्य है। इस विषय मे आपका क्या कहना है।"

उत्तर - "पहिले एक बार एक विकट प्रसङ्ग आ चुका है, मुनि का बहिष्कार कौन कर सकता है? मैने कहा था - "मुनि के बहिष्कार करने का तुमको, मुझको अधिकार नहीं है। राजा को या आचार्य शातिसागर जी को (जो उस समय जीवित थे) इस विषय में अधिकार है।"

अतिरेक

वे कहने लगे - "आजकल लोग अतिरेक मे लग गये हैं। हर बात मे अतिरेक होने से ही गडबडी पैदा हो गई है। कोई किसी की नहीं सुनता, सब अपनी-अपनी सुनाना चाहते हैं।"

स्वतन्त्रता

एक दिन मैंने पूछा - "महाराज! देश को स्वतन्त्रता मिली है। धर्म के विषय में आपको स्वतन्त्रता प्रदान करना चाहिए।"

वीरसागर महाराज ने कहा - "जितनी स्वतन्त्रता जैन धर्म में है, उतनी अन्य में नहीं। यह तो स्वतन्त्रता से परिपूर्ण धर्म है। इसका कथन सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने किया है। उन्होंने त्रिकाल के जीवों को लक्ष्य करके तत्त्व का प्रतिपादन किया है। भगवान ने वर्तमान काल को लक्ष्य करके कहा है कि इस काल में पाँच प्रकार के मुनियों में से दो प्रकार के ही मुनि होते हैं। पुलाक और वकुश जाति के मुनि ही पाये जाते हैं। निर्ग्रन्थ, स्नातक, आदि भेदरूप मुनि नहीं पाये जाते।

भगवान ने यह भी कहा है "कि इस काल में मोक्ष जाने वाले साधु नहीं होंगे।" भगवान का कथन कभी मिथ्या नहीं होता। उन्होंने यह भी कहा कि जैन मुनि अपनी बात नहीं करता। जो अपने मन की बात करता है, वह जैन साधु नहीं है। जैन मुनि अपनी बात नहीं, जिनेन्द्र भगवान की बात करता है।"

प्रश्न - "महाराज! आजकल अन्य लोगों की जैनधर्म में रुचि नहीं है, इसका क्या कारण है?"

उत्तर - "जौहरी की दुकान में बहुत थोड़े ग्राहक जाते हैं, फिर भी उसका अर्थलाभ विपुल मात्रा में होता है। सागभाजी वेचनेवाले की दुकान पर बड़ी भीड़ लगी रहती है, फिर भी उसे बहुत थोड़ी ही आमदनी होती है। इसी प्रकार वीतराग भगवान का धर्म है। विना निर्मल परिणाम हुए उसे पालन करने की लोगों की तबियत नहीं होती।"

सार्व धर्म

प्रश्न - "जैनधर्म सार्वधर्म है, तो सबको पालन करने का अधिकार मिलना चाहिए। यदि सबको जैनी नहीं बनाते हो, तो जैनधर्म सार्वधर्म नहीं बनेगा। ऐसी स्थिति में सार्वधर्म माने जाने वाले जैनधर्म वालों के मन्दिर में शूद्रों का प्रवेश क्यों रोकते हैं?"

उत्तर - "कोई नहीं रोकता। जैन बनने की रोक-टोक कहीं नहीं है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि मन्दिर अजायबघर नहीं, वह धर्म का आयतन है। जैनधर्म को माननेवाला उसमें जायगा। अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक को आना चाहिए।"

प्रश्न - "शूद्र की कितनी योग्यताएँ हैं?"

शूद्र की योग्यता

उत्तर - "शूद्र की बात तो दूसरी, वह तो मनुष्य है। पशु पर्यायवाला मेंढक तक जैन माना गया है, उसको जैन बनने में किसी ने रोका क्या? वह फूल मुख में रखकर भगवान के दर्शन को जा रहा था। ऐसा तुम नहीं कर सकते। जैनधर्म का कथन व्यवस्थित और नियमानुसार है।

पहिले जैन बनो और देखो जैन कानून तुम्हारे विषय मे क्या आज्ञा देता है। आचार्य शातिसागर महाराज ने अनेक शूद्रो को जेनी बनाया था। वे जिनमन्दिर में प्रवेश न करके जिनमन्दिर के दर्शन करके प्रसन्न थे। वे मन्दिर के भीतर नहीं गये और कहते थे कि पूर्व भव मे महान् पाप कर हमने यह अवस्था पाई है। अब यदि जिनभगवान की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करेंगे, तो आगे हमारी क्या गति होगी? इसलिए अपनी मर्यादा के भीतर प्रवृत्ति करना चाहिए।"

ज्ञान मत बेचो

वीरसागर महाराज गृहस्थ जीवन मे ब्र हीरालालजी कहलाते थे। उस समय वे अवैतनिक रूप मे धर्मशिक्षण का कार्य करते थे। उनके पूर्व विद्यार्थी चिंतामणि जैन जालना ने बताया कि वीरसागर महाराज ने फुलेरा मे मुझसे कहा था - "तुम पूजा, विधान आदि करते हो, तुम्हे उसका मूल्य नहीं ठहराना चाहिए। जो भेंट श्रावक देवे, उसमे ही आनन्द मानना चाहिए। अपनी अनमोल विद्या की कीमत नहीं करना चाहिए। तुमने कहा इतने लेंगे, इसका अर्थ है तुमने विद्या बेच दी। ऐसा नहीं करना चाहिए।"

इसलिए आवश्यक है कि आज पवित्र आदर्शों की ओर व्यक्ति तथा समाज का ध्यान जाना चाहिए।

आचार्य वीरसागर महाराज प्रात स्मरणीय सत्पुरुष हो गये।

※ ※ ※

चारित्र चूड़ामणि नेमिसागर महाराज

आचार्य महाराज तपोमूर्ति थे। उनके शिष्य नेमिसागर महाराज भी वहुत सरल तथा तप पुनीत जीवन समलकृत हैं। कहते है, हजारो लोगो की दृष्टि के समक्ष ही अपने अद्भुत प्रदर्शनो द्वारा जादूगर बडे-बडे बुद्धिमानो को भी चकित कर दिया करता है। आध्यात्मिक जादूगर के रूप मे आचार्य महाराज ने जिनेन्द्र शासन से पूर्ण विमुख नेमण्णा नाम के कुडची के व्यापारी की जीवनी को बदल दिया। वे ही आज परम श्रद्धालु, श्रेष्ठ तपस्वी, अद्वितीय गुरुभक्त १०८ परम पूज्य नेमिसागर महाराज के रूप मे मुमुक्षुवर्ग का कल्याण कर रहे है। उन्हे आचार्य महाराज से मुनि दीक्षा लिये ४४ वर्ष हो गए। एक उपवास, एक आहार का क्रम प्रारभ से चलता चला आ रहा है। इस प्रकार नर जन्म का सत्ताईस वर्ष का समय उपवासो मे व्यतीत हुआ। इस के ८८५५ दिन होते है। तीस चौबीसी व्रत के ७२० उपवास किये। कर्मदहन के १५६ तथा चारित्रशुद्धि व्रत के १२३४ उपवास हुए। दशलक्षण मे पाँच वार दस-दस उपवास हुए। अष्टाह्निका मे तीन बार आठ-आठ उपवास हुए। इस प्रकार २४ उपवास किये। लौणद मे महाराज नेमिसागर जी ने सोलहकारण के सोलह उपवास किये थे।

इस प्रकार उनकी तपस्या अद्भुत है। दो, तीन, चार उपवास तो जब चाहे तब करते है। अज्ञानी विषयासक्त ससार खाने-पीने मे मजा मानता है। चारित्र-चूडामणि नेमिसागर महाराज को उपवास मे आनद आता है। बिना आत्मानद के कौन अपने ५४ वर्ष के साधु जीवन के बहु भाग को उपवासों मे व्यतीत करता? अन्य साधुओ मे भी उपवास की प्रवृत्ति पाई जाती है, किन्तु उन लोगो मे भी विश्व की दृष्टि से सोचा जाय, तो नेमिसागर महाराज के सामने खडा होने वाला एक भी व्यक्ति न मिलेगा। तपस्या के क्षेत्र मे दिगम्बर जैन साधुओं मे इस समय ये ही शिरोमणि हैं। भौतिक विकास के कारण अहकार के ज्वालामुखी पर नग्न-नर्तन करने वाले देशो के समक्ष भारत, नेमिसागर महाराज सदृश विभूति को ही उपस्थित कर सकता है और पूछ सकता है कि तुम्हारे पास ऐसी ज्योतिर्मयी मूर्ति है क्या? कौन उत्तर देगा? जडवाद के राक्षस के पादार्चन करने वाले राष्ट्र क्या उत्तर देंगे? भारत मे भी अन्य लोग अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि उनमे शात भाव, आत्मचिंतन, पवित्र साधना पूर्वक दस हजार से भी अधिक उपवास करने वाली नेमिसागर महाराज सदृश निष्कलक चरित्र कोई अन्य विभूति हैं क्या? कौन उत्तर देगा? कोई हो, तो उत्तर मिले। नेमिसागर महाराज तपस्या के क्षेत्र मे सब को निरुत्तर

बनाते हुए अनुत्तर है। महापुराण मे लिखा है - 'तप मूते महत्फलम्' यह तपस्या महान् फलो को उत्पन्न करती है। इससे महान् निर्जरा होती है, तथा श्रेष्ठ पुण्य बध होता है। आज नेमिसागर महाराज का नाम सार्थक लगता है। तपस्या के क्षेत्र मे भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर का जीवन भी लोकोत्तर ही नहीं लोकोत्तम रहा है। उनका नाम धारण करने वाली निर्ग्रन्थ मुद्राधारी आत्मा का जीवन भी आध्यात्मिक सुवास-सपन्न है।

महातपस्वी साधुराज श्री १०८ नेमिसागर महाराज के पास बम्बई में सन् १९५८ तथा १९५९ के दशलक्षण पर्व में पहुँचकर अनेक महत्त्वपूर्ण बाते ज्ञात कीं। उनमे तत्त्वाभ्यासी वर्ग को विशेष लाभ होगा, कारण नेमिसागर महाराज उच्चकोटि की साधना मे सलग्न तपस्वी हैं। १७ सितम्बर १९५८ को मैंने उनके दर्शन किए थे। आचार्य शातिसागर महाराज के जीवन सबंधी सामग्री को लक्ष्य कर मैंने उन गुरुदेव से चर्चा प्रारभ की।

आचार्य महाराज से परिचय

उन ७६ वर्ष के वृद्ध साधुराज ने ये महत्त्वपूर्ण शब्द कहे थे - "हमारा और आचार्य महाराज का ५० वर्ष पर्यन्त साथ रहा। चालीस वर्ष के मुनि जीवन के पूर्व मैंने गृहस्थावस्था में भी उनके सत्सग का लाभ लिया था। आचार्य महाराज कोन्नूर में विराजमान थे। वे मुझ से कहते थे - 'तुम शास्त्र पढा करो। मैं उसका भाव लोगों को समझाऊगा।" वे मुझे और बडू को शास्त्र पढने को कहते थे। मैं पांच कक्षा तक पढा था। मुझे भाषण देना नहीं आता था। शास्त्र बराबर पढ लेता था, इससे महाराज मुझे शास्त्र बाचने को कहते थे। मेरे तथा बडू के शास्त्र बाचने पर जो महाराज का उपदेश होता था, उससे मन को बहुत शाति मिलती थी। अज्ञान का भाव दूर होता था। हृदय के कपाट खुल जाते थे। उनका सत्संग मेरे मन में मुनि बनने का उत्साह प्रदान करता था। मेरा पूरा झुकाव गृह त्यागकर साधु बनने का हो गया था।"

पिताजी से चर्चा

एक दिन मैंने अपने पिताजी से कुडची में कहा - "मैं चातुर्मास में महाराज के पास जाना चाहता हूँ।"

वे बोले - "तू चातुर्मास में उनके समीप जाता है, अब क्या वापिस आता है?" "पिताजी मेरे जीवन को देख चुके थे, इससे उनका चित्त कहता था कि आचार्य महाराज का महान् व्यक्तित्व मुझे सन्यासी बनाये बिना नहीं रहेगा। यथार्थ में हुआ भी ऐसा।"

जीवनधारा मे परिवर्तन

"चार माह के सत्सग ने मेरी जीवनधारा बदल दी। मैने महाराज से कहा - "महाराज! मेरे दीक्षा लेने के भाव है। अपने कुटुम्ब से परवानगी लेने का विचार नहीं है। घरवाले कैसे मजूरी देगे? मुफ्त मे नौकर मिलता है, जो कुटुम्ब की सेवा करता रहता है, तब फिर परवानगी कौन देगा?"

महाराज ने कहा - "ऐसा शास्त्र मे कहा है कि आत्मकल्याण के हेतु आज्ञा प्राप्त करना परम आवश्यक नहीं है।"

"मेरे दीक्षा लेने के भाव अठारह वर्ष की अवस्था मे ही उत्पन्न हो चुके थे। उसके पूर्व की मेरी कथा बडी अद्भुत थी।"

पूर्व जीवन

नेमिसागर महाराज का पूर्व जीवन सचमुच मे आश्चर्यप्रद था। उन्होने यह बात बताई थी - "मैं अपने निवास स्थान कुडची ग्राम मे मुसलमानो का बडा स्नेह पात्र था। मैं मुसलिम दरगाह मे जाकर पैर पडा करता था। सोलह वर्ष की अवस्था तक मैं वहाँ जाकर ऊदबत्ती जलाता था। शक्कर चढाता था।"

"जब मुझे अपने धर्म की महिमा का बोध हुआ, तब मैंने दरगाह आदि की तरफ जाना बन्द कर दिया। मेरा परिवर्तन मुसलमानो को सह्य नहीं हुआ। वे लोग मेरे विरुद्ध हो गए और मुझे मारने का विचार करने लगे।"

स्थान परिवर्तन

"ऐसी स्थिति मे अपनी धर्म-भावना के रक्षण निमित्त मै कुडची से चार मील की दूरी पर स्थित ऐनापुर ग्राम मे चला गया। वहाँ के पाटील की धर्म मे रुचि थी। वह हम पर बहुत प्यार करता था। इससे मैंने ऐनापुर मे रहना ठीक समझा।"

रामू के साथ खेती

"अपने जीवन निर्वाह के लिए मैने, रामू ने (जो बाद मे कुथुसागर महाराज के रूप मे प्रसिद्ध हुए) तथा एक और व्यक्ति ने मिलकर ठेके पर जमीन ली।"

"आचार्य महाराज नसलापुर मे थे। मै उनके पास एक माह रहा था। उसके पश्चात् महाराज चातुर्मास के हेतु ऐनापुर पधारे। मैं हमेशा महाराज के पास रहता था।

खेती का कुछ भी ध्यान नहीं था। उनके पास मन ऐमा लग गया था कि मुझे अपने भविष्य का कुछ भी ध्यान नहीं था। मेरी मारी स्थिति से महाराज परिचित थे।''

वे बोले - ''तुमने विना कारण खेती मे पैसा डाल दिया। ऐमा क्यों किया?'' ''मै और रामू महाराज के पास अधिक समय देते थे। हमारा भाव दीक्षा लेने का हो गया था, इससे ससार मे फँसाने वाले आरभ की ओर हमारा चित्त नहीं लगता था।''

रामू (कुंथुसागरजी) के साथ शर्त

''चातुर्मास के पश्चात् महाराज को हमने और रामू ने शेडवाल पर्यन्त पहुँचाया। उस समय शेडवाल मे दिगम्बर जैन महासभा का उत्सव होने वाला था। मैंने और रामू ने एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारकर यह शर्त की थी कि छह माह के भीतर अवश्य दीक्षा लेगे।''

मैने नेमिसागर महाराज से पूछा - ''आचार्य महाराज की ऐसी कौनसी बात थी, जिससे आपका मन ममता के एक मात्र केन्द्र गृह तथा परिवार के परित्याग के लिए तैयार हो गया? साधु का जीवन पुष्प-शय्या नहीं है। वह कठिन तपस्या परिपूर्ण है।''

आचार्य महाराज की वाणी

नेमिसागर महाराज ने बताया - ''आचार्य महाराज ने निर्ग्रन्थ दीक्षा नहीं ली थी। वे क्षुल्लक थे। मै और बडू उनके पास तेरदाल मे रहे थे। बडू शास्त्र पढता था। मैं सुनता था। भगवती आराधना, तत्त्वार्थसार आदि ग्रथो का स्वाध्याय हो चुका था।

''तेरदाल से बिहार कर महाराज कुडची ग्राम मे आए। उनका आहार हमारे घर मे हुआ। आहार के उपरान्त वे बोले - ''तुम्हारी भक्ति पूजा, अर्चा आदि कार्य गज के स्नान तुल्य हैं? देखो! पूजा आदि सत्कार्यो के द्वारा तुमने निर्मलता प्राप्त की। यह तो स्नान हुआ। इसके पश्चात् तुमने आरभ के कार्यो मे पडकर पाप का सचय किया। इसके द्वारा तुमने अपने ऊपर फिर से मिट्टी डाल दी। ऐसा गृहस्थ का जीवन होता है।'' यथार्थ मे गृहस्थ की अवस्था मे सावधानी रखते हुए भी प्रमाद होता है, इसी कारण सर्व परिग्रह त्यागी दिगम्बर अवस्था धारी मुनि पदवी प्राप्त किए विना सच्चे सुख का लाभ असभव कहा गया है।'' आत्मानुशासन मे कहा है -

मर्व धर्ममयं क्वचित् क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकम्।
क्वाप्येतत् द्वयवत् करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि॥

तस्मादेष तदध-रज्जुवलन स्नान गजस्याथवा।
मत्तोन्मत्तविचेष्टितं न हि हित गेहाश्रमः सर्वथा ।।४१ ।।

गृहस्थ जीवन मे कभी-कभी पूर्णतया धर्ममय कार्य होते है, कभी-कभी प्राय पापपूर्ण कार्य हुआ करते है। कभी-कभी धर्ममय और पापमय कार्यो की मिश्र अवस्था बडे-बडे ज्ञानी पुरुषो की पाई जाती है। अत यह कार्य अधे की रस्सी बटने सदृश है, जिसकी बटी हुई रस्सी को बकरी चरती जाती है। यह गज-स्नान समान हे अथवा यह मत्त तथा पागल व्यक्ति की चेष्टा के समान कार्य है। यथार्थ बात यह है कि गृहस्थावस्था मे सच्चा हित नहीं बन पाता।[१] आचार्य का भाव यह है कि पूर्ण अविनश्वर सुख का मार्ग मुनिपदवी को धारण करना है। उन्होने यह कहा था - "नदिमित्र की कथा का मेरे जीवन पर बडा प्रभाव पडा। वह मुझे बहुत प्रिय लगती थी। उससे मेरे भावो को बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई।"

नंदिमित्र की कथा से प्रभावित

पुण्यास्रव कथाकोष मे नदिमित्र के सम्बन्ध मे यह बताया है, कि जिन सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी की शरण मे मुनिदीक्षा ली थी, वे ही पूर्वभव मे नन्दिमित्र थे। अवधिज्ञानी मुनिराज ने चद्रगुप्त को पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार बताई थी - "पलासकूट ग्राम मे देविल वैश्य के घर पुण्यहीन पुत्र नदिमित्र ने जन्मधारण किया। माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वहाँ से चल कर वह अवन्ति देश मे विद्यमान वैदेश नगर में पहुँचा। उसने नगर के बाहर एक काष्ठकूट नाम के लकडी बेचनेवाले को देखा।

नन्दिमित्र ने काष्ठकूट से कहा कि - तुम लकडी का जितना बोझा बाजार मे ले जाते हो उससे चौगुना बोझा प्रतिदिन मै लाकर दूँगा। यदि तुम मेरे परिश्रम के बदले मे मुझे भोजन दिया करोगे, तो मै उक्त काम करने को तैयार हूँ।

काष्ठकूट ने नदिमित्र से लकडी का बोझा ढोने का काम कराना प्रारम्भ कर

---

1 The household stage makes the life of even those, who are rich in wisdom, sometimes all meritorious, sometimes all sinful and sometimes both, it is thus like the making of a rope by the blind or the bathing of an elephant or the act of a mad man It is not wholly beneficial

Eng Trans of Atmanushashan by Justic J L Jaini

दिया। काष्ठकूट के आदेशानुसार उसकी स्त्री जयघटा नदिमित्र को थोडा-सा भोजन दिया करती थी। अभागा नदिमित्र इस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहा था। स्त्री ने सोचा कि इस बेचारे नदिमित्र के परिश्रम के कारण बहुत आमदनी हो रही है, किन्तु हमने इसे एक दिन भी पेट भर भोजन नहीं दिया। यह ठीक नहीं है। इस भावना से प्रेरित हो जयघटा ने नदिमित्र की इच्छानुसार उसे उस दिन घी, दूध आदि से निर्मित भरपेट भोजन कराया। यह बात जब पतिदेव कृपणराज काष्ठकूट को ज्ञात हुई, तब उसे अपार क्रोध आया। उसने जयघटा को खूब पीटा।

नदिमित्र ने देखा कि उसके कारण बेचारी जयघटा को महान् कष्ट प्राप्त हुआ, इसलिए वह वहाँ से निकल गया। दूसरे दिन वह लकडी का भारी गट्ठा लेकर बाजार में पहुँचा। पापोदय से अभागे नदिमित्र के गट्ठे की ओर कोई देखता ही नहीं था। अन्य लकडी बेचनेवालो के छोटे-छोटे गट्ठे तो बिकते जाते थे, किन्तु नदिमित्र से उसके गट्ठे के बारे मे किसी ने बात भी नहीं पूछी। क्षुधा जनित व्याकुलता बढती जाती थी। वह किंकर्तव्य विमूढ था। इतने मे एक विशेष बात हुई।

विनयगुप्त मुनिराज

महातपस्वी मासोपवासी दिगम्बर मुद्राधारी विनयगुप्त मुनिराज आहार लेने के लिए वहाँ से जा रहे थे। मदबुद्धि नदिमित्र ने सोचा कि यह व्यक्ति तो मुझसे भी अधिक निर्धन है, क्षीण शरीर है। इसके पास तो लज्जा निवारण हेतु वस्त्र भी नहीं हैं। चलो, देखें तो सही, यह कहाँ जा रहा है और क्या करता है? नदिमित्र ने अपना वजनदार लकडी का गट्ठा वहीं छोड दिया और वह मुनिराज के पीछे हो लिया।

उस दिन वैदेशपुरी के नरेश ने भक्तिपूर्वक उन महामुनि को आहार कराया। मासोपवासी विनयगुप्त साधुराज का निरन्तराय आहार होने से देवताओ ने पचाश्चर्य किये। नदिमित्र मुनिराज के साथ मे गया था, इसलिए राजा ने सोचा कि यह कोई श्रावक है, जो इन मुनीश्वर के साथ रहता है।

नदिमित्र को सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ भोजन प्राप्त हुआ। उसके आनन्द की सीमा नहीं थी। वह मुनिराज के पीछे-पीछे जगल मे चला गया।

नदिमित्र ने मुनिराज से कहा - "नाथ! मुझे अपने समान बना लीजिए।" मुनिराज ने सोचा कि यह भव्य है और अल्पायु वाला है। उन्होने उसके कल्याण को सोचकर उसे पचनमस्कार मत्र सिखाकर मुनि दीक्षा दे दी।

जब ये नवीन मुनि नदिमित्र आहार के हेतु निकले, तो श्रावको ने बडी भक्ति पूर्वक इनसे भोजन-पान के हेतु प्रार्थना की। लोगो का अपने प्रति आश्चर्यप्रद आकर्षण देख नदिमित्र ने सोचा - "यदि आज मै उपवास करूँ, तो मेरा और प्रभाव बढेगा।" इस विचार से नदिमित्र मुनि बिना आहार ग्रहण किए अपने स्थान पर लौट आए। इसके बाद नदिमित्र अन्य दिन आहार को निकले, तब बडे-बडे लोगो ने आहार हेतु प्रार्थना की। नदिमित्र ने अपने बढते हुए प्रभाव को ध्यान मे रखकर उस दिन भी उपवास किया। इन उपवासो के कारण इन नदिमित्र की कीर्ति शहर भर मे फैल रही थी। दूसरे दिन महारानी अत पुर के साथ उस उद्यान में गई, जहॉ विनयगुप्त मुनि के साथ नदिमित्र मुनि थे। नदिमित्र ने सोचा, मेरे उपवास से आकर्षित होकर स्वय रानी यहॉ आई है। मै आज भी उपवास करने की शक्ति सपन्न हूँ, अतएव आज और उपवास करूगा। कल जब राजा आएगा, तब ही पारणा करूगा। यह विचार कर उसने गुरु से कहा - भगवन्! मै आज भी उपवास करूगा। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर नदिमित्र पचनमस्कार मत्र के चिंतन मे सलग्न हो गया।

रात्रि के अतिम प्रहर मे श्रीगुरु ने कहा, "नदिमित्र! तेरी आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रही है, इसलिए तू सन्यास धारण कर। उस भद्र आत्मा ने गुरु की आज्ञानुसार समाधिमरण करके सौधर्म स्वर्ग मे सुर पदवी प्राप्त की। स्वर्ग के सुख भोगकर वह देव चद्रगुप्त के रूप मे उत्पन्न हुआ। चद्रगुप्त महान् प्रतापी सम्राट् हुए। उन्होने मुनि दीक्षा धारणकर देव पदवी प्राप्त की। **तिलोयपण्णत्ति** मे लिखा है -

मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्ख धरदि चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरा दु प्पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥४-१४८१॥

-मुकुटबद्ध राजाओ मे अतिम चद्रगुप्त ने जिनदीक्षा धारण की। इसके पश्चात् मुकुटधारी प्रव्रज्या अर्थात् निर्ग्रन्थ दीक्षा को ग्रहण नहीं करते।[१]

वास्तव मे, सयम की अपूर्व सामर्थ्य है। हतभाग्य नदिमित्र ने उपवास का आश्रय ले, स्वर्ग पाया तथा वहॉ से चयकर सम्राट् चन्द्रगुप्त का वैभव पाया। इससे उन लोगो को अपना कर्तव्य सोचना चाहिए, जिनका जीवन अनेक आपत्तियो से घिरा हुआ है। थोडा भी व्रत जीव को सुख प्रदान करता है।

---

१ महावीर निर्वाण के बाद पॉंच श्रुतकेवलियों का आगम में कथन है। दूसरे श्रुतकेवली का नाम नदिमित्र था। नदिमित्र श्रुतकेवली से चद्रगुप्त रूप मे जन्म धारण करने वाली नदिमित्र नाम की आत्मा भिन्न थी।

लोग यह सोचा करते है, कि प्रथमानुयोग शास्त्रो मे कोई सार नहीं है। असली सार की बात आध्यात्मिक ग्रथो मे है, ऐसी एकान्त धारणा वालो की दृष्टि का निवारण स्वय नेमिसागर महाराज की उक्त जीवन घटना द्वारा स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में पुराण-साहित्य मे वर्णित कथानको के स्वाध्याय द्वारा आत्मा को प्रकाश प्राप्त होता है तथा व्यक्ति कलकपूर्ण प्रवृत्तियो से विमुख बनता है।

कुंथुसागरजी के संस्मरण

आचार्य महाराज ने कुथुसागरजी (रामू) को पहले दीक्षा नहीं दी थी। इस सम्बन्ध मे नेमिसागर महाराज ने बताया - "महाराज ने रामू से कहा था, पहले कुछ पढो। उसके पश्चात् दीक्षा देंगे। रामू मूडबिद्री गया। वहाँ रामू ने उगाय ग्रामवाले पायसागर स्वामी से दीक्षा लेने का अपना मनोभाव मुझे सूचित किया। यह जानकर मैं गोवा गया। वहा से जहाज पर बैठकर मगलूर मूडबिद्री के लिए रवाना हुआ। नौका के हिलने डुलने से मेरी प्रकृति बिगड गई थी। अनेक बार वमनादि होने से शरीर शिथिल हो गया था। मूडबिद्री पहुँचने पर सब ठीक हो गया। रामू (कुथुसागर जी) को क्षुल्लक दीक्षा मिल गई। उसके पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के लिए रामू काशी, कारजा सोलापुर आदि भी गए थे।"

सर्व प्रथम ऐलक दीक्षा प्राप्ति

नेमिसागर महाराज ने बताया - "आचार्य महाराज जब गोकाक पहुँचे, तब वहाँ मैने और पायसागर ने एक साथ ऐलक दीक्षा महाराज से ली थी। उस समय आचार्य महाराज ने मेरे मस्तक पर पहले बीजाक्षर लिखे थे। मेरे पश्चात् पायसागर के दीक्षा के संस्कार हुए थे।"

निर्ग्रन्थ दीक्षा

"दीक्षा के दस माह बाद मैने समडोली मे निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी। वहाँ आचार्य महाराज ने पहले वीरसागर के मस्तक पर बीजाक्षर लिखे थे, पश्चात् मेरे मस्तक पर लिखे थे। इस प्रकार मेरी और वीरसागर की समडोली मे एक साथ मुनि दीक्षा हुई थी। वहाँ चद्रसागर ऐलक बने थे।"

सोनागिरि मे दीक्षा समारोह

उन्होने यह भी बताया - "मेरी ऐलक दीक्षा के पाँच, छह माह के पश्चात् चद्रसागर और वीरसागर ने कुभोज के पहाड पर क्षुल्लक दीक्षा ली थी। वीरसागर ने क्षुल्लक दीक्षा के पश्चात् मेरे साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी। पायसागर, चंद्रसागर नमिसागर कुथुसागर, इन चारो की मुनि-दीक्षा सोनागिरि मे हुई थी।"

चद्रसागर महाराज के विषय मे

उन्होने चद्रसागरजी के विपय मे अपना अनुभव इस प्रकार प्रगट किया - "चद्रसागर क्रिया पालने मे बहुत दृढ थे। वे बहुत धैर्यवान थे। उन को किसी की भी परवाह नहीं थी, चाहे राजा हो या ओर कोई हो। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। ब्र पडित गौरीलालजी के पास चद्रसागर ने जेनेन्द व्याकरण कण्ठ कर ली थी। उनका अच्छा अभ्यास हो गया था। मुझे भी जेनेन्द्र के सब सूत्र याद हो गए थे। ब्र नदनलालजी शास्त्री (मुनि सुधर्मसागर महाराज) के पास मेने तथा क्षुल्लक यशोधर (मुनि श्री धर्मसागर महाराज) ने कातत्र व्याकरण सीखी थी।"

उन्होने कहा था - "जब पायसागर ने महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत मागे, तब ब्र जीवराज सोलापुर ने कहा - "यह सप्तव्यसनी है, इसे व्रत मत दो। उम समय एक सेठ जमानतदार वना था, तब महाराज ने पायसागर को ब्रह्मचर्य व्रत दिया था।"

घर की बातें

इनके पिता का नाम अण्णा था। घर मे नेमिसागरजी को नेमण्णा कहते थे। नेमिसागर महाराज के एक भाई की पैदा होते ही मृत्यु हुई। दूसरे भाई की मृत्यु सात-आठ वर्ष की अवस्था में हुई थी। नेमण्णा ज्येष्ठ थे। माता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था लगभग बारह वर्प की थी। माता की धर्म-रुचि बहुत थी। माता सरल परिणामी, परोपकार-रत साधु स्वभाव वाली थी। दीनजनों पर माता का वडा प्रेम था।

पिता

इनके पिता अण्णाजी बहुत बलवान थे। पॉच छै गुडी पानी का हडा पीठ पर रखकर लाते थे।

नेमिसागर महाराज की मुनिपद धारण की रुचि बाल्यकाल से ही थी। उन्होने बताया - "हमारी १५ वर्ष की अवस्था मे ही मुनि बनने की इच्छा थी। हम ज्योतिषी से पूछते थे कि हमारी इच्छा पूर्ण होगी या नहीं?"

नेमिसागर नाम का हेतु

इनकी माता का नाम शिवदेवी ज्ञातकर मैंने कहा - "महाराज! भगवान नेमिनाथ तीर्थकर की माता का नाम शिवदेवी था। आपकी माता का भी यही नाम था। यह समता महत्त्वपूर्ण है।"

इस पर नेमिसागर महाराज ने कहा - "मेरा नाम नेमण्णा था। गोम्मट के मंदिर में हमारी ऐलक दीक्षा का संस्कार हुआ था। वहाँ मूलनायक नेमिनाथ भगवान थे। इस कारण आचार्य महाराज ने हमारा नाम नेमिसागर रखा था।" इस प्रकार नेमिनाथ भगवान के सान्निध्य में शिवदवी के पुत्र नेमण्णा को ऐलक दीक्षा देते समय नेमिसागर नाम रखना आचार्य महाराज की विशिष्ट दृष्टि को सूचित करता है।

ऐलक दीक्षा का रहस्य

नेमिसागर महाराज ने कहा - "मैंने महाराज से मुनि दीक्षा मांगी थी, किन्तु उन्होंने कहा थोडे दिन ऐलक बनो। कुछ समय बाद मुनि दीक्षा देंगे।" वे यह भी कहते थे - "हमारा क्या जाता है, दीक्षा लेना है तो ले लो।" ऐलक दीक्षा देने का उनका अभिप्राय था कि मुनि पद का पूर्व अभ्यास हो जाय। स्वयं मुनि बनने के पूर्व महाराज क्षुल्लक रह चुके थे। स्व. वर्धमानसागर महाराज को मुनि बनने के पूर्व उन्होंने ऐलक दीक्षा दी थी। उसके पहले वे क्षुल्लक रह चुके थे।

सारगर्भित उद्‌गार

आचार्य महाराज के इन शब्दों में विशेष रस है - "हमारा क्या जाता है, दीक्षा लेना है, तो ले लो।" संयमदाता जब असंयमी को संयम की ज्योति प्रदान करता है, तब उस संयमी के संयम-धन में कोई न्यूनता नहीं आती। दूसरा व्यक्ति अपने विकारी भाव को छोडकर स्वभाव की ओर आता है। संयम लेते समय ऐसा दिखता है कि मुमुक्षु ने कुछ लिया है। सूक्ष्मता से विचार किया जाय, तो कहना होगा कि उसने कुछ नवीन वस्तु नहीं ली है, किन्तु विकार मात्र का त्याग किया है। दर्पण की मलिनता दूर होती है, तब उसकी स्वयं की निर्मलता प्रकाश में आती है ऐसी ही स्थिति असंयम त्याग पूर्वक संयम की अवस्था को प्राप्त करने में होती है।

संयम और ज्ञान की मैत्री

आचार्य महाराज संयम-दान के साथ सम्यक्ज्ञान की भी योजना को ध्यान में रखते थे कारण शास्त्र का उचित परिचय न रहने से न तो मानसिक निर्मलता बनती है और न संयम की समुचित रक्षा ही हो पाती है। कभी-कभी लोग आहार के त्याग पूर्वक लम्बे उपवास ले लेते हैं, किन्तु उनका समय धर्म ध्यान के अमृत संचय के स्थान में आर्त-रौद्र ध्यान के कार्यों में लगता है। ऐसी अवस्था में जैसा लाभ होना चाहिए, वैसा नहीं होता। इस कारण आचार के साथ सम्यक्ज्ञान का मधुर संगम आवश्यक है। जो

लोग आचार का गौरव गाते हुए ज्ञान का तिरस्कार करते है, वे यह ध्यान नहीं देते कि "ज्ञान अर्च्यं तपोगत्वात् - तप का कारण होने से ज्ञान समादरणीय है।" ज्ञान का मुख सयम की ओर हो और सयम की दृष्टि ज्ञान की ओर हो, तो जीवन महत्त्वपूर्ण बनता है। वर्तमान सयमी समुदाय का ध्यान उपरोक्त सत्य की ओर जाना हितकारी है। कोई-कोई व्यक्ति सोचते है कि हमारी अवस्था अधिक हो गई, हम क्या कर सकते है? उनको यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि भूमि को खोदते-खोदते जैसे पानी मिलता है, ऐसे ही अभ्यास तथा परिश्रम द्वारा ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। सयम पूर्वक शास्त्र का अभ्यास अपूर्व फल देता है। इस तत्त्व पर आचार्य महाराज की दृष्टि थी, इसलिए उन्होने अपने सघ के साधुओं के अभ्यास की व्यवस्था की थी।

नेमिसागर महाराज ने बताया था - "कटनी के चातुर्मास मे महाराज ने हम सब के अध्ययन की व्यवस्था करने की योजना बनाई। ललितपुर चातुर्मास मे शिक्षण का क्रम शुरू हो गया था।"

मार्मिक विनोद द्वारा शिक्षा

आचार्य महाराज मधुर विनोद की चाशनी मे कर्तव्य पालन की औषधि दिया करते थे। नेमिसागर महाराज ने बताया - "एक दिन सामायिक करते समय मुझे तद्रा आ गई, तब महाराज ने सामायिक के उपरान्त कहा - "नेमिसागर! तुम सामायिक बहुत अच्छी करते हो।" इस प्रकार आचार्य महाराज शिष्यो के जीवन को उज्ज्वल बनाते थे।"

निद्रा का कारण

नेमिसागर महाराज ने एक अनुभवपूर्ण बात कही - "विचार चालू रहने पर निद्रा नहीं आती। विचार बद होते ही निद्रा सताती है।" एक बार की सामायिक का हाल नेमिसागर महाराज ने इस प्रकार बताया - "हम मुजफ्फरनगर में सामायिक को खडे हुए थे। न जाने क्यो, हम तत्काल धड से जमीन पर गिर पडे थे।"

घुटनों के बल पर आसन

नेमिसागर महाराज घुटनो के बल पर खडे होकर आसन लगाने मे प्रसिद्ध रहे है। मैंने पूछा - "इससे क्या लाभ होता है।" उन्होने बताया - "इस आसन के लिए विशेष एकाग्रता लगती है। इससे मन का निरोध होता है। बिना एकाग्रता के यह आसन नहीं बनता है। इसे 'गोडासन' कहते हैं। इससे मन इधर उधर नहीं जाता है और काय-

क्लेश-तप भी पलता है। दस बारह वर्ष पर्यन्त मै वह आसन सदा करता था, अब वृद्ध शरीर हो जाने से उसे करने मे कठिनता का अनुभव होता है।''

दृढ तपस्या

मैने पूछा - ''महाराज! गोडासन करते समय घुटनो के नीचे कोई कोमल चीज आवश्यक है या नहीं।''

वे बोले - ''मैं कठोर चट्टान पर भी आसन लगाकर जाप करता था। भयकर से भयकर गर्मी मे भी गोडासन पाषाण पर लगाकर सामायिक करता था। मेरे साथी अनेक लोगो ने इस आसन का उद्योग किया, किन्तु वे सफल नहीं हुए। ध्यान के लिए सामान्यत पद्मासन, पल्यकासन और कायोत्सर्ग आसन योग्य हैं। अन्य प्रकार का आसन कायक्लेश रूप है। गोडासन करने की प्रारम्भ की अवस्था मे घुटनो मे फफोले उठ आए थे। मै उनको दबाकर बराबर अपना आसन का कार्य जारी रखता था।''

ग्रीष्म परीषह जय

उन्होने यह भी बताया - ''शिखरजी से लौटता हुआ सघ वैशाख मास मे इलाहाबाद आया था। वहाँ मै छत पर खडे होकर कायोत्सर्ग करता था, उस समय बम्बई वाले सघपति आए। उन्होने चटाई रखी और उस पर खडे होकर मेरे ऊपर छाता लगा दिया। उस समय क्या सामायिक बनती? मैंने आठ दस णामोकर की माला फिराई। इस तरह सामायिक पूरी हुई। उसके पश्चात् आचार्य महाराज के पास यह खबर पहुँची, तब वे बोल उठे - ''नेमिसागर तो अग्निकाय का जीव है।'' मुझे भीषण गर्मी मे भी कष्ट नहीं होता। हमारा शरीर जाडे को ढीला है।''

उग्र तपस्या

नेमिसागर महाराज महान् तपस्वी है। लोणद चातुर्मास मे उन्होने आचार्य महाराज के समक्ष सत्रह उपवास किये थे। उस समय वे बराबर भगवान के दर्शनार्थ तीन चार फर्लांग प्रतिदिन चला करते थे। सम्पूर्ण क्रियाओ मे पूर्ण सावधान थे। कई लोग तो एक उपवास मे व्याकुल हो जाते है, किन्तु ऐसी व्याकुलता का उनमे लेश भी न था। ऐसे महान् तपस्वी माधुराज के पास अनुभव की अपूर्व सामग्री का भण्डार है। यह सोचकर मैने पूछा - ''महाराज! अब तक आपने लगभग आठ दस हजार उपवास किये है, और भी यह क्रम चलता जा रहा है। आप अपने स्वय के अनुभव के आधार पर कुछ ज्ञानप्रद सामग्री दीजिए।''

शाति का उपाय

मेरा छोटा सा प्रश्न है - "शाति का क्या उपाय है?"

उन्होने कहा - "सकल्प-विकल्प त्यागने से शाति मिलती है। इससे कर्मों का क्षय होता है। परिणामो मे जितनी-जितनी विशुद्धता होगी, उतनी-उतनी शाति की उपलब्धि होगी। मलिन परिणामो से शाति दूर होती हे और अशाति की जागृति होती हे। परिणामो की निर्मलता के लिए सत्सगति चाहिए। विषयभोग की सामग्री का त्याग भी आवश्यक है। सगति के योग्य सज्जन पुरुषो का समागम दुर्लभ रहता है। सत्समागम न मिले, तो अच्छे अच्छे शास्त्रो का स्वाध्याय मनन करे। ग्रन्थो का अभ्यास भी सत्समागम ही तो है। प्रत्येक ग्रन्थ के भीतर महान् ज्ञानी, सयमी, सत्पुरुष बेठे हे। इस दृष्टि से जिनवाणी के स्वाध्याय का बडा महत्त्व है।"

त्याग मे आनन्द

"त्याग के द्वारा मन शात बनता है। त्याग मे सुख हे। भोग मे दु ख है। यदि शक्ति अल्प है, तो थोडा त्याग करो। इद्रियो ने जीव को दास बना रखा हे। इन्द्रियो के दास न बनकर इन्द्रियो को दास बनाना हितकारी है। मन के भीतर की खराबी दूर करना चाहिए। अतर्दृष्टि होने का प्रयत्न करते जाना चाहिए। परिश्रम पूर्वक पढने वाला अज्ञानी भी विद्वान् बन जाता है। आत्मा की ओर रुचि होने पर तुम्हारा मन दूसरी ओर नहीं जावेगा। कारण, मन की उधर ही प्रवृत्ति होती है, जहाँ उसकी रुचि पाई जाती है। भोगो मे अरुचि तथा आत्म तत्व मे रुचि होने पर परिणामो मे शाति उत्पन्न होती हे।"

मार्मिक पद्य

सामायिक पाठ का यह पद्य नेमिसागर महाराज को प्रिय है। एक धार्मिक सज्जन कहते थे, कुथुसागर महाराज को भी यह पद्य प्रिय रहा है। इस प्रकार दोनो पुराने साथी साधु इस पद्य द्वारा आनन्द लेते थे -

> बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः ।
> स्वात्मोपलब्धि. शिवसौख्यसिद्धिः ॥
> चिन्तामणि चिंतितवस्तुदाने ।
> त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥[१]

---

१ "हे देवी सरस्वती! इच्छित पदार्थ को प्रदान करने में चिन्तामणि समान तुम्हारी वदना करने वाले मुझको बोधि, समाधि, परिणामशुद्धि, आत्मस्वरूप की प्राप्ति तथा मोक्षसुख की उपलब्धि हो।"

वासना छोडो

वे कहने लगे - "श्वास का रोकना समाधि नहीं है। मन का बाल-बच्चे, धनधान्य, मकान आदि की ओर नहीं जाना तथा स्वोन्मुख बनना समाधि है। बाह्य पदार्थ न हो, किन्तु उस ओर मन दौडा, तो समझना चाहिए कि बाह्य पदार्थ पास मे ही हैं।" उनके ये उद्‌गार अनमोल हैं - "वासना है, तो पदार्थ हैं ही।"

शुभ चिह्न

उन्होने बताया - "आचार्य महाराज के पैरो मे ध्वजा का चिह्न था। उन्होने धर्म की ध्वजा फहराकर उस चिह्न की सार्थकता द्योतित की। उनके पॉव मे चक्र भी था। इससे वे सदा भ्रमण किया करते थे।"

रोग मे अपूर्व दृढता

एक दिन नेमिसागर महाराज की पीठ मे बहुत दर्द हो गया। उन्होने दवा नहीं लगाने दी। जब मैने आग्रह किया, तो कहने लगे - "आदमी को रोग न होगा, तो क्या पत्थर को होगा। 'मन चगा, तो कठौती मे गंगा।" हमारे शरीर मे अनेक रोग होते है, हम परवाह नहीं करते। रोग आओ या जाओ। साधारण बीमारी से डरने लगे, तो क्या होगा? रोग को भोजन नहीं मिलेगा, तो वह नहीं टिकेगा। भोजन न मिलने पर मेहमान कितने दिन रहेगा? पैसा पास मे रहता है, तो बीमारी मे डाक्टर, वैद्य, बम्बई, कलकत्ता सब याद आते है। पैसा नहीं है, तो कहाँ का बम्बई, कहॉ का कलकत्ता और कहॉ का डाक्टर? शरीर के एक अगुल क्षेत्र मे ९६ रोग कहे गए है। किस-किस रोग की फिकर करना? इससे हम रोग की चिन्ता नहीं करते।"

वीरसागरजी की दृष्टि

आचार्य वीरसागर महाराज रोग के विषय मे कहते थे - "भोगी को रोग आकुलता का कारण होता है, योगी को वही रोग वैराग्य का कारण होता है। भोगी और योगी इन दोनो की दुनिया निराली है, दृष्टि जुदी-जुदी है।"

सनत्कुमार मुनि का आदर्श

सनत्कुमार चक्रवर्ती के दिगम्बर दीक्षा लेने के उपरान्त असाता ने उनको घेर लिया। शरीर कुष्ठ आदि महाव्याधियो से आक्रान्त हो गया था। उस समय दो देवो ने उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से वैद्य का रूप बनाकर महामुनि श्री सनत्कुमार स्वामी ने

कहा - "आपके रोग की हम चिकित्सा कर सकते है।" उस पर मुनि सनत्कुमार महाराज ने कहा था - "यदि वैद्यौ भवन्तौ ससारव्याधि निराकुरुत" - "यदि आप वैद्य है, तो ससार मे जन्म-जरा-मरण रूप महारोग है, उसको दूर कीजिए।" वे देव उनके चरणो मे नतमस्तक हो गए और कहने लगे - "भगवन्! इस रोग की औषधि तो रत्नत्रय धर्म है। वह औषधि आपके ही पास है।"

स्याद्वाद-दृष्टि

इस विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि साधु सर्वथा औपधि का त्याग करते है या गृहस्थो को औषधिदान नहीं देना चाहिए। एकान्त पक्ष ग्रहण करना कभी भी आनदप्रद नहीं होता। आत्म सामर्थ्य, क्षेत्र, कालादि का विचारकर विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए। नेमिसागर मुनिराज के कथन मे मनस्वी साधु की आात्मनिर्भरतापूर्ण निर्मल चित्तवृत्ति प्रतिबिम्बित होती है।

विदेश जाने वाले छात्र को उपदेश

नेमिसागर महाराज के पास एक जैन तरुण आया, जो विदेश जा रहा था। महाराज ने उससे कहा था - "तुम अच्छे कुल के हो। अपने कुल की लाज रखना। अभक्ष्य भक्षण नहीं करना।"

वृद्ध व्यक्ति से मार्मिक प्रश्न

सत्तर वर्ष के एक धार्मिक सेठ महाराज के पास आए। नेमिसागर महाराज ने कहा - "सेठजी! अग्रेज लोग तीस वर्ष की नौकरी के बाद पेशन दिया करते थे, अब तुम सत्तर वर्ष के हो गए। घर गृहस्थी की जिम्मेदारी से कब पेशन लोगे?"

महाराज का प्रश्न बडा मार्मिक है। आज के राजनीतिज्ञ अपना एक पैर यम मदिर में रखते हुए भी राजनीति के प्रपच मे फॅसे रहते हैं। गृहस्थ यह बात भूल गया है कि गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम भी है। उनकी विस्मृति का ही परिणाम है कि जीव शहद मे गिरी हुई मक्खी के समान छटपटा कर मरण करता है और असमाधि पूर्ण मृत्यु के कारण नरभव को यों ही गमा देता है।

जैनो की न्यूनता का कारण

लोगो के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ करता है कि जैन धर्म सच्चा है, तो उसके पालन करने वालो की सख्या बहुत कम क्यो है?

इस सबध मे नेमिसागर महाराज ने यह उत्तर दिया था - "जैनधर्म को सत्यता पूर्वक पालने वाले बहुत थोडे है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ससार मे अच्छी वस्तु थोडी है। भलाई अल्प मात्रा मे है। बुराई की सीमा नहीं है।" यथार्थ बात यह है आज का मानव उस पथ को अपनाता है, जिसमे उसके स्वच्छद जीवन का पोषण होता है, जहाँ विषयभोगो के सेवन करने मे किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है।

जैनधर्म की आधारशिला ही त्याग है, सयम है, इन्द्रिय-जय है। इन्द्रियों को जीतनेवाला ही तो जैन कहलाता है। अतएव आज का भोगी मानव इस धर्म को सकटपूर्ण सोचकर उस ओर प्रवृत्त होता है, जहाँ उसके विलासी जीवन को कोई भी धक्का नहीं लगता। भिन्न-भिन्न धर्मो मे भी सयम को स्थान दिया गया है। लोग अपने-अपने धर्म के अकुश को दूर कर निरकुश बन रहे है। निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय, तो जगत् धर्म से दूर होता जा रहा है। स्वार्थी जीवन को ही लोगो ने अपना धर्म बना लिया है। इस स्वार्थ के विष-पानवश समाज शिथिल, अशक्त तथा दु खी दिखाई पडता है।

महत्त्वपूर्ण विचार

एक दिन नेमिसागर महाराज ने बडे महत्त्व के विचार प्रगट किए थे। उन्होने कहा था - "अनुभव, शास्त्र (आगम) तथा व्यवहार - इन तीनो को ध्यान मे रखकर कार्य करना चाहिए।" उनकी यह शिक्षा बहुत उपयोगी है - "पूर्व मे उपार्जित पुण्य कर्मोदय से सुखी, समृद्ध तथा वैभववान को देखकर लोगो को नहीं जलना चाहिए। उससे गुण लेना चाहिए कि इस जीव ने पूर्व मे पुण्य द्वारा ऐसी सुन्दर सामग्री प्राप्त की है। हमे भी ऐसा पुण्य का सचय करना चाहिए। जलते रहने से या निन्दा करने से हित नहीं होता। बिना पुण्य के कोई धनवान तथा सुखी नहीं बनता। जो कहते है कि गरीबो का शोषणकर, उनका धन लूटकर, धनवान समृद्ध बने हैं, वे यह बतावे कि धनवान बनने से उनको किसने रोका है? पुण्यवान व्यक्ति धन तथा वैभवहीन अवस्था को त्यागकर अल्प प्रयत्न से विभूतिवान बनते हैं।"

"आजकल सब बातो का क्रम विपरीत हो रहा है। पहले का सुख, निराकुलता तथा शाति अब नहीं है। पृथ्वी की उपज भी घट रही है। आगे अच्छे दिन नहीं आवेगे। शास्त्रकथित बाते प्रत्यक्षगोचर हो रही है। लक्ष्मी हीनकुलो मे जाएगी, उच्चकुल मे लक्ष्मी का वास घटेगा, यह शास्त्र का कथन दृष्टिगोचर हो रहा है।"

इन्द्रियजनित सुखो के विषय मे महाराज का उपदेश बहुत गभीर तथा मार्मिक

है - "हमने इस विषय में गहराई के साथ विचार किया है कि खाने-पीने, वस्त्र आदि विषयों के उपभोग में सुख मानना बड़ी भारी भूल है। इंद्रियों के द्वारा कोई सुख नहीं मिलता। सोचो स्त्री, पुत्रादि, धन-धान्यादि के द्वारा क्या सुख मिलता है? कषाय के आधीन होकर तुम देश-विदेश में चक्कर लगाते हो। लोभ के कारण तुम्हें शरीर की भी फिक्र नहीं रहती। तुम अपने सुख का ध्यान नहीं रखते हो। मोह के कारण तुम कहते हो कि विषय भोग नहीं छूटते है। यथार्थ बात यह है कि तुम स्वयं उनका त्याग करने को तैयार नहीं हो।

दृष्टांत

एक लोटे के भीतर चने रखे हैं। लोभी बंदर उसके भीतर हाथ डालता है। मुट्ठी में चने भरता है, इससे वह भरी मुट्ठी लोटे से निकल नहीं पाती। वह चना छोड़ने को जब तक तैयार नहीं होता है, तब तक उसका हाथ लोटे में फंसा रहता है। ऐसी ही अवस्था भोगी तथा विषयासक्त जीव की है। दूसरे को दोष देना वृथा है।"

विनय द्वारा विकास

महाराज की यह शिक्षा सर्व साधारण के लिए बहुत उपयोगी है -

"बड़प्पन अपने आप नहीं आता। छोटों की सेवा द्वारा बड़प्पन मिलता है। विनयवान सुखी रहता है। नम्र चींटी तिजोड़ी के भीतर भी रखे हुए मिष्ट पदार्थ को खाती है। हाथी को बड़ा होने पर भी गन्ना खाने को नहीं मिलता है। यदि हाथी गन्ने के खेत में जाता है, तो उसकी पीठ पर लट्ठ प्रहार होता है। विनयवान चींटी के समान सदा नम्र उद्योग द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है।

आचार्य महाराज एक उदाहरण देते थे - यदि एक ऊंचे खंभे के शिखर पर सुई लगाकर उसके ऊपर एक अमरूद का फल रख दिया जाय, तो भी छोटीसी चींटी उस खंभे का चक्कर लगाती हुई ऊपर पहुँचती है, धीरे-धीरे वह उस फल को खाकर पोला करती है, इससे वह फल जमीन पर गिर जाता है, इसी प्रकार उद्योगी विनयवान मोक्ष प्राप्त करता है। शूरवान व्यक्ति भी अल्पकाल में मुक्त होता है। अंजनचोर ने साहस करके अपना जीवन सुधारा और वह पवित्र बन मोक्ष गया।"

तोते का आदर्श

पक्षियो में तोता एक विलक्षणता धारण करता है, वह उडता जाता है और वृक्ष के फल धान्यादि को खाता जाता है। अन्य पक्षी की तरह उसे बैठने को स्थान नहीं

मैने कहा - " महाराज! दशलक्षण पूजा कर रहा था। तप रूप सातवे धर्म की पूजा करते समय चित्त मे विचार आया कि जब महातपस्वी गुरु के रूप मे आप यहाँ विराजमान हैं, तब जीवित तपोधर्म को क्यों न अर्घ चढ़ाऊँ? इससे मै आपके पास आया। आचार्य शांतिसागर महाराज के जीवन काल मे मैं पर्युषण मे उनके पास जाता रहा हूँ। बाहर के अनेक आमंत्रण आने पर भी मै उनके पास पहुँचा करता था, इसका कारण यह था कि उनके भीतर जाज्वल्यमान दशधर्मो का प्रत्यक्षीकरण होने मे सजीव धर्मो की पूजा का सोभाग्य मिलता था। आज आपके पास भी मुझे वही लाभ मिल रहा है।" कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है -

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहि परिणदो णिच्चं।
सव्वत्थवि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ॥३९२॥

जो साधु रत्नत्रयधारी है, क्षमादि भावयुक्त है तथा सबके प्रति माध्यस्थ भाव सहित है, वह साक्षात् धर्म है।

इसके अनतर मन में एक विकल्प आया। मैने सोचा, महाराज से समाधान प्राप्त कर लूँ, अन्यथा पूजा करने में वह विचार विस्मृत न हो जाय।

विचित्र प्रश्न

मैने कहा - "आप आचार्य शांतिसागर महाराज को प्रणाम करते है क्या? पहले करते थे, क्योंकि वे महाव्रती साधुराज थे। अब तो वे सुरराज हुए होंगे?"

संयमी पर्याय को प्रणाम

नेमिसागर महाराज ने कहा - "हम सदा आचार्य महाराज को प्रणाम करते हैं। उनके चरण युगल हमारे हृदय में विराजमान है।" महाराज नेमिसागरजी ने यह मार्मिक बात कही थी कि "हम शांतिसागर महाराज की संयम युक्त पर्याय को ध्यान मे रखकर प्रणाम करते हैं। उनकी संयम रहित देव पदवी हमारी दृष्टि मे नहीं रहती। हम अव्रती देव पर्यायवाली आत्मा को कैसे प्रणाम करेंगे? आगम की जेसी आज्ञा है, वेसा हम करते हैं।"

देव पर्याय को नमस्कार नहीं

मैंने पूछा - "महाराज! यदि आचार्य महाराज का जीव यहाँ समक्ष देव रूप मे दर्शन दे, तो क्या उनको भी नमस्कार न करेंगे?" नेमिसागर महाराज ने कहा - "हाँ! हम उन्हे नमस्कार नहीं करेंगे।"

इस पर मैने पूछा - ''अच्छा यह बताइये कि क्या वह सुरराज की पर्यायधारी आचार्य महाराज की आत्मा आपको प्रणाम करेगी या नहीं?'' उन्होने कहा - ''अवश्य! आगम की आज्ञा पर आचार्य महाराज का सदा विश्वास रहा है, इस कारण वे आगम की आज्ञानुसार सकल सयमी की वदना करेगे, अन्यथा उनकी विशुद्ध श्रद्धा को दोष लगेगा।''

कुदकुद स्वामी ने दर्शन पाहुड मे कहा है -

अमराणवंदियाण रूव दट्ठूण सीलसहियाण।
जे गारवं करति य सम्मत्त-विवज्जिया होति ॥१५॥

सुरवद्य, शीलसपन्न, यथाजात जिनमुद्राधारी को देखकर जो अहकार भाव के वशीभूत होते है वे सम्यक्त्व हीन होते हैं।

मुसलमान वर्ग का प्रेम

महाराज के सुन्दर तर्कशुद्ध समाधान से मन को बडी शाति मिली। पूजा के पश्चात् मै महाराज के पास आया तथा देखा कि एक मुसलमान तरुण उनसे प्रार्थना कर रहा था - ''महाराज! आप कुडची ग्राम के है। वहॉ की आम जनता आपके दर्शन करना चाहती है।''

महाराज ने कहा - ''तुम लोग मुसलमान हो। हम है, दिगम्बर साधु। हमारे दर्शन से तुम्हारे यहॉ के मुसलमानो का मन दु खी होगा। उनको क्षोभ प्राप्त होगा।''

वह मुसलमान भक्त बोला - ''आप हमारे भी साधु हैं। आपके दर्शन से हम सबको बहुत खुशी होगी। आपके खिलाफ कोई नजर नहीं उठा सकेगा। माफ कीजिए! जो आपके तरफ बुरी निगाह करेगा, उसकी खैरियत न समझिए।'' महाराज ने बताया कि इस प्रकार के अनेक लोग उनके पास आते रहते है। अपने रत्न का मूल्य दूसरा करता है। दुर्भाग्य की बात है कि हम समीप मे रत्नराशि होते हुए भी दरिद्री की तरह दु ख प्राप्त कर रहे है।

विवेकहीनता

इस विवेकहीनता के कारण ही आज धर्म का ह्रास हो रहा है। हमे यह देखकर बडा खेद होता है कि महान् शास्त्रो का अभ्यास करने वाले कोई-कोई शास्त्री लोग भी इन दिगम्बर साधुओ के प्रति ऐसा ही अद्भुत वात्सल्य दिखाते है, जैसा प्रेम धीवर जल मे निवास करने वाली मछली के प्रति व्यक्त करता है। ये शास्त्री महोदय मालूम नहीं,

सर्वार्थसिद्धि आदि शास्त्रो मे स्पष्ट कथित पुलाकादि मुनियो की चर्या को क्यो भुला देते हैं, जिनके मूलगुणो तक की विराधना हो जाती है।

सदाचार शून्य की वदना

ये परिग्रहधारक, आगमविरुद्ध आचरण करने वालों के आगे हजार बार सिर रगडते है, उनका स्तवन करते है, धनिको का पादार्चन करते हैं, किन्तु दिगम्बर जैन मुनि या उच्च श्रावक दिखे, तो ये कल्पित अकल्पित दोषो की उनमे स्थापना करके अपने गुरु-निन्दक प्रेमी चित्त को परितोष प्रदान करते हैं, यह महान् परिताप की बात है।

श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत धारण

दिगम्बर मुद्रा धारण करने मे जो श्रेष्ठ बात काम-भाव को जीतने की है, वह ये सोच ही नहीं पाते। बडे-बडे धर्मों के आराध्य भगवान तक जिस कामिनी के इशारे पर चलायमान होते है, उस स्त्री के प्रति सदा मातृत्व की भावना को सजग रखना ही क्या लोकोत्तर बात नहीं है? अन्य गुणों का असद्भाव होते हुए भी श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के कारण ही ये दिगम्बर मुनि अपना अपूर्व स्थान रखते है। 'चर्ममय-पुत्तलिकासु कोऽनुराग प्रज्ञावता' - चर्म की पुत्तलिकाओं के प्रति कौन बुद्धिमान अनुराग करेगा? यह मूल मन्त्र इनके मन को मूढो के द्वारा प्राप्त पथ से बचाता हुआ, इनकी दृष्टि को इस श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत की ओर सुदृढ बनाए रखता है।

आचार्यश्री की सल्लेखना पर अभिप्राय

आचार्य महाराज की सल्लेखना योग्य समय पर नहीं हुई, ऐसा अनेक धार्मिक श्रावको, साधुओ, साध्वियो का मत है। हमने अनेक गुरुभक्तो से इस विषय मे चर्चा की। जो महाराज के सदा समीप रहा करते थे, उनसे भी पता चलाया, तो उन्होने भी हमारी दृष्टि का समर्थन किया कि समाज के दुर्भाग्य से कुछ लोगों के कारण उन साधुराज ने समय के पूर्व समाधिरूपी अग्निकुण्ड मे प्रवेश किया था। इस सम्बन्ध मे जब आचार्य महाराज के पचास वर्ष के साथी शिष्य नेमिसागर महाराज से चर्चा की तो वे कहने लगे - "लोग पैसे के लिए उनको जबरदस्ती बारामती से कुथलगिरि ले गए।" महाराज ने कुछ लोगो से कहा था - "एक बार हम पहले कुथलगिरि मे चक्कर मे फॅस गए थे। अब फिर से यहाँ चक्कर मे आ गए।"

सामायिक के समय सर्प का आगमन

नेमिसागर महाराज से मैंने पूछा - "आचार्य महाराज पर जैसे अनेक उपसर्ग

आए, सर्पकृत बाधा को उन्होने सहन किया था, उस प्रकार आप पर भी क्या कभी सर्पराज ने कृपा की थी?" उन्होने कहा - "व्यावर की बात है। चातुर्मास के समय मैं सेठ चपालालजी रामस्वरूप के बगीचे मे नासाग्र दृष्टि हो, ध्यान हेतु वैठा ही था, उस समय यह हल्ला हुआ कि मेरे पास एक सर्प आया तथा मेरे आसन के काष्ठ के नीचे घुस गया है। लोगो ने उस सर्प को पकड लिया। मै सामायिक मे लगा रहा। लोगो ने उस सर्प को दूसरी जगह छोड दिया। उस सर्प ने कोई उपद्रव नहीं किया।"

महामंत्र मे अपार श्रद्धा

नेमिसागर महाराज का यह अनुभव बहुत उपयोगी है। उन्होने कहा - "जब हमे अशुभ स्वप्न दिखाई पडता है, तब हम णमोकार का जाप करते है। पच परमेष्ठी की जाप से अशुभ स्वय नष्ट होता है।" मैने अनेक बार पूछा - "महाराज! किस मत्र का जाप चल रहा है।" वे कहते थे - "हम सदा णमोकार मत्र का ही जाप करते है। हमारा मत्र णमोकार ही है। हाँ! जब शरीर थक जाता है, तब हम ॐ ॐ का जाप करते हैं। ॐ के जाप करने मे कष्ट नहीं होता।"

उन्होने हमारे पिताजी के लिए उक्त मत्र का ही जाप बताया था। वे कहते थे - "णमोकार को सदा जपना चाहिए। जब शरीर मे पाठ करने की शक्ति न हो, तब ॐ ॐ जाप करना चाहिए। णमोकार मत्र और ॐ मे कोई अन्तर नहीं है। ॐकार पच परमेष्ठी का वाचक है। "ॐकारो पचपरमेट्ठी।"

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खर-णिप्पण्णो ओकारो पच परमेट्ठी॥

अरहत, अशरीर (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि के आदि अक्षरो से पचपरमेष्ठी रूप ओकार बनता है। (अ+अ+आ+उ+म = ओम) योगदर्शन मे ॐ को ईश्वर का वाचक कहा है। उपनिषदो मे भी ॐ का गुणगान है।

इस युग के कुपथ प्रदर्शक लोग

आज लोग शास्त्र पढते नहीं, मदिर जाते नहीं, सत्सग करते नहीं, किन्तु अपने आपको स्वयसिद्ध महाज्ञानी मान बैठते है। अपनी बुद्धि मे जैसे भी विचार आए, उस प्रकार आगम की व्याख्या करते है। वे ज्ञानी जनो की बात नहीं सुनते। कलोल के धार्मिक श्रीमान सेठ जीवनलालजी बखारया ने बातचीत मे सुनाया था कि बम्बई शासन

के एक जैन मत्री महोदय ने उनके नगर मे आकर जैन गृहस्थो को उपदेश मे कहा था - "अब जैनियो को चमडे का व्यापार करना चाहिए। इसमे बहुत लाभ है।" धनलोलुपी लोग समृद्ध बनने के लिए त्रसहिंसा आदि के धधो मे लग रहे हैं। ऐसे लोग जैन गौरव को गहरी हानि पहुँचा रहे हैं।

देशभूषण महाराज का आश्चर्यप्रद अनुभव

१०८ आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ने एक आश्चर्यप्रद बात अक्टूबर सन् १९५९ के कोल्हापुर चातुर्मास मे सुनाई थी- "हम गिरनार की यात्रा करके सौराष्ट्र मे विहार कर रहे थे। वहाँ गुजरात प्रात के मुख्य काग्रेस कार्यकर्ता एक वयोवृद्ध दिगम्बर जैन बन्धु हमारे पास आए। एक दिन वे आहार-दान के हेतु खडे हो गए। हम अनुकूल विधि मिलने से उनके घर के भीतर चले गए। वहाँ भोजनालय भोजन-गृह तुल्य नहीं लगता था। इससे हम आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे कि क्या बात है? इतने मे उन आहारदान प्रेमी व्यक्ति ने कहा - "महाराज! मन शुद्ध है, वचन शुद्ध है, काय शुद्ध है। जैन-होटल से मँगाया गया भोजन पान शुद्ध है।" होटल का भोजन सामान्य सदाचार पालनेवालों के भी योग्य नहीं होता, ऐसा आहार अनेक दोषयुक्त होने से हम वहाँ से बाहर आ गए।"

आज का जीवन

आज के लोक जीवन पर प्रकाश डालते हुए नेमिसागर महाराज ने बडी मनोरजक तथा बोधप्रद सूक्ति कही थी - "मुझे अपनी बात मालूम नहीं, दूसरे की बात सुनना नहीं - "माझ मला कलत नाही, दुसऱ्या च ऐकत नाही।" इस कथन के प्रकाश मे उन लोगो को अपनी समालोचना की कतरनी नहीं चलाना चाहिये, जिनका आगम के तत्त्व से उचित परिचय न हो। उनके लिए "मौन हि शोभनम्" सूक्ति आश्रय योग्य है।"

भूल बताने वाला उपकारी है

अपनी भूल बताने वाले पर कोप करना उचित बात नहीं है। नेमिसागर महाराज कहते थे - "अपनी भूल अपने आप स्वय को नहीं मालूम पडती। भूल बतानेवाला दूसरा चाहिए। मुख मे लगी हुई कालिमा का स्वय को वोध नहीं होता। दर्पण के द्वारा उस कालिमा का ज्ञान हो जाता है। सज्जन धर्मात्मा बुराई को जानकर छोड देता है। ऐसा करने से ही वह सज्जन कहा जाता है।"

सत विद्वेषियो की प्रवृत्ति

ससार मे सत्पुरुषो के आगमन को भद्र पुरुष मगल पर्व मानते हैं, किन्तु खल

जनो को सतो के दर्शन की तो कथा ही क्या, उनके नाम तक मे वेदना होती है। वडे-वडे पढे-लिखे लोग भी दुर्जन का अभिनय किया करते है। आश्चर्य तो उस समय होता है, जव साधुजन के प्रति द्वेष व्यक्त करने वालो क नाम के पीछे शास्त्री या पडित की पदवी लगी रहती है। मिथ्या-मार्ग पर चलकर सद्धर्म पर लाछन लगाने वाले शिथिलाचारी साधुवेषी के प्रति ऐसो का सहोदर सदृश प्रेम देखा गया है। यथार्थ मे यह कलिकाल का प्रभाव है, जो धर्मरक्षक ही धर्मात्माओ के मार्ग मे सकट उत्पन्न करते है और अपने साथियो को भी कुपथगामी वनाते है। ऐसी परिस्थिति मे अन्य लोगो के द्वेष की क्या कथा कही जाय?

नातेपुते की घटना

उन्होने कहा - "आचार्य शातिसागर महाराज ने मुझे आज्ञा दी कि मै भी एक माह अन्यत्र विहार करूँ। मै वारामती से दहीगॉव की तरफ गया था। नातेपुते के समीप पहुँचने पर कुछ विरोधी व्यक्तियो ने काले झण्डे दिखाए। लोक व्यवहार मे प्रवीण न होने के कारण मै यह नहीं जान सका कि काले झण्डो का क्या मतलव है? जैन मण्डली की तरफ से वाजे वज रहे थे। मैने कहा - वाजे बद करो। वाजो से क्या प्रयोजन है? मैं विरोध प्रदर्शक झण्डेवालो के समुदाय मे चला गया। वहॉ से मै जैन मदिर मे पहुँच गया। कलेक्टर ने आकर हमे बताया कि गॉव मे गडवडी होने की सभावना होने से उनका आगमन हुआ है। हमने कलेक्टर को गृहस्थ धर्म की आरभिक अवस्था से लेकर मुनियों के २८ मूलगुणो आदि का स्वरूप वताया और कहा कि हमे अपने शास्त्र की आज्ञानुसार आहार लेने नगर मे जाना पडता है। शौच के लिए भी हमे नगर के मध्य होकर बाहर जाना पडता है।"

"हमारी बातो को सुनकर कलेक्टर ने हमारे बिहार का समय नियत कर दिया। हमने कलेक्टर से कहा कि आप सुबह ८ बजे से ११ ३० बजे तक और शाम को ३ बजे से ५ बजे तक हमारे विहार का काल नियत करते हैं, किन्तु यदि शौच की बाधा असमय मे आ जाय, तो आप बतावें क्या किया जायगा? वे निरुत्तर हो गए। हम शासकीय आदेश की उपेक्षा करते हुए गॉव मे से गए। वापसी मे हमने देखा कि एक पुलिस की मोटर खडी है। फौजदार के साथ पॉच सिपाही हथकडी लेकर हमारे आने के मार्ग पर खडे है। हम भूमि पर दृष्टि रखते हुए गाडी के पास आए और आगे चले गए। हमे किसी ने नहीं रोका। इस घटना के पश्चात् आचार्य महाराज ने मुझे अपने पास बुला लिया था।"

देहली चातुर्मास की घटना

नेमिसागर महाराज ने देहली चातुर्मास की एक बात पर इस प्रकार प्रकाश डाला था - "देहली में संघ का चातुर्मास हो रहा था। उस समय नगर के प्रमुख जैन वकील ने संघ के नगर में घूमने की सरकारी आज्ञा प्राप्त की थी। उसमें नई दिल्ली, लालकिला, जामा मसजिद, वायसराय भवन आदि कुछ स्थानों पर जाने की रोक थी। जब आचार्य महाराज को यह हाल विदित हुआ, तब उनकी आज्ञानुसार मै, चन्द्रसागर, वीरसागर उन स्थानो पर गए थे, जहाँ गमन के लिए रोक लगा दी गई थी। आचार्य महाराज ने कह दिया था, जहाँ भी विहार में रोक आवे, तुम वहीं ही बैठ जाना। हम सर्व स्थानो पर गए। कोई रोक-टोक नहीं हुई। उन स्थानो पर पहुँचने के उपरान्त फोटो उतारी गई थी, जिससे यह प्रमाणित होता था कि उन स्थानो पर दिगम्बर मुनि का विहार हो चुका है।"

नेमिसागर महाराज ने बम्बई में उन स्थानों पर भी विहार किया है, जहां मुनियो के विहार को लोग असम्भव मानते थे। हाईकोर्ट, समुद्र के किनारे जहाँ जहाजो से माल आता जाता है। ऐसे प्रमुख केन्द्रो पर भी नेमिसागर महाराज गए, इसके सुन्दर चित्र भी खिचे है। इनके द्वारा दिगम्बर जैन मुनिराज के सर्वत्र विहार का अधिकार स्पष्ट सूचित होता है।

आचार्यश्री की भक्ति

उन्होने कहा - "आचार्य महाराज का राजस्थान मे विहार हो रहा था। उस समय ऐसी परिस्थिति आई कि महाराज ने अकेले रहने का विचार किया और सब साधुओं को अपने पास से अलग कर दिया। उस परिस्थिति मे, मै किंकर्तव्य विमूढ हो गया। मैंने नियम कर लिया था कि आचार्य महाराज के दर्शन किए बिना आहार नहीं करूँगा। मेरी पुन प्रार्थना तथा विनय पर उन्होंने मुझे अपने पास रहने की अनुज्ञा दी थी।"

शका

प्राय पढे-लिखे लोग चर्चा करने लगते है कि अमुक मुनि अमुक स्थान पर अधिक समय तक रह गए। इस बात को वे लोग इतना उग्र रूप देते है, मानों मुनिराज ने मूलगुणों की विराधना की हो। एक बार आचार्य महाराज के विरुद्ध ही एक प्रमुख जैन मासिक पत्र मे लेख छपाया गया था कि महाराज एक स्थान पर अधिक समय तक क्यो

रहे? करणानुयोग, द्रव्यानुयोग की चर्चा मे प्रवीण पडितगण चरणानुयोग के मर्म को स्पर्श न करके तिल का ताड बनाया करते है। मैने आचार्य महाराज से उक्त विषय पर चर्चा की।

समाधान

उन्होने कहा था - "एकत्र कारण विशेष से अधिक काल पर्यन्त निवास करनेसे साधु के मूलगुणो की विराधना नहीं होती। आजकल कदाचित् मूलगुण की भी विराधना होती है। इसके सिवाय हमारी अवस्था ८० वर्ष से अधिक हो गई। वृद्ध मुनि जहॉ भी उसको धर्मसाधन की अनुकूलता दिखे, वहॉ अधिक काल पर्यन्त रह सकता है।"

स्पष्टीकरण

नेमिसागर महाराज बम्बई मे थे। उस विशाल नगरी मे वे एक स्थानसे दूसरी जगह तीस चालीस मील की दूरी पर भी आते-जाते रहते थे, फिर भी लोग कहते थे कि वे एक जगह क्यो रहते है? ऐसे शकाकार भाइयो को उपरोक्त गुरु वचनो द्वारा समाधान प्राप्त करना चाहिए।

नेमिसागर महाराज से जब मैने कुछ लोगो के विचारो की चर्चा चलाई, तब वे कहने लगे - "अब हम ७६ वर्ष के हो गए। अब हमारा थोडा जीवन शेष है। शरीर बहुत अशक्त हो गया है। अब कहॉ जाना, कहॉ आना? कोई कहते है दक्षिण चलो, कोई चाहते है उत्तर चलो। हमारे समक्ष दक्षिण-उत्तर का कोई भेद नहीं है।"

मनोगत

हमारा इरादा वोरीवली तथा उसके आसपास अपना समय व्यतीत करने का होता है। वोरीवली विशेष स्थान हो जायगा। वहॉ का काम अपने आप पूरा होगा। हमें करना क्या है? अपनी आत्मा का चितवन करना, नहीं तो "णमो अरिहताण" का जाप करते बैठना। बिना कारण क्यो चक्कर मे पडना? हम बम्बई मे एक जगह पर तो नहीं बैठते।"

आत्मचरित्र

उन्होने कहा - "हमारा मन विषयों की ओर नहीं दौडता। खाने की तरफ भी मन नहीं है। छहो रस छोडकर एक दिन के बाद हमारा आहार लेने का क्रम चलता है।

कोई हमारी निंदा करे, तो बडी बात नहीं है। आचार्य महाराज के समक्ष कोई-कोई जय जयकार करते थे, पीछे से वे ही निन्दा करते थे। जहाँ जाओ वहाँ एकसा ही हाल है। अब पहले सरीखी धर्म भावना नहीं है।''

केशलोच के विषय मे शंका

पर्यूषण पर्व समाप्त होने के पश्चात सन १९५९ की कुवार वदी पचमी को विशाल जन समुदाय के समक्ष नेमिसागर महाराज का केशलोच हुआ। कोई-कोई देवदर्शन न करने वाले, स्वच्छद आचार वाले तथा गुरु की निन्दा मे आनन्द की अनुभूति लेने वाले व्यक्ति कहते फिरते है कि मुनियो को केशलोच एकान्त स्थान म करना चाहिए। यह प्रदर्शन, उनके विचार मे जेनधर्म तथा मुनिचर्या के प्रतिकूल है। भोले भाले लोग भी इन विचारो के चक्कर मे आ जाते हैं।

महान् धर्म प्रभावना

समाधान - ''दिगम्बर जेन मुनि का केशलोच देखकर अनेक भिन्न धर्मियो की आँखे खुल जाती है। वे सोचते हैं कि जैन मुनि का जीवन केवल नग्न रहना ही नहीं है, वरन् इनकी तपस्या भी महान् है। लम्बे केश रखने वाले साधुओं को भी पता चलने लगता है कि केशलोच कितना कठिन कार्य है। शरीर मे मोह तथा आसक्ति धारण करते हुए यह कार्य केसे बन सकता है? आत्मा ओर शरीर म एकत्व भावना वाले जीवो के मन मे सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा अकित होती है। अकिचन जीवन का सोन्दर्य जगत् के समक्ष आता है। जेनधर्म के प्रति शत्रुभाव वाले व्यक्तियो की दुर्भावना बदलती है। जहाँ नाई की मशीन में जरा बाल फँसने से हमे असह्य पीडा होती है, वहाँ दिगम्बर जैन मुनिराज शात भावपूर्वक केशो को हाथ से उखाडते हैं, मानो तिनके ही तोड रहे हो, इन दोनो बातो का विचार करने से सभी लोगो को जैन-मुद्रा की महत्ता समझ मे आती है।

विचारक व्यक्ति सोचें कि यदि नेमिसागर महाराज ने केशलोच एक कमरे के भीतर चुपचाप कर लिया होता, तो बम्बई जेसी महानगरी मे हजारो उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के मध्य जेनधर्म की केसी प्रभावना होती? केशलोच का दृश्य अद्भुत था। आगत व्यक्तियो की आत्मा यह अनुभव करती थी कि इस महान् नगरी में सच्ची दृष्टि से १०८ दिगम्बर जैन मुनि नेमिसागर महाराज अलोकिक महात्मा हैं। अमृतचद्र स्वामी ने पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय मे कहा है -

आत्मा प्रभावनीय रत्नत्रय-तेजसा सततमेव।
दान-तपो-जिनपूजा-विद्यातिशयेश्च जिनधर्म ॥३०॥

-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के तेज द्वारा सदा अपनी आत्मा की प्रभावना करनी चाहिए। दान, तप, जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा विद्या के अतिशय द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करे।[१] धर्मप्रभावक कार्यो मे मिथ्यात्वियो के मानस मे जैनधर्म के प्रति गोरव का भाव जागृत होता है।

गुणभद्राचार्य और धर्म प्रभावना

धर्म की प्रभावना के लिए आचार्य गुणभद्र ने आठ अग वतलाए है। तपश्चरण करना, लोगो को आनन्द प्रदान करना, धर्म का उपदेश देना, एकातवादियो के अहकार को चूर्ण करना, राजा के मन को वश मे करना, शब्द तथा अर्थ से सुन्दर काव्य-रचना करना, सदाचार का पालन करना ओर पराक्रम दिखाना। इन कारणों से जैन शासन का प्रकाशन करना चाहिए -

निमित्तैरष्टधा प्रोक्तैस्तपोभिर्जनरजकै ।
धर्मोपदेशनैरन्यवादिदर्पातिशातनै ॥४१९॥

नृपचेतोहरै श्रव्यै काव्यै शब्दार्थसुदरै ।
सद्भि शौर्येण वा कार्य शासनस्य प्रकाशनम् ॥४२०॥

जैनधर्म की प्रभावना करना जीव के लिए कल्याणकारी है। प्रभावना द्वारा अहकार का पोषण नहीं होता, जिनेन्द्र शासन की महत्ता जनता के मानस मे प्रतिष्ठित होती है। आचार्य कहते हैं -

रुचि प्रवर्तते यस्य जैनशासनभासने।
हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते॥४२२॥

जैन शासन की प्रभावना करने मे जिसकी रुचि है, उसके हाथ मे मुक्ति है। ऐसा सूत्र मे कहा है।

---

१ "One should ever make his own Self radiant by the light of three Jewels and should add to the glory of Jainism by exceptional charity, austerity, worship of Jina the Conqueror and by learning Prabhavana Anga is the 8th pillar of Right Belief

English Translation - Purushartha-sidhyupaya

गुणभद्र स्वामी का यह कथन धार्मिक व्यक्तियों के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है -

कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान्।
सदोद्धरति सोद्योगो यस्य लक्ष्मीधरो नरो भवेत्।।४२६।।

-जो पुरुष राज्य कंटको के समान धर्म के कंटको को निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योग मे लगता है, वह अवश्य ही लक्ष्मी का स्वामी होता है। सच्ची और स्थायी प्रभावना के लिए धन व्यय कर शान शोकत दिखाने और वैभव प्रदर्शन मे पानी की तरह धन बहाना प्राणशून्य प्रभावना है। धार्मिक धनिक वर्ग को विवेकपूर्वक काम करना चाहिए।

आगम के इस प्रकाश मे केशलोच जैनधर्म की प्रभावना का विशिष्ट अंग स्पष्ट होता है। चुपके से एकान्त मे केशलोच का समर्थन करने वाले यह नहीं सोचते कि आज के अद्भुत शिथिलाचार पूर्ण युग मे ऐसा करने से सच्चे-झूठे साधु का भेद ज्ञात नहीं हो पायगा। सबके समक्ष इस कार्य को करने से अनेक लाभ प्रत्यक्ष-अनुभव मे आते हैं। ऐसी स्थिति मे धर्म प्रभावना के लिए इस कार्य के प्रकाशन को अधिक महत्त्व देना आगम, युक्ति तथा अनुभव के अनुकूल बात है। इसे बुरा बताना विवेकहीनता का परिचायक है।

हमारा कर्तव्य

दु ख है कि स्वय निकृष्ट जीवन बिताने वाले तथा पूर्व पाप के उदय से इस जन्म मे भी कष्ट की स्थिति मे पड़े हुए व्यक्ति भी अपने कर्मभार को हल्का करने के बदले उसे और गुरुतर बनाने की कृति मे गुरु बनते है और शिष्यो को भी कुपथ मे लगाते हैं। काल निकृष्ट है, अत द्वेषबुद्धि लोगों के, चाहे वे धनवान हो या शास्त्रज्ञ नाम वाले हो, आदि के चक्कर मे न आकर आगम और सद्भावना के प्रकाश मे धर्म के कार्य करने मे उत्साह रखना चाहिए।

धर्म का सामर्थ्य

धर्म के प्रसाद से एक धर्मात्मा व्यक्ति हजारो नीच व्यक्तियो के पाखण्ड के प्रासाद को पल भर मे मिट्टी मे मिला सकता है। छोटीसी पिपीलिका विशालकाय गजराज को गतप्राण बनाती है।

मार्मिक उपदेश

नेमिसागर महाराज ने केशलोच के उपरान्त भूखी आत्माओ (Hungry Souls) को मधुरवाणी द्वारा बडा मार्मिक उपदेश दिया था। भूखे शरीर को तो मोदक आनन्द देता है, किन्तु भूखी आत्मा को ऐसे ही सद्गुरुजनो की वाणी आनद तथा शक्ति प्रदान करती है। वह वाणी, तपस्वी की रहने से, उसका माधुर्य अनुभव की वस्तु है। लेखनी उसका वर्णन क्या कर सकती है? फिर भी उसका कुछ अश देना मुमुक्षुओ के लिए परितोष तथा परितृप्ति का कारण होगा, यह सोचकर भाषण का साराश लिखना उपयोगी है।

क्या कोई सुखी है

नेमिसागर महाराज ने बबई मे एकत्रित विशाल जन-समुदाय से पूछा - "बताओ! तुम सब मे ऐसा कोई है, जो अपने को सुखी कह सके?" कोई भी हाथ उठा कर यह नहीं कह सका कि मै सुखी हूँ। उस सभा मे अनेक करोडपति भी थे, राज्य के अनेक अधिकारी थे, अनेक वैभव वाले थे। सभी प्रकार के लोग थे, किन्तु कोई भी व्यक्ति महाराज के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका।

अतएव महाराज ने कहा - "जगत् मे सभी जीव दु खी है। धन है, तो स्त्री नहीं। दोनो है तो पुत्र नहीं। तीनो है, तो नीरोगता नहीं। यह भी है, तो मानसिक सतोष नहीं है। तृष्णा की अग्नि सदा जलती है।" महाराज ने कहा - "तुम समझते हो कि महाराज सुखी हैं, सो मै भी सुखी नहीं हूँ। मेरा जन्म-मरण का दुख नहीं छूटा है। जब तक जन्म, मरण की विपत्ति नहीं दूर होती, तब तक कोई सुखी नहीं है। क्रूर काल सिर पर नाच रहा हो, तब कौन जीव सुखी होगा?

कर्तव्य

ऐसी स्थिति मे गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह देवपूजा, पात्र-दान, जप, तप करे। घर मे रहते हुए भी वह अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास कर सकता है। उस अवस्था मे आरभ छूट जाता है, इससे काल धर्मध्यान मे व्यतीत होता है। पापकर्म का आस्रव रुकता है। धीरे-धीरे पुराने कर्जे के समान, पूर्व बाँधा गया कर्म दूर होता है। जब यह जीव चार घातिया कर्मो का नाश करता है, तब वह आकाश मे बिना सहारे के अधर रहता है। समवसरण की बारह सभा मे बैठने वाले जीवो मे प्रेम भाव रहता है। सिह, गाय आदि के साथ खेलते है।" उन्होने सब भव्य जनों को लक्ष्य मे रखकर कहा - "आप सभी जीव

सिद्ध होने की सामर्थ्य रखते हैं। कर्मो मे मोहनीय सबसे बलवान है। मोह रूप स्तभ के गिरते ही सब कर्म सहज ही खिसकने लगते है। अतएव मोहनीय कर्म को जीतने का उद्योग करते रहना चाहिए।

निकृष्ट काल का बहाना

प्रश्न - "कोई-कोई यह कहते है कि पचम काल मे मोक्ष नहीं है तब कष्ट क्यो उठाना चाहिए ?"

इसके समाधान मे महाराज ने कहा - "आत्म-कल्याण क्षण-मात्र में सम्पन्न नहीं होता। अनेक भवो में पुरुषार्थ तथा उद्योग किया जाता है। चक्रवर्ती भरत ने सात भव पूर्व तप किया था। जब वज्रजघ और श्रीमती ने चारण मुनि को आहार दिया था, तब भरत के जीव व्याघ्र ने उस दान की अनुमोदना की थी। उस पात्रदान को धन्य कहा था। उस पात्रदान से उसको बडा आनन्द प्राप्त हुआ था। परिणाम-विशुद्धि के द्वारा वह भोग-भूमि गया था। वहाँ से स्वर्ग पहुँचा, फिर उस जीव ने तप धारण किया था। आदिनाथ भगवान के जीव ने दस भव पूर्व मे महाबल राजा की पर्याय मे, तप द्वारा आत्मकल्याण किया था, इसलिए प्रत्येक जीव को यथाशक्ति तप करके शक्ति सचय करना चाहिए।"

कुदकुद ऋषिराज कहते हैं, "तीर्थकर मुनि बनने पर चारज्ञान को धारण करते हुए तप करते हैं। "वीरस्य घोर तप " वीरप्रभु ने घोर तपस्या की थी अत मूढता का त्यागकर महानज्ञानी को भी तप मे नहीं डरना चाहिए। यह जैनशासन की देशना है कि शक्ति के अनुकूल ही तप करे। तप के द्वारा कर्मो की अधिक निर्जरा होती है, "तपसा निर्जरा च"।

"लोग आर्त-रौद्र भावो मे निरन्तर उलझे रहते हैं। भगवान का नाम लेते हुए उनका मन दुष्ट विकल्पो को नहीं छोडता। 'णमो अरिहताण' यह कहते हुए पूछते है - तू कब आया? 'णमो सिद्धाण' कहते हुए पूछते हैं - क्या रसोई बनी? सकल्प विकल्प को छोडकर मनको जीतना तथा उसे एकाग्र करना अत्यन्त कठिन है।"

नम्रता

आचार्य नेमिसागर महाराज ने भाषण मे कहा -

"प दिवाकरजी ने अपने भाषण मे मेरी प्रशसा की है और कहा है कि मैं बडा तपस्वी हूँ। यथार्थ बात यह है कि मैं सब मुनियो मे जघन्य हूँ। हमारा लास्ट (अन्तिम) नम्बर है। मैं एक क्षुद्र कीट सदृश हूँ। पहले चतुर्थ काल मे मुनियो के उच्च सहनन था।

ममतभद्र, कुदकुद, पूज्यपाद आदि पचमकाल मे मुनि हुए हैं। शास्त्र मे कहा है कि पचम काल के अत तक मुनि-धर्म रहेगा।" गुणवान माधु अपने को छोटा सोचते हुए आगे वढते है। गुणविहीन व्यक्ति सत्यमहाव्रत को भुलाकर म्वय को श्रेष्ठ रूप में दिखाते फिरते है। मोह का सव तमाशा है।

मुनियों का निवाम क्षेत्र

"उच्च सहनन वाले मुनि जगल मे रहते थे। इस काल मे हीन-सहनन होने के कारण मदिर, धर्मशाला तथा शून्यगृह मे रहना कहा है। शून्यागार अर्थात् शून्य-घर में मुनि का निवास कहा गया है। जङ्गल मे औग शून्यागार मे अन्तर है।"

आजकल धर्म की नौका वैसे ही पाप के तूफान से डगमगाती है। इस अवस्था मे महाव्रती का स्वप्न भी कठिन था। भाग्य मे नेमिसागर महाराज सदृश आत्मवली माधुओ का दर्शन होता है। वर्तमान वातावरण मे मकल-सयमी रूप धार्मिक सिहों का मद्‌भाव यथार्थ मे अलौकिक और आम्चर्यप्रद वात है।

आज गृहम्थ लोग अपने समीप मे निवास करनेवाले निर्ग्रन्थो के पास पहुँचने के योग्य समय नहीं निकाल पाते, ऐसे विचित्र भक्तो के होते हुए यदि मुनियो का निवास वन मे हो, तो वडी विकट समस्या उत्पन्न होगी। विना गृहस्थो के सहयोग के साधुओं की गाडी नहीं खिचती। धर्म रूपी गाडी के गृहस्थ और मुनि रूप दो पहिए हैं। सम्पूर्ण परिस्थिति, लोक-श्रद्धा आदि को देखते हुए मुनियो का नगर मे निर्वाह जव कठिन है, तव इस ममय उनके तपोवन के निवास की कल्पना कैसी है, यह विचारक व्यक्ति सोच सक्ते है?

लोक की म्थिति मे अन्तर

पहले की परिस्थिति मे और आज की अवस्था मे वडा अतर है। आज निर्जन प्रदेशो मे अचेतन जिनेन्द्र प्रतिमाओं के प्रति तो अन्य धर्मावलम्वी क्रूर व्यवहार कर उनको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे है। ऐसी म्थिति मे सजीव साधुओ को एकान्त मे पाकर मिथ्यात्वी जीव जो भी अनर्थ करे, वह थोडा है। जान वूझ कर आग मे गिरना और सक्लेश-प्रचुर-सकट को आमत्रण देना अच्छा नहीं है इसलिए काल और परिम्थिति के रहस्य को समझने वाले सत्पुरुषो ने, वीतगग महर्षियो ने आज मुनियो को वनवासी वनने के वदले मे शून्यागार, जिन मदिर आदि मे आश्रय लेने को उचित कहा है। विचारक व्यक्ति सोच सकता है कि उक्त पद्धति का अवलवन लेना वर्तमान विषम परिस्थिति मे एकमात्र मार्ग

है, क्योकि पचम काल के अत तक मुनि धर्म का सद्भाव आगम निरूपण करता है। जब वनवास विपत्ति प्रचुर है, तब वनवास को छोडकर अन्यत्र निवास स्वीकार करना अपरिहार्य है। जो स्वय अकर्मण्यो के आचार्य बने हुए प्राय व्रताचरण-विहीन होते है वे व्यक्ति पवित्र आत्माओ पर भी दोष लगाने मे नहीं चूकते। आगम के दर्पण में अपना मलिन मुख नहीं देखते।

चेतावनी

आचार्य नेमिसागर महाराज ने कहा कि - "धार्मिक समाज को ऐसे लोगो के फदे में नहीं आना चाहिए, जो भगवान को झूठा कहते है और उनकी वाणी को मिथ्या बतलाते हैं। वे समझते हैं कि भगवान से भी बढकर उनका ज्ञान है।"

उनके ये शब्द अत्यन्त मार्मिक और अनमोल है - "यदि भगवान के विरुद्ध मैं बोलता हूँ, तो मैं भी मिथ्यात्वी हूँ। पचमकाल के अंत में वीरागद नाम के मुनि होगे, आगम की इस बात को मानने मे क्या बाधा है? अट्ठाईस मूलगुणो के सद्भाव में क्या आपत्ति है?" महाराज ने मुनि विरोधियो को लक्ष्य मे रखकर पूछा - "बताओ। आज के मुनिजीवन मे क्या बाधा है? उनके २८ मूलगुण नहीं होते या वे हिंसा, झूठ, चोरी आदि का त्याग नहीं करते हैं?

धर्म पालन हेतु उपदेश

"कोई-कोई आक्षेप करते हैं कि मुनि लोग शास्त्रों के उद्धार आदि की चर्चा क्यो करते हैं? मन्दिर-निर्माण की बात क्यो कहते हैं? यदि मुनि धर्मपालन का उपदेश न दें, तो किस बात का उपदेश दे? चोरी आदि पाप तो अपने आप आ जाते हैं, धर्म का ही उपदेश देना आवश्यक कार्य है?"

उद्दिष्ट दोष

मुनियो के आहार में उद्दिष्ट दोष आता है, ऐसी धारणा वालों का निराकरण करते हुए उन्होने कहा - "लोग कहते हैं, आजकल मुनियो को उद्दिष्ट दोष लगता है। मुनि यदि कहें, हमें ऐसा आहार दो, यह आहार दो तो उद्दिष्ट दोष लगे। तुम अपना दोष महाराज के सिर पर क्यों रखते हो?" मुनि आहार के बारे मे मन वचन काय, कृत, कारित अनुमोदना नहीं करते, अत उनको दोषी मानना अनुचित है।

संघ निकालने में क्या दोष है?

मुनियों का सघ निकालने मे दोष आता है, ऐसी विचारधारा वालो का प्रतिवाद

करते हुए उन्होने कहा - "पहले कुन्दकुन्द स्वामी महान् सघ के साथ गिरनार की यात्रा को गए थे। इससे स्पष्ट होता है कि मुनियो के सघ की व्यवस्था धर्मात्मा श्रावक किया करते थे।" पारसपुराण से ज्ञात होता है कि पोदनपुर नरेश अरविद राजा मुनि होकर शिखरजी की वदना को सघ सहित गए थे। सपन्न, समर्थ, भक्त गृहस्थ सघ के योग्य सब व्यवस्था करते थे। सोचने की बात है, इसमे साधु को किस बात का दोष हो गया।

पुराण का कथन

महाराज ने बताया कि - "हरिवश पुराण मे कथन आया कि कृष्ण के जीव ने सात भाइयो सहित दीक्षा ली थी और मदिर जी मे निवास किया था। एक मुनि का मस्तक जल गया था, तब जिनदत्त सेठ ने उनको अपने घर पर लाकर योग्य वैयावृत्य की थी।[१] उन्होने कहा - "आप लोग धोबी मत बनो। अपना-अपना वस्त्र स्वच्छ करो। तुम सब की बाते सुनो, किंतु शास्त्र मे तथा व्यवहार मे जो विरुद्ध नहीं है, वह करो। दूसरो के फदे में मत फँसो। तुम क्यो डूबते हो?"

अनमोल बात

लोग बहुजन समाज द्वारा प्रशसा की लालच से कुमार्ग में लग जाते हैं। ऐसों को महाराज समझाते हैं कि - "एक भी सत्पुरुष ने तुम्हारे कार्य की प्रशसा की तो वह बडी बात है।" सस्कृत की एक सूक्ति भी महाराज के कथन का समर्थन करती हुई कहती है कि जिस व्यक्ति की प्रशसा सच्चरित्र व्यक्ति न करे तथा मूढमति, पापी, चोर, शराबी आदि प्रशसा करते है, वह सच्ची कीर्ति नहीं है - "कीर्ति साऽकीर्तिरूपिणी" - वह कीर्ति यथार्थ मे अकीर्ति स्वरूप है।

पाप विनाशक है

महाराज ने उपदेश के अत मे ये मार्मिक शब्द कहे थे - "जिसका पाप है, उसे

---

१ पुण्यास्रव कथाकोष में बताया है कि मणिमाली नाम के राजा ने मुनि दीक्षा ली। विहार करते हुए वे उज्जयिनी आए। वहाँ श्मशान में उन्होंने मृतकासन लगाकर ध्यान किया। वहाँ एक कापालिक आया। उसने दो मृतकों के कपालों को लाकर मुनि के मस्तक से लगाकर चूल्हा जलाया। उस समय आग की वेदना से मुनिराज का हाथ कपित होकर शिर पर आ गया। यह देख वह कापालिक वहाँ से भाग गया। प्रभात में किसी वनमाली ने मुनिराज को देखकर उनका हाल उस नगर के धर्मात्मा सेठ जिनदत्त को सुनाया। जिनदत्त सेठ श्मशान गए। उन्होंने मुनिराज को किसी वसतिका में लाकर लक्षमूल तेल लगाकर उनके जले शरीर की चिकित्सा की। इससे वे नीरोग हो गये। यह कथा श्रेणिक चरित्र में दी गई है।

ही वह खाता है। श्रावक धर्म पालन करो। त्याग बिना कल्याण नहीं। भावना करो कि कब ससार से हम छूटे?'' यथार्थ मे पाप जलता पहाड है। वह सबको भस्म कर देता है। पाप से बचना चाहिए।

यह कितनी अपूर्व बात है - ''भावना करो कि हम ससार से कब छूटें?'' हम ससार मे फॅसने का सदा उद्योग करते है। यथार्थ मे शाश्वतिक शान्ति का बीजारोपण तब होता है, जब अत करण मे यह भावना उत्पन्न होती है कि अब हम ससार के जाल से निकल कर स्व-अधीन बनें। इस स्वतन्त्रता का मार्ग वीतराग शासन का शरण ग्रहण करना है। प्रभो! प्रत्येक आत्मा मे ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाय कि वह दु खमय ससार से छूटकर आनदधाम निर्वाण का अधिपति बन जाय।

नेमिसागर महाराज का त्यागमय, तपोमय, सौरभमय जीवन बना तथा वह प्रतिक्षण परिशुद्ध होता जा रहा है, इसके कारण आचार्य शातिसागर महाराज थे। उनके उज्ज्वल जीवन ने कितने भव्यो का उपकार नहीं किया है? शिष्य मडली के सुविकसित, समुन्नत तथा समुज्ज्वल जीवन मे आचार्य महाराज का पवित्र प्रभाव सुस्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

देश का भविष्य अंधकारपूर्ण

सन् १९५८ के व्रतो मे १०८ नेमिसागर महाराज के लगभग दस हजार उपवास पूर्ण हुए थे और चौदह सौ बावन गणधर सम्बन्धी उपवास करने की नवीन प्रतिज्ञा उन्होने ली, उस समय मैंने उनसे लोकहित को लक्ष्यकर पूछा - ''महाराज! लगभग दस हजार उपवास करने रूप अनुपम तथा लोकोत्तर तप साधना करने से आपके विशुद्ध हृदय मे भारत देश का भविष्य कैसा नजर आता है? देश अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुष्काल, अन्नाभाव आदि के कष्टो का अनुभव कर रहा है। आपका हृदय इस विपत्ति-मालिका से मुक्ति पाने का क्या उपाय बताता है?''

महाराज नेमिसागर जी ने कहा - ''जब भारत पराधीन था, उस समय की अपेक्षा स्वतन्त्र भारत मे जीववध, मासाहार आदि तामसिक कार्य बडे वेग से बढ रहे हैं। इनका ही दुष्परिणाम अनेक कष्टो का आविर्भाव तथा उनकी वृद्धि है।'' आचार्य शातिसागर महाराज सदा कहा करते थे। - ''मासाहार, जीव हिंसा, अतिलोभ, व्यभिचार वृद्धि, विलासिता के साधनों की प्रचुरता के द्वारा कभी भी आनन्द नहीं मिल सकता है। भारत शासन यदि प्रजा को सुखी देखना चाहता है, तो उसका पाप कार्यों से विमुख होना जरूरी

है। हरिण, बन्दर, मछली आदि जीवो की हत्या के कार्यो मे राजसत्ता द्वारा उद्योग किया जाना सब सकटो का बीज है।

"व्यक्तिगत पापाचारो को पूर्णरूप मे रोकना सहज नहीं है, किन्तु शासन-सत्ता सहज ही अपने पाप-व्यवसायो को रोककर अहिसामूलक प्रवृत्तियों को प्रश्रय प्रदान कर सकती है। यदि भारत के कर्णधारो ने अपना ढङ्ग-रङ्ग न बदला, तो देश उत्तरोत्तर अधिक सकटग्रस्त होग।"

ये बहुमूल्य अनुभव उन मुनिराज ने हमे सुनाए थे। उनके कथन का औचित्य सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है। देश मे जो सात्त्विक तत्त्व जीवित है, उसका सङ्गठित होकर तामसिक विषमयी प्रवृत्ति को दूर करने का उद्योग वाछनीय है। पुण्य प्रवृत्तियों के आधार पर ही आनन्द का भवन खडा किया जा सकता है।

आचार्य पायसागर महाराज

कोल्हापुर से हम १०८ आचार्य पायसागर महाराज के दर्शन करने स्तवनिधि गए। पायसागर महाराज से हमने आचार्य महाराज के विषय मे कुछ विशेष बाते बताने की प्रार्थना की।

आचार्य महाराज की विशेषता

श्री पायसागर महाराज ने कहा - "आचार्य महाराज की मुझ पर अनत कृपा रही। उनके आत्म-प्रेम ने हमारा उद्धार कर दिया। महाराज की विशेषता थी कि वे दूसरे ज्ञानी तथा तपस्वी के योग्य सम्मान का ध्यान रखते थे। एक बार मैं महाराज के दर्शनार्थ दहीगॉव के निकट पहुँचा? मैने भक्ति तथा विनय पूर्वक उनको प्रणाम किया। महाराज ने प्रतिवदना की।" मैने कहा - "महाराज! मैं प्रतिवदना के योग्य नहीं हूँ।"

महाराज बोले - "पायसागर चुप रहो। तुम्हे अयोग्य कौन कहता है? मैं तुम्हारे हृदय को जानता हूँ।" महाराज के अपार प्रेम के कारण मेरा हृदय शल्यरहित हो गया। मेरे गुरु का मुझ पर अपार विश्वास था।"

असली प्रायश्चित्त

"महाराज ने आज्ञा दी कि पायसागर भाषण करो। महाराज पहले भी मुझे भाषण देने का आदेश देते थे। मैंने कहा - "बहुत वर्षों से गुरुदेव का दर्शन नहीं मिला था। मैं उनके चरणों में आत्मशुद्धि के लिए आया हूँ। मै अपने को दोषी मानता हूँ। मैं अज्ञानी हूँ। गुरुदेव से प्रायश्चित्त की प्रार्थना करता हूँ।"

महाराज ने कहा - "पायसागर! चुप रहो। हमें सब मालूम है। तुमको प्रायश्चित्त देने की जरूरत नहीं है। आज का समाज विपरीत है। तू अज्ञानी नहीं है। तुझे अयोग्य कौन कहता है। मै तेरे को कोई प्रायश्चित्त नहीं देता हूँ। प्रायश्चित्त नहीं भूलना यही प्रायश्चित्त है।"

आचार्यश्री की चेतावनी

जब आचार्य महाराज से अतिम विदाई होने लगी, तब महाराज ने कहा - "पायसागर! बहुत होशियारी से चलना। स्व-स्वरूप में जागृत रहना।"

उन्होंने यह भी कहा था - "दुनिया कुछ भी कहती रहे, तू तो योग-निद्रा में लीन रहना।"

मैने पायसागर महाराज को सोनागिरि मे, आचार्य महागज के म्मारक रूप मे समवसरण निर्माण का वहाँ की कमेटी का, निश्चय सुनाया, तो महाराज आनदित होकर वोले - ''धर्म प्रभावना के कार्य मे थोडा भी विरोध मिथ्यात्व है। प्रभावना का जो भी कार्य हो उसे ज्ञातकर हर्ष होना चाहिए।''

सोनागिरि सस्मरण

मैने पूछा - ''सोनागिरिजी मे आपने मुनि दीक्षा ली थी। उस समय आचार्य महाराज ने आपको कौनसी चिरस्मरणीय वात कही थी?'' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा - ''आचार्य महाराज वोले, पायसागर! जव तुम गृहस्थ थे, तव भगवान की मूर्ति तक को नहीं मानते थे। अव हमारे साथ आते-आते तुम्हारे भावो मे उज्ज्वलता आई। तुम्हारे भाव दिगम्वर मुनि वनने के हो गए। इस सोनागिरि सिद्धक्षेत्र मे मुनि दीक्षा धारण करना, अशक्य वात थी, किन्तु तुम्हारा भाग्य है कि निर्वाण दीक्षा के लिए यह निर्वाणक्षेत्र प्राप्त हो गया। इससे तुम्हारा लघु मोक्षगामीपन (शीघ्र निर्वाण होना) प्रतीत होता है।''

सचमुच मे श्रेष्ठ नाटककार, गायक तथा ससार के प्रपच मे फॅसे हुए व्यक्ति का मुनिपद धारण करना आश्चर्यजनक घटना है।

जीवन सुधार का अपूर्व उदाहरण

पायसागर जी के एक निकट-स्नेही सज्जन ने वताया कि पहले ये ही महाशय जिनधर्म की निन्दा किया करते थे। कहा करते थे - ''मुनि पशुतुल्य नग्न विचरते हैं। पत्थर की मूर्ति पर दूध डालना महामूर्खता है। जैन लोग महाअज्ञानी हैं।'' इनका भाव मिथ्या-तापसी बनने का था, किन्तु गोकाक मे आचार्य महाराज के दर्शनमात्र ने इस जीव के जीवन मे चामत्कारिक परिवर्तन करा दिया। जीवन के परिवर्तन का पायसागर महाराज सदृश उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

नाटकीय जीवन की विशेषता

पहले पायसागरजी के कानडी भाषा के रसपूर्ण गीतो का अर्थ न समझते हुए भी कोल्हापुर नरेश शाहू महाराज रात-रात भर जागकर इनके गायन की स्वर लहरी से मस्त हुआ करते थे। यथार्थ मे पायसागरजी उस समय मोह की महिमा का प्रसार कर रहे थे, अब वे जिनधर्म की महिमा के अपूर्व प्रचारक बन गए। अन्धकारमय जीवन आध्यात्मिक ज्योति से जगमगा उठा।

पायसागर जी को दिगम्बर मुनिरूप में देखकर पुरानी अवस्था से मिलान करें, तो सचमुच मे मनुष्य आश्चर्य के सिन्धु में डूबे बिना न रहेगा। पहली अवस्था मे यही व्यक्ति ओवर कोट-पेंट पहने, टोप, टाई अलकृत, सिगरेट मुँह में दबाए हुए, अग्रेजी प्रभावापन्न था। इतना अवश्य है कि पहले भी इनकी रुचि अध्यात्मशास्त्र की ओर थी।

पायसागर महाराज महान् कलाकार थे। वे मुनि बन गए थे, फिर भी उनमें पूर्व कला की अभिव्यक्ति मोक्षमार्ग के अभिनेता के रूप में दृष्टिगोचर होती थी। भाषण देते समय पायसागर महाराज अपनी वाणी, हस्त, मुखादि की चेष्टाओं द्वारा पदार्थ का निरूपण करते थे, उस समय श्रोतागण अत्यन्त शांतभाव पूर्वक उपदेशामृत को पीते जाते थे। वे मन्त्रमुग्ध सरीखे हो जाते थे। कहावत है - "मूल स्वभाव जाई ना - मूल स्वभाव नहीं जाता।" इस नियमानुसार पायसागर जी में कुछ विलक्षणता थी। अब उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ वीतराग रस को उद्दीपनता प्रदान करती थीं।

पायसागरजी संबधी संस्मरण

उनका एक मधुर संस्मरण पूज्य नेमिसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाया था - "बैठे-बैठे पायसागर जी ने मृत व्यक्ति का अपनी मुद्रा द्वारा ऐसा चित्रण किया कि ऐसा लगता था, मानों शरीर में प्राण नहीं है और वह शव ही हो। वे अपूर्व कलाकार थे। अन्त में उन्होंने आत्म-कला में अपूर्वता प्राप्त की।"

मुनि आदिसागर महाराज ने बताया था कि "पायसागर जी की गृहस्थावस्था अद्‌भुत थी। उनका अभिनय अपूर्व होता था। यदि कभी वे रङ्गमञ्च पर आकर इधर से उधर एक बार ही जाते थे, तो प्रेक्षकवर्ग हँसते-हँसते थक जाता था।"

पायसागर महाराज की वाणी में अद्‌भुत जादू था। हजारों अजैन उनके भाषण में सपरिवार पहुँचते थे। सब लोग उनको अपना साधु सदृश समझने लगते थे। वाणी बहुत सरस रहती थी। श्रेष्ठ वक्ता के गुण उनमें थे। उनका भाषण सुनते ही बनता है। आचार्य शातिसागर महाराज इनको ही विशिष्ट अवसरों पर उपदेश के लिए चुना करते थे।

महत्त्वपूर्ण पत्र

पायसागर महाराज के विचारों से अकित पत्र भी महत्त्वपूर्ण हैं। एक पत्र मे लिखा था - "अक्षर और अक विद्या नेत्र युगल सदृश हैं। सुविद्वानो की कलह में दु ख की वृद्धि है। कुविद्वानों के सगठन द्वारा पाप कलहादि की वृद्धि होकर राष्ट्र का अकल्याण

होगा। वर्षाकाल मे पुष्पो पर विपुल जल डालने की अपेक्षा ग्रीष्मकाल में अल्पजल का सिचन करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। आज के निकृष्ट काल मे सद्धर्म का पालन करना बडी बात है। समृद्धि मे दान देने का उतना महत्त्व नहीं है, जितना दारिद्र्य मे थोडा भी दान देना गौरवपूर्ण है। आज भगवान जिनेन्द्र के पवित्र धर्म को बडों-बडों ने छोड दिया है। हम दरिद्री बन गए है। जैन थोडे हैं। सम्यक्त्वी और थोडे हैं, इससे हम दरिद्री हो गए हैं। ऐसी अवस्था मे धर्म के वृक्ष के लिए वात्सल्य पूर्वक एक लोटा जल डालने सदृश थोडी भी सहायता महत्त्वपूर्ण है।''

१०८ पूज्य पायसागर महाराज अशक्त हो गए। उन्होने अपना आचार्य पद १०८ मुनि अनतकीर्ति महाराज को प्रदान किया था।

सर्वतोभद्र जीवन

आचार्य पायसागर जी का जीवन शातिसागर महाराज के सत्सग के प्रसाद से सर्वतोभद्र रूप में परिणत हो गया था। स्तवनिधि में दो वर्ष पूर्व उनके दर्शन का सौभाग्य मिला था। पश्चात् उसी स्तवनिधि मे पहुँचे। उस कुटी में गए, वहाँ से वे एक वर्षपूर्व स्वर्ग यात्रा कर गए। धन्य है जिनेन्द्र भगवान का धर्म और सयम की महिमा। अजन चोर पाप का त्यागकर निरजन परमात्मा बन गया। उसी वीतराग धर्म ने गोकाककर नाटकाचार्य को धर्माचार्य बनाया और उसके द्वारा उनका जीवन निष्कलक रूप बना। आत्मा में दोनों प्रकार की शक्ति है, वह राक्षस भी बन सकता है और देवराज भी हो सकता है।

अध्यात्म रस

रोग से जर्जरित उनका शरीर था। पूर्व के असयमी और अधर्मी जीवन के कारण निसर्ग के नियमों का जो अतिक्रमण हुआ था, उससे प्रकृति ने शरीर को सजा देने मे तनिक भी करुणा नहीं दिखाई।

तत्त्वज्ञाता पायसागर महाराज अपने भावो को बहुत स्थिर रखते थे। अध्यात्म विद्या का रस जीवन मे समा गया था। वे सदा अपने को चैतन्यमयी आत्मा जानते थे, मानते थे, अनुभव करते थे। शरीर के प्रति कोई भी मोह, ममता, आसक्ति उनके पास नहीं थी। ''आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है'' यह तत्त्व उनकी दृष्टि मे सुस्पष्ट रीति से जम चुका था। शरीर सरोग था, किन्तु आत्मा काफी नीरोग थी। इससे वे सदा प्रसन्न, शान्त तथा निराकुल रहते थे। उनका आत्मबल और स्वरूप मे स्थिरता विलक्षण थी। अध्यात्म शास्त्र में शरीर की वेदना दूर करने की अपूर्व क्षमता है। उसका सच्चा अभ्यास, अध्ययन

पायसागर महाराज के सघ का एक मनोहर दर्शन
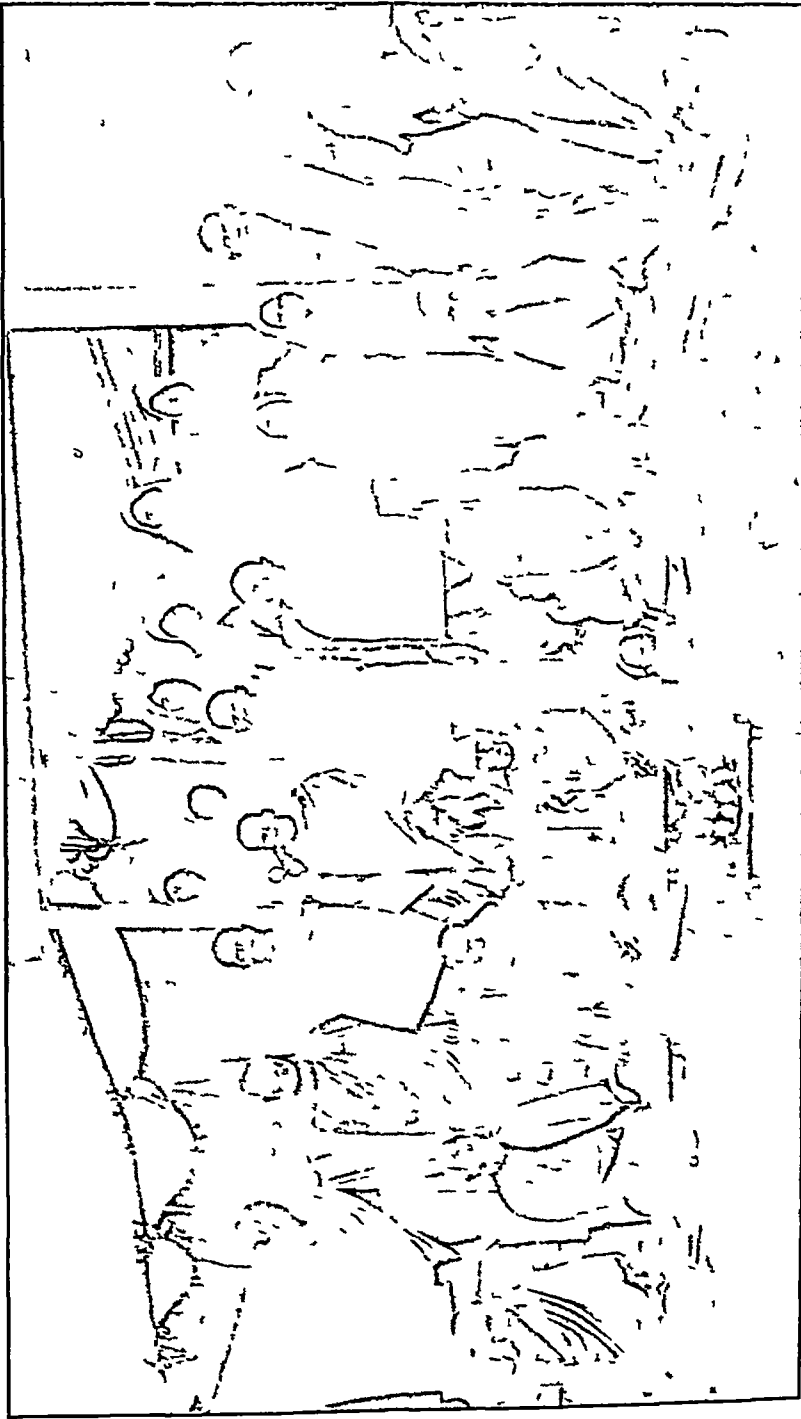
साधको, साधुओ एव साध्वियो सहित सन्तशिरोमणि

तथा मनन चाहिए। उसके रस-पान द्वारा देहासक्ति कम होती है, आत्मोन्मुखता वृद्धिगत होती है। जैसी जैसी आत्म-निमग्नता विकास को प्राप्त होती है, वैसी वैसी शरीरादि की आकुलता कम कष्ट देती है।

विज्ञान का कवच

वह जीव अपने को पुद्गल का स्वामी नहीं सोचता। मै चैतन्य ज्योतिर्मयी हूँ, यह विश्वास विपत्ति की बेला मे आत्मा को कवच का कार्य करता है। इस विज्ञान कवच पर मोह के बाण कुछ भी असर नहीं करते। ऐसा विज्ञान का, सद्विचार का तथा पवित्र श्रद्धा का कवच पायसागरजी ने पहिना था। इससे इन्होने समाधि द्वारा अपने जीवन को कृतार्थ कर लिया। मनुष्य जन्म मे प्राप्तव्य को पा लिया।

प्रभावशाली साधुराज

कोल्हापुर के स्नेही बन्धु श्री गजानन भाऊ मूग मिले। उनकी पायसागर महाराज के प्रति बहुत भक्ति थी। उन्होंने सारपूर्ण अल्प शब्दों मे कहा -

"पायसागर महाराज महान् विद्वान् थे। वे मार्मिक वक्ता, समयज्ञ एव प्रभावशाली साधुराज थे। अन्य धर्मावलम्बी लोग उनकी मधुर, ओजपूर्ण, सयुक्तिक तथा सरस वाणी से शीघ्र प्रभावित होकर भक्त बन जाते थे। जब महाराज सोलापुर गए थे तब दो, तीन उद्दड मुसलमान उनके पास आए। जिस समय उन लोगो ने महाराज की वाणी सुनी, उनका मार्मिक प्रतिपादन सुना, उसी समय वे प्रभावित होकर उनके भक्त हो गए थे।"

चमत्कारपूर्ण जीवन

भाऊसाहब लाटकर पायसागर महाराज के विश्वासपात्र रहे। वे उनके निकट सपर्क मे रहे थे। भाऊ साहब ने कहा - "पायसागर महाराज का जीवन चमत्कारपूर्ण था। मैंने उनको नाटक कम्पनी के सचालक, सूत्रधार तथा महान् अभिनेता के रूप मे देखा था। मैंने ससारवर्धक नाटक मण्डली के सर सचालक के रूप मे नाटकी रामचद्र गोकाककर को देखा और मैंने उनको ही पायसागर महाराज के रूप मे जीवन परिवर्तन के पश्चात् मोक्षमार्ग का प्रणयन करते हुए नाटक-समयसार का अभिनय करते हुए देखा। जिस प्रकार पहले वे हजारों दर्शको के चित्त को मोहित करते थे, उससे भी अधिक जन समुदाय को वे अपनी ओर आकर्षित कर आत्म के मोह को दूरकर आध्यात्मिक प्रकाश प्रदान करते थे। उनका जीवन-चित्र अधकार तथा प्रकाश पूर्ण स्थिति का द्योतक था।"

उन्होंने विषय-विष को अमृत मानकर अमर्यादित रूप में पान किया था, पश्चात्, विरक्तिभाव जागने पर उन्होने उसका त्याग भी लोकोत्तर रूप मे किया था। उनकी विषयो के प्रति गहरी तथा आतरिक विरक्ति थी। विषयो के अंतस्तत्त्व को देखने के कारण वे अपने उपदेशो में जिस सजीव वाणी द्वारा उनकी निस्सारता का चित्रण करते थे, उसका गजब का प्रभाव पडता था। शब्दों के वे जादूगर थे। वाणी में अपार माधुर्य, आकर्षण, विनोद आदि विविध रसो का समावेश होता था। उनके उपदेश में हजारों अजैन जैन ऐसे शान्त, ध्यान-युक्त, एक-चित्त होकर बैठते थे, मानों कोई महामांत्रिक या जादूगर अपनी उच्चतम कला का प्रदर्शन कर रहा है। अपरिमित जनसमुदाय को जब उनकी मंगलमयी धर्मदेशना का लाभ प्राप्त होता था, तब अखण्ड शान्ति उत्पन्न होती थी। पहले वे विभावभाव के उच्च नाटकी थे, अब वे अध्यात्मभाव तथा शांतरस को जगाने वाले नाटकाचार्य हो गए। जैसे वे नाटक मे खेल करते थे, वैसे वे अनुभव के रस में खेल करते थे। इस खेल द्वारा वे कर्मबंधन रूप स्कन्धों को छिन्न-भिन्न करते रहते थे।

आनंदाश्रुओ का प्रवाह

कई बार वे आत्मरस मे मग्न हो भाषण देते जाते थे। नेत्रों से आनद की अश्रुधारा बहती जाती थी। श्रोतालोग भी आनंदरस में डूब जाते थे। उनके भी नेत्रों से वह आनदपूर्ण अश्रुधारा निकल पडती थी। ऐसे अलौकिक वक्ता का जीवन में कहीं भी दर्शन नहीं हुआ।

पापक्षय का उपाय

पूर्व में सेवन किए गए दुर्व्यसनो के फलस्वरूप उनका शरीर रोगो का केन्द्र बन गया था। उस सम्बन्ध मे वे कहा करते थे - "मैंने जो कर्म किए हैं, उनका फल मुझे ही भोगना पडेगा। उसकी कोई औषधि नहीं है। पापक्षय के उपाय हैं - आत्म स्वरूप का चितवन करना, ज्योतिर्मय जिनेन्द्र की भक्ति करना तथा अपने स्वरूप को ध्यान मे रखना। सूर्योदय द्वारा जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है, इसी प्रकार जिनेन्द्र स्मरण तथा आत्मदेव के प्रकाश द्वारा मोह तथा विपत्ति का अंधकार नष्ट होता है। जागृत रहकर सदा आत्म कल्याणार्थ उद्योग करते रहना चाहिए।

महाप्रयाण

पायसागर महाराज कहते थे - "मेरा समय अब अति समीप है। मैं कब चला जाऊंगा, यह तुम लोगो को पता भी नहीं चलेगा।" हुआ भी ऐसा ही। प्रभातकाल में वे

अध्यात्मप्रेमी साधुराज ध्यान करने बैठे। ध्यान मे वे निमग्न थे। करीब ७॥ बजे लोगो ने देखा, तो ज्ञात हुआ कि महान् ज्ञानी, आध्यात्मिक योगीश्वर पायसागर महाराज इस क्षेत्र से चले गए। पक्षी पिंजडा छोडकर उड गया।

सर्वप्रिय गुरुदेव

उनके स्वर्गारोहण के समाचार को सुनकर जैन समाज के सिवाय अजैन लोग भी बहुत दु खी हुए। पायसागर महाराज अद्भुत लोकप्रिय साधु थे। सैकडो ग्रामवासियो ने दु खी होकर आहार छोड दिया था। वे पायसागर अर्थात् क्षीर के सागर थे। दूध बालक, वृद्ध, युवा सब को प्रिय लगता है। वह सब को पोषण प्रदान करता है। ऐसे ही पायसागर महाराज थे। वे सर्व प्रिय थे। सब जीवो की आत्माओ को अपनी अमृतवाणी के द्वारा पोषण प्रदान करते थे। उनका जीवन अद्भुत भोगी तथा श्रेष्ठ योगी की अवस्था का अपूर्व सगम था।

उन्होने शातिसागर महाराज जैसी आत्मा का सुयोग प्राप्त कर अपना जन्म कृतार्थ कर लिया। वे इतने महान् हो गए कि उनका नाम भी हम लोगो को कृतार्थ करेगा। आचार्य पायसागर महाराज आप धन्य थे। आपकी विशुद्ध विरक्ति तथा आध्यात्मिक वृत्ति को शतश प्रणाम हैं।

समाधि की तैयारी

कोल्हापुर मे ब्र माणिकबाई आदि से पायसागर महाराज के विषय मे अनेक महत्त्व की बातें ज्ञात हुईं। वे उनकी समाधि वेला मे स्तवनिधि मे उपस्थित थीं। उनको उन साधुराज की शरण में बहुत समय व्यतीत करने का सौभाग्य भी मिला है।

माणिकबाई ने बताया - "पायसागर महाराज की उच्च समाधि हुई, क्योकि आचार्य शातिसागर महाराज के स्वर्गवास होने के अनन्तर ही उनका ध्यान समाधि की तैयारी की ओर विशेष आकर्षित हो गया था। वे मृत्यु से युद्ध करने को तैयार बैठे थे। उस समय से उनकी विरक्ति के भाव बहुत ही वर्धमान हो रहे थे।"

आचार्यश्री के विषय में उद्गार

आचार्य महाराज मे उनकी अपार भक्ति थी। वे कहते थे - "मेरे गुरु चले गए। मेरे प्रकाशदाता चले गए। मेरी आत्मा की सुध लेने वाले गए। मेरे दोषो का शोधन करके उपगूहनपूर्वक विशुद्ध बनानेवाली वदनीय विभूति चली गई। मेरे धर्मपिता गए। मुझे भी

उनके मार्ग पर जाना है।" उनकी समाधि की स्मृति मे उन्होने गेहूँ का त्याग उसी दिन से कर दिया था। उसके पश्चात् उन्होने जङ्गल मे ही निवास प्रारम्भ कर दिया था। वे नगर मे पॉच दिन से अधिक नही रहते थे। उनकी दृष्टि मे बहुत विशुद्धता उत्पन्न हो गई थी।

आत्म प्रभावना

वे कहते थे - "अब तक मेरी बाहरी प्रभावना खूब हो चुकी। मै इसे देख चुका। इसमे कोई आनन्द नहीं है। मुझे अपनी आत्मा की सच्ची प्रभावना करनी है। आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय की ज्योति के द्वारा होती है। इस कारण मै इस पहाडी पर आया हूँ। मै अब एकान्त चाहता हूँ। अपने आत्म-परिवार के साथ मै अब एकान्त मे रहना चाहता हूँ। शील, सयम, दया, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्यादि मेरी आत्मा के परिवार की विभूतियॉ हैं। मै उनके साथ खेल खेलना चाहता हूँ। इससे मै असली आनन्द का अमृतपान करूँगा। मै कर्मो का बन्धन नहीं करना चाहता। मैं आत्मगुणो की दीवाली मनाना चाहता हूँ तथा कर्मो की होली करना चाहता हूँ। कर्मो के ध्वस करने का मेरा अटल और अचल निश्चय है।"

आलद मे इनका चातुर्मास नगर के भीतर न होकर बाहर हुआ था। पहले उनके आहार के उपरान्त भक्त श्रावक गण बाजे-गाजे आदि के द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए प्रभावना करते थे। अब पायसागर महाराज ने ये सब बाते बन्द करवा दीं। आचार्य महाराज की समाधि के पश्चात् उनकी जीवनदृष्टि मे विलक्षण परिवर्तन हो गया। ऐसा दिखता था कि अब पायसागर महाराज आत्मशुद्धि के पथ पर वेग से बढते जा रहे है। उनका मन वीतरागता के रस मे निरन्तर निमग्न रहता था।

समाधि की तैयारी

समाधि की तैयारी की दृष्टि से उन्होने ज्वारी की अविल लेना शुरू कर दी थी। दूध, दही, शक्कर, नमक आदि सभी रसो का परित्याग कर दिया था। शरीर के रोगी रहने से मात्र घी नहीं छोडा था। यह क्रम पन्द्रह माह पर्यन्त चलता रहा। वे कहते थे - "अब मुझे अपने जीवन के एक-एक क्षण का उपयोग समाधि के लिए उपयोगी सामग्री के सचय मे लगाना है।"

मार्मिक प्रश्न

उनसे तत्त्वचर्चा मे बहुत आनन्द मिलता था। सदा जैनधर्म के अनुपम रहस्यो की चर्चा चला करती थी। एक दिन किसी ने पूछा - "महाराज! कोई व्यक्ति निर्ग्रंथ मुद्रा

को धारण करके उसके गौरव को भूलकर यदि अकार्य करता है, तो उसको आहार देना चाहिए या नही?''

समाधान

उन्होने कहा - आगम का वाक्य है - ''भुक्तिमात्र-प्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनाम्'' - अरे! दो ग्रास भोजन देते समय साधु की क्या परीक्षा करना? उसको आहार देना चाहिए। बेचारा कर्मोदयवश प्रमत्त बनकर विपरीत प्रवृत्ति कर रहा है। उसका न तिरस्कार और न पुरस्कार ही करे। भक्तिपूर्वक ऐसे व्यक्ति की सेवा नहीं करना चाहिए।''

लोकहित

उनका उपदेश बडा सजीव होता था और सुनते ही बनता था। उसे सुनकर मन मे पवित्र भाव, त्याग तथा वैराग्य के परिणाम उत्पन्न होते थे। आत्मा के वैभव की तरफ दृष्टि जाती थी। उन्होने हजारो क्या लाखो लोगों को मास, मदिरा आदि का त्याग कराकर सदाचार का प्रचार किया था। अपने विहार द्वारा अनेक जीवो का उपकार करते हुए वे चातुर्मास के लिए स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र मे आए। वे कहते थे - ''यह स्थान मेरी समाधि के योग्य है।''

वे आत्म-रस मे डूबकर आनदविभोर होकर कभी कनडी भाषा मे, कभी मराठी भाषा मे तत्काल काव्य-रचना करते हुए बडा सुखद तथा मर्मस्पर्शी विवेचन करते थे। उनकी प्रतिभा बडी अलौकिक थी। बडे-बडे राज्याधिकारी तथा अन्य सप्रदाय के प्रमुख व्यक्ति तथा आम जनता और व्यक्ति उनके उपदेश से आत्मप्रकाश तथा अपूर्व प्रेरणा प्राप्त करते थे।

सत्य वाणी

अपनी समाधि के बारे मे वे बहुधा कहते थे - ''मेरी परलोक यात्रा इस प्रकार की समाधि पूर्वक होगी कि किसी को भी पता नहीं चल पायेगा। मैं अपने विषय मे पूर्ण सावधान हूँ।'' उनकी वाणी अक्षरश सत्य हुई। आश्विन वदी अमावस्या सन् १९५८ में वे स्वर्गवासी हो गए।

वे आत्मजागरण तथा उपयोग शुद्धि के लिए आत्मा को प्रबोध प्रदान करने वाले मत्रों तथा आगम के वाक्यो का सदा उच्चारण किया करते थे। अपनी अखण्ड शाति तथा आनद की धारा को आघात न पहुँचे, इसलिए वे समीपवर्ती शिष्य मडली को भी अपने पास आने का निषेध करते थे।

आत्मयोगी की अपूर्व चर्या

उनकी आत्म-निमग्नता, आत्म-विचार तथा तत्त्व-चितन आदि अद्भुत थे। चलते-चलते वे एकदम रुक जाते थे। पैर नहीं बढते थे। वे ध्यान मे खडे रहते थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि वे शौच के लिए रवाना हुए, किन्तु मार्ग मे रुककर खडे हो जाते। लोग देखते थे कि महाराज तो आत्मध्यान मे निमग्न है। किसी निर्धन को यदि चितामणि रत्न मिल जाय, तो वह उस रत्न को बडे प्रेम, आदर तथा ममता से वार-बार देखकर हर्ष प्राप्त करता है, इसी प्रकार आत्मयोगी पायसागर महाराज विश्व में अनुपम आत्मनिधि को प्राप्तकर जहाँ चाहे वहाँ, जब चाहे तब, उसका दर्शन करते थे, आनद प्राप्त करते थे। समाधि द्वारा ब्रह्मदर्शन करने वाले योगियो के समान पायसागर महाराज की अवस्था हो रही थी। विषयो की निस्सारता का उन्होने स्वय आवश्यकता से अधिक अनुभव कर लिया था, इससे उनका हृदय विषय सुखो से पूर्ण विरक्त हो चुका था। वह उस ओर न जाकर सदा अपनी ओर ही उन्मुख रहता था।

उनकी अवस्था देखकर रत्नाकर कवि रचित भरतेश वैभव में वर्णित चक्रवर्ती भरत महाराज का चित्रण सहज ही नेत्रो के समक्ष आ जाता था। भोगी के समक्ष सदा विषयो का नृत्य होता रहता है। आत्मयोगी की अवस्था निराली होती है। वह सदा आत्मनिधि के सौन्दर्य को देखकर हर्ष प्राप्त करता है।

निरन्तर आत्मचिन्तन

आत्मध्यान मे वे इतने निमग्न रहते थे, कि उनको समय का भान नहीं रहता था। कभी-कभी चर्या का समय हो जाने पर भी वे ध्यान मे मस्त बैठे रहते थे। उस समय कुटी की खिडकी से कहना पडता था कि आपकी चर्या का समय हो गया। इस अवस्थावाले पायसागर महाराज के चित्र से क्या पूर्व के व्यसनी नाटकी रामचन्द्र गोकाककर के जीवन की तुलना हो सकती है? जिस प्रकार राहु और चन्द्र मे तुलना असम्भव है, इसी प्रकार उनके पूर्व-जीवन तथा वर्तमान मे रञ्चमात्र भी साम्य नहीं था। तप, स्वाध्याय तथा ध्यान के द्वारा उनका जीवन सुवर्ण के समान मोहक बन गया था।

उनकी विलक्षण अवस्था का वर्णन सुनकर लोगो की समझ मे नहीं आयगा, किन्तु हमने तो प्रत्यक्ष देखा है कि आहार करते-करते कभी-कभी वे चुप खडे रह जाते थे। वे भूल जाते थे कि उनको आहार करना है। उस अवस्था मे कहना पडता था - ''महाराज! आपको आहार लेना है'', तब उनका ध्यान बदलता था।

अद्भुत योगी

वे विलक्षण योगी थे। उनका मन आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं जाता था। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है कि आत्मदर्शी योगी चलते हुए भी नहीं चलता सरीखा है, भोजन करते हुए भोजन नहीं करता है, बोलते हुए भी नहीं बोलता सदृश है। यह दशा प्राप्त करने का अलौकिक सौभाग्य पायसागर महाराज को प्राप्त हुआ था।

आहार के समय कभी-कभी कुछ हल्ला हो जाता था, तो आहार के उपरान्त कहते थे - "तुम मेरे आत्मविचार मे क्यो विघ्न डालते हो? थोडा-सा भोजन देकर मेरी आत्म-निमग्नता को क्यो बाधा देते हो? यदि तुमने शाति नहीं रखी, तो मुझे तुम्हारी रोटी की परवाह नहीं है। मुझे अपनी आत्मा का कल्याण करना है। याद रखो, मे शरीर का दास नहीं हूँ। शरीर मेरा नहीं है। मैं क्यों उसकी दासता करता फिरूँ?"

आदहिदं

उन्होने अपना आचार्यपद अनन्तकीर्ति मुनि महाराज को दे दिया था, अत अब तो वे साधु परमेष्ठी हो गए थे। इससे उन्होंने अपने शिष्यों को कह दिया था कि - "तुम्हें स्वयं अपना कल्याण करना है। अब में तुम्हारे लिए अपना समय नहीं दे सकता। मैं अपनी आत्म-साधना के कार्य को नहीं छोड सकता।" "परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव" - "परोपकार की स्थिति को छोडकर अपनी आत्मा का हित साधन कर, ऐसी आगम की आज्ञा की ओर उनका ध्यान था।"

वे कहते थे -"इतने दिन तो परोपकार किया। उपदेश दिया। धर्म प्रभावना के कार्य किए। अब मुझे दूसरी जगह जाना है। अब अपनी तैयारी करना है। अब तुम्हारी फिकर करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। मैं तुम्हे समझाऊँ भी क्या? तुम भी स्वय समर्थ हो। तुमको भी अपनी आत्मा से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए। बाहरी प्रकाश की जरूरत नहीं है। कमसे कम मुझे तो बाहरी वस्तु की जरूरत नहीं है। मेरे पास तो मेरी निधि है, मेरा भडार है। मेरा जीवनसर्वस्व है। मेग भगवान है।" अब वे सोचते थे, "आदहिद सुट्ठु कादव्व" - आत्महित अच्छा है। मुझे वही करना चाहिए।

क्रांतिमयी जीवनी

जिन व्यक्तियो ने पायसागर महाराज की आत्मविकासयुक्त अवस्था को नहीं देखा है, उनके जीवन में कितनी बडी क्रान्ति हुई है, इसका परिचय नहीं प्राप्त किया है

और जिनके चित्त मे उनका पूर्व जीवन ही टकोत्कीर्णरूपता धारण किए हुए हो, पायसागर जी की महत्ता और गहराई की कल्पना भी नहीं कर सकते।

निर्विकल्प समाधि

मैने सन् १९५७ मे आश्विन मास मे पायसागर महाराज के पास स्तवनि जाकर पूछा था - "महाराज! निर्विकल्प समाधि कैसी होती है?"

उस समय वाणी द्वारा कुछ उत्तर न देकर वे ध्यान मे डूब गए थे। उस समय ऐ लगता था कि पायसागर महाराज यहाँ नहीं है। आत्मा के सागर मे वे निमग्न हो गए है मेरे प्रश्न का उत्तर हो चुका कि विकल्प को त्यागकर अपनी आत्मा मे निमग्न हो जा निर्विकल्प समाधि है।

आक्षेप का निराकरण

एक समय एक व्यक्ति ने अपवित्र भावना से प्रेरित हो उनके पूर्व के व्यसनी औ विलासी जीवन को लक्ष्य करके पूछा - "महाराज! आगम मे ऐसा वर्णन आया है वि मुनि दीक्षा लेने वाले अनेक मुनि नरक जावेगे?"

महाराज ने शकाकार के अभिप्राय को पूर्ण रीति से समझ लिया और कहा - "भाई! मै तो आगम को प्राण मानता हूँ। आगम के प्रकाश मे चर्या करता हूँ। इससे मे विषय मे सकेत करने का क्या अभिप्राय है? यदि मैने पूर्वसचित पापो के सशोधनार्थ परमपूज्य शातिसागर महाराज जैसी विवेकी आत्मा से दीक्षा न ली होती, तो निश्चय से मै नरक गति का पात्र होता। उन परम कल्याणकारी गुरुदेव ने पतन से मेरी रक्षा करके मेरा महान उपकार किया है। उसका वर्णन करने की मेरी ताकत नहीं है।"

"एक बात और है, कि अब अध्यात्म के अभ्यास से मुझे नरकगति, देवगति, तिर्यचगति तथा मनुष्यगति मे कोई भेद नहीं दिखता। मै परमज्योति, परमात्मा रूप चैतन्य ब्रह्म का दर्शन करता हूँ। नर-नारकादि तो विभाव पर्याय हैं। मै चैतन्य ज्योति का स्वामी हूँ। स्वामी क्या, स्वय चैतन्य ज्योति हूँ।"

आत्मदेव की आराधना

वे आत्मदेव को लक्ष्य करके बडे सुन्दर मत्रो की रचना करते हुए मत्र पाठ करते थे। कभी वे यह पाठ पढते थे - "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐ अर्हं मम ज्ञानगुणाय, दर्शनगुणाय, चारित्रगुणाय नमोनम , सुखगुणाय, वीर्यगुणाय, चैतन्यगुणाय, नमोनम । स्वात्म-

समाधिरस्तु। ॐ नमोऽर्हते भगवते मम स्वरूपाचरणसिद्धिरस्तु। ॐह्रीं श्रीं क्लीं ऐ अर्हं मम वीतराग भाव देवाय नमोनम शातिगुणसिद्धिरस्तु, स्वात्मधर्म-भावना-पुष्टिरस्तु। योगसागरोह, ज्ञानसागरोहं, गुणसागरोह वीतराग, निरजन, सिद्ध सर्वकल्याणमस्तु स्वाहा।''

भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था। टकसाल मे निरन्तर ढलकर निकलने वाले सिक्को मे जैसी चमक रहती है, ऐसी ही मधुरता, आकर्षकता उनके मुख से ढलकर निकलने वाले शब्दो मे रहती थी। पहले वे नवरसमयी शृगार-वीर-रौद्र आदि रसपूर्ण उपदेश देते थे। सकल सयमी की स्थिति मे भी उन्होने नवरसमयी कथन जारी रखा था। पहले नव रसमय कथन था, अब नवरस अर्थात् नवीन रस शान्त रस को उद्दीप्त करती वाणी निकलती थी। विशेष विचारों मे निमग्न होने पर जो वाग्धारा कर्णगोचर होती थी, वह अभूतपूर्व लगती थी। आत्मदेव की उन्मुखता द्वारा रसपान करने के पश्चात् वे कहने लगे - ''मैं मोक्षलक्ष्मी अर्थात् निर्वाण रूपी सपत्ति को प्राप्त करना चाहता हूँ, दूसरो की चिंता करते-करते चिता में नहीं जाना चाहता हूँ। अब मुझे अपनी आत्मा की सम्हाल करना है। अब मुझे अवकाश नहीं है।''

जिन-संपर्क-संलग्न

उनकी वीतराग भावना बलवती हो रही थी। वैराग्य परिणति बडे वेग से बढ रही थी। उन्होने समीपवर्ती लोगो को कह दिया - ''मे अब पत्रो द्वारा किसी को कोई समाचार या सदेश नहीं भिजवाऊगा, न किसी के पत्र ही पढूगा। इस पत्र व्यवहार की प्रक्रिया द्वारा जन-सपर्क बढता है, मेरे जिन-सपर्क मे (आत्मदेव के सपर्क मे) विघ्न आता है। चित्त मे चचलता उत्पन्न करने की सामग्री आती है।'' पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है - ''योगी जनसपर्क त्यजेत्-योगी लोक सपर्क का परित्याग करे।''

वे कहते थे - ''अब मैं अपने को धोखे मे नहीं डालना चाहता हूँ। मै आत्म-शोधन के कार्य मे व्यस्त हूँ। मुझे क्षणमात्र भी अवकाश नहीं है कि मै बाहरी जगत् की, लोगो की चिन्ता करता फिरूँ।''

स्वास्थ्य वार्ता

कभी लोग पूछते थे - ''महाराज! आपका शरीर-स्वास्थ्य कैसा है?''

वे कहते थे - ''इस चिररोगी शरीर की कथा क्या पूछते हो? मेरी आत्मा के स्वास्थ्य की, कुशलता की, प्रसन्नता की बात ही नहीं करते हो। मै स्वस्थ हूँ, मैं नीरोग

हूँ, मैं आनद मग्न हूँ। शरीर मरोग है या नीरोग है, मैं चैतन्यमयी आत्मा इस वात की क्यों चिन्ता करता फिरू। शरीर शगीर है, पुद्गल है। वह अपने गुण धर्म के अनुसार परिवर्तन का खेल दिखाता है। मैं शरीर नहीं हूँ तथा शरीर का सेवक नहीं हूँ। मैं अपने स्वरूप का स्वामी हूँ। इम सडे शरीर की क्यो गुलामी करूँ?"

उनकी आत्म-दृष्टि वहुत उज्ज्वल होती जा रही थी। उस स्वरस में निमग्न होकर उन्होने कहा - "मैंने औषधि मात्र का त्याग कर दिया है। अव मेरे अत वाह्य सभी रोगों की दवा आत्मा का ध्यान है। इस दवा से आत्मा पुष्ट होती है और अनादिवद्ध पुण्य-पाप सभी प्रकार के विकारो का क्षय होकर आत्मा चिरतन स्वास्थ्य को प्राप्त करती हुई अविनाशी नीरोगता को प्राप्त करती है।"

उनकी स्वर्ग यात्रा के एक दिन पूर्व उनके शरीर की वडी विचित्र अवस्था थी। उसमें अपार वेदना थी। डॉक्टर देखकर दंग हो गया कि ऐसी भयकर देह स्थिति में इतनी स्थिरता, इतनी शाति है। पायसागर महाराज! आप धन्य हो। आप सच्चे योगी हो। योगियो के हृदयेश्वर हो। इस कलिकाल में ऐसे योगी कहाँ मिलते हैं?

आत्म-सौंदर्य दर्शन

उस अवस्था में वे आत्मा का सौन्दर्य निरूपण कर रहे थे। भाग्यवान् श्रोतागण समझ रहे थे, ऐसा निस्पृह, ऐसा वीतराग योगी होता है। सच्चे जान-वैराग्य-सपन्न योगी की ऐसी अनुभूति होती है। इस प्रकार योगी शरीर को भूलकर आत्मरस का पान करता है।

भाई का सुझाव

उनके भाई चदप्पा जिनप्पा डोंगरे उनके पास आकर कहने लगे -

"अव आपका शरीर सभाषण के योग्य नहीं है। शरीर का ख्याल कर मौन लेना ठीक होगा। अव दूसरो को उपदेश देने की शक्ति आपके शरीर में शेष नहीं है।"

मार्मिक उत्तर

पायसागर महाराज ने कहा - "तुम्हारी वात बडी विचित्र है। तुम सव काम को छोडकर धन सपादन के हेतु कष्ट उठाते हो। ग्राहकी चलने पर तुम अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं करते हो। मेरा भी व्यापार है। भव्य जीवो का कल्याण मेरी ग्राहकी है। उनको मोक्षमार्ग में लगाना मेरी कमाई है, मेरी सपत्ति है, मेरी विभूति है। मेरी दुकान के विषय में

मुझे विपरीत उपदेश क्यो देते हो? मै अपनी मोक्षमार्ग की देशना को बद नहीं कर सकता। ऑखें बद होते-होते भी मै सर्वज्ञ-वीतराग जिनेन्द्र के शासन की चर्चा नहीं छोड़ूगा।

"यह जिनेन्द्र की वाणी का मगलमय रस समस्त सकटो और व्याधियो का विनाश करता है। मगलोत्तम शरणभूत जिनेन्द्र की चर्चा इस जीवन के सिवाय मेरे आगामी जीवन के लिए रसायन रूप है। इससे मेरी आत्मा को पोषण प्राप्त होता है। मै तुम्हारे व्यापार मे बाधा नहीं डालता, तुम मेरे व्यापार मे क्यो विघ्न करते हो? तुमको मेरे बीच मे नहीं पडना चाहिए। मुझे अपना कर्तव्य स्वय साफ-साफ नजर आता है। तुम ससार का व्यापार नहीं छोडते, तो हम अपनी मोक्ष की दुकान का काम कैसे बन्द कर देवे?"

महाराज ने पद्रह दिन पूर्व से अपने शरीर की वैयावृत्य बन्द करा दी थी। वे सचमुच मे आत्म-सामर्थ्य पर असाधारण विश्वास रखते थे। उनकी आत्म-शक्ति अपूर्व थी।

स्वसंघ मे निवास

वे कहते थे - "राग भाव न्यून करने के हेतु क्षपक को दूसरे साधु सघ मे जाना चाहिए। मै भी परसघ मे जाना चाहता हूँ, किन्तु आज समीप मे ऐसा सघ नहीं है। काल निकृष्ट है। क्या करूँ? कोई चिता की बात नहीं है। रच मात्र भी फिकर की बात नहीं है। अब मैं स्व-सघ पर-सघ की चिन्ता मे क्यो पड़ूँ? मेरी आत्मा और मेरे आत्मगुण ये ही मेरे सघ रूप हैं। अब मैं उस आत्म सघ में निवास करूगा। उस सघ का शरण स्वीकार करूगा।"

शिष्यो को उपदेश

शिष्य समुदाय को सबोधित करते हुए वे योगीन्द्र-चूडामणि कहने लगे - "देखो, भूलना मत, मैं अब अपनी सम्हाल मे लग गया हूँ। मेरा तुम्हारा गुरु-शिष्य सबध भी समाप्त सरीखा समझो। समाधि लेने वाला क्षपक अत मे आचार्य पद का भी त्याग करता है। इसी से मैंने आचार्य पद का त्याग कर दिया है। अब तक जो उपदेश दिया है, आदेश दिया है, उसको स्मरण करना, यही हमारा कहना है।"

दो वर्ष पूर्व मैंने जिस स्थान पर उन योगिराज से निर्विकल्प समाधि का स्वरूप पूछा था तथा जहाँ आनद निमग्न हो वाणी के बिना 'वपुषा'-शरीर के द्वारा उस समाधि की स्थिति समझाई थी, उसी जगह विराजमान होकर पायसागर महाराज ने अगहन वदी अमावस्या को सन् १९५७ में पार्थिव शरीर का परित्याग किया। उन्होने अपने गुरुदेव

आचार्य शातिसागर महाराज के चरणो का अनुसरण कर शान्त परिणाम सहित सुन्दर सल्लेखना की।

आत्मालोचन

आचार्य महाराज के प्रति उनकी वडी भक्ति थी। उनका उपकार वे सदा स्मरण करते थे। प्राय उनके मुख से ये शब्द निकलते थे - "मैंने कितने पाप नहीं किए? कौनसा व्यसन सेवन नहीं किया? मै महापापी न जाने कहाँ जाता? मैं तो पापसागर था। रसातल मे ही मेरे लिए स्थान था। मै वहाँ ही समा जाता। मेरे गुरुदेव ने पायसागर वनाकर मेरा उद्धार कर दिया।" ऐसे कहते-कहते उनके नेत्रो मे अश्रु आ जाते थे।

सच्चे गुरु की भक्ति

उनके हृदय मे गुरु की सच्ची भक्ति थी, सच्चे गुरु की भक्ति थी, सच्चे गुरु की सच्ची भक्ति थी। इससे जैसे गुरुदेव 'ॐ सिद्धाय नम ' शब्द कहते-कहते परलोक गए, इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे पुण्य वातावरण मे आत्मचितन करते हुए ये मनस्वी साधु भी स्वर्गवासी हुए। इस प्रकार शातिसागर महाराज ने अनेक जीवो का उद्धार किया। गुरु-शिष्यो के चरण-कमलो को प्रणाम है। उनके चरणप्रसाद से ऐसी समाधि का सौभाग्य प्राप्त हो, ऐसी वीतराग भगवान से प्रार्थना है। यही कामना है। सव को यही कामना करनी भी चाहिए।

मुनि धर्मसागरजी (दक्षिण)

जब आचार्य महाराज का स्वर्गवास हुआ, तब उनके समीप बहुत समय व्यतीत करने वाले मुनिराज १०८ धर्मसागर महाराज का चातुर्मास जबलपुर के निकट बरगी ग्राम मे हो रहा था। २४ नवम्बर सन् १९५५ को मै उनके पास पहुँचा। वे सामायिक मे निमग्न थे। उनकी भव्य, शात तथा तेजोमय ध्यानमुद्रा मन को अतिमधुर तथा आकर्षक लगी। सच्ची सामायिक तो सम्पूर्ण परिग्रह रहित दिगम्बर गुरु के होती है। गृहस्थ के पास साधु की निराकुलता और विशुद्धता स्वप्न मे भी असम्भव है।

सामायिक पूर्ण होने के उपरान्त मैंने महाराज को नमोस्तु कहा। उनका पवित्र आशीर्वाद मिला।

सामायिक का रहस्य : समता भाव

मैंने पूछा - "महाराज! आप सामायिक के समय क्या चिंतवन कर रहे थे?"

उन्होने कहा - "हम कुछ नहीं करते थे। राग और द्वेष छोडकर चुपचाप शान्त बैठे थे। इसके सिवाय सामायिक और है क्या? वास्तव मे राग-द्वेष-मूलक आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान के परित्याग को परमागम मे सामायिक कहा गया है। स्व आचार्य महाराज भी आत्मचिन्तवन के लिए वचनालाप छोडकर शातचित्त हो चुप बैठने के लिए कहते थे।"

स्वर्गवास सूचक स्वप्न

मैने कुथलगिरि की सल्लेखना का सब वृत्तान्त उन्हे सुनाया। उन्होने कहा - "आचार्य महाराज का १८ सितम्बर सन् १९५५ के प्रभात मे स्वर्गवास हुआ था। उसी दिन प्रभात में हमे भी एक स्वप्न आया था। उससे हमने सोचा था कि महाराज अब सम्भवत स्वर्गवासी हो गए होगे।

मैने आग्रहपूर्वक स्वप्न का हाल पूछा। तब उन्होने इस प्रकार कहा - "आचार्य महाराज के स्वर्गारोहण की रात्रि के अन्तिम प्रहर मे हमे एक अरथी (शव) दिखाई दी। वह आकाश से हमारे पास आ रही थी। उसके समीप आने पर हमने कहा 'णमो अरिहताण' पढो। उत्तर मे हमे भी 'णमो अरिहताण' की ध्वनि सुनाई पडी। कुछ काल के पश्चात् वह अरथी अदृश्य हो गई।"

धर्मसागर महाराज ने यह भी वताया था -"स्वर्गवास के आठ दिन पूर्व स्वप्न मे आचार्य महाराज दिखे थे। उनके साथ मे वर्धमानसागर जी तथा पायसागरजी भी थे।"

भट्टारक जिनसेन जी के सत्य स्वप्न

मैने कहा - "भट्टारक जिनसेन स्वामी कोल्हापुर को ७ जुलाई १९५३ को सवेरे पॉच बजे ऐसा स्वप्न आया था कि आचार्य महाराज आगामी तीसरे भव मे तीर्थंकर होगे।"

इस सम्बन्ध मे धर्मसागर महाराज ने कहा - "भट्टारक जिनसेन के स्वप्न सच्चे देखे गए है। स्व आचार्य महाराज ने भी उक्त भट्टारक जी के स्वप्नो की प्रामाणिकता प्रतिपादित की थी।"

धर्मसागर महाराज ने कहा - "आचार्य महाराज मोक्ष जाएँगे। तीर्थंकर होकर जावे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वैसे सभी पुरुषार्थी भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसलिए उद्योग करना सबका कर्तव्य है।"

विश्व को संदेश

मैने कहा - "महाराज! मै उज्जैन अखिल भारतीय सर्व धर्म सम्मेलन मे भाषण देने जा रहा हूँ। सम्मेलन मे आगत जनता के लिए आपका क्या सदेश है? धर्म-सम्मेलन के लिए सच्चा प्रकाश धर्मसागर महाराज सदृश सुलझे हुए तपस्वी ही दे सकते हैं।"

महाराज ने कहा - "सर्व धर्म वालो को हमारा यही कहना है कि सकल्पी हिसा (इरादा पूर्वक जीवघात) का त्याग करो। स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, परस्त्री सेवन और अधिक तृष्णा का त्याग करो। प्रारम्भ मे पञ्चविध पापो का परित्याग आवश्यक है। धर्म की बाते करने से काम नहीं चलेगा। प्रारम्भ मे पापो का परित्याग नहीं किया और धर्म पर सुन्दर चर्चा की तो इसके द्वारा आत्मा का हित नहीं होगा।"

१०८ पूज्य आचार्य धर्मसागर महाराज का लासुर्ना ग्राम मे चातुर्मास हुआ। २९ सितम्बर १९५९ को उनके पवित्र दर्शन का पुन सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे सकलकीर्ति रचित प्रद्युम्नचरित्र की सस्कृत रचना का स्वाध्याय करते हुए जनता को उपदेश दे रहे थे। छोटे से ग्राम मे अगुलियो पर गिनने लायक श्रोताओ की उपस्थिति मे उन जैसे महान् ज्ञानी, तत्त्वज्ञ साधु का उपदेश तपोवन का स्मरण कराता था। वे कई बातो मे अपूर्वता धारण करते हैं।

धनिको से प्रयोजन नही

उन पर धनिको का कोई असर नहीं रहता। वे निस्पृह साधु है। एक बार कहते थे - "हमे धन से या धनवानों से क्या मतलब? साधु को पैसे के चक्कर मे क्यो पड़ना?" उनके चरणो मे बहुत शाति तथा आनद की उपलब्धि हुई।

अभक्ष्य सेवन की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर

आजकल प्राय. शुद्ध आचार तथा विचार में सर्वत्र शिथिलता नजर आती है। एक जैन प्रोफेसर ने कहा था - "लोकोपकारी व्यक्ति यदि अमेरिका के उत्तर भाग में चला जाय, जहाँ का प्रदेश हिम से आच्छादित है तथा जहाँ बर्फ का सदा सद्भाव पाए जाने से वनस्पति नहीं मिल सकती है, वहाँ उस मनुष्य को मास खाकर अपना निर्वाह करने में जैन सिद्धान्त में बाधा नहीं आती।"

मैंने यह चर्चा धर्मसागर महाराज के समक्ष चलाई, तो उन्होंने सूत्र रूप में यह मार्मिक उत्तर दिया था - "अभक्ष्य खाकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है।" यह उत्तर आजकल के धनमत्त अथवा ज्ञान तथा प्रभुता से उन्मत्त लोगों की आँखें खोल देता है, जो जघन्य स्वार्थो की पूर्ति निमित्त पवित्र तथा अपूर्व नरदेह के महत्त्व को भुला देते हैं तथा मास, अण्डा, मदिरापान करते हुए लज्जित भी नहीं होते, प्रत्युत् अपने हीनाचरण को महत्त्व का कर्म बताते हैं।

हमारे पिताश्री को सदेश

धर्मसागर महाराज से हमारे पिताजी के स्वास्थ्य की चर्चा आई। वे उनकी अत्यन्त वृद्ध देहस्थिति को दो वर्ष पूर्व सिवनी मे हमारे यहाँ पधारकर स्वय देख चुके थे, अतएव उन्होंने पिताश्री सिंघई कुँवरसेन जी के लिए यह महत्त्वपूर्ण तथा कल्याणकारी सदेश दिया था - "उनको कहना कि प्राण जाते पर्यन्त 'अरहत' शब्द नहीं छोडना। पूरा णमोकार कहते नहीं बने, तो कोई बात नहीं। अरहत नाम निरन्तर जपना ऐसा महाराज ने कहा है।" गुरु का आशीर्वाद सफल हुआ। २४ मार्च १९६० को पिताजी की अपूर्व तथा उच्च समाधि हो गई।

अरहत नाम महौषध

सचमुच में अरहत भगवान का शरण महिमापूर्ण है। शास्त्रो में लिखा है - "अरहत मगल, अरहत लोगुत्तमा, अरहत शरण पव्वज्जामि-अरहत भगवान मगल रूप हैं, अरहतदेव लोक मे उत्तम हें, अरहत भगवान की शरण को मैं स्वीकार करता हूँ।"

अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण मे एव समाधि के समीप अवस्था वाले जिन-देव के चरण प्रेमी व्यक्तियो के लिए "णमो अरहताण" महा रसायन है, सजीविनी दवा है, सब से बडा इजेक्शन है, सर्वोपरि टानिक है। यह अत्यन्त शुद्ध महौषध है। भगवान कुदकुदाचार्य ने जिनवाणी को महान् औषधि कहा है - "जिण-वयण ओसह-जिनवचन औषध।" ज्ञानार्णव मे लिखा है -

मगलं शरणोत्तम-पद-निकुरब यस्तु सयमी स्मरति।
अविकलमेकाग्रधिया स चापवर्गश्रियं श्रयति॥

(पृ ३७७)

जो मुनि एकाग्रचित्त हो मगल पद, शरण पद, लोकोत्तमपद समुदाय का पूर्ण रूप से स्मरण करता है, वह मोक्षलक्ष्मी को पाता है।

अद्भुत आकर्षण

१०८ धर्मसागर मुनि महाराज ने आचार्यश्री का सस्मरण सुनाते हुए कहा था - "मै उस समय छोटा था। मैने महाराज के 'यरनाल' मे दर्शन किए थे। वे ऐलक थे। यरनाल मे उनकी मुनि दीक्षा हुई थी। बाद मे महाराज का कोन्नूर मे चातुर्मास हुआ था। वह स्थान हमारे गॉव पाच्छापुर से दस मील पर था। रविवार को हमारे स्कूल की छुट्टी रहती थी। उस दिन हम दस मील दौडते हुए महाराज के पास कोन्नूर जाया करते थे। उनके दर्शन के उपरान्त शाम को लौटकर घर वापिस आते थे। महाराज के जीवन का आकर्षण इतना था कि उस समय बीस मील का आना-जाना कष्टप्रद नहीं लगता था।

चारित्र का उपदेश

"वहॉ आचार्य महाराज कानडी भाषा मे चारित्र पर उपदेश देते थे। शास्त्र स्वाध्याय खूब करते थे। शास्त्रानुसार उन्होने अपने जीवन मे बहुत परिवर्तन किया था। शुद्ध चारित्रधारी निर्ग्रन्थ साधु होने के कारण उनका प्रभाव वेग से वर्धमान हो रहा था।

महाराज के जीवन पर प्रकाश

"उस समय नेमण्णा (मुनि नेमिसागर महाराज) गृहस्थ थे। वे शास्त्र पढते थे और आचार्य महाराज उसे स्पष्ट रूप से समझाते थे। उस समय महाराज अष्टमी, चतुर्दशी को मौन व्रत धारण किया करते थे। उस मौन की अवस्था मे उनकी जाघ पर एक सर्प चढा था। महाराज उस समय स्थिर थे।"

धर्मसागर महाराज के विचार

"हमारे मन मे प्रारम्भ से ही व्रतचारी रहने के भाव थे। इस कारण हम शांतिसागर महाराज के समीप बहुत बार जाया करते थे।"

संयम धारण का क्रम

"पहले महाराज ने मुझे शादी होने पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत दिया था। पश्चात् सन १९२८ मे शिखर जी पहुँचकर उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत जीवन भर को दिया। उन्होंने मुझे क्षुल्लक दीक्षा दी। दस वर्ष के पश्चात् में ऐलक बना। दो वर्ष ऐलक रहने के पश्चात महाराज ने मुझे निर्ग्रंथ दीक्षा दी। मेरी दीक्षा के सर्व सस्कार महाराज ने ही अपने हाथ से किए थे।"

महाराज का स्वभाव

उन्होंने यह भी बताया - "दिल्ली में आचार्यश्री का चातुर्मास हुआ था। उस समय से महाराज के समीप १८ वर्ष रहने का सौभाग्य मिला था। उनकी धर्म मे प्रगाढ निष्ठा थी। धर्म विरुद्ध बात को वे सहन नहीं करते थे। वे शिष्यो को कठोर शब्द कभी नहीं कहते थे। मधुर वाणी से वे समझाया करते थे या मौन रहते थे।"

श्रमण बेलगोला की यात्रा

सन् १९२४ में आचार्य महाराज गोकाक से श्रमण बेलगोला गए थे। वे श्रमण बेलगोला मे १५ दिन ठहरे थे। वहाँ के मठ के स्वामी भट्टारक जी के यहाँ आहार की विधि लगती थी, किन्तु आचार्य महाराज वहाँ आहार नहीं लेते थे।

महाराज कहते थे - "मठ का अन्न ठीक नहीं है। वहाँ का धन प्रायश्चित्त, दण्ड आदि द्वारा प्राप्त होता है। निर्माल्य का धन नहीं लेना चाहिए।" पडित (उपाध्याय) के यहाँ भी महाराज आहार को नहीं जाते थे। वे चन्द्रगिरि पर्वत पर एक प्राचीन मन्दिर मे रहते थे। उसके पास ही भद्रबाहु श्रुतकेवली की गुफा है।"

आचार्य महाराज का विशेष प्रभाव

जब मैंने धर्मसागर महाराज से पूछा कि - "आपके अनुभव मे महाराज के जीवन की कोई सातिशय प्रभाव को बताने वाली घटना आई होगी?"

प्राणरक्षा

तब वे कहने लगे - "सघ में एक स्त्री रहती थी। उसका चार वर्ष का बच्चा

पानी मे डूब गया। वह स्त्री बच्चे को खोजने लगी। लोगो ने खोज कर बच्चे का पता चलाया। उस बच्चे का बचना असम्भव था। महाराज के प्रभाव से बालक अच्छा हो गया। मैने देखा कि महाराज के सघ के लोगो को कोई कष्ट नहीं होता था।''

बच्चे का संकट टला

उन्होने एक दूसरी घटना इस प्रकार सुनाई - ''हुम्मच पद्मावती क्षेत्र के समीप एक गाडी उलट पडी। एक वर्ष का बालक गिर पडा। उसके पास मे कुल्हाडी पडी थी। वह बालक बाल-बाल बच गया। उस समय चन्द्रसागरजी ऐलक थे। वीरसागरजी और नेमिसागरजी निर्ग्रन्थ थे।''

चन्द्रसागरजी का कथन

उस यात्रा की एक घटना धर्मसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाई - ''एक विधवा स्त्री को पान खाते देखकर चद्रसागरजी ने कहा - 'विधवा का ताबूल भक्षण शीलव्रत के विरुद्ध है।' आचार्य महाराज धन्य पुरुष हैं। उनके पास नियम लेकर तुम अपने को धन्य करो। इसे सुनते ही उस स्त्री ने आजीवन ताबूल भक्षण का त्याग किया था।''

गोरल चातुर्मास की विशेष घटना

धर्मसागर महाराज जब ऐलक थे, तब उनका नाम यशोधर महाराज था। उस वर्ष गोरल मे महाराज के साथ उनका चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय की घटना का विवरण धर्मसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाया था - ''गोरल मे हमने शास्त्र पढा। पश्चात् उठकर हम ग्रथ की नकल करने लगे। श्लोक पूर्ण करने के शेष तीन अक्षर बचे थे कि हमे मूर्छा आ गई। गरदन लटक पडी। ऐसा लगा कि अब हमारे प्राण जाने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ समय बाद वमन हो गया। वमन के बाद हमने मौन ले लिया था। पश्चात् आचार्य महाराज आए। उन्होने देखा और कहा हमे नहीं मालूम था कि तुम्हारी ऐसी हालत हो गई।'' उस प्रसग पर महाराज ने कहा था - ''तुम्हारा मरण लिखते-लिखते होगा और हमारा मरण चलते-चलते होगा।''

धर्मसागरजी का परिचय

''धर्मसागर महाराज का नाम कलप्पा था। पिताजी का नाम भरमप्पा था और माता का नाम ज्ञानमती था। कुथलगिरि मे जिस पुस्तक से दशभक्ति आदि पाठ आचार्यश्री को ब्र जिनदासजी समडोलीकर पढकर सुनाया करते थे, उसको धर्मसागर महाराज ने

ही लिखा था। उसके अक्षर छापे सरीखे स्वच्छ और नेत्रप्रिय लगते थे। अक्षरो की यह विशेषता थी कि सारे ग्रथ मे आदि से अत तक एक ही प्रकार के अक्षर लिखे थे।''

रत्नत्रयधर्म के उद्योतक नररत्न

आचार्य महाराज ने इस कराल कलिकाल मे जिनमुद्रा को धारण कर तथा उसको निर्दोष रीति से पालते हुए आचार्य कुथुसागरजी, आचार्य वीरसागरजी, मुनि नेमिसागरजी, पायसागरजी, धर्मसागरजी आदि अनेक प्रभावशाली साधुओं का निर्माण किया। आचार्य महाराज की जीवनी परमार्थत स्वय एक अद्भुत रत्नत्रयधर्म की सस्था सदृश थी। उनका जीवन आगम की दृष्टि मे अद्भुत था। उन्होंने रत्नत्रयधर्म के द्वारा अपनी आत्मा को समलकृत किया था। पश्चात् उन्होंने ससार के भव्यों के हृदय मे रत्नत्रय की ज्योति उद्योतित की। इस प्रकार उनके द्वारा स्व और पर प्रभावना का कार्य सपन्न किया गया था।

धर्मसागर महाराज के जीवन का उदाहरण

आचार्य शातिसागर महाराज के शिष्य तथा गुरुचरणो मे बहुत काल व्यतीत करने वाले विशुद्ध-वृत्तिधारी १०८ मुनिराज धर्मसागर महाराज की एक महत्त्वपूर्ण बात धार्मिकजनो को आनदप्रदा होगी, अत उस पर प्रकाश डालना उपयोगी प्रतीत होता है।

''सन् १९५५ के चातुर्मास के पश्चात् धर्मसागर महाराज कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को (वीर सवत् २४८३ मे) सिवनी से प्रस्थान कर मुक्तागिरि गए। वहाँ से कुथलगिरि जाते समय देवलगावराजा नामक बस्ती के आगे जगल मे मध्याह्न के समय धर्मसागर महाराज सामायिक में बैठ गए।

निर्भय

''इमली के वृक्ष की छाया के नीचे ये मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इनको पता नहीं था कि इनके सिर से थोडी ऊँचाई पर वृक्ष की डाली पर दो सर्प इधर-उधर फिरते हुए क्रीडा कर रहे थे। एक ग्रामीण पथिक की दृष्टि इस दृश्य पर पडी। उसने साथ के श्रावको से कहा कि महाराज के सिर के ऊपर डाल पर सर्प युगल है। लोग चिंता मे पड गए। कुछ काल व्यतीत होने पर महाराज की सामायिक पूर्ण हुई।''

लोगो ने कहा - ''महाराज! आप के ऊपर समीप मे दो सर्प फिर रहे हैं। यहाँ से दूसरी जगह बैठ जाइये। महाराज ने लोगो का कहना नहीं सुना और वे दो घटे वहाँ ही

महाराज ने कहा - "इसका क्या रंज करना? वे हमारे शरीर पर तो नहीं थे और यदि शरीर पर भी आ जाते तो हमारी आत्मा का क्या करते?" मैंने सोचा-आखिर ये भी तो महामना शान्तिसागर सदृश श्रेष्ठ तपस्वी के शिष्य हैं।

उक्त घटना का कुछ थोड़े से लोगों को ही पता है। कदाचित् कोई निंदा की बात होती तो आज का छिद्रान्वेषी वर्ग जगत भर में उस बात का प्रचार किए बिना न रहता। गुण का प्रचार कम होता है। बुराई की बात बिजली की तरह फैला करती है। अस्तु उपरोक्त कथन से यह तो ज्ञात हो जाता है कि आज भी अनेक दिगम्बर जैन साधु असाधारण आत्मतेज तथा तपस्या रूपी सम्पत्ति से समलंकृत हैं। धर्मसागर महाराज के प्रभाव के विषय में सहपुरा (जबलपुर) के सिंघई बाबूलाल जी ने सन् १९८८ को यहाँ आकर बताया "महाराज ने हमारे ग्राम में चातुर्मास किया। हमारी भैंस एक बूंद भी दूध नहीं देती थी किन्तु उनके आते ही उससे काफी दूध मिलने लगा जिससे हम सत्पात्रदान रोज करते थे। तीन चार लीटर तक दूध हो जाता था। जिस दिन महाराज ने सहपुरा छोड़ा उसी दिन से उसी भैंस ने एक बूंद भी दूध नहीं दिया।

उपयोगी भाषण

धर्मसागर महाराज का सिवनी में दिया गया उपदेश स्मरण योग्य है। उन्होंने कहा था - इस संसार में सभी जीव सुख पाने के लिए निरन्तर लगे रहते हैं। हर प्रकार का उद्योग करते हैं किन्तु कोई जीव सुखी नहीं दिखता। एक भी ऐसा आदमी नहीं मिलेगा जो यह कहे कि मैं पूर्ण रूप से सुखी हूँ।

"तब फिर जीव को असली सुख कहाँ मिलेगा? भगवान ने कहा है कि वह असली सुख मोक्ष में मिलेगा। दुःखों के अभाव रूप मोक्ष को जैन तथा जैनेतर सभी लोग मानते हैं। जहाँ दुःख का लेश भी न हो वही तो मोक्ष है। बाधारहित सुख को मोक्ष कहते हैं। ऐसे मोक्ष को एक बार प्राप्त करने पर जीव पुनः संसार में नहीं आता। उसे मोक्ष की

प्राप्ति कब होती है? जब जीव सपूर्ण कर्मो का क्षय करता है, तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इस कर्म-क्षय का साधन तपश्चरण है।''[१]

''गृहस्थावस्था मे तपश्चरण से मोक्ष नहीं मिलता है। इसके लिए निर्ग्रन्थपद ग्रहण करना आवश्यक है। निर्ग्रन्थ बनने पर भी जब तक आत्म-स्वरूप की उपलब्धि नहीं होती, तब तक भी मोक्ष नहीं प्राप्त होता है। गृहवास की आकुलता द्वारा अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त करने मे विघ्न आते है। आत्मस्वरूप मे निमग्न होने के लिए तिल-तुष मात्र परिग्रह भी नहीं चाहिये। निर्विकल्प दशा मे वास्तविक अनुभव होता है। परिग्रह त्यागकर त्रिगुप्ति की अवस्था मे निर्विकल्प समाधि होती है। ऐसी समाधि के बिना मोक्ष नहीं मिलता है। आत्मोपलब्धि होने पर चारित्र की उन्नति होते हुए उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र होने पर चौदहवे गुणस्थान मे ८५ प्रकृतियो का क्षय करके जीव मोक्ष प्राप्त करता है।

''मोक्ष मदिर की प्रथम सीढी सम्यक्त्व की प्राप्ति है। वह मुक्ति भवन की नींव सदृश है। उसके बिना वह भवन नहीं टिकता है।

''यह सम्यक्त्व मोक्ष के लिए मूल रूप है। जैसे वृक्ष की मूल उसका आधार रूप होती है। इसलिए सुखार्थी अर्थात् मोक्ष की इच्छा करने वालो को सम्यक्त्व धारण करना चाहिए। वह सम्यक्त्व बाजार मे नहीं मिलता। वह अपने मे ही है। उसका कारण काललब्धि, गुरु का उपदेश आदि बताये गये है। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य तथा करण ये पॉच लब्धियॉ सम्यक्त्व मे कारण पडती हैं। देशना का अर्थ उपदेश है।

''वह सम्यक्त्व चारों गतियो मे होता है। नरक गति में उपदेशदाता कौन है? तीसरे नरक तक तो देव जाकर उपदेश दे सकते है, किन्तु चौथे, पॉचवे आदि नरको मे कौन उपदेश देगा? वहॉ के नारकी अपने विभगावधि ज्ञान द्वारा सोचते है - ''मैने पूर्व मे अत्यन्त पाप किये थे, उनका फल आज भोग रहा हूँ। पहिले सत्पुरुषो ने मुझे बहुत बार समझाया था। उनका कहना यथार्थ था।'' ऐसा विचार करते-करते उन नारकियो के निसर्गज सम्यक्त्व हो जाता है। इस सम्यक्त्व के बिना आत्मा का उद्धार नहीं होता। सम्यक्त्व सहित व्रतधारी को व्रती कहा गया है। सम्यक्त्व बिना व्रत, कुव्रत और ज्ञान कुज्ञान कहे गये हैं।

---

१ समतभद्र स्वामी ने धर्मनाथ भगवान के स्तवन में लिखा है कि - आपने तप रूपी अग्नि द्वारा कर्मरूपी वन को जलाकर अविनाशी सुख पाया है। ''कर्म-कक्षमदहत्तपोग्निभि शर्म शाश्वतमवाप शकर ॥''

सम्यक्त्व की श्रेष्ठता

"सम्यक्त्व सब में श्रेष्ठ है। यह अमुक व्यक्ति में है या नहीं है इस बात का निश्चय करने के साधन इस पंचमकाल में नहीं हैं।[1] आज केवलज्ञानी नहीं है मन पर्ययज्ञानी नहीं है, अवधिज्ञानी भी नहीं है, जिनके द्वारा किसी व्यक्ति के सम्यक्त्वी होने का पक्का निश्चय किया जा सके। इस कालदोष से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है। अत अमुक व्यक्ति सम्यक्त्वी और अमुक के सम्यक्त्व नहीं है, इसका पक्के रूप में निश्चय नहीं किया जा सकता।

"वह सम्यक्त्व अपने योग्य सामग्री मिलने पर उत्पन्न होता है। जब तक योग्य सामग्री की प्राप्ति न हो, तब तक सम्यक्त्व कैसे होगा? तब तक हताश नहीं होना चाहिए। प्रमादी नहीं बनना चाहिए। प्रमादी होने पर धोखा हो जाता है और बुरी अवस्था होती है।"

प्रमादीय उदाहरण

इस विषय का दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए पूज्य मुनि महाराज ने कहा था – "दो महान् प्रमादी व्यक्ति थे। वे आलस्य में सारा समय व्यतीत करते थे। वे कुछ भी काम नहीं करते थे। एक समय वे नगर के बाहर जाकर जामुन के एक वृक्ष के नीचे लेट गए। वहाँ से एक थानेदार घोडे पर सवार होकर निकला। उसे देखकर एक प्रमादी ने जोर से चिल्लाकर उसको पास बुलाया। थानेदार ने उस आदमी को दु खी समझा। इससे वह उसकी सहायता के लिए वहाँ वापिस आया।

उस आलसी ने कहा – इस झाड से गिरी हुई जामुन उठाकर मेरे मुँह में रख दीजिए। यह बात सुनकर उस घुडसवार को बडा गुस्सा आया कि इस मूर्ख ने व्यर्थ में मेरा समय नष्ट किया। इससे उसने अपने कोडों से उस आलसी की खूब पूजा की।

यह देखकर दूसरा साथी बोला – इसे और कोडे लगाइये। यह बहुत बुरा आदमी है। घुडसवार ने इसका कारण पूछा, तब उसने कहा – मैं अभी सो रहा था। एक कुत्ता आया और मेरे मुँह में पेशाब कर गया। उस समय यह दुष्ट चुपचाप देखता रहा और

---

[1] सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।
गोचरं स्वावधिस्वान्तःपर्ययज्ञानयोर्द्वयोः ॥
– वास्तव में सम्यक्त्व सूक्ष्म है। वह केवलज्ञान का विषय है। अवधि[illegible]
पर्ययज्ञान ग्राह्य है। –[illegible]

इसने मेरी जरा भी सहायता नहीं की। सवार ने उसे और बडा प्रमादी सोचकर उसको भी कोडो की मार लगाई।"

इस कथा का साराश यह है कि मनुष्य जन्मरूपी महान रत्न हाथ मे आया है। आलसी बनकर विषय भोग मे अपने काल को नष्ट नहीं करना चाहिए। व्रत, नियम पालने मे प्रमाद नहीं करना चाहिए।

शक्ति अनुसार संयम

महाराज का यह कथन ध्यान देने योग्य है - "आदिनाथ भगवान ने छ माह उपवास किये थे। छ माह अतराय आये थे। तुम्हे कौन कहता है कि तुम भी ऐसे ही उपवास करो? हम यही कहते हैं कि शक्ति के अनुसार व्रताचरण करो। शक्ति के अनुकूल दान दो, तप करो। आलसी बनकर अपना जीवन व्यर्थ बरबाद मत करो। यदि इस दुर्लभ नर पर्याय को खो दिया, तो बताओ कहाँ कल्याण होगा? तेतीस सागर की आयु वाले सर्वार्थसिद्धि के देव मनुष्य पर्याय की ओर दृष्टि लगाए रहते है। कारण, स्वर्ग से कर्मो की निर्जरा पूर्वक मोक्ष नहीं जा सकते। यहाॅ आकर मुनिपद धारण करके कर्मो को काट सकेगे। जिनेन्द्र भगवान के पच-कल्याणको में आकर देवता यही भावना करते है कि हमे नर-पर्याय कब मिलेगी? देखो! देव भी मनुष्य होने की इच्छा करते है और तुम मोक्ष की इच्छा करते हो, किन्तु करते कुछ भी नहीं हो। बिना प्रयास और बिना श्रम के मोक्ष की निधि प्राप्त करना चाहते हो। मनुष्य होकर भी यदि तुम यहाॅ गलती करोगे, तो कहाॅ सुख प्राप्त होगा? यदि ऐसा ढग रहा, तो तुम्हारी आत्मा का कभी भी उद्धार नहीं होगा।"

महाराज ने समझाया - "जब तुमको दूसरे गाॅव जाना होता है, तो मुहूर्त देखकर जाते हो। दो एक रोज में जहाॅ वापिस आना है, वहाॅ तो इतनी सावधानी दिखाते हो, किन्तु जहाॅ शाश्वत सुख है और जहाॅ से पुनरागमन नहीं होता है, उस मोक्ष नगर को जाने के लिए कुछ भी प्रयास या उद्योग नहीं करना चाहते हो। बाजार मे से घडा खरीदते समय उसे बार-बार बजाकर देखते हो। लौकिक तुच्छ वस्तुओ के बारे मे बडी चतुरता बताते हो, किन्तु अपनी आत्मा के हितार्थ तुमको फुरसत नहीं मिलती है। कैसी विचित्र बात है यह!"

सम्यक्त्व के बिना भी व्रत पालो

"तब आपको क्या करना चाहिए? सम्यक्त्व की पूर्ण सामग्री कब मिलती है? इसका निश्चय नहीं है। इसलिए प्रमाद मे समय नष्ट न करके आत्मा मे उज्ज्वलता लाने के हेतु व्रत करना चाहिए।"

मुद्दे बात

कोई-कोई शंका करते हैं - "सम्यक्त्व बिना व्रत क्यों धरें?" उनके समाधानार्थ महाराज ने कहा - "पहले हृदय मे पापों को छोडो। इससे तुम आगे बढोगे। जो तुम्हारे हाथ मे है, उसे तो करते जाओ। जैसे तुम संपत्ति के अनुसार व्यापार करते हो, उसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार व्रत धारण करना चाहिए।"

सूर्यमित्र का उदाहरण

महाराज ने एक शास्त्रकथा बताई - " एक राजमन्त्री था। उसका नाम था सूर्यमित्र। सूर्यमित्र ने मुनिपद धारण कर लिया। उनकी बहिन के पुत्र ने भी मुनिपदवी अङ्गीकार कर ली। वे दोनो विहार करते-करते सोमशर्मा पुरोहित के नगर में पहुँचे। उन मुनियुगल के दर्शन करते समय सोमशर्मा की पुत्री नागश्री के भाव व्रत धारण के हुए।

नागश्री ने मुनि महाराज से व्रत माँगे। मुनिराज ने उस कन्या को पचाणुव्रत दिए और देते समय यह कह दिया कि तेरा पिता तुझ पर व्रत लेने के कारण नाराज होगा, तब तुम हमारे पास आकर व्रत वापिस कर देना। नागश्री घर पहुँची ही थी कि उसके साथ की लडकियो ने उसके पिता सोमशर्मा को उसके व्रतग्रहण की बात बता दी। सोमशर्मा बहुत क्रुद्ध हो गया। नागश्री ने कहा - "पिताजी! मैं इन व्रतो को उन मुनिराजों को वापिस कर आती हूँ।" सोमशर्मा के साथ पुत्री नागश्री वन को जा रही थी। मार्ग मे हिंसा, चोरी, आदि पाप करने वाले व्यक्तियो की दुर्दशा देखी। इससे सोमशर्मा का क्रोध शान्त हुआ और उसे अनुभव हुआ कि नग्न साधुओं ने मेरी बेटी को अच्छे व्रत दिए हैं।

मुनियो के पास पहुँचकर सोमशर्मा ने पूछा - "महाराज! आपने मेरी बेटी को व्रत क्यो दिए?" मुनिराज ने कहा - "यह लडकी तो मेरी है, इससे मैंने इसे व्रत दिए है।" वह ब्राह्मण बोला - "यह आप क्या कह रहे है? नागदेव के प्रसाद से मुझे यह कन्या प्राप्त हुई थी। यह बात राजा तक को ज्ञात है।" विवाद बढा। राजा भी मुनिराज के समीप आया। उस समय मुनिराज राजा के समक्ष नागश्री के जीव को सम्बोधित करते हुए बोले - "हे वायुभूति! जो तुम पढ गए हो, तो सब सुनाओ।" उसे जातिस्मरण हो गया, उसे सब बाते स्पष्ट विदित हो गई। मुनि महाराज ने सबके सन्देह को दूर करते हुए बताया कि "पहले मैंने अग्निभूति-वायुभूति को पढाया था। एक समय की बात है, मेरे हाथ मे राजा की अँगूठी थी। मैं सन्ध्यावन्दन को सरोवर पर गया। वहाँ सन्ध्यावदन के समय यह अँगूठी गिर गई। निमित्तज्ञानी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि अँगूठी अवश्य मिल

जायगी। मुझे बहुत चिन्ता थी कि राजा मुझे राजमन्त्री पद से पृथक् कर देगा। कारण, वह कहेगा - जब तुम एक अँगूठी को नहीं सम्हाल सके, तो बडे भारी राज्य को कहाँ तक सम्हाल सकोगे। मैने जङ्गल की ओर जाते हुए एक दिगम्बर मुनिराज को देखा।

मैंने सोचा इन मुनिराज के पास कुछ न कुछ विद्या अवश्य रहती है, अत मैं मुनिराज के पास गया। मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से मेरी अँगूठी के बारे मे सब बाते स्वय बतला दीं और कहा कि सन्ध्यावन्दन करते समय अँगूठी कमल के भीतर रह गई है। प्रभात मे कमल विकसित होगा, तब तुमको स्वय अँगूठी दिख जायेगी। दूसरे दिन मुनिराज की वाणी के अनुसार अँगूठी प्राप्त हो गई। उस समय मन मे यही आया कि मुनिराज के पास से यह अलौकिक ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लूँ। मैने राजा से कहा - "महाराज! मैं कुछ दिन की छुट्टी चाहता हूँ। विद्या प्राप्त करने के पश्चात् आपके यहाँ आकर काम करूँगा।"

मुनिराज के पास आया। उन्होने कहा - छ माह के भीतर तुमको यह विद्या मिल सकती है, किन्तु तुमको हमारे समान नग्न रूप धारण करना होगा और हमारी तरह रहना होगा। विद्या की लालसा से मैं मुनिराज की ही तरह नग्न-दिगम्बर हो गया। मेरे गुरुदेव ने मुझे प्रथमानुयोग पहले सिखाया। उसके द्वारा मुझे त्रेसठ-शलाका पुरुषों का वर्णन ज्ञात हुआ।" धर्मसागर महाराज ने कहा - "आचार्य ने एकदम द्रव्यानुयोग नहीं पढाया, कारण प्रारभिक अवस्था में प्रथमानुयोग उपकारी होता है। उससे श्रद्धा उत्पन्न होती है। आज लोगो को पहली कक्षा की खबर नहीं है, उनको सातवीं कक्षा का विषय सिखाते हैं। इससे गडबडी होती है।" प्रथमानुयोग के अभ्यास से सूर्यमित्र नाम के नकली मुनि बनने वाले को पुण्य, पाप तथा उनके फल भोगने वाले जीवों की बाते ज्ञात हुईं। "गुरु ने इसके पश्चात् करणानुयोग सिखाया और बाद मे चरणानुयोग बताया। श्रावक यदि चरणानुयोग का ज्ञान न रखे तो किस प्रकार वह मुनियो का रक्षण करेगा? श्रावक और मुनि गाडी के दो चक्को के समान हैं। श्रावक धर्म तथा मुनिधर्म का परस्पर सबध है। सिंह से वन की रक्षा होती है और वन से सिंह का रक्षण होता है।"

"गुरुदेव ने द्रव्यानुयोग का अत में शिक्षण दिया। उस समय मुनिसघ विहार करता हुआ अगदेश के अतर्गत मदारगिरि पहुँच गया था। वासुपूज्य भगवान के निर्वाण स्थल की वदना कर सूर्यमित्र मुनिराज परिक्रमा कर रहे थे। उस स्थान के निमित्त से उनको अवधिज्ञान प्राप्त हो गया। गुरु से जाकर सूर्यमित्र ने अपनी बात बता दी।

तब आचार्य ने कहा - "तुम अकेले विहार करो और अपने घर चले जाओ। तुम्हारा काम पूरा हो गया।" उस समय सूर्यमित्र मुनि ने कहा - "महाराज! वह घर मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो ऊपर है। सिद्धालय मेरा सच्चा घर है।"

नकली तो बनो

धर्मसागर महाराज ने समझाया - "देखो! सूर्यमित्र नकली मुनि बने थे। तुम पहले नकली तो बनो। सोना पत्थर मे मिलेगा। असली सोना अग्नि का ताप सहन करने के बाद बनता है। सौ नबर के असली होकर ही हम साधु बनेगे, ऐसा मत सोचो। नकल भी असली बनने मे कारण हो जाती है। मोह छोडो। विरक्त भाव रखो। सूर्यमित्र ने पहले नकली मोह छोडा, पीछे समझ मे आ गया कि मेरा घर ऊपर है, नीचे नहीं है। अरे! तुम्हारी शक्ति महाव्रत की नहीं है, तो श्रावक का धर्म तो पालो। इस मार्ग से मुनि बन सकोगे, इसमे सदेह नहीं है।"

उन्होने कहा - "अपनी आत्मा को स्वच्छ और उजला करना हो, तो व्रत करो।" जो लोग सोचते है कि सम्यक्त्वी के बध नहीं होता, अत व्रत-तप आदि की जरूरत नहीं है, उनके समाधानार्थ पूज्यश्री बोले - "सम्यक्त्वी के बन्ध नहीं है, यह ठीक बात है, किन्तु कौनसा बध नहीं होता, यह भी समझना चाहिए। अनतानुबधी तथा मिथ्यात्व सबधी बध नहीं होता, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषाये बैठी हैं। उनके निमित्त से बध होता है। इससे तुम्हारा कर्तव्य है कि अपने आचरण को सुधारो। स्वच्छद आचरण नहीं करना चाहिए। सवर पूर्वक निर्जरा के लिए चारित्र कारण है। देशव्रती, महाव्रती के सवरपूर्वक निर्जरा होती है। अविरत सम्यक्त्वी की निर्जरा गजस्नान सदृश है। मथानी की डोरी समान उसके निर्जरा-बध होते रहते हैं। अत चारित्र पालो। कम से कम नकली तो बनो।"

१०८ पूज्य धर्मसागर महाराज ने सन् १९५६ के अन्त मे सिवनी के समीपवर्ती ग्राम मे यह उद्‌बोधक उपदेश दिया था -

"सब जीव सुख चाहते हैं। सच्चा सुख मोक्ष मे है। उस मोक्ष का साक्षात् कारण मुनि-धर्म है। गृहस्थ धर्म मोक्ष का परम्परा कारण है। इस धर्म का उपदेश हम किस प्रकार दे? देखो! तीर्थकर भगवान मुनि बनते है। उन्हे मन पर्ययज्ञान प्राप्त होता है, फिर भी वे मौन धारण करते है। वाणी के द्वारा धर्म का उपदेश नहीं देते। आदिनाथ भगवान ने मुनि दीक्षा लेने के बाद मौन ही धारण किया था, अन्यथा वे साथ में दीक्षा लेने वाले राजाओ को धर्म का उपदेश देकर उनको धर्म मे अवश्य स्थिर करते, किन्तु ऐसा

नियम है कि सर्वज्ञ बनने के पूर्व तीर्थंकर भगवान धर्म की देशना नहीं देते। जब भगवान ने केवली बनने के बाद धर्म का स्वरूप कहा, तब हम उस धर्म का क्या वर्णन कर सकते है? भगवान के पास की चिट्ठी समान जिनागम है। उसमे जो कहा गया है, उसे ही हम कहेगे। वास्तव मे वही उपदेश हम सुनते है। यह हमारा स्वय का उपदेश नहीं है। आचार्य परम्परा से जो बात ज्ञात हुई है, उसे ही कहेगे। शास्त्र मे पहले मुनिधर्म कहा हे। जो उसे धारण करने मे असमर्थ है, इसके लिए गृहस्थ का धर्म कहा है। यदि पहले ही सरलतायुक्त श्रावक का धर्म बताया जाय, तो भव्य जीव उसे ही स्वीकार करेगा।''

महाराज ने कहा - ''आप लोग शास्त्र पढते है। आप जानते हे कि आपको कुछ और जानना बाकी नहीं है। कारण, आप सब समझ चुके है। जो समझ चुका है, वह भला दूसरे का कथन क्यों सुनेगा? सोचो और शक्ति के अनुसार शास्त्र मे कही बात पर आचरण करो। शक्ति न होने पर भी श्रद्धा करो। इससे अजर-अमर स्थान मिलेगा। तुम शक्ति होते हुए भी उसे छिपा रहे हो। आज पचम हुडावसर्पिणी काल हे। चारो ओर आपको आग दिख रही है। ऐसी अवस्था मे सावधानी पूर्वक अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिए। तुम मनुष्य जन्मरूपी रत्न को भूल रहे हो और नकली रत्न को बडी सावधानी से रखते हो। वास्तव मे, इस मनुष्य जन्म को अनमोल रत्न समझकर उसे विषयभोग रूपी समुद्र मे मत फेको।''

महाराज ने श्रावको को जिन भगवान की पूजा के लिए उपदेश देते हुए कहा - ''पूजा के हेतु अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य अपने घर से लाकर पूजा करनी चाहिए। करोडपति तथा लखपति भी गरीब के समान अल्प द्रव्य से पूजा करते हैं, यह ठीक नहीं है। अपने वैभव के अनुसार भगवान की पूजा करो।'' उन्होने कहा - ''आज पूर्व पुण्य के फलस्वरूप सुख भोगते हो। आगामी भव के लिए भी तो कुछ सामग्री साथ मे रखना चाहिए। इसके लिए त्यागवृत्ति को अपनाना उचित है। जैसे दुष्ट घोडे को लगाम के द्वारा वश मे करते हैं, अन्यथा वह गड्ढे मे पटक देता है, उसी प्रकार इन्द्रियो को तपश्चरण के द्वारा वश मे करना चाहिए। इन्द्रियों की आसक्ति मे आत्मा का हित नहीं है। इन्द्रियो की लालसा के कारण मन मे चचलता आती है। चचल चित्तवाला पुरुष कुगति मे दु ख पाता है। तुम पॉचो इन्द्रियो मे आसक्त हो। तुम्हारा क्या हाल होगा? इसे भगवान ही जाने।

''स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा हाथी कष्ट पाता है। रसना के कारण मछली दु ख भोगती है। भौंरा नासिका के कारण प्राण देता है। नेत्र के कारण पतङ्गा आग में जलता है

कर्ण-इन्द्रिय के कारण हरिण की मृत्यु होती है। एक-एक इन्द्रिय की आसक्ति से जव दु ख होता है, तव पॉचो की लोलुपता का क्या फल होगा? यह स्वय सोचो?

देखो! उसी भव से मोक्ष पाने वाले तीर्थकर भगवान ने त्याग भाव को अपनाया था। तुम्हारे तो मोक्ष का ठिकाना ही नहीं है। इसलिए तुम्हे अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करना चाहिए। शक्ति को मत छुपाओ। व्यापार मे तो पूरी शक्ति लगाते हो। नश्वर धन के पीछे लगकर निरन्तर काम कर रहे हो। शाश्वत सुख के लिए क्यो उद्योग नहीं करते?"

उन्होने यह कहा - "दूसरे गॉव जाते समय मुहूर्त देखते हो, प्रस्थान निकालते हो, यद्यपि कुछ काल के पश्चात् वापिस लौटकर आते हो, किन्तु जहॉ फिर लौटकर नहीं आना है, वहॉ से प्रस्थान करने के लिए उचित तैयारी क्यो नहीं करते? त्यागभाव रूप धन ही साथ मे ले जा सकोगे। सोचो कि हम मनुष्य का या पशु का काम कर रहे हैं? अभक्ष्य सेवन, मिथ्यात्वपालन तथा अन्याय करनेवाले नर और पशु मे अन्तर नहीं है। चतुर्गति ससार मे भ्रमण का कारण मिथ्यात्व है। एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय असज्ञी तक मिथ्यात्व नहीं छूटता है। तुम सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य हो। पहिले व्यवहार सम्यक्त्व को धारण करना चाहिये। उसके विना निश्चय नहीं होगा। निश्चय मे व्यवहार नहीं रहेगा। आत्मा मे निमग्न निश्चय श्रुतकेवली अन्तर्मुहूर्त रहते है, पश्चात् नीचे उतर आते हैं, तब व्यवहार श्रुतकेवली होते है।"

स्याद्वाद दृष्टि

महाराज ने कहा था - "देव-गुरु-शास्त्र पर अटल श्रद्धान चाहिए। यह व्यवहार सम्यक्त्व निश्चय का कारण है। ऊपर जाने के लिए नसैनी सदृश व्यवहार है। झाड मे फूल होते हैं। फल की इच्छा है, तो फूल का रक्षण करो।' पश्चात् फूल स्वयमेव झड जाता है। उस समय निश्चयरूप फल प्राप्त होता है। अत व्यवहार को नहीं छोडना चाहिये।

तीर्थकर भगवान् के समवसरण मे भी व्यवहार पाया जाता है। वहॉ बारह सभा मे जीव अपने अपने स्थान पर अलग अलग बैठते हैं। देव, देवी, मुनि, आर्यिका, तिर्यच का अलग अलग स्थान है। जब तीर्थकर के समक्ष भी व्यवहार है, तब तुम उसे क्यो छोडते हो? इसे न पालोगे, तो परमार्थ को तथा स्वहित को क्या साधोगे? आत्मा का कल्याण करना है, तो जिनेन्द्र भगवान् का कहा गया मार्ग पालना चाहिये।"

समाधि की तैयारी

उन्होने यह भी कहा - "श्रावक अवस्था मे नहीं मरना। पिच्छी पकड कर जाना। एक वार समाधिमरण साधने पर सात-आठ भव मे मोक्ष मिलता है। आँख मींचने से समाधि नहीं होती। आरम्भ से प्रयत्न करोगे, तो समाधि सधेगी। एकदम अत मे क्या होगा? तुम वच्चों को तराजू से तोलना आदि सिखाते हो। बिना सिखाए वह क्या करेगा? राजा के पुत्र को यदि शिक्षा नहीं दी जायगी, तो वह युद्ध मे जाकर रोयेगा। आचार्य शातिसागर महाराज ने ४० वर्ष से समाधि की तैयारी शुरू की थी और भले प्रकार उसे साधा। इसीलिए प्रत्येक विचारवान को आत्मा के हितार्थ उद्योग करना चाहिए।"

मार्गदर्शन

महाराज ने कहा - "बुद्धिपूर्वक त्याग करने से फल मिलता है। मदिर जाते हो, वापिस घर आने तक सर्व प्रकार का आहार छोड दिया तथा कदाचित् मरण हो गया, तो त्याग में मरण होने से सद्गति मिलेगी। रात्रि भर आहार का त्याग हो और साप के काटने से स्थिरता पूर्वक मरे, तो समाधि होगी? अरे! शरीर तो नाशवान है। इस पर मोहकर तुम इसका लालन-पालन कर रहे हो। यह तुम्हारे साथ जानेवाला नहीं है। इस नाशवान शरीर के पीछे क्यों लग रहे हो?" गुणभद्र स्वामी ने कहा है - "इस शरीर में आसक्ति करने वाले का उद्धार नहीं होगा। त्याग बुद्धि रखो।"

तोते का दृष्टांत

एक मिथ्या साधु था। उसने एक बुद्धिमान तोता पाला था। तोते को पिजरे में रखकर साधु ने राम-राम, विठ्ठल-विठ्ठल सिखलाया था। वहाँ एक जैन ब्रह्मचारी आया। उस साधु ने सोचा कि यह ब्रह्मचारी विद्वान् है, इसलिए उसने कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा - "त्याग के द्वारा बधन से छूट जाओगे।" तोते के कान में ये शब्द पहुँचे। उसने विचारकर एक घन्टे के लिए आहार पानी छोड दिया। वह मुर्दे के समान हो गया। साधु ने तोते को मृत सदृश समझा, इसलिए पिजरे का द्वार खोल उसे वृक्ष के नीचे छोड दिया। तोता चुपचाप पडा रहा। एक घण्टा पूरा होने पर वह तोता उडकर झाड पर चढ गया। वह बधन से छूट गया। एक घण्टे के त्याग के द्वारा पराधीनता दूर हो गई। उसने साधु से कहा - "तुम असली त्याग को पकड लोगे तो तुम्हारा भी बधन दूर हो जावेगा। बधन से छूटकर सच्चा आनद पाने के लिए त्याग भाव को अपनाना चाहिए।"

उग्र तपस्वी नमिसागर महाराज

जैनधर्म की प्रभावनार्थ किये गये जापान आदि देशो के लम्बे प्रवास से लौटकर आत्मनिर्मलता के हेतु मैं ता १६ अक्टूबर १९५६ को कलकत्ता से चलकर सध्या को पारसनाथ (ईसरी) आया। ता १८ को शिखरजी की वदना की। अपूर्व शाति मिली। वह चतुर्दशी का पुण्य दिवस था। अन्त करण को बहुत आह्लाद मिला। मैंने उपवास किया। रचमात्र भी कष्ट नहीं मालूम पडा। स्मरण आया स्व गुरुदेव आचार्य शातिसागर महाराज का पुनीत वाक्य - "निर्वाण स्थान में उपवास आदि की कठिनता नहीं प्रतीत होती। इसी से मैं समाधि के लिये निर्वाण भूमि मे आया हूँ।"

ईसरी मे समाधिमरण का सकल्प कर अपने रत्नत्रय की रक्षा मे उद्यत १०८ दिगम्बर महातपस्वी मुनिराज नमिसागरजी महाराज के दर्शन हुए थे। ता १७ अक्टूबर को उन साधुराज से कुछ चर्चा हुई थी। आज उनका स्वर्गवास हो गया, फिर भी धर्मप्रेमियो के लिए उनका वर्णन हितकारी होगा, ऐसा विश्वास है।

प्रश्न - "महाराज! आपका शरीर अस्थिपजर मात्र रह गया है। आपने सल्लेखना की तैयारी की है। कुछ मानसिक अशाति या आकुलता तो नहीं है?"

मैं सुखी हूँ

महाराज - "मैं आचार्य शातिसागरजी महाराज का शिष्य हूँ। उनके ही समान समाधि का उद्योग कर रहा हूँ। मेरे पास पूर्ण शाति है। शरीर की पीडा के बारे में क्या पूछते हो? शरीर की पीडा शरीर के पास है, मेरे पास नहीं। मेरा आनन्द मेरे पास है। मुझे कोई भय नहीं है। मैं सुखी हूँ।"

प्रश्न - "महाराज! इस सल्लेखना व्रत के कारण आपका आनन्द पहले के आत्मीक आनन्द से कुछ न्यून हुआ है या नहीं?"

महाराज - "इस कारण मेरा आनद बहुत बढ रहा है। मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति का मार्ग मिला है। मुक्तिरमणी की उपलब्धि आगे होगी, इस कल्पना से महान् आनन्द आ रहा है।"

प्रश्न - "महाराज! निद्रा आदि का क्या हाल है?"

महाराज - "नींद तो प्राय चली गई है, फिर भी कोई कष्ट नहीं है। मैं तो

आनन्द मे हूँ। आप देख ही रहे हो। भगतजी (ब्र प्यारेलालजी) जब मुझसे वहुधा पूछा करते है, आप सावधान तो है, तो मैं तुरन्त कहता हूँ 'हाँ'।"

स्वप्न मे मार्गदर्शन

पूज्य नमिसागरजी महाराज ने कहा था - "स्व आचार्य शातिसागरजी महाराज ने स्वप्न मे दर्शन दिया था और कहा था, धर्म मे स्थिर रहना।" उन्होने यह भी कहा था - "इधर देहली तरफ अव मत रहना। यहाँ से जाओ, तुम्हारे दिन नजदीक आ गये हैं। अत सावधानी रखो।"

मेरे पुन प्रश्न करने पर उन साधुराज ने कहा था - "आचार्य महाराज चार वार स्वप्न मे आ चुके हैं। उनकी समाधि होने पर मैंने चौवीस भगवान से प्रार्थना की थी- "प्रभो, मुझे भी ऐसी समाधि का लाभ हो।" आज वही अवसर आ गया है। मैं आचार्य महाराज का शिष्य हूँ। कभी भी अपने रत्नत्रय धर्म से विचलित नहीं होऊँगा।" उन्होंने यह भी कहा - "मेरा तीन वर्ष से वर्णीजी के पास यहाँ आने का मन था। ईसरी आने में उनका आकर्षण भी विशिष्ट कारण रहा है।"

प्रश्न - "महाराज! आप इस सस्तर पर रहकर दिन-रात क्या कर रहे हैं?"

उत्तर - "हम कर्मो का निर्दयता पूर्वक नाश कर रहे हैं।"

प्रश्न - "उन कर्मो पर आपकी दयादृष्टि क्यो नहीं होती?"

महाराज ने कहा - "जिन कर्मो ने हमारी सिद्ध पर्याय को लूट लिया है,उन पर दया कैसी? हम एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त प्राणियो की रक्षार्थ प्रयत्नशील रहते हैं, किन्तु विभाव और विकार के कारण कर्मो के नाशार्थ निर्मम हो उद्योग करते हैं। हम आर्तध्यान, रौद्रध्यान से अपनी आत्मा की रक्षा कर रहे हैं।"

प्रश्न - "महाराज! मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

मुझे विदेश जाने की प्रेरणा

महाराज बोले - "तुमने जापान जाकर जिनधर्म की प्रभावना की। यह बहुत अच्छा किया। तुम युरोप, अमेरिका आदि देशों मे जाकर जैनधर्म का प्रचार करो। धर्म-प्रचार के लिये जाने से डरो मत। अपनी श्रद्धा को निर्मल रखो। चारित्र में दोष आवे, तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करो। हमारा हृदय कहता है कि अब जैनधर्म का उद्योत होगा। इसके लिए धन, तन तथा मन को लगाकर काम करना चाहिये। धर्म प्रचार के लिए धर्म-

श्रद्धालु, सदाचारसम्पन्न तथा निस्पृह व्यक्ति चाहिये। तुम खूब धर्म प्रचार करो। यही हमारा तुमको आशीर्वाद है।" (यह कहकर उन्होने बडी स्नेहमयी भावना से मेरे मस्तक पर अपनी करुणामयी पिच्छिका रख दी।)

प्रश्न - "आज के जैन भाइयो के लिए आपको क्या कहना है?"

उत्तर - "जैनियो को अपनी धार्मिक क्रियाओ का रक्षण करना चाहिए। मास मदिरा, मधु को त्याग कर रात्रि का भोजन त्यागना चाहिये। धनवान हो या उच्चाधिकारी हो, प्रत्येक जैनी को छना पानी पीना चाहिये व रात्रिभोजन नहीं करना चाहिये। शास्त्र मे लिखा है - रात्रि-भोजन त्यागने से आधा जीवन उपवास पूर्वक सहज ही व्यतीत होता है।"

प्रश्न - "आजकल लोग स्वय को भगवान सरीखा समझ साधन सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र-दर्शन नहीं करते। इससे कोई हानि तो नहीं है?"

महाराज ने कहा - "ऐसा करना अच्छा नहीं है। जो स्वय को भगवान सोचते हैं, वे यहॉ ससार मे क्यो रहते हैं, अपने स्थान पर क्यो नहीं जाते? " उन्होने यह भी कहा - "जो स्वय धर्म से पतित होकर तथा उसे दूर फेककर दूसरे के कल्याण की बात सोचते हैं, वे भूल पर हैं। स्वय धर्म पर आरूढ होकर ही जिनधर्म की प्रभावना हो सकती है।"

महाराज के ये शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं - "जैनधर्मी अपने धर्म से डिग रहे हैं। कहने से वे नहीं सुनते। जब अन्य धर्मवाले जैनधर्म से प्रेम करेगे, भक्ति करेगे, तब इन जैनो मे भी शरम से अपने धर्म की जागृति होगी।' मैंने महाराज से कहा था - 'आप तो स्वर्ग यात्रा करने वाले हैं। कदाचित् आचार्य शातिसागर महाराज का दर्शन हो, तो हमारा प्रणाम कह दीजिये। इस जैन धर्म को गौरवान्वित करने का वहॉ ध्यान रखिये।"

ता १९ के प्रभात में उन क्षपकराज के पुन दर्शन किये। उन्होने फिर से देश-विदेश में जैनधर्म की प्रभावना करने का आदेश देते हुए आशीर्वाद दिया। मैं पावापुरी के लिए रवाना हुआ। पश्चात् ज्ञात हुआ कि २२ अक्टूबर को साम्य-भाव सहित नमिसागर महाराज शरीर त्यागकर स्वर्ग की ओर गये, उनका स्वर्गवास हो गया।

मुनिराज आदिसागरजी

शेडवाल के श्री बालगोड़ा देवगोड़ा पाटील - १०८ परमपूज्य मुनि आदिसागर महाराज का सिवनी में २७ फरवरी सन् १९५७ को शिखर जी जाते समय आगमन हुआ था। उन्होंने आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के विषय में मेरी प्रार्थना पर निम्नलिखित बातें बताईं -

दर्शनीय विभूति

उन्होंने कहा - "सन् १९१७ की बात है, महाराज का चातुर्मास नसलापुर में हो रहा था। वहाँ उनका सत्सङ्ग मिला। उनके दर्शन से अंतःकरण में बड़ी शांति मिलती थी। पुन पुन उनके दर्शन के परिणाम होते थे।"

शास्त्र स्वाध्याय में तत्परता

उन्होंने कहा - "चिकोड़ी तालुका बेलगाम जिला में महाराज का लगभग १० वर्ष पर्यन्त विहार हुआ। उतने समय तक मैं चिकोड़ी की अदालत में सरकारी कर्मचारी था। अत महाराज के दर्शन का बहुधा सौभाग्य मिला करता था। महाराज बहुत शास्त्र-स्वाध्याय करते थे। शास्त्र की गूढ शंकाओं को सरलता से समझाते थे और सुन्दर समाधान करते थे।"

जनता को भ्रमवर्धक चर्चा सभा में न हो

आचार्य महाराज ने एक स्मरणयोग्य बात कही थी - "खुली सभा में ऐसी चर्चा नहीं चलानी चाहिए, जिससे जनता को दिशा भूल होना सम्भव हो।"

दूध निर्दोष है

एक बार एक अन्य सम्प्रदाय के विद्वान् ने महाराज से पूछा था - "आप चमड़े के पात्र का पानी नहीं लेते? चमड़े के बर्तन का घी नहीं लेते, तब दूध को क्यों लेते हैं? उसमें भी तो मांस का दूषण है।"

महाराज ने कहा था - "आप लोग अनेक नदियों के जल को अत्यन्त पवित्र मानते हैं, किन्तु यह तो सोचिये कि वह जल कहाँ तक शुद्ध है? जिसमें जलचर जीव मल-मूत्र त्यागते हैं और जिसमें उनकी मृत्यु भी होती है। अनेक दोषों के होते हुए भी यदि जल शुद्ध है, तो दूध क्यों नहीं? एक बात और है, दूध की थैली गाय के शरीर में अलग

होती है। जब गाय घास खाती है, तब पहिले उसका रस भाग बनता है। इसके बाद खून बनता है, इसलिये दूध मे कोई दोष नहीं है।"

फोटो खिचवाना

उन्होंने बताया - "एक बार मै चिकोडी (बेलगाँव) मे था। आचार्य महाराज उस समय मुनि अवस्था मे नसलापुर मे विराजमान थे। मैने चिकोडी के अनेक गृहस्थो के साथ नसलापुर जाकर महाराज से प्रार्थना की कि वे हमे फोटो खिचवाने की मजूरी प्रदान करें। हमारी प्रार्थना स्वीकार हुई। फोटोग्राफर महाराज के पास आया। उसने महाराज से कहा - "महाराज! अच्छी फोटो के लिए यह जगह ठीक नहीं है। दूसरा स्थान उचित है। वहाँ चलिए।" इसके साथ ही इस प्रकार खड़े रहिए आदि विविध प्रकार के सुझाव उपस्थित किए। महाराज अनुज्ञा देकर वचनबद्ध थे। उन्होंने फोटोग्राफर के सकेतो के अनुसार कार्य किया। फोटो तो खिच गई, किन्तु इसके बाद एक विचित्र बात हुई।"

"उस समय महाराज दूध चावल तथा पानी के सिवाय कोई भी वस्तु आहार रूप में नहीं लेते थे। फोटो खींचने की स्वीकृति देने वाली मनोवृत्ति को शिक्षा देने हेतु महाराज ने एक सप्ताह के लिए दूध भी छोड दिया। बिना अन्य किसी पदार्थ के वे केवल चावल और पानी मात्र लेने लगे।" महाराज ने बताया - "हमारे मन ने फोटो खिचवाने की स्वीकृति दे दी। इसमें अनेक प्रकार की पराधीनता का अनुभव हुआ। फोटोग्राफर के आदेशानुसार हमें कार्य करना पडा, क्योंकि , हम वचनबद्ध हो चुके थे। हमने दूध का त्यागकर अपने मन को शिक्षा दी, जिससे वह पुन ऐसी भूल करने को उत्साहित न हो।"

इस प्रकरण से महाराज की लोकोत्तर मनस्विता पर प्रकाश पडता है।

रसना इन्द्रिय का जय

नसलापुर चातुर्मास में यह चर्चा चली कि - "महाराज! आप दूध, चावल तथा जल मात्र क्यों लेते हैं? क्या अन्य पदार्थ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।" महाराज ने कहा - "तुम आहार में जो वस्तु देते हो, वह हम लेते है। तुम अन्य पदार्थ नहीं देते, अत हमारे न लेने की बात ही नहीं उत्पन्न होती है।"

दूसरे दिन महाराज चर्या को निकले। दाल, रोटी, शाक आदि सामग्री उनको अर्पण की जाने लगी, तब महाराज ने अजुली बन्द कर ली। आहार के पश्चात् महाराज से निवेदन किया गया - "स्वामिन्! आज भी आपने पूर्ववत् आहार लिया। रोटी आदि

नहीं ली। इमका क्या कारण है?'' महाराज ने पूछा - ''तुमने आटा कव पीसा था, कैमे पीमा था?'' इन प्रश्नो के उत्तर के रूप मे यह वताया गया कि रात को आटा पीसा था, आदि। तब महाराज ने कहा - ''ऐसा आहार मुनि को नहीं लेना चाहिए।''

इमके वाद तीमरे दिन फिर पूर्ववत् ही महाराज ने आहार लिया। आहार के पश्चात् महागज ने भोजन की अनेक त्रुटियाँ वताई। भक्ष्य-अभक्ष्य के विषय मे पूर्ण निर्णय होने मे पद्रह दिन का समय व्यतीत हो गया। इसके वाद महाराज ने अन्य शुद्ध भोज्य वस्तुओं का लेना प्रारम्भ किया। केवल दूध, चावल जल लेते-लेते लगभग आठ दस वर्ष का समय व्यतीत हो गया था।

महाराज की रमना-इद्रिय-विजय असाधारण थी। रसना-इद्रिय की आसक्तिवश आज की दुनिया रसातल की ओर जा रही है। जीभ की लोलुपता की पूर्ति निमित्त आज के जमाने मे लोग पाप से तनिक भी भय नहीं खाते हैं। भक्ष्य वस्तुओं में भी लोलुपता की पूर्ति के हेतु विविध रसमय व्यजन वनते हैं। उनकी ओर से मनको हटाकर रस परित्याग व्रत स्वीकार करना सचमुच मे महत्त्व की वात है। रसलोलुपी यदि कभी रस त्याग कर भोजन करे, तव वह समझेगा कि इस परित्याग के लिए किस प्रकार मनोजय की अपेक्षा रहती है। आगम में कहा है -

जिब्भोवत्थ-णिमित्तं जीवो दुक्खं अणादिसंसारे।
पत्तो अणंतसो तो जिब्भोवत्थे जह दाणि ॥९८८॥ मूलाचार

इस अनादि ससार मे जीव ने जीभ तथा स्पर्शन इद्रिय के कारण अनत दु ख प्राप्त किए हैं। इसलिए जिह्वा तथा उपस्थ इद्रियों को वश मे करो।

त्यागवृत्ति स्वीकार करने पर भी जिसकी रसना चटपटे पदार्थो की ओर आसक्त होती है, उसे आचार्य महाराज की उच्च तपोमय जीवनी से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

वृत्ति-परिसंख्यान तप की उच्चता

आचार्य महाराज ने कोन्नूर मे वृत्ति-परिसख्यान तप प्रारम्भ किया था। उनकी प्रतिज्ञा वडी विलक्षण, किंतु अत्यत विवेकपूर्ण थी। सात दिन पर्यन्त प्रतिज्ञा के अनुसार योग न मिलने से महाराज के छ उपवास हो गए। समाज के व्यक्ति सतत चिंतित रहते थे, जिम प्रकार आदिनाथ भगवान को आहार न मिलने पर उस समय का भक्त समाज चिन्तातुर रहा था। सातवे दिन लाभान्तराय का विशेष क्षयोपशम होने से एक गरीब गृहस्थ भीमप्पा के यहाँ गुरुदेव को अनुकूलता प्राप्त हो गई।

महाराज का नियम था कि यदि मिट्टी के वर्तन पर नारियल रख कोई पडगाहेगा, तो मैं आहार लूंगा। गरीब भीमप्पा की दरिद्रता वरदान बन गई। उस बेचारे ने निर्धनतावश मिट्टी का कलश लेकर पडगाहा और उसने महाराज को आहार देने का उज्ज्वल सुयोग प्राप्त किया। महाराज ने यह नियम इसलिए किया था कि हर एक उसका पालन कर सकता था।

अपार तेजोमय माधुराज

कोन्नूर मे सात सौ गुफाएँ हैं, जहाँ पहले सेकडों मुनियों का निवास रहता था। महाराज गाँव से दो तीन फर्लांग पर स्थित उन्हीं गुफाओं मे रहकर आत्मध्यान करते थे। उस समय उनमे अपार तपस्या का तेज था। उनकी आत्मा अपूर्व शातिमय थी। उनका मुनि जीवन वास्तविक मे अलोकिकता से परिपूर्ण था। उसी समय सर्पकृत उपसर्ग हुआ था तथा महाराज ने अद्भुत स्थिरता धारण की थी। उससे उनका यश विश्वव्यापी हो गया।

दिगम्बरत्व पर महाराज की दृष्टि

भोज के मुनिराज आदिसागरजी को रत्नप्पा स्वामी कहते थे। उनका चिक्कोडी से दस मील दूरी पर स्थित सदलगा ग्राम में चातुर्मास हुआ था। वहाँ जेनों के तीनसो घर थे। रत्नप्पा स्वामी दिगंबर थे। इस पर पुलिस के सब इन्सपेक्टर ने अपना विरोध पाटील के पास सूचित किया कि तुम्हारे गुरु हमारे दफ्तर के सामने से नग्न रूप में नहीं जा सकेंगे। गाँव के पाटील ने इन्सपेक्टर से कह दिया कि रत्नप्पा स्वामी हमारे गुरु हैं। उन पर किसी प्रकार का भी प्रतिबंध नहीं चलेगा। इसके पश्चात् जेन समाज ने बम्बई सरकार के पास एक प्रस्ताव पास कर भेजा कि हमारे गुरु को दिगंबर रूप में विहार करने की अनुज्ञा प्रदान की जाय।

आचार्य महाराज को उक्त प्रस्ताव की बात विदित हुई, तब उन्होने कहा - "हमे सरकार से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं हे, क्योंकि दिगंबर रूप मे विहार करना जैनमुनि का धार्मिक अधिकार है।" महाराज की दृष्टि बडी मार्मिक थी। यथार्थ मे जब जैन गुरु के दिगंबर रूप मे विहार करने की शास्त्र की आज्ञा हे, तो शासन-सत्ता न्यायानुसार उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अपने अधिकार के विषय मे प्राप्त निश्चित स्थिति को अधिकारियो की कृपा का केन्द्र बिंदु बनाना महाराज को उचित नहीं लगा।

रम्यवती वाणी

"उनकी वाणी मे अद्भुत मधुरता थी। महागज का एक तीव्र विरोधी व्यक्ति एक वार सागली जाते ममय उनके पाम आया। महाराज के साथ मे मे और नेमिमागर जी थे। वे मुधारक, मुनियो को आहार दान देने के विरोध मे भी आदोलन करते थे। मिथ्याधर्मी साधु की प्रशसा करते थे। ऐमे विचित्र व्यक्ति ने मोटर मे उतरकर तपोमूर्ति महाराज को प्रणाम किया।"

महाराज बोले - "यह हमारा पक्का शिष्य है। इसलिए मोटर लेकर दर्शनार्थ आया है।" इस प्रममयी वाणी से सचमुच मे उस विरोधी के मन मे महाराज के उज्ज्वल जीवन के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हो गया।

प्रतिभा द्वारा अन्य साधुओ मे प्रभावना

एक वार आचार्य महाराज हुवली पहुँचे। वहाँ एक अन्य सम्प्रदाय के अनेक साधु विद्यमान थे। उनके सघनायक आरूढस्वामी नाम के विद्वान् थे। आचार्य महागज की सर्वत्र श्रेष्ठ साधु के रूप मे कीर्ति का प्रसार हो रहा था, इसलिए आरूढम्वामी पालकी मे आरूढ होकर अपने शिष्य समुदाय के साथ आचार्य महाराज के निकट आकर वैठ गए। अपने सम्प्रदाय के विशेष अहकारवश उन्होने जैन गुरु को प्रणाम करना अपनी श्रद्धा के प्रतिकूल समझा था। आचार्य महाराज की इस विषय मे उपेक्षा दृष्टि रहती थी। कारण, प्रणाम करने या न करने से उनकी न कोई हानि और न लाभ ही है।

उस समय नेमिसागरजी शास्त्र पढ रहे थे। सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व का प्रकरण चल रहा था। कुछ समय तक आरूढस्वामी ने शास्त्र सुना और प्रश्न किया - "बार-बार सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व का शब्द सुनने मे आ रहा है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का क्या भाव है?"

महामिथ्यात्व के रोग मे ग्रस्त व्यक्ति को कैसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का भेद समझाया जावे? उत्तर देना सामान्य बात न थी। उत्तर तो कोई भी दे सकता था, किन्तु उत्तर ऐसा आवश्यक था, जो हृदय को समाधानप्रद हो तथा जिससे कटुता उत्पन्न न हो। आचार्य महाराज की प्रतिभा ने एक सुन्दर समाधान सोचा। उन्होने ये अनमोल शब्द कहे - "भीतर देखना सम्यक्त्व है। बाहर देखना मिथ्यात्व है।" महाराज ने कनडी भाषा मे ये वाक्य कहे थे। इसे सुनते ही आरूढस्वामी का हृदय-कमल खिल गया। उस ज्ञानवान साधु को अवर्णनीय आनन्द आया। उन्होने आचार्य महाराज को साष्टाग प्रणाम किया।

और कहा ऐसे सद्गुरु का मुझे अपने जीवन मे प्रथम बार दर्शन हुआ। ऐसे महापुरुष को ही अपना गुरु बनाना चाहिए। आरूढस्वामी के सभी शिष्यो ने महाराज को प्रणाम किया। हजारो व्यक्तियो के मुख से जैनगुरु के गौरव व स्तुति के वाक्य निकलते थे। उस समय बडी प्रभावना हुई थी।

समयोचित उपदेश

महाराज ने सन् १९२५ मे श्रमणबेलगोला की यात्रा की थी। उस यात्रा से लौटते समय आचार्य सघ दावणगिरी मे ठहरा था। बहुत से अन्यधर्मी गुरुभक्त महाराज के पास रस, दूध, मलाई आदि भेट लेकर पहुँचे। रात्रि का समय था। चन्द्रसागरजी ने लोगो से कहा कि महाराज रात्रि को कुछ नहीं लेते है। वे लोग बोले - "महाराज गुरु है। जो भक्तो की इच्छा पूर्ण नहीं करता, वे गुरु कैसे?" महाराज तो मौन थे। वे भद्रपरिणामी भक्त रात्रि को ढोलक आदि बजाकर भजन तथा गुरु का गुणगान करते रहे।

दिन निकलने पर महाराज का विहार हो गया। वे लोग महाराज के पीछे-पीछे गए। उन्होने प्रार्थना की कि - "स्वामीजी! कम-से-कम हम लोगो को कुछ उपदेश तो दीजिए।" उनका अपार प्रेम तथा उनकी योग्यता आदि को दृष्टि मे रखकर महाराज ने उन लोगो के द्वारा गाये गए भजन के कुछ उनके परिचित शब्दो का उल्लेख कर कहा - "इन शब्दों के अर्थ का मनन पूर्वक आचरण करो और अधिक से अधिक जीव दया का पालन करो, तुम्हारा कल्याण होगा।" इस प्रिय वाणी को सुनकर वे बडे प्रसन्न हुए। महाराज मे यह विशेषता थी कि वे समय, परिस्थिति, पात्र आदि का विचार कर समयोचित तथा हितकारी बात कहते थे।

व्यवहार कुशलता

उन भक्तो का मन महाराज के चरणों मे इस प्रकार आसक्त हो गया जिस प्रकार मधुकर कमल के प्रति अपार अनुराग धारण करता है। महाराज लगभग दस मील पहुँचे होगे कि वे भक्त एक गाडी में घृत, धान्य आदि सामग्री लेकर सघ के सत्कार की सद्भावना से प्रेरित हो वहाँ पहुँचे। महाराज ने सघपति से कहा - "इन लोगो की प्रेमपूर्ण भेंट तुम्हे स्वीकार करना चाहिए।" उनकी स्नेहपूर्ण भेट प्रेम भाव से स्वीकार की गई। सुमधुर भोजन द्वारा उन गुरुभक्तो को परितृप्त भी किया गया। महाराज का व्यवहार अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ भी इतना मधुर होता था कि वे इनके चरणो के प्रेमी बन जाते थे।

शेडवाल मे सर्प का उपसर्ग

आचार्य महाराज आत्मवली, उग्रतपस्वी तथा निर्भय हृदय वाले थे। सर्प के द्वारा अनेक वार उन पर उपसर्ग हुआ। सन् १९२२ की वात है - "महाराज शेडवाल अनाथाश्रम की समीपवर्ती गुफा मे ध्यानार्थ गए। रात्रिभर वहाँ रहकर ध्यान के पश्चात् गुफा से वाहर आते समय उन्होने सवेरे श्रावक से कहा - "होशियारी से भीतर जाना।" उस श्रावक ने भीतर जाकर देखा तो उसे कुछ नहीं दिखा। मै भीतर गया, तो प्रयत्नपूर्वक खोज की। महाराज के शव्द अन्यथा नहीं हो सकते, इस विश्वास से मैंने विशेष ध्यान देकर इधर-उधर खोज की, तो एक फोटो के पीछे लगभग दो हाथ का सर्प छिपा था। मैंने उसे स्वय पकडकर खेत मे छोडा था।

कोगनोली मे सर्प का उपसर्ग तथा महिमा-प्रसार

महाराज कोगनोली की गुफा मे ध्यान करने वैठे थे। एक सर्प पॉच छ हाथ लम्वा तथा बहुत मोटा महाराज के पेट तथा अधोभाग मे लिपटा हुआ वैठा था। महाराज गभीर मुद्रा मे अवस्थित थे। सैकडो लोगों ने आकर देखा। घटा भर के वाद वह सर्प स्वयमेव चला गया।

महाराज का ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होने उपस्थित लोगो को यह प्रतिज्ञा दिलाई थी कि इस सर्प की वात को जाहिर नहीं करेगे। लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा की इतनी मात्र पूर्ति की थी कि उन्होने यह वर्णन नहीं छपवाया, किन्तु वे इसकी चर्चा को नहीं रोक सके। गुरु की ऐसी अपूर्व तपस्या को देख भला कौन अपना मुख बद रख सकता था? कोगनोली मे सर्प के भीषण उपद्रव की अवस्था मे अविचलित तथा प्रसन्नता पूर्ण ध्यान-मुद्रा से महाराज की महिमा का प्रसार दक्षिण में बडे वेग से हुआ। लोगो की भक्ति भी खूब वृद्धि को प्राप्त हुई।

गांधीजी का अनुभव

इस प्रसग में गाधीजी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है - "मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेम की तो कोई सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं सॉप के साथ कहॉ खेल सकता हूँ? जो अहिंसामूर्ति है, उसके सामने सॉप भी ठण्डा हो जाता है, मुझे इस पर पूरा-पूरा विश्वास है।"

(गाधी वाणी पृ २८५ - हिन्दी नवजीवन २८ सितम्बर १९२४)

विश्व के द्वारा आदरणीय गाधीजी के हृदय के उपरोक्त उद्गारो को ध्यान मे रखने से आचार्य महाराज की सर्व श्रेष्ठता स्वय स्पष्ट हो जाती है।

अपढ किसान रामू का उद्धार

जिनको सब लोग आचार्य कुथुसागर महाराज के नाम से जानते है, वे पहले अपढ किसान थे। शरीर सुदृढ था। उनका नाम रामप्पा था। वे कपास की मजबूत जड को उखाडने मे प्रवीण थे। इस कारण उनकी 'हत्तीकटिगी रामू' के रूप में प्रसिद्धि थी। रामप्पा महाराज की जय बोलने मे प्रवीण था। दो चार जैन-अजैन भजन मात्र याद थे। रामप्पा ने महाराज से क्षुल्लक के व्रत मागे।

चद्रसागर जी ने विरोध करते हुए कहा - "ऐसे जंगली को क्या व्रत देते हो?" महाराज में मनुष्य के हृदय को समझने की अलौकिक दृष्टि थी। उन्होने देखा - "रामा मे स्थिर वैराग्य है।" अतएव उन्होने रामा को व्रत दिए। वह रामा आचार्य कुथुसागर महाराज के रूप में विकसित हुआ। यह आचार्य महाराज के महान् व्यक्तित्व का प्रभाव था कि उनके पवित्र पारस तुल्य जीवन का स्पर्श पाकर कुधातु रूप लोह-सदृश जीव भी सुवर्णरूपता को प्राप्त होता था।

प्रभावशाली जीवन

"दूसरे की बात ही क्या, मेरा जीवन उन गुरुदेव के अचिंत्य सपर्क के कारण आज निर्वाण दीक्षाधारी बन गया। सन् १९१८ मे मेरा एक मित्र मुनि शातिसागर जी के गुण गाता था, तब मैं निरादर भाव से कहा करता था - "उनमे क्या धरा है? वे सामान्य मनुष्य सरीखे होगे।" एक दिन रविवार को चिकोडी मे कचहरी बन्द रहने से मैंने नौ मील पर स्थित नसलापुर जाकर महाराज को देखा। उनके दर्शन होते ही मेरे मन मे उनके चरणो के प्रति अपार प्रीति उत्पन्न हुई। उस समय मुझे अवर्णनीय आनन्द प्राप्त हुआ। आज भी उस घटना का स्मरण कर चित्त मे महान् शाति प्राप्त होती है। उनकी आत्मा का ऐसा ही प्रभाव पडता था, जैसा चुम्बक का लोहे पर पडता है। मेरा जीवन बदल गया। मैं आज उनके प्रभाववश ही मुनि बना।

शिष्य को गुरुत्व प्राप्ति

आचार्य महाराज ने देवप्पास्वामी (मुनि देवेन्द्रकीर्ति महाराज) से क्षुल्लक दीक्षा ली थी। देवप्पास्वामी सन् १९२५ मे श्रमणबेलगोला मे थे, उस समय महाराज भी वहाँ पहुँचे। देवप्पास्वामी ने महाराज काँ शास्त्रोक्त जीवन देखा था और जब उससे उन्होने

अपनी शिथिलाचारपूर्ण प्रवृत्ति की तुलना की। तब उनको ज्ञात हुआ कि मेरी प्रवृत्ति मुनिपदवी के अनुकूल नहीं है। देवप्पास्वामी दस गज लम्बा वस्त्र ओढते थे। उद्दिष्ट स्थान पर जाकर आहार लेते थे। आहार के समय वे दिगम्बर होते थे। भोजन के समय जोर से घटा बजता था, ताकि भोजन मे अन्तराय रूप वाक्य कर्णेन्द्रियगोचर ही न हो। ऐसी अनेक बाते थीं। देवप्पास्वामी सच्चे मुमुक्षु थे। विषयो से विरक्त थे। उनको सम्यक् प्रणाली का पता नहीं था। उन्होने आचार्य महाराज से कहा - "मुझे छेदोपस्थापना दीजिये।"

महाराज ने उनको यथायोग्य प्रायश्चित्तपूर्वक पुन दीक्षा दी। उनके गुरु ने भी गुरुत्व का परित्याग कर शिष्य पदवी स्वीकार की। आचार्य महाराज को अपने गुरु के सम्बन्ध की यह चर्चा करना अच्छा नहीं लगता था।

देवप्पास्वामी का प्रभाव

"देवप्पास्वामी का ब्रह्मचर्य बडा उज्ज्वल था। मैंने गोकाक मे उनकी गौरवपूर्ण कथा सुनी तथा उसकी प्रामाणिकता का निश्चय किया। वे गोकाक से कोन्नूर जा रहे थे कि वहाँ की भीषण पहाडी पर ही सूर्य अस्त हो गया। उनके साथ एक उपाध्याय था। उसे कग्गुडी पडित कहते थे। स्वामी ने एक चक्कर खींचकर उपाध्याय को उसके भीतर सूर्योदय पर्यन्त रहने को कहा और वे भी उस घेरे के भीतर ध्यान के लिए वैठ गए। रात्रि होने पर एक भयानक शेर वहाँ आया। उसने खूब गर्जना की, उपद्रव किए, किन्तु वह शेर घेरे के भीतर न घुस सका। भय से उपाध्याय का बहुत बुरा हाल था, फिर भी वह घेरे के बाहर नहीं गया। दिन निकलने के बाद स्वामी कोन्नूर पहुँचे, तब उपाध्याय ने सब जगह उपरोक्त कथा सुनाई।

भीमशा की भीषण भक्ति

आचार्य श्री कोगनोली मे विराजमान थे। चातुर्मास का समय सन्निकट था। प्रत्येक समीपवर्ती ग्रामवासी चाहता था कि गुरुदेव की चार माह पर्यन्त सेवा का सौभाग्य हमारे ग्राम को प्राप्त हो। कई स्थानो के लोग महाराज के पास एकत्रित हो गए थे। निर्णय होना शेष था। नसलापुर के अनेक लोग आए थे। उनमे शक्ति और भक्ति गुणसपन्न भीमशा मकदूम नामक व्यक्ति ने ऐसा काम किया, जिसकी कोई स्वप्न मे भी शायद कल्पना नहीं करेगा।

महाराज गॉव के बाहर गुफा मे ध्यान करने गए। प्रभात मे चार बजे महाराज

सामायिक को बैठे ही थे कि भीमशा अपने साथियो सहित गुफा मे गया। भीमशा के मस्तक मे एक विचित्र विचार आया कि इस समय महाराज ध्यान मे है। ये कुछ भी नहीं बोलेगे। भीमशा ने महाराज को आसन सहित उठाकर अपने बलवान कधे पर विराजमान कर शीघ्र ही नसलापुर की ओर प्रस्थान किया। सूर्योदय होते समय वे लगभग आठ मील दूर यमगरणी ग्राम पर्यन्त पहुँच गए थे। सामायिक पूर्ण हुई। आकाश मे सूर्य को देखकर महाराज का मौन भी पूर्ण हुआ। उन्होने भीमशा से कहा - ''अरे बाबा! अब तो हमे नीचे उतरने दो।'' पश्चात् भीमशा का साहस तथा भक्ति देख महाराज हँसने लगे।

कुछ काल के पश्चात् कोगनोली की गुफा मे महाराज को न देख अन्य ग्रामो के गृहस्थ महाराज को खोजते हुए उस स्थान पर आए। उन्होने महाराज से अपने-अपने ग्राम मे चातुर्मास हेतु विनय की। उस समय महाराज ने हँसते हुए भीमशा की ओर इशारा करते हुए कहा - ''यमराज बैठा है। इससे कौन बच सकता है?'' इसके पश्चात् नसलापुर मे ही महाराज का चातुर्मास हुआ। ऐसी भक्ति लोगो की महाराज के प्रति रहती थी। लोगों का महाराज के चरणो में इतना प्रेम रहता था कि वे अपने कुटुम्ब, परिवार का भी ममत्व छोड महाराज की सेवार्थ अपने प्रिय प्राणो के परित्यागार्थ तैयार रहते थे।

महाराज के समक्ष जब भीम सरीखा शक्तिशाली भीमशा आता था, तब महाराज के मुख-मडल पर स्मित की मधुर रेखा आ जाती थी। सभवत महाराज को भीमशा की अद्भुत भक्ति की स्मृति आ जाती रही होगी।

शेडवाल मे महान् प्रभाव

''महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत प्रभाव पूर्ण रहा है। शेडवाल मे आश्रम खोलने का उद्योग चल रहा था। समाज मे अनैक्यवश तीन पटी हो गई थीं, अत कार्य असफल हो रहा था। मैंने आश्रम खोलने की चर्चा महाराज को पधारने पर प्रारम्भ की, तब एक व्यक्ति ने विरोध करते हुए कहा - ''कानडी मे एक कहावत है, 'हिडीयोल तुम्बिरे पकमेल तोडेयल' इत्यादि शब्द कहे - उसका अर्थ यह है कि यदि मुट्ठी के भीतर कीचड भरी है, तो बाहर से हाथ के धोने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?'' मैंने कहा - ''रत्नत्रयपुरी में आश्रम की स्थापना का लक्ष्य उस अत करण मे विद्यमान पक को दूर करना है।'' उस समय महाराज की उपस्थिति मात्र से लोगों के मनोभावो मे महान् परिवर्तन हुआ। जहाँ वर्षभर के लिए दोसौ रुपया इकट्ठा होना दुष्कर था, वहाँ लोगो ने स्वय उत्साहित होकर महाराज के नाम पर उस पाठशाला की योजना करके पद्रह वर्ष के खर्च की तत्काल व्यवस्था करली। सबका मनोमालिन्य भी दूर होकर एकता हो गई। श्रेष्ठ तपस्या और

उज्ज्वल चारित्र के कारण महाराज का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता था। वे आत्मशान्ति के सुन्दर संस्करण-स्वरूप प्रतीत होते थे।

शिथिलाचारी मुनि-मार्ग को उज्ज्वल बनाया

आचार्य महाराज के द्वारा दिगम्बर मुनि के जीवन को नवजीवन प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने जीवन को तत्कालीन विकारों से विमुक्त रखकर मार्ग को भी शुद्ध बनाया। आज तो लोग उस अवस्था की कल्पना तक नहीं कर सकते जब कि मुनि एक धोती ओढ़ लेते थे। एक धोती दूसरे दिन के उपयोग हेतु रखते थे। भोजन की व्यवस्था श्रावकों के घर जाकर उपाध्याय पहले से करता था। एक उग्र तपस्वी मुनि थे। वे आठवें दिन आहार करते थे। अज्ञानतावश उनको मुनि पद के योग्य बातों का परिज्ञान नहीं था। उनका आहार कहाँ होगा यह बात छह माह पूर्व में निश्चित हो जाती थी। आहारदान करने वालों की सूची तैयार रहती थी। आहार में प्रदान की जाने वाली भोज्य सामग्री को श्रावक के यहाँ से मंगवाकर वे शुद्ध करके वापिस भेज देते थे। दूसरे दिन जब आहार होता था तो वही सामग्री उनको अर्पण की जाती थी। श्रावक के घर जाकर वे अपना वस्त्र टांग देते थे। जोर-जोर से घंटा बजता था उस समय वे आहार लेते थे। यदि किसी उपाध्याय को किसी स्वामी के आहार की योजना में असफलता हुई, तो वह समाज के प्रमुख व्यक्ति के पीछे लगकर आग्रह करता था कि आप प्रमुख हैं। आपको आहार कराना ही होगा। हम स्वामी को आहार के लिए कहाँ ले जावें? आदि रूप से दिगम्बर मुनि का मार्ग अत्यन्त मलिन हो रहा था। सूर्योदय से जैसे रात्रि का घन अंधकार दूर होता है उसी प्रकार आचार्य शान्तिसागर महाराज रूपी सूर्य के उदय ने मुनिचर्या में ज्योति जगा दी। उनका यह महान् उपकार कौन भूल सकता है? जैन संस्कृति के कल्याण निमित्त ही उनका शरीर निर्मित हुआ था ऐसा प्रतीत होता है।"

सोचविचारकर व्रतदान

आचार्य महाराज बहुत दूरदर्शी थे। उनसे जब कोई व्रत माँगता था, तो वे व्रत लेने वाले की सम्पूर्ण (वर्तमान तथा आगामी) परिस्थिति पर दृष्टिपात कर लेते थे। मैंने कोन्नूर में महाराज से पंचाणुव्रत लिये। परिग्रह का परिमाण करते समय मैंने कहा - "मैं पाँच हजार रुपयों को रखने का परिमाण करता हूँ।"

महाराज ने कहा - "इतने में तुम्हारा निर्वाह नहीं होगा। उससे आकुलता उत्पन्न होगी।" अतएव महाराज के कथनानुसार मैंने परिग्रह परिमाण लिया था।

पात्र के योग्य प्रायश्चित्त

"एक बार मारवाड के नावा ग्राम मे दिगम्बर जैन महासभा के अधिवेशन मे, मैं बालगोडा और दरीगोडा के साथ पहुँचा था। मै तथा मेरे साथी, जिन्हे मै काका कहता था, जैन के हाथ का ही जल पीते थे। महासभा के एक उच्च पदाधिकारी सज्जन ने हमसे कहा कि यहाँ शोध के चौके में जैनी ही पानी लाता है तथा भोजन बनाता है। हमने उस चौके में दो-तीन दिन भोजन किया। अन्त में पता चला कि वहाँ कहार जाति का आदमी पानी लाता था। इससे मेरे मन मे बहुत खेद उत्पन्न हुआ। वापिस लौटकर हमने आडते नामके स्थान पर आचार्य महाराज के दर्शन किए। यह कोल्हापुर के समीप है।

विवेकपरायणता

हमने आचार्य महाराज के समक्ष अपना सर्व वृत्तान्त सुनाया कि उत्तरप्रान्त मे जाने पर किस प्रकार हमारे नियम मे दूषण आ गया। आचार्य महाराज ने सम्पूर्ण कथन ध्यान से सुना। इसके पश्चात् महाराज ने प्रायश्चित्त ग्रन्थ उठाकर लगभग आधा घटे के अनन्तर हमे महामन्त्र की विशेष जापरूप प्रायश्चित्त दिया। मैंने कहा - "इतना प्रायश्चित्त देने मे आपको अधिक समय क्यो लगा?"

महाराज ने कहा - "शास्त्र मे उपवास का प्रायश्चित्त अनेक स्थल पर बताया गया था। हम जानते हैं कि तुमको सरकारी काम के कारण बाहर सदा दौरा करना पडता है, इससे तुमको उपवास रूप प्रायश्चित्त क्लेशदायी हो जायगा। यह विचार कर हम तुम्हारे योग्य प्रायश्चित्त को देखते थे। इसमे हमे समय लग गया।"

इस प्रकरण से यह बात प्रकाश मे आती है कि आचार्य महाराज मे कितना उच्च विवेकभाव विद्यमान था। सामान्य बुद्धि के मनुष्य की बात तो दूसरी, बडे-बडे शास्त्रज्ञ भी कभी-कभी सोचते थे कि महाराज ने अनेक आगमिक विषयो पर विशेष प्रकार का मत निर्धारण क्यो किया? उन सब लोगो के समक्ष यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य महाराज अत्यन्त दूरदर्शी तथा विचारशील थे। अतएव गम्भीर विचार के अनन्तर किसी भी बात का निश्चय करते थे। सचमुच मे वे लोकोत्तर महात्मा थे।

प्रश्न - मैंने आचार्यश्री से कहा, "आप व्रत देते समय काफी सोच-विचार क्यो करते है? जो व्यक्ति आकर व्रत माँगता है, उसकी मनोकामना क्यो नहीं पूर्ण करते?

उत्तर - हम व्रत देते समय जीव का कल्याण विचारते हैं। यदि अल्प शक्ति वाले व्यक्ति ने अधिक कठिन नियम ले लिया, तो वह व्रत पालन न करके व्रतभग दोष

के कारण दु खी होगा। हम ऐसा व्रत नहीं देते, जिसको न पालने के कारण उस आत्मा को क्लेश हो अथवा उसका अकल्याण हो।

वर्तमान समय म सामान्य व्यक्ति पर भी महान् व्रता का भार रखने का असधुर फल अनेक जगह दिखाई पडता है। आचार्यश्री उतावली न कर विवेक मे काम करते थे। वे अधिक दीक्षित बनाने की प्रसिद्धि मे परे थे। उनकी दृष्टि मार्मिक थी।

बेगलोर हाईकोर्ट के जज श्री टी के तुकोल की धर्मपत्नी ने आचार्यश्री के पास आकर रात्रिभोजन त्याग का व्रत मागा। महाराज ने कहा, "बाई तुम्हारा पति बडा अधिकारी बनेगा। उस समय अपनी प्रतिज्ञा का पालन न कर सकोगी।" उस बाई की पूज्यश्री से चर्चा के समय जस्टिस महोदय आ गए। जब उन्होंने आचार्यश्री से कहा, मैं व्रत पालन मे बाधक नहीं बनूगा, तब महाराजश्री ने रात्रिभोजन त्याग सदृश छोटा व्रत दिया था। इस बात पर अन्य साधुजन को ध्यान देना आवश्यक है। पात्रता आदि का गहराई से विचार करके व्रतदान स्व-पर हितकारी होगा।

आ. अनन्तकीर्ति महाराज

अपूर्व आध्यात्मिक आकर्षण

मुनि अनन्तकीर्ति महाराज बेलगॉव वालो ने बताया - "आचार्य महाराज का व्यक्तित्व असाधारण आध्यात्मिक आकर्षण का केन्द्र था। जिस प्रकार चुम्बक लौह पदार्थ को अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार अच्छी भवितव्य वाले भव्य जीव उनके सान्निध्य को पाकर उनसे बहुत कुछ प्राप्त करते थे। उनके उपदेश के बिना ही बहुतो की आत्मा पाप-पक से निकलकर सयम की उज्वल भूमि मे अवस्थित हुई है।"

अपना अनुभव

उन्होने स्वय अपना अनुभव इस प्रकार बतलाया -"आचार्य शान्तिसागर महाराज कोन्नूर ग्राम में अपना वर्षाकाल व्यतीत कर रहे थे। मै उनके पास जाया करता था। उनका दर्शन कर मन मे यही इच्छा होती थी कि मैं भी दिगम्बर मुद्रा धारण कर उनके साथ मे रहूँ। बार-बार न जाने क्यों ऐसी इच्छा हुआ करती थी कि घर में,'कुटुम्ब मे, व्यापार मे तथा परिवार मे कुछ नहीं रखा है। उन साधुराज सदृश बनने मे शान्ति का लाभ होगा।"

व्यक्तित्व का प्रभाव

"उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहण की। एक वर्ष के पश्चात् क्षुल्लक पद ग्रहण किया। इसके बाद मैं निर्ग्रन्थ बना। मैंने क्षुल्लक पद पञ्चकल्याणक के अवसर पर लिया था, किन्तु आचार्य शान्तिसागर जी के पास आकर मैंने नवीन रूप से पुन दीक्षा ली थी।"

पुनः दीक्षा लेने का हेतु

मैंने अनन्तकीर्ति महाराज से पूछा - "जब आपने दीक्षा ले ली थी, तब पुन दीक्षा लेने का क्या कारण था?"

उन्होंने कहा - "दीक्षा गुरु पाहिजे - दीक्षा-गुरु होना आवश्यक है।" उनके वाक्यों को सुनकर सचमुच में यह बात मन को उचित लगी। कई मुमुक्षुजन सद्गुरु का सान्निध्य पाने का प्रयत्न न करके स्वय दीक्षा ले लेते हैं। उनकी कृति में अनेक बाते कभी-कभी ऐसी आ जाती हैं, जो उनके जीवन में नहीं होती, यदि उन्होने किसी को

दीक्षागुरु बनाया होता। अनुभवी गुरु शिष्य के जीवन की अपूर्णताओं तथा विपरीत प्रवृत्तियों के परिमार्जन का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। जो शिष्य न बनकर स्वयं गुरुपदासीन होता है उसके जीवन में संयम की सुवास नहीं दिखती, किंतु स्वच्छंद प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

भवसिंधु में सद्गुरु नाविक हैं

जिस तरह महान् सरोवर या सिन्धु में चतुर नाविक का आश्रय प्राणों का रक्षण करता है, उसी प्रकार भवसिंधु में सद्गुरु का अवलम्बन ग्रहण करना हितकारी होता है।

आत्मा के हितार्थ अहंकार का त्याग आवश्यक है

जब आत्मा का कल्याण करना है, सारे कुटुम्ब-परिवार को छोडना है, तब स्वात्मसिद्धि के प्रेमी साधु को छोटे से अहंकार रूपी शत्रु को और छोड देना चाहिए। यह थोडासा अहंकार महान् साधु को लघु बनाते हुए उनकी साधुता को कभी-कभी मोह की भँवर में डुबो दिया करता है। इस प्रकाश में अनन्तकीर्ति महाराज की बात बडी सुन्दर लगती है कि उन्हें गुरु नहीं मिला था, किन्तु तत्पश्चात् सद्गुरु मिल गये, तो उनसे दीक्षा ली। यह कार्य उज्ज्वल है, प्रशस्त है। अभिनन्दनीय एवं अभिवन्दनीय है। अन्य मुमुक्षु वर्ग को इस सम्बन्ध में अवश्य दृष्टि देने की प्रार्थना है।

दीक्षा लेने में कुटुम्बी बाधक नहीं बने

अनन्तकीर्ति महाराज से मैंने पूछा - "महाराज आप तो बडे सम्पन्न परिवार के व्यक्ति रहे, दीक्षा लेते समय क्या कुटुम्बी लोग बाधक नहीं बने?"

यथार्थ वैराग्य की ज्योति

उन्होंने कहा - "हमारे मन से प्रेम हटने के बाद कुटुम्बियों में रोकने की भला क्या ताकत थी?" सचमुच में जब अन्त करण में यथार्थ वैराग्य की ज्योति जगती है, तब उस भाग्यशाली को विषयों की दासता त्यागकर आत्मस्वातन्त्र्य के पथ में प्रवृत्ति करने वाले को कौन रोक सकता है? उदीयमान प्रभातकालीन प्रभाकर को क्षितिज पर देखकर ऐसा कौन है, जो उसकी वृद्धि को रोककर उसे पुन उषा की गोद में सुला सके? हाँ, असली वैराग्य चाहिए। श्मशान-वैराग्य अल्प काल तक टिकता है - जैसे सट्टे का व्यापारी क्षण में धनवान बन जाता है। श्रीमन्तों में महाश्रीमन्त बनता है और थोडे समय के बाद ही वही दरिद्रों की पंक्ति में भी बैठ जाता है, अत विवेकी, मन के मजबूत होने पर ही अपना कदम उठाया करते हैं।

क्या मुनिपद कठिन है?

मैंने पूछा - "आपने मुनिपद जैसी कठिन चीज को बहुत जल्दी केसे ग्रहण कर लिया?"

अनन्तकीर्ति महाराज ने कहा - "मुनि का जीवन कठिन नहीं हे। वास्तव मे आत्मकल्याण का पथ सुलभ है। अज्ञान के कारण जीव उसे कठिन मानता हे और जो वास्तव मे कठिन है, उसे सुलभ समझता है। घर के काम की अपेक्षा मुनि का जीवन सुलभ होता है।" वे कहने लगे - "पण्डित जी! कपडे ओढकर आपको जितनी ठड लगती है, उतनी ठड हमे दिगम्बरत्व मे लगती है।"

मैंने पूछा - "महाराज! यह कैसी बात है?"

उत्तर - "अन्तरङ्ग मे 'धृति-कम्बल' - धैर्य रूपी कम्बल ओढकर हम रहते हैं। उस कम्बल के धारण करने पर आनन्द से शीत ऋतु व्यतीत हो जाती है।" उन्होने समझाया - "आप लोग व्यापार करते हैं। भयकर गर्मी मे बैठकर व्यापार मे निमग्न रहते हैं, तब क्या गर्मी लगती है? उस समय धनोपार्जन के आनन्द के कारण जिस प्रकार गर्मी का कष्ट कष्टरूप नहीं लगता, इसी प्रकार परीषहादि भी सयमी पुरुषों को बाधक नहीं होते।"

अद्भुत योगी

उन्होने उस समय शान्तिसागर महाराज के सत्सङ्ग का उल्लेख करते हुए बताया था - "आचार्य महाराज अद्भुत योगी की तरह ध्यान मे निमग्न रहते थे, जब चाहे तब वे अपनी ऑखो को बन्द कर देते थे और अपने आप मे मस्त रहा करते थे।" वास्तव मे, जैसे फिल्म (चित्रपट) देखते समय बाहरी प्रकाश बुझा देना उपयोगी रहता है, ठीक इसी प्रकार अतर्ज्योति के दर्शन के लिए चक्षुरूपी बाहरी खिडकियो को बन्द करना आवश्यक है। इतना ही क्यो, आत्मा के असली आनन्द - अवर्णनीय रस का निर्झर तो तब बहता है और उसमे आकण्ठ निमग्न होने का अपूर्व सुखद अनुभव तब प्राप्त होता है, जब आत्मा व्यग्रता के कारणरूप स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन इन्द्रियो से सम्पर्क दूरकर उपद्रवी मन को कसकर बॉध लेता है। जो खाते-पीते, मौज-उडाते, खेलते-कूदते, विषय सेवन करते हैं, मान-अपमान की गठरी पास रखते है, रागद्वेष का कचरा साथ में रखते हुए आत्मानन्द की उज्ज्वल बाते बनाते है, उनकी बाते ऐसी लगती है, जैसी किसी दरिद्र के मुख से श्रीमन्तों को भी तिरस्कृत करनेवाली धनवैभव की चर्चा निकलती है।

अहंकार का प्रभाव

आचार्य अनतकीर्ति महाराज ने कहा था - "एक बार आचार्य शातिसागर महाराज कुभोज पहुँचे। एक व्यक्ति धर्ममार्ग से डिग चुका था। उसके सुधार हेतु महाराज के भाव उत्पन्न हुए। महाराज ने उस व्यक्ति को अपने पास बुलाने का विचार किया।" उस पर चद्रसागरजी ने कहा - "महाराज! वह दुष्ट है। बुलाने पर वह नहीं आयगा, तो आपका अपमान होगा।"

आचार्य महाराज ने कहा - "हमारे पास मान नहीं है, तो अपमान कैसे होगा? मान होने पर अपमान का भय उचित था।" इसके पश्चात् वह व्यक्ति महाराज के पास आया। उनके तपोमय व्यक्तित्व ने उस पापी हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। महाराज के कथन को सुनकर उसने अपने जीवन मे समुचित सुधार कर लिया। आचार्य श्री लोकोत्तर साधुराज थे।

आ. देशभूषण महाराज

१०८ आचार्यरत्न देशभूषण महाराज सन् १९५७ मे देहली मे थे। उस समय हम देहली, राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी के पास जबलपुर के वृहत् जैन पचकल्याणक महोत्सव मे उनके पधारने की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु गए थे। दिसम्बर माह मे महामहिम राष्ट्रपतिजी से भेट हुई थी। लगभग ५० मिनिट तक उन भद्रस्वभाव वाले महान् सत्पुरुष से चर्चा हुई थी। पश्चात् मैं आचार्य देशभूषण महाराज के पास आया। मैने प्रार्थना की कि मुझे आचार्य शातिसागर महाराज के विषय मे कुछ महत्त्वपूर्ण सस्मरण सुनाइये।

उपगूहन तथा स्थितीकरण

देशभूषण महाराज ने कहा था - "स्व आचार्य महाराज मे उपगूहन तथा स्थितीकरण अग अपूर्व थे। किसी साधु के दोषो की चर्चा चलने पर लोगो के समक्ष वे चुप रहते थे। शात रहते थे। एकान्त स्थान मे वे सदोष साधु को खूब दड देते थे। लोगो के द्वारा की गई चुगली पर वे विश्वास न करके स्वय अपनी पैनी दृष्टि डालकर दूसरे की मानसिक अवस्था का अनुमान कर लिया करते थे। उनके आत्म-तेज के कारण अपराधी स्वय भी अपराध को स्वीकार करता था।"

प्रेमपूर्ण मार्मिक शिक्षा

देशभूषण महाराज ने कहा - "मै नवदीक्षित और छोटी अवस्था का मुनि था। नाद्रे मे मैं आचार्य महाराज के पास गया। मैने उनकी वदना की। उन्होने दयाकर मेरी वदना को स्वीकार कर प्रतिवदना की।" उन्होने मुझ पर अपार प्रेम भाव व्यक्त करते हुए कहा - "तुम हमारे भाई हो। सदा आगम के अनुकूल चलना। किसी के बहकावे मे मत आना। तुम्हारी उमर छोटी है। सम्हाल कर काम करना। तुम क्षत्रियवश के हो। घराने को धब्बा लगे, ऐसा काम कभी मत करना। तुम भ्रम उत्पन्न करने वाले बडे-बडे भूतो से बचना। धर्म की खूब प्रभावना करना।"

सयम की चिन्ता

पढाई की बात न पूछकर पहले हमारे सयम का हाल पूछा - "तुमने कितना प्रतिक्रमण किया? दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक आदि कितने किए हैं?" किन्हीं विषयों मे गडबडी ज्ञातकर वे पूछने लगे - "खाने के कारण तो गडबडी नहीं हुई

है।" हमने कहा - "महाराज! आपके चरणो मे हम आत्म निर्मलता के हेतु आए है। आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं।"

अकेले भ्रमण का निषेध

महाराज ने लोगो से कहा - "हमारा भाई आया है। उसका उपदेश होगा।" मेरा उपदेश सुनकर वे सतुष्ट हुए। पश्चात् एकान्त मे समझाने लगे, तुम चतुर्थ हो और यह पचम जाति का है, इस प्रकार जाति के साथ भेदभाव मत करना। लोग झगडा मोल लेते है। तुम शत्रु पर गुस्सा मत करना। शत्रु भी यदि त्यागी हो तो उसे साथ मे रखना। अकेले भ्रमण मत करना। तुम्हारा भी कल्याण होगा।"

देशभूषण महाराज ने बताया था - "प्रतिवर्ष आचार्य महाराज को पत्र भेजकर उनसे प्रायश्चित्त ज्ञात कर हम प्रायश्चित्त ग्रहण करते रहे हैं।"

मार्मिक उपदेश

उन्होंने कहा था - "प्रायश्चित्त शास्त्र पढना। प्रायश्चित्त शास्त्र दूसरो को पढकर नहीं सुनाना। प्रथमानुयोग का भी मनन करना। एकान्त मे अपनी शाति के हेतु समयसार पढना। सार्वजनिक रूप मे समयसार नहीं पढना।"

प्रपितामह सदृश आचार्य महाराज

चर्चा के प्रसग मे देशभूषण महाराज ने बताया - "मुनि जयकीर्ति महाराज उनके दीक्षागुरु थे। जयकीर्ति महाराज के गुरु पायसागर महाराज थे। पायसागरजी के गुरु आचार्य शातिसागर महाराज थे। इस दृष्टि से आचार्य महाराज देशभूषण महाराज के प्रपितामह हुए।" उस पर मैंने कहा - "तब तो सयम की दृष्टि से आप महाराज शातिसागर जी के प्रपौत्र ठहरे।" देशभूषण महाराज ने कहा - "बिलकुल ठीक बात है।" क्षण भर मे वैराग्य की लहर आने पर वे कहने लगे - "पडितजी! किसका पिता, किसका पुत्र कौन किसका है? जगत् मे सभी जीव अलग-अलग है।"

आचार्यश्री का श्रेष्ठ विवेक

इसके पश्चात् देशभूषण महाराज ने कहा - "आचार्य शातिसागर महाराज ने अपने जीवन की एक विशेष घटना हमें बताई थी। एक ग्राम मे एक गरीब श्रावक था। उसकी आहार देने की तीव्र इच्छा थी, किन्तु बहुत अधिक दरिद्र होने से उसका साहस आहार देने का नहीं होता था। एक दिन वह गरीब प्रतिग्रह के लिए खडा हो गया। उसके

यहाँ आचार्यश्री की विधि का योग मिल गया। उसके घर मे चार ज्वार की रोटी थी। उन्होने सोचा कि यदि इसकी चारो रोटी हम ग्रहण कर लेते है, तो यह गरीब क्या खायगा? इससे उन्होने थोडीसी भाकरी, थोडा दाल चावल मात्र लिया था। उस समय गरीब श्रावक का हृदय बडा प्रसन्न हो रहा था। उसके भक्ति से परिपूर्ण आहार को लेकर वे आए और सामायिक को बैठे। उस दिन सामायिक मे बहुत मन लगा। बहुत देर तक सामायिक होती रही। शुद्ध तथा पवित्र मन से दिए गए आहार का परिणामो पर बहुत प्रभाव पडता है। वे लोकोत्तर थे।"

आचार्य विमलसागर महाराज

डाकू का कल्याण

१९ जनवरी १९५९ को १०८ मुनि विमलसागर महाराज फलटण चातुर्मास के उपरान्त शिखरजी जाते हुए सिवनी पधारे थे। उन्होंने बताया था कि आचार्य शातिसागर महाराज आगरा के समीप पहुँचे। वहाँ जैन मदिर मे उनके पास एक महान् डाकू रामसिह पद्मावती पुरवाल वेष बदलकर गया। महाराज के पवित्र जीवन ने उस डाकू के हृदय मे परिवर्तन कर दिया। उसने महाराज से अपनी कथा कहकर क्षमायाचना की तथा उपदेश हेतु प्रार्थना की। महाराज ने उससे कहा - ''तुम णमोकार मन्त्र जपो'' णमोकार मन्त्र जपते ही उस डाकू के तत्काल प्राणपखेरू उड गए। जीवन कितना क्षणिक है। क्षणभर मे उसका कल्याण हो गया।

आचार्य विमलसागरजी ने कहा था - ''स्व आचार्य महागज आगरा तरफ पधारे थे। उनकी कृपा से हमे यज्ञोपवीत प्राप्त हुआ था, जो रत्नत्रय का लिङ्ग है। उस रत्नत्रय के चिह्न के निमित्त से आज मुझे निर्ग्रन्थ पदवी प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। उनके सम्पर्क से परिणामो मे अपूर्व उत्साह उत्पन्न होता था। आत्मकल्याण की ओर भाव बढते थे।''

श्रावकों के संस्मरण

सर सेठ हुकमचन्द्र जी, इन्दौर

हमने ११ मार्च सन् १९५७ को अपने भाई अभिनदन कुमार दिवाकर एडवोकेट के साथ इन्दोर जाकर रावराजा राज्यरत्न श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्द्र जी से इन्द्रभवन मे आचार्य शातिसागर महाराज की समाधिचर्चा करते हुए आचार्य महाराज के विषय मे उनके विचार पूछे। आचार्य महाराज के प्रति अत्यन्त हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करते हुए जैनविभूति सेठ हुकमचन्द्र जी कहने लगे -

लौकान्तिक रूप में जन्म की कल्पना

"आचार्य महाराज अपूर्व साधु थे। उनका अन्त सुधर गया, इससे उनका सब सुधर गया। ऐसे अपूर्व साधु हमने अन्य नहीं देखे। उनकी परिणति को देखकर हमे ऐसा लगता है, कि वे अवश्य लौकान्तिक देव हुए होंगे। हमारा मन ऐसा भी बोलता है कि वे सौधर्मेन्द्र हुए होंगे। दोनो ही अवस्थाएँ ऐसी है, जहाँ से एक भव के उपरान्त वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।"

धर्म की सम्हाल

मैंने पूछा - "सेठ साहब! आचार्य महाराज ने आपको क्या कोई महत्त्व की बात कही थी?"

सेठ साहब ने कहा - "महाराज ने कहा था कि धर्म को अन्त तक सम्हालना।"

"मेने महाराज से यह भी कहा था - "महाराज! मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मेरा अन्त धर्म मे ही हो। मेरी आत्मा के सब परमाणु धर्ममयी हो जावे।" महाराज ने अपने मङ्गलमय आशीर्वाद से मुझे कृतार्थ किया। श्रावकोत्तम सेठ सा ने यह भी कहा था - "आचार्य महाराज मे एक बहुत बडी बात थी, जो मैंने उनमे ही देखी। वह बात यह थी कि उनके पास पहुँचते ही मन को बडी शाति मिलती थी। मे बहुत ठिकाने गया, किन्तु महाराज के समान शाति नहीं मिली। हम चाहते है कि उनके समान हमारी आत्मा का भी कल्याण हो जावे। उनके समान ही आत्मा का चितन करते-करते हमारा भी अन्त हो जावे।"

इसके पश्चात् मेरी दृष्टि उस राजोचित वैभवपूर्ण इन्द्रभवन मे उच्चस्थल पर स्थित पिच्छी तथा कमण्डलु की ओर गई। मैने पूछा - "सर सेठ साहब! आपके इस राजप्रासाद मे ये वस्तुएँ कैसे रखी गई?"

वे बोले - "पडितजी साहब! अपने अन्तकाल मे मैं पिच्छी कमडलु वाला बनना चाहता हूँ।"

एक धनकुबेर का ऐसा अकिचनता को अपनाने का ध्येय बडा लोकोत्तर है। मैने कहा - "आपने जीवन भर तो पिच्छी वाले बाबा आचार्य महाराज के चरणो का पीछा किया और अब आप उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् पिच्छी का पीछा कर रहे हैं।"

इस पर सेठ साहब बडे जोर से हँसने लगे और कह बैठे - "आप बहुत ठीक कहते हैं। असली वैभव त्याग मे है। इस पुद्गल मे क्या धरा है? यह तो नाशवन्त है।"

इस चर्चा के उपरात सर सेठ साहब ने हमारे आदरणीय पिता श्री सिंघई कुवरसेन जी के सुख-स्वास्थ्य की चर्चा की। सेठ साहब ने कहा - "सिंघई कुवरसेन जी हमारे जूने (पुराने) दोस्त हैं। बहुत प्यारे हैं। हमारी बराबरी के है। उनको हमारा जय जिनेन्द्र अवश्य कहना। भैया! हमे बडी खुशी है कि वे धर्मध्यान मे बहुत सावधान है।" ससार का स्वरूप विचित्रित है। अब सर सेठ हुकमचन्द्रजी नहीं हैं और न हमारे पूज्य पिता सिंघई कुवरसेन जी ही हैं। दोनो स्वर्गवासी हो गए।

आचार्य महाराज ने सर सेठ हुकमचदजी के बारे मे कहा था, "सारे भारत की जैन समाज मे हुकमचद सरीखा वजनदार आदमी और देखने मे नहीं आया। राज-रजवाडो मे उनके शब्द की मान्यता रही। इससे जैनो का बहुत लाभ हो गया। हुकमचद के निमित्त से जैनधर्म पर आया सकट बहुतबार टला है।

ब्र. पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, इन्दौर

पूर्वकालीन मुनियो सदृश आचरण

श्रीमान ब्र प वशीधर जी न्यायालकार स्याद्वाद-वाचस्पति इन्दौर के निवास स्थान पर हमने आचार्य महाराज की चर्चा चलाई तो प्रकाण्ड विद्वान् पडितजी ने सूत्र-रूप से ये शब्द कहे थे - "वर्तमान काल मे भी आचार्य महाराज पूर्वकालीन दिगम्वर जैन मुनियो सदृश आचरण करते थे। वे प्रकृति के सरल थे। कठिन तपस्वी थे। दूरदर्शी, गभीर, मितभाषी तथा दिगम्वर जैनमार्ग मे दृढ श्रद्धालु थे। वे मदकषायी थे। उनमे महान्

गुण अपरिश्रावीपने का था। इससे दु खी आदमी अपना दु ख-दर्द उनके समक्ष बिना भय के प्रगट कर देता था।''

मार्मिक शास्त्रज्ञान

पडितजी ने आचार्य महाराज के शास्त्रीय ज्ञान की मार्मिकता का उल्लेख करते हुए कहा - ''एक बार महाराज से शुद्धोपयोग के बारे मे चर्चा हुई थी।'' कुछ लोग कहते थे कि चौथे गुणस्थान मे ही शुद्धोपयोग होता हे। उस समय महाराज ने कहा था - ''सातवे गुणस्थान मे शुद्धोपयोग है। मैने भी महाराज का समर्थन किया था कारण ''शुद्धस्य सत उपयोग शुद्धोपयोग '' स्वय शुद्ध होते हुए जो उपयोग हे, वह शुद्धोपयोग है। चारित्र-मोह के मदोदय वाले का उपयोग शुद्धोपयोग है। यह सातवे गुणस्थान से होता है।'' इस सबध मे कुदकुद स्वामी द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण मिलता हे। अशुभ, शुभ तथा शुद्धरूप त्रिविधभाव हैं। आर्त, रोद्र अशुभ भाव हें। वे त्याज्य हे, कारण कुगतिप्रद हैं। धर्मध्यान शुभभाव है। इसकाल मे शुक्लध्यानरूप शुद्ध भाव का अभाव है। अत धर्मध्यान का ही आश्रय हितप्रद है। सातवे गुणस्थान पर्यत धर्मध्यान है। श्रेणी आरोहण काल मे शुक्लध्यान, शुद्धभाव होता हे। अत पचमकाल मे शुद्धभाव शुक्ल ध्यान, शुद्धोपयोग नहीं होगा। धर्मध्यान साक्षात् स्वर्गप्रद तथा परपरा से मोक्षप्रद है। ''परे मोक्षहेतू'' सूत्र धर्मध्यान को भी शुक्लध्यान सदृश मोक्ष का हेतु कहता है।

आचार्य महाराज व्यवहार और निश्चय नययुगल को उपयोगी मानते थे।

सेठ चन्दूलाल जोतीचन्द सराफ बारामती

सेठ चन्दूलाल जोतीचन्द सराफ बारामती ने सपरिवार जिस उदारभाव से प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक गुरुसेवा की है, उसे भारत के सब लोग जानते है। बम्बई के सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी जौहरी सघपति, महाराज के प्रथम कोटि के भक्त रहे हैं। उसी श्रेणी मे श्रीचन्दूलालजी का नाम आता है। लोग इन्हें चन्दू काका कहा करते है। उनसे मैने पूछा - ''क्या कभी-कभी आचार्य महाराज भी आपको काका कह देते थे?'' उन्होने कहा - ''हॉ! क्या बताऊँ, महाराज भी मुझे काका कह देते थे?'' चन्दू काका ने महाराज के सस्मरण सुनाते हुए कहा - ''महाराज ने हमसे कहा था कि तुम व्रत ले लो। तुम हमारी बात मान लो। अब हमारे सरीखा कहने वाला तुम्हे नहीं मिलेगा।'' मैने महाराज से कहा -''महाराज! हमें व्रतों मे मत डालो। हमसे व्रत नहीं बनेगे। दान करने के लिए १०,०००) की जगह २०,०००) बोलो, वह हम कर देगे। व्रत के बारे मे हम आपकी बात नहीं

सुनेगे।'' किन्तु महाराज मौका पाकर १०-१२ वर्षो से कहा करते थे। अत मे सल्लेखना का समय जब समीप आया, तब हमे उनकी बात सुननी पडी। उन्होने कहा था - ''तुमने हमारी इतनी सेवा की, इसी से तुम्हारे कल्याण के लिए हम व्रत दे रहे है।'' अब हम फिर तुम्हे उपदेश देने नहीं आवेगे। हमे समाधि लेना है।

व्रतधारण से आनद प्राप्ति

मैने पूछा - ''क्यो काका, व्रत लेने मे काफी तकलीफ हुई होगी?''

वे बोले - ''पण्डितजी, व्रत लेने से रच मात्र भी कष्ट नहीं होता है। मन को अच्छा लगता है। महाराज गये। ऐसे महाराज अब नहीं मिलेगे।''

सल्लेखना की चर्चा

महाराज ने हमसे कहा था - ''चन्दूलाल! अब हम सल्लेखना ले रहे हैं। तुम विघ्न मत डालना।''

अपार प्रेम

हम कहते थे - ''महाराज! अभी कुछ वर्ष जाने दीजिए।'' महाराज ने कहा - ''हम तुम्हारी नहीं सुनेगे।'' उनकी प्रबल इच्छा देखकर हम भी चुप हो गये। वे कहते थे - ''हम जो करते हैं, अपने कल्याण के लिए करते है।'' चन्दू काका ने कहा - ''पण्डितजी, उनकी सल्लेखना की बात सुनकर हमे इतना रोना आया, इतना दु ख आया कि कह नहीं सकते। हमको जीवन मे उतना रोना कभी नहीं आया। हमने समझ लिया था कि अब महाराज गये। ऐसी निधि अब नहीं मिलेगी।'' महाराज रोकने लगे। हमने कहा - ''महाराज, हमे रोकिए मत, हमे रो लेने दीजिए।'' पण्डितजी! क्या बताएँ, अपने पिता पर भी उतना मोह नहीं होता था, जितना मोह महाराज पर होता था, दिन और रात महाराज ही महाराज दिखते थे, किन्तु अब एक दिन भी स्वप्न तक मे दर्शन नहीं हुआ।''

मुक्तागिरि का विचार

सेठ चन्दूलाल जी ने बताया - ''बारामती से कुथलगिरि जाते समय महाराज ने कहा था ''अब हम फिर लौटकर नहीं आने वाले है। कुथलगिरि मे यदि चातुर्मास हो गया, तो आगे मुक्तागिरि जाने वाले हैं।''

व्रत-प्रतिमारूप रत्न का दान

चन्दू काका की धर्मपत्नी ने आचार्यश्री की आहार दान द्वारा चिरस्मरणीय

सेवा की। महाराज ने उनसे कहा था - "बाई! तुमने इतने दिन हमारी इस प्रकार सेवा की, जिस प्रकार माता अपने बच्चे की सेवा करती है। तुमने बहुत सेवा की। हम सोचते है, तुमको कुछ दे दे। क्या देना? हम तुमको एक रत्न देते है। व्रत प्रतिमा को पालन करना। अब तो हम जाते हैं।" सेठानी ने प्रसन्नता पूर्वक व्रत ले लिये।

चन्दूकाका की धर्मपत्नी ने महाराज की बहुत सेवा की। उन्होने महाराज के सम्बन्ध मे कहा था - "पण्डितजी! आचार्य महाराज हमारे बगीचे मे बारामती मे थे। मेरा एक नौ माह का पुत्र मर गया। प्रतापगढ मे थे, तब छ माह का पुत्र मर गया था। कचनेर मे थे, उस समय मेरी पुत्री के मरने के समाचार मिले थे। ऐसे-ऐसे बडे-बडे दु:खो के होने पर भी मै चुप रही और गुरु सेवा करती रही।"

सांत्वनापूर्ण वाणी

"एक दिन महाराज बोले - "ऐसी बाई हमने कहीं नहीं देखी। पुत्र मर गया। हमें पता तक नहीं चला।" उतरा हुआ मुँह देखकर महाराज बोले - "बाई ससार मे कुछ नहीं है। कितने पुत्र-पुत्री नहीं हुए। ससार ऐसा ही है। इसमे शोक नहीं करना चाहिए।" महाराज के शब्द सुनते ही हृदय का सारा सताप तत्काल दूर हो गया। महाराज की सेवा करने से इतना आत्मबल आ गया था कि कई बच्चो की मृत्यु होने पर भी अश्रुपात नहीं किया। मन में मोह आने पर हम उसे निकाल देते थे। ऐसे साधु कभी नहीं मिलेगे, यह सोचकर हमने कुटुम्ब की चिंता छोड दी थी। जो होना होगा, सो होगा।"

अपार प्रभाव

सेठानी जी ने कहा - "हमने महाराज का अनेक बार बडा प्रभाव देखा। उनके साथ मे कभी कष्ट नहीं हुआ। हमने महाराज की वाणी को सदा सफल होते देखा। उनका प्रभाव ऋद्धिधारी मुनियो सरीखा हमने देखा। यह बात हम अपने अनुभव की बताते है। अनेक बार ऐसा हुआ कि हमारे चौके मे थोडे लोगो का भोजन बना है और बहुत लोग आ गये, तो भी भोजन कम नहीं होता था। फिर भी काफी भोजन शेष रहता था। पहिले हमारे घर की बहुत सामान्य अवस्था थी। उनकी सेवा करते-करते अपने आप सब कुछ आने लगा और अब इतना बडा घर (लाखो का) बन गया।"

उन्होंने बताया "हमारे यहॉ माणिकलाल का लडका बोलता नहीं था। आठ वर्ष का हो गया था। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उसके सिर पर पिच्छी रख दी और कहा - यह लडका बोलने लगेगा और आठ दिन में वह लडका बोलने लगा।"

गुरुमेवा को मर्वोपरि म्थान

मेठानी ने यह वताया - "मेठजी, आचार्य महागज की आज्ञा को मर्वोपरि म्थान देते थे। जव महागज के पास का वुलावा आता था, तो सोने-चाँदी की दुकान के फैले हुए काम की जग भी परवा न कग्के हानिलाभ का विचार छोडकर, महागज के पाम चले जाते थे। एक ममय तेग्ह वर्ष के पुत्र जम्वू पर घर का लाखो का काम छोडकर महागज के पाम चले गये थे। महागज महान् पुण्यात्मा थे। उनकी सेवा मे मदा समृद्धि ही मिली। विपत्ति का कभी दर्शन भी नहीं हुआ।"

विशेष कृपा

"महाराज की हमारे सेठजी पर वडी कृपा थी। फलटण चातुर्माम के वाद एकदम महाराज विना किसी को कुछ कहे सुवह ९ वजे फलटण मे रवाना हो गये। किमी को पता नहीं, उम दिन १६ मील चलकर वे एक श्रावक के साथ वारामती आ गये। वे निश्चय के वडे पक्के थे। अपने हृदय की मुनते थे और तदनुमार ही वे काम कग्ते थे।"

शिष्य की उन्नति मे प्रमन्नता

आचार्य महागज चन्दू काका के निवामम्थान पर आये। वहाँ उनका आहार हुआ। महाराज ने पूछा - "यह मकान किमका है?" चन्दू काका वोले - "महाराज! यह मकान तो आपका है।" महागज जोर मे हँमने लगे।

व्यवम्था प्रेमी

महागज ने हमारे परिवार का वडा उद्धार किया। हमारे घर में छोटे-वडे सभी ने महागज से कुछ-न-कुछ व्रत ले लिये हैं। महागज ने अपनी पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र-भण्डार हमे दे दिए और कहा - "ये शास्त्र किसी को देना, तो हस्ताक्षर लेकर देना।" महागज व्यवम्था और नियम के वडे प्रेमी रहे। अव्यवस्थित काम उन्हे पसन्द नहीं आता था।

श्री मगनलाल नेमचंद गांधी, पंढरपुर

चन्दूकाका के यहाँ पढरपुर के श्री मगनलाल नेमचन्द गाधी ने कहा - "मैं महाराज के पाम वारामती के वगीचे मे दो तीन मप्ताह पर्यन्त रोज जाता था।" महाराज वोले - "तुम यहाँ वहुत ममय तक ठहरे।" श्री गाँधी ने कहा - "महागज! आपके दर्शन के लिए ठहरा हूँ।" महाराज वोले - "मेरे पाम ठहरने वालो को पिच्छी और कमण्डलु

लेना पडता है। उधर देखो! ये पिच्छी कमण्डलु तैयार हैं।" श्री गाँधी ने कहा - "महाराज! हमारा भाग्य नहीं है। हमारा इतना बडा भाग्य होता, तो क्या कहना था?"

सेठ तुलजाराम चतुरचन्द्र, बारामती

बारामती के सेठ तुलजाराम चतुरचन्द्र और सेठ चन्दूलाल जी आचार्य महाराज के अधिक निकट सम्पर्क मे आते रहे हैं। मैंने १२ फरवरी सन् १९५७ को सेठ तुलजाराम-जी से आचार्य महाराज की कुछ चर्चा चलाई। उन्होने आचार्य महाराज के पास से लगभग ८० वर्ष की अवस्था होते हुए भी व्रत-प्रतिमा ग्रहण की है। कई वर्ष तक महाराज उन्हे प्रेरणा करते रहते थे, लेकिन उनका मन पिघलता नहीं था। आचार्य महाराज से अत्यन्त निकटता होने के कारण महाराज की तीव्र भावना थी कि इस जीव का कल्याण हो जाय।

विशेष बात

एक समय महाराज ने कल्याण की भावना से उनसे कहा - "तुम्हारे व्रत के भाव नहीं होते, इससे ऐसा दिखता है कि तुम्हारे कुगति का बन्ध हो गया है।"

उत्तर में सेठ जी ने कहा - "महाराज! हमारी छ पीढी में मेरे सरीखा भाग्यशाली कोई नहीं हुआ। इसी से तो आप समान श्रेष्ठ वीतराग गुरु का दर्शन हुआ। त्याग की क्या बात है? कभी आप सरीखी बात हो जायगी।"

"इसके पश्चात् पुन महाराज ने व्रती बनने को कहा, क्योंकि उससे हमारा कल्याण होगा।"

प्रश्न - महाराज से उक्त सेठजी ने कहा - "अव्रती श्रावक भी तो स्वर्ग जाता है, इसीलिए व्रती बनने की क्या जरूरत है?"

उत्तर - महाराज बोले - "व्रती के देवगति मे जाने का नियम है। अव्रती का नियम नहीं है।"

विशेष अनुग्रह

सेठजी ने कहा - "महाराज! आप हम पर जबर्दस्ती क्यो करते हैं?" महाराज बोले - "स्वर्ग जाते समय हमे साथी चाहिए-सोवती पाहिजे -दूसरा शान्तिसागर आकर अब तुम्हे नहीं कहेगा।" सेठजी ने कहा - "महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

उन्होने सिर पर पीछी रखदी। व्रत दे दिये। उन्होने कहा - "तुम्हारा कल्याण होगा।" इससे मुझे वडा आनन्द हो रहा था। इसके पहिले भी महागज मधुर विनोद द्वारा मुझे प्रतिवुद्ध करते रहते थे। एक दिन महाराज कहते थे -"उत्तरपुराण मे वर्णन आता है - किसी राजा का एक केश सफेद हुआ, तो वह वैराग्य युक्त होकर राज्य छोड देता था। अब तो तुम्हारे सारे वाल सफेद हो गये, फिर भी व्रतधारण की वुद्धि नहीं होती।" इतना कह कर वे हॅस देते थे।

संयम रूप अग्नि

एक दिन सेठजी महाराज के पास शास्त्रसभा मे पीछे पहुँचे और पीछे वैठने लगे। महाराज ने कहा -"पास मे आने मे क्यो डरते हो? क्या हम अग्नि है? देखो, यहॉ सयम की अग्नि है। हमारे पास मत बैठना।" सेठ जी ने कहा - "महाराज! अग्नि मुझे बडी प्यारी लगती है। आगामी जन्म मे भी ऐसी ही अग्नि चाहता हूॅ।" महाराज हॅसने लगे।

उक्त सेठजी ने कुथलगिरि क्षेत्र मे ६१,०००) रु मे कुलभूषण भगवान की प्रतिमा विराजमान करने की बोली ली थी। यह बात जब आचार्य महाराज ने सुनी, तो वे बोले - "सौ सुनार की एक लुहार की। तुमने वडा अच्छा काम किया। अगले जन्म के लिए कलेवा साथ मे रख लिया।"

उनके सुपुत्र माणिकलाल भाई की उदारता से उनके नाम पर बारामती मे एक सुन्दर समुन्नत डिग्री कालेज चल रहा है।

पं. मोतीचन्द्र गौतमचंद्र कोठारी, फलटण

प मोतीचद्र गौतमचन्द्र कोठारी एम ए ने आचार्य महाराज के सत्सङ्ग का लाभ लिया था। श्री कोठारी ने महाराज के सम्बन्ध मे महत्त्व की निम्नलिखित बातें बताई - "आचार्य शातिसागर महाराज प्रगाढ श्रद्धावान तथा महान् प्रतिभाशाली साधुराज थे। जब कभी कोई गम्भीर तथा जटिल प्रश्न उनके समक्ष आता था, तब वे उसका उत्तर तुरन्त नहीं देते थे। उस पर गहरा चिन्तन करते थे। ध्यान के समय भी वे उस पर विचार करते थे और उसका समाधान खोजते थे। जल्दी मे कुछ भी उत्तर देना उनका स्वभाव न था।"

मार्मिक बात

श्री कोठारी ने बताया - एक दिन मैने कहा - "महाराज! आप तुरन्त उत्तर क्यो नहीं देते?"

महाराज बोले - "क्या तुम हमें सर्वज्ञ समझते हो? क्या तुमने यह मान लिया है कि लगोटी त्यागने मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है? देखो! तत्काल बिना सोचे-विचारे उत्तर देने पर आगम के कथन का विरोध सम्भव है। मैं आगम के विरुद्ध कथन करके नरकगति मे नहीं जाना चाहता हूँ। उत्तर न देने से लोग मुझे अज्ञानी समझेगे, इससे मेरी कोई हानि नहीं है। मै अज्ञानी हूँ ही इसमे तनिक भी सदेह नहीं है। आगम के विषय मे उचित विचार किए बिना बोलना अकल्याणकारी है।"

दुराग्रह से हानि

आचार्य महाराज यह भी कहते थे - "बहुधा अनेक पडितो की ऐसी आदत होती है कि उनके मुख से जो बात निकल गई, उसका समर्थन करना। ऐसे दुराग्रही व्यक्ति के पास सम्यक्त्व कैसे रहेगा? दुराग्रह और सम्यक्त्व इनमे अत्यन्त विरोध है।"

महाराज के ये शब्द भी बडे महत्त्वपूर्ण हैं - "पडित को सत्यप्रेमी तथा आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाला होना चाहिये। वचन पक्ष को लेकर अनर्थ पर उतरना अज्ञानी एव अविवेकी का लक्षण है। ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं होता।" वे कहते थे - "अज्ञानी कहलाना बुरा नहीं है। ज्ञानी कहे जाने के मोहवश विपरीत कथन द्वारा कुगति में पतन की सामग्री का सचय करना अच्छा नहीं है।"

धर्मघातक पांडित्य

आजकल अनेक व्यक्ति पाडित्य प्रदर्शन हेतु आगम के विरुद्ध सिद्धान्त बनाते हैं और अज्ञ वर्ग के समक्ष उपस्थित होकर मौलिकता (Originality) के नाम पर सम्मान पाते है। मानपत्र प्राप्त करते हैं। जिन महान् ज्ञानी आचार्यो की वाणी के भाव को समझने की भी उनमे पात्रता नहीं है, उनके दोषो को बताने का साहस दिखाते हैं। धनिको की सहायता का अवलबन पाकर ऐसी आगम विरोधी सामग्री ग्रथो मे भूमिका के नाम पर मिला दी जाती है, कभी-कभी प्राचीन भाषान्तर के पुनर्मुद्रण के समय भी अपने दूषित विचारों को मूल रचना मे मिला दिया जाता है।

जैसे आजकल असली घी में नकली घी मिलाकर अप्रामाणिक व्यापारी ग्राहक को ठगता है, ऐसी ही स्व-पर वचना का बाजार साहित्य के क्षेत्र मे भी गरम हो रहा है।

उदाहरणार्थ ज्ञानपीठ काशी मे छपे महापुराण को लीजिए। भगवज्जिनसेन स्वामी के द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था आदि के विपरीत कथन करने वाले अपने विचारो को ग्रथ मे स्थान दे दिया जाता है। अर्थ की सहायता पाकर ऐसा वाड्मय इस प्रकार लोगो के हाथ मे आ जाता है। पचाध्यायी, समयसार आदि की नवीन व्याख्या के नाम पर आगम का अद्भुत रूप बनाया जा रहा है तथा यह रोग वर्धमान हो रहा है। जैन सस्कृति के रहस्यो से नितान्त अपरिचित, परन्तु लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त राजनैतिक व्यक्ति के द्वारा अपने प्रकाशनो को यश मिल जाने से कोई-कोई व्यक्ति तथा प्रकाशक कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं। धार्मिक मण्डली की यह स्थिति देख हार्दिक मनोव्यथा होती है।

अप्रभावना

अज्ञानाधकार को दूर कर सम्यक्ज्ञान का प्रकाश फैलाना प्रभावना है। सम्यक्ज्ञान पर आवरण डालकर विपरीत ज्ञानभाव को जगाना भी प्रभावना माना जाने लगा। अद्भुत बात है, आग लगने पर पानी डालकर आग को बुझाया जाता है। आज धन वैभव वाला सस्ते पानी की उपेक्षाकर बहुमूल्य पैट्रोल डालकर अग्नि को प्रशात करना चाहता है? इसका परिणाम कभी भी मधुर नहीं होगा, ऐसा ही आगम के साथ स्वच्छद दृष्टि से खिलवाड का परिणाम अमधुर होगा।

गुरुदेव की सीख

अतएव हमे आचार्य महाराज की इस वाणी को ध्यान से अपने हृदय मे स्थान देना चाहिए - ''पडितो को वचन पक्ष की जिद्द नहीं करना चाहिए। आगम विपरीत, तोड-मरोड नहीं करना चाहिए। यह महान् पाप की बात है।''

दूषित प्रवृत्ति का कारण

आज लोग धर्मरूप अमृत को छोडकर अधर्मरूप विषपान मे उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति कर रहे हैं। इस अद्भुत स्थिति का क्या कारण है? इस समस्या पर आचार्य महाराज ने इस प्रकार प्रकाश डाला था - ''आज की दुष्ट प्रवृत्ति मे काल का प्रभाव बडा कारण है। इसके सिवाय जीवो के दर्शन और चारित्रमोहनीय कर्म का तीव्र उदय भी कारण है।''

अपने विवेचन को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने कहा - ''आज मनुष्य क्रूरता के मार्ग पर बढता जा रहा है। आजकल हिंसा की सामग्री अधिक बनाई जा रही है। मनुष्य स्वय अपने सहार के साधनों का सग्रह करने मे सलग्न है। वह आजीविका के लिए ही

उद्योग नहीं करता है, वह तो भोगसामग्री को एकत्र करने मे एव उसकी अभिवृद्धि करने मे अतिशय तल्लीन रहता है। इस काल मे ऐसे ही विषयलोलुपी लोग सर्वत्र पाए जाते है।"

निकृष्ट काल में मुनि जीवन की उपयुक्तता

प्रश्न - "जब इतना निकृष्ट काल है कि आदर्श गृहस्थ का जीवन कठिन हो गया है, मुनियो को आहार देने वाले धर्मात्मा गृहस्थो की उपलब्धि कठिन हो गई है, तब क्या मुनि जीवन पर आज के काल का दुष्ट प्रभाव नहीं है?"

उत्तर - महाराज ने कहा - "इस पचम काल मे जन्मधारण करना अवश्यमेव पूर्व पुण्य की न्यूनता का परिणाम है। यदि पुण्य की न्यूनता न होती, तो वह ऐसी निकृष्ट सामग्री के बीच क्यो रहता? जिस जीव ने पूर्वभव मे पुण्य सचय किया है, वह विदेह सदृश धर्म भूमि मे उत्पन्न होकर आत्महित साधन करता है। आज की विपरीत परिस्थिति मे कुछ ऐसी आत्माएँ है, जिनका होनहार उज्ज्वल है और भविष्य महान् है। आत्मकल्याण के लिए विषय भोगो से विरक्त होकर वे धर्म मे तीव्र रुचि धारण करते है। मुनि जीवन को स्वीकार करते हैं। ऐसे भाग्यवान पुरुष बहुत थोडे होते हैं।"

आज के विपरीत काल मे जो आत्माएँ धर्मपालनार्थ पुरुषार्थ करती है, उनका महान् कल्याण होता है। भावसग्रह में देवसेन आचार्य की निम्नलिखित वाणी बहुत मार्मिक है। इससे मुमुक्षु वर्ग के चित्त मे उत्पन्न होने वाली अनेक शकाओ का समाधान प्राप्त होता है। भद्रपरिणामी जीवों के चित्त मे साधु-भक्ति के उज्ज्वल भाव उत्पन्न होते हैं। आचार्य का कथन है -

सहणण अइ-णिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो।
तह विहु धीरा पुरिसा महव्वयभर-धरण-उच्छहिया ॥१३०॥

यह दु षमा काल है, सहनन नि कृष्ट है, चित्त चचल है, तथापि धीर पुरुष महाव्रतों का भार धारण करने मे उत्साह रखते हैं।

आज की तपस्या का महाफल

वरिस-सहस्सेण पुरा जं कम्म हणइ तेण काएण।
त सपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे ॥१३१॥

पूर्व काल मे एक हजार वर्ष तक तप करने पर जिन कर्मो का क्षय होता था, उन कर्मो का क्षय इस हीन सहनन के द्वारा एक वर्ष मे होता है।

हीन सहनन मे महान् तप करने वाले की आत्मशक्ति विशिष्ट रहती है।

पाखडी का पतन

यहॉ इतना लिखना उचित है कि साधुत्व का वेष धारणकर जो पाखड रचते हैं, धर्म को दूषित करते है, उनका कुगति मे पतन होता है। यह शास्त्र का कथन गृहस्थो तथा साधुओ को ध्यान मे रखना चाहिए, जिसे प आशाधरजी ने अपने अनगार धर्मामृत मे उद्धृत किया है -

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रै. वठरैश्च तपोधनै ।
शासनं जिनचंद्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम् ॥

भ्रष्ट चारित्र वाले पडितो ने तथा कपटाचरणी साधुओ ने जिनचद्र के निर्मल शासन को मलिन कर दिया है।

जन्मान्तर का अभ्यास

प्रश्न - "आपका चित्त आत्मा पर किसप्रकार केन्द्रित हो जाता है और आप किसप्रकार आत्मध्यान सदृश महान् कार्य को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर लेते हैं।"

उत्तर- "अरे बाबा! यह बात एक जन्म मे साध्य नहीं होती। हमारा अनेक जन्म का अभ्यास चला आ रहा है। दीक्षा लेने वाला प्रत्येक साधु एकदम आत्मध्यान करने मे समर्थ नहीं होता। इसी से पहिले साधु के लिए पचमनस्कार मत्र का जाप शास्त्र में कहा गया है। ये साधु कुछ काल के पश्चात् ध्यान करने में समर्थ हो जाते हैं।"

महाराज ने कोठारी जी से कहा - "तुम हमारे पास आकर एक न एक चर्चा क्यो छेड दिया करते हो?"

उत्तर देते हुए कोठारी जी ने कहा - "महाराज! मूर्ति तो मौन रहती है, शास्त्र का मर्म समझने की मुझमे पात्रता नहीं है, तब गुरु चरणो में आकर उत्तर न पूछूँ, तो क्या किसी अज्ञानी व्यक्ति के पास जाऊँ।" इस उत्तर से उनके चेहरे पर मधुर स्मित शोभायमान होने लगा।

गभीरता तथा दक्षता

महाराज मे अपूर्व गभीरता थी। अन्य मनुष्य किसी ठगने वाले व्यक्ति के सपर्क को पाकर उसका मुख देखना भी न चाहेगे, किन्तु महाराज अभद्र व्यक्ति को भी कार्यसिद्धि हेतु अपने पास आश्रय प्रदान करते थे। यथार्थ मे वे सागर के समान गभीर थे। कोठारी जी ने बताया - "फलटण के चन्द्रप्रभु मदिर मे ताम्रपत्र पर अकित की गई सिद्धात शास्त्र की प्रति रखी गई। उसमे धवल सिद्धात की प्रति को सावधानी पूर्वक देखने पर एक अद्भुत बात पकड मे आई। धवल ग्रन्थ ९३ वे सूत्र के सजद पद सहित तथा सजद पद रहित दो ताम्रपत्र पाए गये। आचार्य महाराज के आदेशानुसार 'सजद' शब्दयुक्त ताम्र पत्र की तैयारी नहीं होनी थी, किन्तु पक्षविशेष की पुष्टि के लिए वह ताम्रपत्र तैयार किया गया और उसे फलटण के ग्रन्थ के भीतर चुपके से रख दिया गया।

चालाकी का परिज्ञान

इस चालाकी का पता जब आचार्य महाराज को चला, तो वे बहुत गभीर हो गए।" उस समय मैने महाराज से कहा - "महाराज! क्या बात है? यह कैसे हो गया?" महाराज बोले -"मायावी माणुस भेटल्यानतर काय करावयाचे" - "मायावी व्यक्ति के मिलने पर क्या किया जाय?" उसको मायावी पद प्रदानकर गुरुदेव ने सम्मानित किया था। यह जानते हुए भी महाराज शात थे, गभीर थे।

त्यागी की धन-लिप्सा

एक व्यक्ति ने उच्च त्याग का आश्रय ग्रहण कर लिया, किन्तु धन के लेन-देन का व्यापार बन्द नहीं हुआ। उस समय मैंने उन त्यागी जी की चर्चा की, तो महाराज के मुख से ये मार्मिक शब्द निकल पडे - "अजून हि त्याचे घर सुटले नाहीं" - "अभी भी उनका घर नहीं छूटा है।" महाराज के इस उत्तर मे एक बहुत गहरा रहस्य भरा है।

कोई व्यक्ति जब क्षुल्लक, ऐलक आदि उच्च सयम की पवित्र मुद्रा को धारण करते हैं, तो उनको अपना सयमी के रूप मे पुनर्जन्म सरीखा सोचना चाहिए। पूर्व जीवन के व्यवसाय की आदतो की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहिए।

कोई-कोई उच्च सयम वाले तपस्वी बनते है, किन्तु उनका लेन-देन तथा बहीखाता का काम बन्द नहीं होता। उनके वेष से पवित्रता टपकती है, किन्तु उनकी प्रवृत्ति उनके पूर्व जीवन की स्मृति को जगाती है। ऐसे लोगो को आचार्य महाराज की उक्ति में महत्त्वपूर्ण सुझाव सोचना चाहिए।

घर छोडकर यदि अतिथि बनकर कोई समाज मे आता है, जनता के द्वारा विनय, पूजा आदि को प्राप्त करता है, तो उन पूज्य पुरुष का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने भावरूप घर-गृहस्थी के चक्कर से अपनी पूर्णतया रक्षा करे, अन्यथा आत्मा का अहित अवश्यम्भावी है। सस्कृति तथा धर्म को भी लाछन आता है। अपने पद के विरुद्ध काम नहीं करना चाहिए। 'ऊँची दुकान और फीका पकवान' की पद्धति से अपयश होता है और इष्ट ध्येय की भी सिद्धि नहीं होती। ऊपर से घर छोडा, परिग्रह छोडा, किन्तु भीतर से गृहस्थ का भाव नहीं छोडा, तो वह त्यागी नहीं है। भाव की निर्मलता मुख्य है। त्यागी बनने पर अनेक प्रकार की दुकानो के लगाने का क्या प्रयोजन?

मुनीश्वर वर्धमान सागर महाराज ने भी मुझे एक त्यागी को लक्ष्य कर कहा था, "वह धन के चक्कर मे रहता है, ऐसे व्यक्ति के ध्यान मे द्रव्य ही दिखता है। वह अच्छी सामायिक कैसे कर सकेगा। सयमरूप चितामणिरत्न के लिए चक्रवर्ती की विभूति भी जीर्ण तृणवत् त्यागी जाती है, तब धनिको और धन की तरफ निर्ग्रन्थ साधु का ध्यान नहीं रहना चाहिए। धन की लालसा सयमरूप ज्योति को उज्ज्वल नहीं रहने देती है।"

नग्नता का हेतु?

एक बार एक अन्य पथी व्यक्ति आचार्य महाराज से पूछ बैठा - "महाराज! आप बन्दर की तरह नग्न क्यो रहते है?"

महाराज ने कहा - "पॉव मे कॉटा गडनेपर कॉटे द्वारा ही वह निकाला जाता है। 'कटकेनैव कटक,' मन बदर की तरह चचल है। उसको रोकने के लिए बदर की तरह नग्नता स्वीकार करना आवश्यक है, इससे वह बन्दर वश मे हो जाता है।"

महाराज के शात भाव से दिए गए मार्मिक उत्तर को सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और इनका परम भक्त बन गया।

अल्प निद्रा

महाराज की निद्रा अत्यन्त अल्प थी। उनके नेत्रो से यह ज्ञात नहीं हो पाता था कि उन्होने अल्प निद्रा ली है। आलस्य भी उनमे नहीं दिखाई देता था। वे नित्यविधि सदा प्रमाद रहित होकर किया करते थे। इस विषय मे जब महाराज से पूछा - "क्या कारण है कि अल्प निद्रा होते हुए भी आपके शरीर पर उसका कोई चिह्न नहीं रहता है और न खेद ही दिखता है?"

महाराज ने कहा था - "आगम देखो, उससे पता लगेगा कि मन की आत्मा मे स्थिति होने पर अपने आप निद्रा कम हो जाती है।"

अपूर्व शास्त्रज्ञान

श्री कोठारी ने कहा - "महाराज अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न थे। एक बार उनके समक्ष मै धवल सिद्धान्त ग्रन्थ पढ रहा था। वे उस ग्रन्थराज की कठिन बातो का पहले ही समाधान करते थे, जिसका खुलासा वर्णन उक्त ग्रन्थ मे आगे मिल जाता था।"

ध्यान और संयम का सम्बन्ध

महाराज ने कहा था - "मैं तुमको ध्यान के लिए कहता हूँ, किन्तु ध्यान, धारणा आदि का सयम के साथ निकट सम्बन्ध है। सयम की साधना बिना ध्यान की सिद्धि नहीं होती।" महाराज का कथन आगम समर्थित भी है।

द्रव्यसग्रह मे कहा है -

तव-सुद-वदवं चेदा झाण-रह-धुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तिय-णिरदो तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तप, श्रुत तथा व्रतवान आत्मा ही ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने मे समर्थ होता है, अत उस ध्यान की प्राप्ति के लिए सदा तप, श्रुत तथा व्रत पालन मे लीन होना चाहिए।

आध्यात्मिक प्रभाव

कोठारीजी ने कहा - "मैं अव्रती स्वभाव वाला था। पित्तप्रकृति होने से उपवास नहीं बनता था। महाराज के पास रहने से मैने उपवास प्रारम्भ कर दिये। आठ-दस घण्टे काम करने पर भी उपवास में बाधा नहीं आती थी। उनका आध्यात्मिक प्रभाव महान् था।"

साम्य भाव

एक व्यक्ति ने महाराज से कवलाना ग्राम मे कहा - "महाराज सघ के कई लोग अच्छे नहीं है, उनको अलग कर देना चाहिए।"

महाराज ने कहा - "दुष्ट और सज्जन दोनो पर साधु का समान भाव रहना चाहिए। यदि सज्जन पर प्रेम और दुष्ट पर द्वेष तो साधुता कैसे रहेगी? भले-बुरे दोनो पर रागद्वेष का जीतना साधु का कर्तव्य है।"

विशेष कृपा

आचार्य महाराज की हम पर वडी कृपा रही है। उनकी स्वर्गयात्रा के कुछ दिन पूर्व सामान्यतया उनका दर्शन वद हो गया था। चर्चा होना तो अत्यन्त कठिन वात थी। मेरी छोटी वहिन सौभाग्यवती कमलावाई गुरुदेव के दर्शन की ममतावश उस अद्भुत समय पर जवलपुर से वहाँ आ गई। मैने तो कह दिया था कि अव महाराज के पास पहुँचना असभव है। इतने मे आचार्यश्री के चरणो मे कुछ राज्य अधिकारी जा रहे थे। सौभाग्य से उनके साथ मै कमलावाई को लेकर महाराज की कुटी मे पहुँच गया। मैंने महाराज को नमोस्तु कहते हुए कहा - ''मै सुमेरुचद्र दिवाकर आपको प्रणाम कर रहा हूँ।'' गुरुदेव ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

मैने कहा - ''महाराज! मेरी छोटी वहिन कमलावाई दर्शन के लिए चरणो में आई है। यह गोम्मटसार आदि शास्त्र पढी हुई है।''

महाराज ने कहा - ''वहुत देर से आना हुआ। जल्दी क्यो नहीं आई?'' उत्तर मे निवेदन किया गया - ''दर्शन को आने की वहुत समय से इच्छा थी, किन्तु पहले आने का सुयोग नहीं मिला।''

महाराज की क्षीण स्थिति को ध्यान मे रखकर मैने और चर्चा को रोकने के लक्ष्य से कहा - ''महाराज! आज ही इसका भाग्य जगा है। इसे आशीर्वाद दीजिए।'' उन परम कारुणिक साधुराज ने उसे अपने आशीर्वाद से कृतार्थ किया।

धर्मवीर तलकचंद वेणीचंद शहा वकील, फलटण

श्री तलकचद वेणीचद शहा वकील फलटण धर्मात्मा, महान् निर्भीक, न्यायबुद्धि, गुरुभक्त, आगम-प्रेमी और व्रती श्रावक थे। आचार्य महाराज का उन पर बहुत विश्वास था। गभीर विषयो पर आचार्यश्री उनसे परामर्श करते थे। उक्त वकील साहब के साथ आचार्य महाराज की आज्ञानुसार हमे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करने का अवसर आया है। शहा वकील साहब से चर्चा के पश्चात् आचार्य महाराज के सम्बन्ध की इसप्रकार सामग्री प्राप्त हुई।

श्री शहा वकील सा ने बताया - ''आचार्य महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत आकर्षणपूर्ण था। उनकी शात वीतराग मुद्रा देखने और वाणी सुनने पर चित्त उनके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रहता था। लगभग ४० वर्ष पूर्व मैने उनका पहली बार दर्शन

किया था तब मेरा मन उनके पुण्य चरणो के प्रति अनुरक्त हो गया था।''

आकर्षक व्यक्तित्व

उन्होने बतया - ''मै कोन्नूर मे महाराज के पास गया था। वे अष्टमी तथा चतुर्दशी को मौन के साथ उपवास धारण करते थे। जगल मे जाकर धूप मे ध्यान करते थे। उनका आसन बहुत दृढ था। वे बैठते थे, तो ऐसा लगता था कि कोई मूर्ति बैठी हो। चार-छ घटे वे बैठते, किन्तु हिलते-डुलते नहीं थे।''

निर्विकार मुद्रा

''महाराज की मुद्रा निर्विकार रूप से रहती थी। किसी के आने पर हर्ष नही होता था तथा जाने पर विषाद भी नहीं होता था।

''उनका आहार बहुत शीघ्र होता था। मैने कोन्नूर मे घडी लगाकर देखा था, छह मिनिट के भीतर उनका आहार पूरा हो जाता था। वे दूध, चावल मात्र लेते थे तथा जल ग्रहण करते थे। उनके दॉत थे। वे भोजन को विशेष चबाए बिना शीघ्र उदर मे प्रवेश कराते थे। भोजन की आसक्ति या गृद्धता उनमे नहीं थी। वे अलौकिक तपस्वी महात्मा थे।''

महान् प्रतिभा

उनकी प्रतिभा महान् थी। अनुभव अद्भुत था। कई बाते वे अपने अनुभव, ज्ञान के आधार पर कहते थे। पश्चात् वही बात आगम मे मिलती थी। वे ऐसा कहते थे - ''इस प्रकार तत्त्व का स्वरूप होना चाहिए। हमने शास्त्र मे कहीं नहीं देखा है।'' पश्चात् उनके अनुभव के अनुकूल ही शास्त्र का कथन मिलता था।

संस्कारी साधु

मेरी महाराजश्री से कई बार बहुत चर्चा चलती थी। उनकी अपार कृपा थी। चर्चा के प्रसग पर वे कहते थे - ''बिना कई भवो मे निर्ग्रन्थ पद का पालन किए ऐसी शास्त्रोक्त प्रवृत्ति के योग्य मन नहीं होता।'' यथार्थ बात यह है कि जन्म-जन्मान्तर के पवित्र सस्कार सपन्न वे साधुराज थे।

प्रगाढ श्रद्धा

उनकी जिनागम के प्रति अप्रतिम श्रद्धा थी। आगम कहता है - ''जैनधर्म अभी १८,५०० वर्ष रहेगा।'' इस पर उनकी श्रद्धा थी। इस काल पर्यन्त धर्म का नाश

नही होगा। आगम के प्रकाश मे वे अपना मार्ग वनाते थे। उनका विशुद्ध हृदय जैसा कहता था वही करते थे। आगम के विरुद्ध चलने की वात वे स्वप्न मे भी नहीं सोचते थे। आगम तो उनका प्राण था।

आचार्य महाराज की सल्लेखना के सम्वन्ध मे शहा वकील का अभिमत महत्त्वपूर्ण है, क्योकि सदा आचार्य महाराज के निकट सपर्क मे रहने से वे महाराज को ठीक तरह से जान सके थे तथा महाराज भी वकील साहव को चतुर तथा धर्मात्मा गृहस्थ अनुभव करते थे।

सल्लेखना पर अभिमत

वकील साहव ने यह महत्त्वपूर्ण वात कही थी "महाराज की सल्लेखना पहले हो गई, ऐसा मेरा मत है। लोगो ने गडवडी कर दी। महाराज सूक्ष्म अक्षर पढ लेते थे। इससे स्पष्ट होता था कि उनकी दृष्टि अधिक क्षीण नहीं हुई थी। फिर भी महाराज कहते थे - अव गमनादि कार्य मे ईर्यासमिति का सम्यक् रीति से परिपालन नहीं होता। इस प्रकार वे अपने मूलगुणो के रक्षण कार्य मे वहुत सावधान रहते थे।"

श्री माणिकचंद्र वीरचंद गांधी सराफ, फलटण

श्री गाधी ने वताया कि सन् १९५४ मे महाराज का फलटण में चातुर्मास हुआ था। उस समय महाराज ने एकान्त में मुझे बुलाकर कहा - "हमारा भाव शिखरजी जाने का होता है।" मैने कहा - "महाराज, मै आपकी सेवार्थ तैयार हूँ। खर्चे की तथा व्यवस्था की चिन्ता न कीजिए। अपने निश्चय के आठ दिन पूर्व मुझे आज्ञा दीजिये।"

सल्लेखना की प्रेरणा

इसके अनन्तर महाराज वारामती पहुँचे। वहॉ अषाढ वदी षष्ठी को उनका बाढ-दिवस मनाया गया। वहॉ महाराज की सल्लेखना की योजना बनी। लोग सल्लेखना का स्वरूप नहीं समझते थे। वे उसे सामान्य वस्तु सोचते थे। सल्लेखना लेने के बाद महाराज का फिर दर्शन नहीं होगा, सल्लेखना तप के द्वारा शरीर का परित्याग होता है, ऐसा ख्याल न होने से अज्ञानी लोग जब चाहे तब महाराज के समक्ष चर्चा छेड देते थे और पूछते थे - "महाराज! अब सल्लेखना कब होगी?" मानो उनकी दृष्टि मे सल्लेखना शिखरजी की या गिरनारजी की यात्रा सदृश हो। वे सोचते थे कि सल्लेखना के पास जाकर महाराज फिर जल्दी वापिस आ जावेगे। यदि उनको पता होता कि सल्लेखना की प्रचण्ड
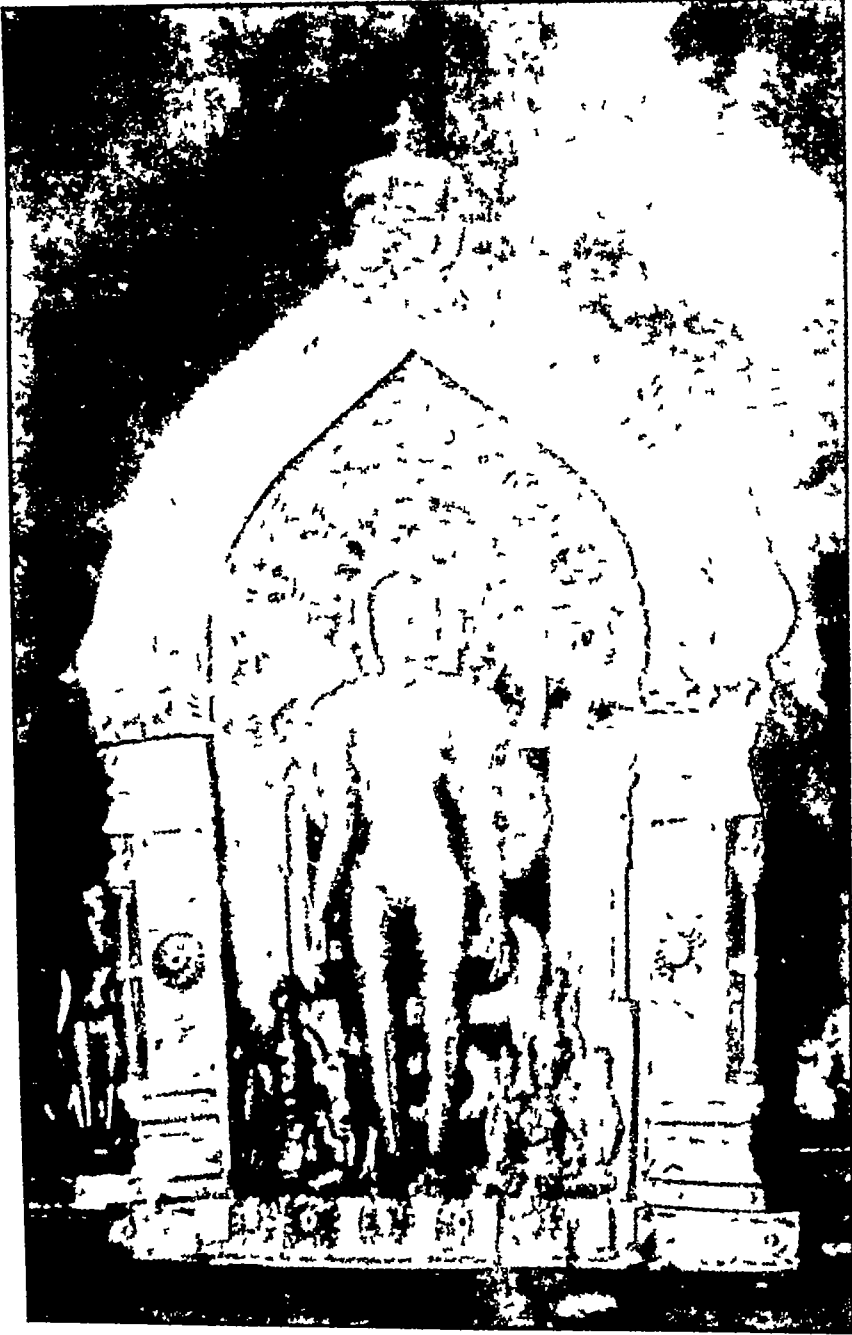
वावानगर मे भगवान पार्श्वनाथ की श्रेष्ठ कलात्मक मूर्ति
(मूर्ति के चरण मे पहले पारस पाषाण था)

अग्नि में प्रवेश के उपरान्त इस पूज्य विभूति का दर्शन नहीं होगा, तो वे क्यो बार-बार उसे करने को कहते?

यदि महाराज शिखरजी जाने का विचार करते थे, तो गुरु-चरण-भक्त-मण्डली मन मे दु खी होने लगती थी कि शिखरजी तरफ गए, तो फिर उनका दक्षिण लौटना कठिन होगा, इसी प्रकार की कल्पना यदि सल्लेखना के बारे मे होती कि सल्लेखना-वाला फिर बारामती, फलटण आदि मे दर्शन देने के लिए नहीं आयेगा, तो उसके विषय मे प्रेरणात्मक वाणी के बदले मे ऐसे ही शब्द निकलते कि - ''महाराज! जल्दी क्यों करते हैं? यम सल्लेखना की कल्पना ही न कीजिए, लेना है तो नियम सल्लेखना लीजिए। इससे आपके रत्नत्रय साधन में कोई विघ्न नहीं आता है।''

दहीगॉव चातुर्मास का इरादा

श्रीगाधी ने बताया - ''महाराज ने बारामती मे मुझसे कहा था कि हमारा इरादा दहीगॉव अतिशय क्षेत्र मे चातुर्मास करने का होता है। इसके बाद कुथलगिरि जाने का विचार है।''

''महाराज का भाव कभी-कभी मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र के दर्शनार्थ जाने का होता था। ऐसी भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ चल रही थीं, तब जीवराज गौतमचद जी, बालचद देवचदजी,रावजी देवचद शहा आदि मडली महाराज के पास आ गई। यदि महाराज मुक्तागिरि गए, तो वहॉ उनका चातुर्मास होगा, पश्चात् उनका दक्षिण पुन आना कठिन सोचकर जीवराजजी ने कहा - ''महाराज! आप मुक्तागिरि जाने का विचार छोडिए। कुथलगिरि ही चले। आपको सल्लेखना लेना है। आपके नेत्रो की ज्योति मन्द हो रही है। मुक्तागिरि मे पानी वगैरह का सुभीता नहीं है। आपकी सल्लेखना मे बहुत लोग आवेगे।''

कुथलगिरि के पक्ष मे तर्क

इसे सुनकर महाराज ने कहा - ''कुथलगिरि में अनुकूलता नहीं पडती, कोई रहता नहीं है। सल्लेखना के समय हम वहॉ आ जावेगे। अभी मुक्तागिरि के दर्शन का विचार होता है।''

उनके इस कथन का प्रतिवाद करते हुए यह कहा गया कि अब आपकी नेत्रो की शक्ति कम हो रही है। सल्लेखना का समय समीप है, इससे कुथलगिरि ही चलिए। कुथलगिरि मे आपकी सर्व प्रकार की व्यवस्था हम लोग करेगे।

अकाल मे प्रेरणा

मृत्यु के साथ युद्ध करने की महाराज की पहले से पूरी तैयारी थी। गजपथा मे उन्होने बारह वर्ष के भीतर सल्लेखना लेने के निश्चय द्वारा मृत्युराज को अन्तिम सूचना दे ही दी थी, इसीसे वे अपना ध्यान, आचार, सयमादि महाप्रयाण को लक्ष्य मे रखकर करते थे। इस प्रकार की अतरङ्ग तैयारी होते हुए कुछ लोगो ने रणभेरी का बजाना शुरू कर दिया। समय पर रणवाद्य के बजने पर किसी को भी कुछ कहने का स्थान न था, किन्तु असमय मे ही सल्लेखना लेने की प्रेरणात्मक बाते, उस पक्ष को उचित बताना आदि कथन अग्नि-प्रदीप्त करने मे घृताहुति का काम कर गए।

आमदनी का लोभ

हमे दक्षिण प्रवास मे अनेक गुरुभक्त तथा महाराज की प्राणपण से सेवा करने वाले ऐसे बन्धु मिले, जिन्होने कहा - ''कुथलगिरि बार-बार प्रेरणा कर ले जाने मे क्षेत्र को आमदनी प्राप्त होने का महान् लोभ कारण था। लोग सोचते थे कि महाराज कुथलगिरि मे रहेगे, तो क्षेत्र को बहुत आमदनी होगी।''

दूसरे के मन को जानना कठिन काम है। कई लोगो की मानसिक विचारधारा को ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी भी नहीं समझ सकता, विपुलमति मन पर्ययज्ञानी मे ही यह सामर्थ्य है कि वाणी कुछ बोलते हुए भी मन की भिन्न प्रवृत्ति रखने वालो की यथार्थ में क्या मन स्थिति है, इसे जान सके।

लेखक का कर्तव्य

इस प्रसङ्ग मे हम क्या लिखे, क्या न लिखे, यह विचार हमारे मन के समक्ष उपस्थित होता है। यदि व्यक्ति विशेष के मोह, ममत्व या डर के कारण हमने सत्य का प्रतिपादन न किया, या उस पर परदा डाला, तो लेखक पर सत्य की हत्या का बहुत बडा पाप आता है, उस कर्तव्य को ध्यान मे रखकर यह लिखना पडता है कि कुथलगिरि ले जाने के भीतर विशुद्ध भाव नहीं था, धनसचय की प्रमुख भावना इसका हेतु थी, यह जो धार्मिक लोगो का कथन है, वही सम्यक् प्रतीत होता है।

प्रलोभन

इसी विशेष लाभ को लक्ष्य मे रखकर महाराज को वचन दिया गया कि अब कुथलगिरि मे पहले सरीखी गडबडी नहीं होगी। अब पिछले चातुर्मास के समान बात

नहीं होगी कि आपको छोडकर हम व्यापारार्थ यहाँ-वहाँ दोडते फिरे। अब हम स्वय चौका लेकर आपकी सेवा करेगे।

दयामूर्ति साधुराज

सच्चे साधु का हृदय बालक की तरह निर्विकार रहता है। पूर्व मे कितना ही असत् व्यवहार किया हो, किन्तु प्रत्यक्ष मे आकर प्रणाम करने वाले पर उन सच्चे साधु की दयादृष्टि हो जाती हे।

लौकिकजन कहते है कि महाराज को ऐसे लोगो पर विश्वास नहीं करना था, जिन्होने उनको कई बार धोखा दिया, उनकी आज्ञा के विरुद्ध उत्पात मचाए, किन्तु वे लोग अपने समान साधु को राग तथा द्वेष मूर्ति समझते हे। महाराज शातिसागरजी अपूर्व साधु थे, वे लोकोत्तर थे। शरीर पर लिपटने वाले सर्प पर भी उनका प्रेम ऐसा था, मानों उनका परमस्नेही अन्य धर्मावलबी मित्र रुद्रप्पा ही आकर उनसे भेट कर रहा हो। प्राणो को हरण करने के क्रूर कर्म में सलग्न सेकडो साथियो वाले छिद्दी ब्राह्मण पर भी राजाखेडा में उन्होने कोप नहीं किया, प्रत्युत पुलिस के उच्च अधिकारी को यह कहा था कि जब तक इन लोगों को नहीं छोडोगे, तब तक हम आहार ग्रहण नहीं करेगे, जैसे जननी अपने पुत्र को बधन मे देखकर प्रतिज्ञा करती हे, ऐसी प्रतिज्ञा उनकी थी।

भवितव्यता

साधुता की बातें सब कर सकते हे, किन्तु जीवन मे श्रेष्ठ साधुवृत्ति को स्थान देने वाले मनस्वी महात्माओ में आचार्य महाराज सचमुच मे नरश्रेष्ठ थे, साधुओ के चूडामणि थे, चारित्र-चक्रवर्ती थे। महाराज साधुराज थे और महान् विचारक भी थे। वे अपनी पैनी दृष्टि से सत्य-असत्य का सहज ही विश्लेषण कर लेते थे, अतएव कुथलगिरि सल्लेखनार्थ ले जाने वालो की भीतरी स्थिति को वे क्षण भर में सोच सकते थे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्यो? समन्तभद्र स्वामी ने कहा है - "भवितव्यता की शक्ति अलघ्य है।" वह भवितव्यता बाह्य,अतरग साधन पर आश्रित है। अतरग सामग्री थी, निमित्त की कमी थी, सो उसकी भी पूर्ति हो गई। एक कारण से कार्य की कल्पना अविवेक की आधार शिला पर अवस्थित है। उपादान कितना ही बलवान हो, योग्य निमित्त के बिना कार्यरूपता धारण करने मे वह पगु ही रहता है। इसी से तार्किक चूडामणि समतभद्र स्वामी उस भवितव्यता को क्रम-बद्ध पर्याय के नाम पर नहीं छोडते हैं। वे उसे "हेतुद्वयाश्रित" कहते हैं।

पूरक सामग्री का सन्निधान

इस भवितव्यता के लिए पूरक साधन-सामग्री वारामती मे मिल गई, अत महाराज सल्लेखना की अग्नि मे प्रवेश हेतु कुथलगिरि चले। अग्नि-प्रवेश-प्रेरक व्यक्ति रणभेरी की ध्वनि कर रहे थे। सब जगह यह समाचार पहुँचने लगा कि अब महाराज सल्लेखना ले रहे है। सन् १९५३ मे भी महाराज कुथलगिरि गए थे। उस समय कुथलगिरि यात्रा को मृत्युराज की भेट नहीं सोचा जाता था, किंतु इस समय सल्लेखना लेने का अवाछनीय जोरदार प्रचार होने लगा। महाराज महाज्ञानी थे। वे सब होते हुए भी आगे-पीछे विचार करते थे, किन्तु उस समय समाज के पापोदय से कुछ लोगो ने भक्ति दिखाने के लिए एक चिकित्सक को लाकर नेत्र की परीक्षा कराई। वैद्यराज को 'यमराज सहोदर' भी कविगण कहते है। चतुर चिकित्सक विवेक के प्रकाश मे बाते करता है। बीमार को कभी भी यह नहीं कहता है कि तुम्हारी स्थिति खतरनाक है। परिचर्या करने वालो को वह वस्तुस्थिति से अवश्य परिचित कराता है।

प्रेरक सामग्री संचय

हमें बताया गया कि चिकित्सकराज कहे जाने वाले व्यक्ति ने अपने कर्तव्य का विस्मरण कर गुरुदेव से कह दिया कि अब आपके नेत्रो मे शक्ति नहीं रही है। पास में रहने वाले समझदार समझे जाने वालो ने तथा स्वय को भी समझदार मानने वालो ने उस समय डाक्टर के अभिप्राय का विरोध न कर "मौन सम्मतिलक्षण" के नियमानुसार महाराज को यम सल्लेखना के भयकर निश्चय करने के विरोध मे कुछ न कहकर यही कहा कि आपको जो उचित दिखे, सो कीजिए। कुथलगिरि मे कर्मोदयवश लोगो की बुद्धि विपरीत हो गई। शूर-शिरोमणि शातिसागरजी ने आमरण आहार त्याग देने का निश्चय कर लिया।

महाराज को धोखे मे डाल दिया गया

श्री गाधी ने यह महत्त्व की बात बताई - "महाराज कुथलगिरि पहुँच गए। मै उनके पास पहुँचा। महाराज ने पहाड पर मुझ से एकान्त मे कहा - "माणिकचद! मैं पहले दो बार कुथलगिरि मे फॅस गया था, अब तीसरी बार फिर लोगो के चक्कर मे फॅस गया। तुम ठीक कहते थे।" इन शब्दो मे बडा रहस्य है, गूढ बात है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि मैं धोखे मे आ गया। महाराज साधु शिरोमणि थे, अत उन्होने मनस्वी व्यक्ति की भाषा मे यह कहा - "हमने समाधि धारण की है, यह बुरी बात नहीं है। हमारा इसमे समाधान है। हमारे भावो मे कोई आकुलता नहीं है।"

भयकर परिस्थिति

श्री गाधी ने कहा - "मै महाराज के चरणो के समीप बहुत समय तक रहा हूँ। उनकी बातो से स्पष्ट ज्ञात होता था कि इतनी जल्दी सल्लेखना नहीं लेगे। लोगो ने पुन - पुन प्रेरणा की, इससे उनका मन उस ओर अधिक आकर्षित हो गया। सल्लेखना के पूर्व महाराज का सेठ चदूलाल सराफ के यहॉ आहार हुआ। उस समय महाराज की प्रकृति के अनुकूल आहार दिया गया। एक सपन्न सुशिक्षित दिखने वाले भक्त ने अपने श्रीमुख से ये शब्द महाराज की उपस्थिति मे कहे - "महाराज को शीघ्र सल्लेखना लेना है, तुम ऐसा आहार क्यो कराते हो?" उन्हीं सज्जन ने पर्वत पर एक वृद्धा महिला को धक्का मारकर गिरा दिया था। ऐसे व्यक्ति का नाम जानते हुए भी उल्लेख करना ठीक नहीं लगता। उन सज्जन के तथा उनके सहयोगियो के हाथ मे मुख्य कार्यों का सूत्र था। अनेक विचित्र व्यक्तियो से महाराज वहॉ घिरे थे। वहॉ के अद्भुत प्रबध के साथ महाराज का कोई सबध नहीं था।"

अंत समय पर प्रकाश

महाराज के स्वर्गारोहण के पूर्व सारी रात श्री गाधी गुरुचरणो मे रहे थे। अत उन्होने रात्रि की-कालरात्रि की-विशेष बात इस प्रकार बताई - "३६ वे दिन ५ बजे प्रात काल महाराज अत्यन्त शात मुद्रा युक्त थे। श्वास वेग से चलने लगी थी। मैंने क्षु सुमतिसागर महाराज से कहा था कि अब आचार्य महाराज अधिक समय तक नहीं टिकेगे। सघपति, भट्टारक महाराज और चन्दूकाका आ गए। लक्ष्मीसेन स्वामी ने कहा - "महाराज को अब पद्मासन से बैठाना चाहिए।" उस समय महाराज से पूछा गया - "क्या आपको उठाकर बिठा देवे?" तब उन्होने इशारे द्वारा निषेध किया। यह बात करीब ६ बजे सुबह की थी। छह बजकर पन्द्रह मिनिट के करीब गन्धोदक लाया गया। हमने उनके हाथो को सहारा दिया, तब उन्होने स्वय गन्धोदक मस्तक पर लगाया। इसके थोडी देर बाद पौने सात बजे के करीब महागज ने जोर की सॉस ली। उसके अनतर मुख से 'ॐ सिद्धाय नम ' की ध्वनि निकली थी। दो एक मिनिट के बाद दूसरी श्वास जोर की आई, उसके पश्चात् बहुत क्षीण ध्वनि मे 'ॐ सिद्धाय नम ' शब्द निकले। उन शब्दो का अनुगमन करते हुए प्राणो ने भी परलोक को प्रयाण किया। प्राणोत्क्रमण होते हुए भी वे सजीव तथा तेजपुञ्ज लगते थे।"

ऐलक वृषभसागर महाराज हिवरखेड़ा

पूज्य एलक वृषभसागर महाराज ने (मुकाम हिवरखेडा जिला अमरावती) सिवनी मे सन् १९६० का चातुर्मास व्यतीत किया था। एक दिन आचार्य शातिसागर महाराज के पुण्य-जीवन की चर्चा निकली। उस सबध मे ऐलक महाराज ने एक महत्त्व की वात इस प्रकार सुनाई - आज से लगभग २३ वर्ष पूर्व की वात है उस समय मै ब्रह्मचारी था। प्रतिमा लिये हुए ४० वर्ष हुए थे। आचार्य महाराज मुक्तागिरि पधारे।

उनके साथ मे धर्मसागर महाराज भी थे। उस समय धर्मसागरजी यशोधर ऐलक कहलाते थे।

गुरु-दर्शनार्थ हजारो व्यक्ति सपरिवार मुक्तागिरि आ रहे थे। वहाँ बहुत बडी भीड इकट्ठी हो गई थी। मुक्तागिरि मे जलप्राप्ति के लिए केवल दो कुए थे। एक दिन दोनो कुए जलशून्य हो गए। लोगो ने बेरहमी से पानी खर्च किया था। जलाभाव से सब यात्री चिता मे डूब गए। धीरे-धीरे यह समाचार आचार्य महाराज के कानो तक पहुँचा।

महाराज ने कहा - "जब पानी नहीं है, तब तो. सब लोग कष्ट में पड जाएगे। इस स्थिति मे यही उचित होगा कि हम यहाँ से प्रस्थान कर दे। इससे पानी की झझट नहीं रहेगी।"

पानी का चमत्कार

लोगो ने विनय की, कि गुरुदेव इस पवित्र तीर्थ मे आप जैसे गुरुराज के दर्शन का अपूर्व सौभाग्य हमे मिला है, उससे हम लोगो को वचित न कीजिए। लोग अनुनय विनय कर रहे थे, इतने में महाराज के हृदय मे एक नवीन विचार आया, उससे प्रेरित हो उन्होने कहा - "दो घटे तक कुओ को ऊपर से ढाँक दो। कोई भी व्यक्ति एक बूद भी पानी न निकाले।" आचार्य महाराज की आज्ञानुसार, कुए ढाँक दिये गए और दो घटे पर्यन्त कुओं की तरफ कोई भी नहीं गया। दो घटे उपरात दोनो कुओं पर का आवरण अलग कर दिया गया। लोगों ने देखा कि आधे कुए भर चुके हैं, हजारो लोगो ने पानी खींचना आरभ किया। इच्छानुसार विशाल जनसमुदाय पानी को खर्च करता जाता था, किन्तु कुआ जैसा का तैसा भरा हुआ पाया गया। सच्चे जिनेन्द्रभक्त, रत्नत्रयमूर्ति, साधुराज की तपस्या और वाणी मे अद्भुत शक्ति पाई जाती है। यह तप का चमत्कार मैने प्रत्यक्ष देखा। सारी जनता सुख से धर्म साधन करने लगी।"

हमें तो प्रतीत होता है कि कूप पर जब शाति के सागर की दृष्टि पडी, तब कूप ने सकीर्णता का परित्याग कर यथार्थ में सागर से अपना सबध स्थापित कर लिया था। सागर से सबधित कूप में जल की न्यूनता कैसे आ सकती है?

शेर तथा सर्पराज

ऐलक महाराज ने बताया कि मुक्तागिरि का पहाड भयकर जगली जानवरो से परिपूर्ण है। वहाँ शेर रात को ही नहीं, दिन को भी नजर आता है। पर्वत के ऊपर

जलप्रपात के ममीप एक ८-१० हाथ लवा और स्थूलकाय अत्यन्त पुगना विशाल मर्पगज भी रहता है। वह किसी व्यक्ति को नहीं मताना।

एक वार वह मर्प गुडी मारकर वैठा था। मुनीम गघोवा कुछ लोगो के माथ ऊ पर गए। लोगो का घ्यान इम वात पर नहीं गया कि यहाँ सर्पो के गजा वैठे हैं। प्रमाद मे एक व्यक्ति का पेर उसकी पूछ पर पडा। मर्पगज ने मनुष्य की ऊचाई वगवर अपना फुट भर चौडा फण उठा लिया और क्षण भर मे वे वहाँ मे चले गए। देखने वाले घवडा गए। एक व्यक्ति गिरा और उसकी जाघ की हड्डी टूट गई तथा भयकर चोट लगी।

आचार्य महागज पर्वत के ऊपर उसी स्थान पर रहते थे। उनके माथ यशोधर ऐलक महागज भी रहते थे। आचार्य महागज को ऐसे स्थान पर रहने में अद्भुत शाति मिलती थी जहाँ मर्प व्याघ्र, आदि भयानक जीवो का निवास हो। वे अद्भुत योगी थे।

मुक्तागिरि मे महागज ने १० दिन पर्यंत निवाम किया था। उस ममय का आनद आज भी स्मरण करके हृदय शाति प्राप्त करता है। मुक्तागिरि की यात्रा महाराज ने पीछे की थी, किन्तु वे अपनी तीर्थवदना में उस क्षेत्र को विशेष महत्त्व देते थे।

इसी कारण वे मुक्तागिरि को अपनी ममाधिमरण की भूमि वनाने की अनेक वार इच्छा व्यक्त करते थे। कुथलगिरि जाने के पूर्व वे गुरुदेव मुक्तागिरि आने की ही चर्चा करते थे। विपरीत निमित्तों ने उनकी इच्छा में विघ्न उपस्थित किया। कदाचित् वे मुक्तागिरि आए होते, तो सल्लेखना की ओर उनका इतने शीघ्र झुकाव न होता। भवितव्यता अमिट है।

मुक्तागिरि की अनेक विशेषताएँ हैं। इससे अजैन उच्च आफीसर लोग मुक्तागिरि की वदना भक्ति पूर्वक करते हैं। उनका विश्वास है कि इससे उन्हे तरक्की मिलती है। विदर्भ की जनता के लिए तो मुक्तागिरि सचमुच मे महान् पुण्यधाम तथा जलप्रपात के कारण सुरम्य स्थल भी है।

पू ऐलक महागज ने यह भी वताया कि जव महाराज का सघ मुक्तागिरि आ रहा था तथा जव वह खामगॉव मे आगे वढा, तव आस-पास वडे-वडे ओले गिरे। भीषण वर्षा भी हुई, किन्तु जिस जगह आचार्य महाराज का सघ विराजमान था, उसके आसपास लम्वी दूरी तक न वर्षा हुई और न ओले गिरे। सव लोग निश्चित थे।

ऐलक कुलभूषण महाराज

ऐलक कुलभूषण महाराज (दक्षिण)[1] ने आचार्य शान्तिसागर महाराज की चर्चा करते हुए उनके सम्बन्ध मे एक स्मरणीय घटना सुनाई। उन्होंने कहा - "आचार्य शांतिसागर महाराज शेडवाल मे विराजमान थे। वहाँ से विहार कर वे नसलापुर मे पधारे।

दैविक उपद्रव निवारण

वहाँ दादा पट्टणकुले नाम के ब्रह्मचारी आचार्य महाराज के शिष्य थे। उनके घर मे दैविक उपद्रव होते थे। कभी सबके देखते-देखत कपडा जल जाता था। पेटी के भीतर ही वस्तु जल जाती थी। घर में जहाँ तहाँ आग का उपद्रव होता रहता था। कभी खेत में फसल का नुकसान हो जाता था।

वह पिशाच कहता था कि मुझे बलि दो। बकरा चढाओ। वह पिशाच ब्रह्मचारी जी की भानजी पर आता था। ब्रह्मचारीजी ने कहा - "हम तुमको कुछ भी नहीं देंगे। तुम हमारी जान भी लो, हमारा सत्यानाश भी करो, तो भी हम बलि नहीं देंगे।" वह पिशाच बोला - "कुछ नहीं तो केला तो दो।" ब्रह्मचारीजी ने कहा - "मैं एक लवग भी नहीं दूँगा।" ऐसा क्रम बहुत दिन मे चलता था। जब आचार्य महाराज वहाँ पधारे, तब ब्रह्मचारीजी ने अपनी कष्टमय कथा सुनाई।

घर में प्रतिमा की पूजा

आचार्य महाराज ने कहा - "तुम घर के भीतर जिनेन्द्र की प्रतिमा को विराजमान करके पूजन, अभिषेक आदि क्रिया करो, इससे प्रेत बाधा दूर हो जायगी।" ब्रह्मचारीजी ने ऐसा ही किया। जब घर मे भगवान की प्रतिमा लाकर विराजमान की गई और पूजनादि कार्य हुए, तब व्यंतर बाधा तत्काल दूर हो गई।

कुलभूषण महाराज ने जिनेन्द्रभक्ति से सम्बन्धित एक और उपयोगी बात बताई थी। इस कथन क सम्बन्ध मे उनके पास बेलगाँव जिले से कनडी भाषा मे आगत एक पत्र था। ब्र गजाधर मल्लिनाथ मुनोती, हिरेहट्टी, तालुका खानापुर (बेलगाँव) मे भेजे गए दिनाक १७-९-५६ के उस पत्र मे लिखा था - "भादो मे मदिर जी मे शौचधर्म की पूजा चल रही थी। उस समय देवप्पा सगवी को एक चार-पाँच हाथ लम्बे तथा स्थूल सर्प ने डस लिया। सर्प का विष चढता जाता था।

---

१ उन्होंने आचार्य देशभूषण महाराज मे मुनिदीक्षा ली थी।

देवप्पा को १८ मील पर स्थित बेलगाँव नगर ले जाने के लिए मोटर बुला ली गई। जब मुझे मंदिर में समाचार मिला, तब मैं देवप्पा के पास गया और उसे मंदिरजी में ले आया। मंदिर में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ हैं। मैंने देवप्पा से पूछा - "क्या तुम्हारा हम पर विश्वास है?" उसने कहा - "तुम पर मेरा पूरा विश्वास है। मेरा आप पर इतना विश्वास है कि आपके वचनों पर मैं मरने को भी तैयार हूँ।"

गंधोदक से सर्प का विष निवारण

'मैंने सर्पदंश युक्त स्थान पर बाँधी गई कपड़े की पट्टी दूर की। मैंने तथा पंडित श्रीपाल ने जिनेन्द्र भगवान के समक्ष प्रतिज्ञा की - "भगवन्! जब तक देवप्पा निर्विष नहीं होता है, तब तक के लिए हम दोनों अन्न-जल का त्याग करते हैं।' इसके पश्चात् मैंने महाभिषेक के उपरान्त महाशान्ति मंत्र पढ़ते हुए बड़ी शान्तिधारा की और पंचामृत अभिषेक तथा शान्तिधारा का गंधोदक देवप्पा के शरीर पर डाला। इसके अनन्तर दशलक्षण पूजा का पाठ फिर से चलने लगा। पूजा पूर्ण होने के पूर्व ही देवप्पा का विष दूर हो गया।

पहले अजैन लोग मेरी निन्दा करते थे कि देवप्पा को मार डालेगा, पश्चात् देवप्पा को विषमुक्त देख सबके आनन्द और आश्चर्य की सीमा नहीं रही।" उक्त घटना की सत्यता का निश्चय कुलभूषण महाराज ने स्वयं उस स्थान पर जाकर किया। सन् १९५९ में आचार्य सुबलसागर महाराज का जबलपुर के समीप तिवरी ग्राम में चातुर्मास हुआ था। उस समय एक ग्रामीण को साँप ने डस लिया और उसकी बुरी हालत हो गई थी। उस समय वह व्यक्ति तिवरी लाया गया। आचार्य महाराज ने जिनेन्द्र स्मरण तथा मंत्र द्वारा उसको निर्विष कर दिया। हम तिवरी गए थे तब उक्त घटना का वर्णन तथा जैन धर्म की प्रभावना की वार्ता हमें सुनने में आई। इसी कारण आचार्य शान्तिसागर महाराज सभी को जिनेन्द्रभक्ति के लिए प्रेरणा करते थे। जिनेन्द्र देव की आराधना में अपूर्व सामर्थ्य आज भी है। श्रद्धा चाहिए।

अद्भुत सिद्धियाँ

कुंथलगिरि में सल्लेखना महातप को धारण करने पर आचार्य महाराज की अतरंग निर्मलता तथा प्रभाव अद्भुत रूप से विकसित हो रहे थे। हमारे अत्यन्त परिचित छिंदवाड़ा निवासी एक जैनबन्धु बड़े परेशान थे, क्योंकि उनकी पत्नी दैविक बाधाओं से व्यथित रहती थी। समीक्षा-शील स्वभाव के रहने से वे दैविक बाधा को मानसिक विकृति सोचते थे, किन्तु अनुभव ने उनको अपनी धारणा बदलने को बाध्य किया। मेरे

पूछने पर उन स्नेही जेनवधु ने बताया कि उनकी पत्नी भूखी रहती हुई भी भोजन नही कर पाती थी। यदि बलपूर्वक एक ग्रास भी खिलाया, तो वह मूर्छित हो जाती थी। एक दिन रात्रि को स्त्री ने जोर से चिल्लाकर कहा कि उसकी पीठ पर कई लट्ठा का प्रहार हुआ। शकाशील पति महोदय को विश्वास नहीं हुआ, किन्तु पश्चात् देखा तो पीठ पर बहुत जोर के दड-प्रहार वश नीलापन आ गया था। पीठ सूज गई थी।

एक दिन स्त्री ने कहा कि कोई उसे जला रहा है। वहाँ दपति के सिवाय कोई दूसरा न था। क्षणभर मे शरीर पर दाहजन्य फफोला दृष्टिगोचर हो गया। अनेक प्रकार की चिकित्सा करते हुए भी आपत्ति मे तनिक भी न्यूनता न थी। वह व्यथित महिला कुथलगिरि पहुँची। महाराज के उपवास का सभवत २८ वॉ दिन था। उस महिला के साथी रिश्तेदारो ने अभिषेक की बोली ली थी। भगवान १००८ देशभूषण कुलभूषण का वैभवपूर्वक अभिषेक करने के पश्चात् उन्होने आचार्य महाराज को गधोदक दिया।

वचनमात्र से दैविक बाधा निवारण

उस समय उक्त महिला ने गुरुदेव से कहा - "महाराज! मै बडे कष्ट मे हूँ। दैविक पीडा के कारण भोजन भी नहीं कर पाती हूँ।" इन करुणाजनक शब्दो को सुनकर क्षण भर मे महाराज ने सिर पर पीछी रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा - "अच्छा! अब तुमको कष्ट नहीं होगा।" इन शब्दो के उच्चारण के पश्चात् तत्काल वह महिला उस पीडा से मुक्त हो गई। पर्वत से नीचे आने पर उसने बराबर भोजन-पान किया। मैने २९ अगस्त सन् १९५९ को छिदवाडा जाकर उक्त बातो की जॉच-पडताल की थी। यह कथा तो बहुत लम्बी थी, किन्तु सक्षेप मे उसकी झलक मात्र दी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तप पुनीत साधुराज के शब्दो मे कितना अलोकिक प्रभाव रहता था। दो शब्दो से देविक बाधा दूर हो गई। अद्भुत सिद्धियो से समलकृत आचार्य महाराज की आत्मा थी। सचमुच मे वे योगिराज थे।

श्री क्षुल्लक सुमतिसागर फलटण

शाति पुज सत्पुरुष

फलटण वाले क्षुल्लक सुमतिसागरजी के २६ सितम्बर १९५९ को नातेपुते मे दर्शन हुए। उन्होने महाराज की गृहस्थावस्था से अत पर्यन्त सत्सग तथा गुरुसेवा का लाभ लिया तथा क्षुल्लक दीक्षा लेकर अपना जन्म उज्ज्वल किया। उन्होंने आचार्य महाराज के विषय मे बताया - "महाराज अलौकिक महापुरुष थे। उनके पास अहकारभाव नहीं

था। वडे होते हुए वे अहकार विहीन थे। स्वाभिमान उनमे अवश्य था, जव कभी धर्म की वात आती थी तव गौरव के साथ धर्म की वात कहते थे। शिष्य मडली मे कभी मतभद या विवाद की वात उत्पन्न होती, तो उनके निमित्त मे शीघ्र ही शाति की स्थापना हो जाती थी। वे महान् शातिपुज सत्पुरुष थे।"

क्षुल्लक जी ने महाराज के साथ अपने सपर्क की चर्चा करते हुए वताया - "आचार्य महाराज समडोली मे विराजमान थे। मुझे धावते ने कहा कि तुम्हे अध्यात्म शास्त्र का प्रेम है। तुम समडोली जाओ तो बहुत लाभ होगा। महाराज का अध्यात्म शास्त्र का अनुभव अच्छा है। मैने कारजा जाकर भट्टारक वीरसेन स्वामी के पास चार माह रहकर अध्यात्म का अभ्यास किया था। वीरचद कोदरजी गाधी भी मेरे साथ मे रहे थे। मै समडोली आचार्य महाराज के पास गया।"

अध्यात्म के महान् ज्ञानी

"उनके सत्सग मे मन को वडा समाधान मिला। कारजा के भट्टारकजी के पास जिन शकाओ का समाधान नहीं हुआ था, उनका महाराज के पास सहज ही निवारण हो गया। उनके उत्तर मे मन की पूर्ण तृप्ति हुई। मैं समयसार देखकर महाराज से शकाएँ करता था। महाराज अपनी प्रतिभा और अपूर्व क्षयोपशम शक्ति के आधार पर मधुर समाधान करते थे, उससे सदेह का निवारण हो जाता था। इससे उनकी ओर मेरा आकर्षण वहुत हो गया था। सदा उनके चरणो मे रहने की भावना होती थी।"

तेज पुंज साधु

उनमे तपस्या का अपूर्व तेज था। जो उनके पास आकर दर्शन करता था, उसका मस्तक उनके चरणो के आगे झुक जाता था। वे मुझे चतुर्थकाल के उच्च चरित्र-सपन्न मुनि सदृश दिखते थे। महाराज जिस आसन मे बैठते थे, उसमे परिवर्तन नहीं करते थे। आसन वदलना तो दूर आसन पर से हिलते तक नहीं थे। ऐसा लगता था कि कोई नि कम्प मूर्ति विराजमान हो। विना प्रयोजन के वे एक शब्द भी नहीं वोलते थे। रोज हजार, पद्रह सौ आदमी उन साधुराज के दर्शनार्थ आते थे। वे प्राय मौन रहते थे। हाथ उठाकर आगत नर-नारियो को अपना मगलमय आशीर्वाद देते थे।

अध्यात्म के निर्झर

मैं समडोली से फलटण वापिस आ गया। वहाँ वीरसागर जी, चद्रसागर जी ब्रह्मचारी की अवस्था मे आए थे। मैंने उनसे कहा था - "यदि आपको अध्यात्म का

अमृत पीना है, तो अपनी वाणी के द्वारा तथा अपनी जीवनी के द्वारा जो अध्यात्मरस का निर्झर प्रवाहित करते है, उनके पास समडोली मे जाओ। उनका नाम शातिसागर महाराज है।" मेरी प्रेरणा से वे दोनो महानुभाव वहाँ गए। इस सपर्क से उन दोनो के जीवन मे श्रेष्ठ परिवर्तन हो गया। उनके समान साधु न देखा, न सुना। उनके दर्शन मात्र से लोगो की असयम पूर्ण मनोवृत्ति बदल जाती थी ओर लोगो के हृदय मे उच्च सयम की लालसा उत्पन्न होती थी। वर्तमान काल मे असयमी जीवन मे विरक्ति होकर सयम के कठिन मार्ग मे चलने की ममता तथा प्रेमरस जागृत हो जाना उनके दर्शन का प्रभाव था। सचमुच मे महाराज अलौकिक थे।"

हृदय पर शासन

"उनके समीप जो भी आता था, उसके हृदय को वे जीत लेते थे। उन चारित्र-चक्रवर्ती के चारित्र का चक्र असयम के विरुद्ध चलना प्रारभ हो चुका था। मै तो गृहस्थ था। ससार के समस्त कार्यों में फॅसा हुआ था। मेरी अवस्था उस समय २२ वर्ष की थी, उस सयम-चक्र के प्रभाव से मेरे भाव व्रती बनने के हो गए। मैंने व्रत प्रतिमा ले ली। ५१ वर्ष की वय मे मैंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली। ५६ वर्ष की अवस्था मे मै क्षुल्लक बन गया। मैने बडे उत्साह तथा आनन्दभाव से व्रत लिये थे। मैं बहुत आनद मे हूँ। सयम को पालते हुए अध्यात्मशास्त्र के पढने पर विलक्षण रस आता है। असयमी की अवस्था मे भी समयसार, परमात्मप्रकाश आदि शास्त्र पढे। अब सयम धारण करने के उपरान्त भी उनको पढ रहा हूँ। इस सबध मे अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि सयमपूर्ण जीवन के साथ अध्यात्म का अपूर्व आनद आता है। आत्मा की कोरी चर्चा करने में यथार्थ लाभ नहीं मिलता। अध्यात्म से प्रेम है, तो सयम की ओर अवश्य झुकना चाहिए।

मर्मस्पर्शी आत्मनिरूपण

महाराज शातिसागर जी दिगम्बर मुनि थे। उनके मुख से अध्यात्मसार की चर्चा बडी स्वाभाविक तथा प्रभावपूर्ण होती थी। परिग्रह के जाल मे फॅसा हुआ, विषयी व्यक्ति बुद्धि का वैभव बताकर अध्यात्म शास्त्र का प्रतिपादन करता है, उस उज्ज्वल कथन के पूर्ण विपरीत उसकी प्रवृत्ति होती है, इसका उचित प्रभाव बाहर नहीं पडता है। संयमी जीवन और अध्यात्मशास्त्र की प्ररूपणा इन दोनो का महाराज मे समन्वय देख कहना पडता था कि यह मणि-काचन योग है। समयसार रूप मणि पास मे है, तो जीवन भी तो कचन सदृश चाहिए। लोह के समान निकृष्ट धातु के साथ मणि का सबध विचित्र सा दिखता है।

अंत समय

क्षुल्लकजी को महाराज के पास सल्लेखना के समय रहने का सुयोग प्राप्त हुआ था। उस समय की बात उन्होंने इस प्रकार कही - ' मैं महाराज के पास णमोकार मंत्र पढ़ता तो वे कहते थे हम सावधान हैं। आप कुछ न बोलें। वास्तव में महाराज सल्लेखना काल में सतत सजग रहे। विकारी भावों का वहाँ तनिक भी आविर्भाव नहीं होता था। वे शांति पूर्ण अवस्था में रहते थे। 'अंतिम समय कैसा व्यतीत हुआ' इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया - ' महाराज अंत काल तक सावधान थे। स्वान्मुख थे। प्राणोत्क्रमण के पाँच मिनिट पूर्व मैंने उनके कान में 'णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं' रूप नमस्कार मंत्र पढ़ा था। अंत समय में उनके मुख पर जरा भी विकृति नहीं आई। वह शांत और सौम्य था। नेत्र खुले थे। मेरे ख्याल से उनके प्राण नेत्रों से निकले होंगे। वे महान् थे उनकी उच्चता की कल्पना करना तक कठिन है। आज भी उन गुरुदेव के स्मरण द्वारा आत्मा प्रभावित होती है। वे हृदय में सदा विराजमान हैं।

अजितमती अम्मा

दीक्षा समय उपदेश

अजितमती अम्मा ने नातेपुते में बताया - "आचार्य महाराज ने मुझे शिखर जी में क्षुल्लिका की दीक्षा दी थी। उन्होंने मुझे पहले एकादश प्रतिमाओं का उपदेश दिया और कहा - "हम तुम्हारी आत्मोन्नति के लिए दीक्षा देते हैं। स्त्रीलिंग छेदने को तथा मोक्ष जाने के लिए दीक्षा देते है। संयम से डरना नहीं। आत्मा नहीं मरती है। इस शरीर का मोहकर धर्म को नहीं भूलना। ' महाराज ने कहा था -"चारित्र को उज्ज्वल रखकर कभी भी मर जाना अच्छा है। चारित्र को मलिन बनाकर दीर्घजीवी बनना ठीक नहीं है। महाराज ने मेरे साथ विमलमती को भी दीक्षा दी थी।

वीरसागरजी की प्रशंसा

अन्य त्यागियों का उल्लेख करते हुए अजितमती अम्मा ने बताया - "महाराज वीरसागरजी की सरलता तथा चारित्र की प्रशंसा करते थे। वे कहते थे कि वीरसागर कभी भी हमारे वचन के बाहर नहीं है। उनका वीरसागर पर बहुत विश्वास था।'

श्री भाऊ साहब लाटकर

महान् शक्तिशाली

कोल्हापुर के पहलवान भाऊ साहब लाटकर ने बताया था - "मैं तीन हजार दंड करता था। एक बार में चार सेर दूध पीता था। कोल्हापुर महाराज के यहाँ पहलवान के रूप में रहता था। मैं आचार्य महाराज के साथ शिखरजी गया था।

"वे सूर्योदय होने पर चन्द्रप्रभ पहाड़ पर चढ़ना प्रारम्भ करते थे और तीन मधुवन में आकर सामायिक करते थे। पश्चात आहार को निकलते थे। महाराज चलते समय मार्ग में बिलकुल नहीं रुकते थे। प्रत्येक टोंक पर ही वन्दना हेतु रुका करते थे। मैं सुदृढ़ शरीर युक्त पहलवान था, किन्तु महाराज के साथ चलने में मैं थक जाता था। महाराज में थकावट का कोई विशेष चिह्न नहीं दिखता था। यथार्थ में उत्कृष्ट तप - साधना के लिए वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम भी विशेष सहायक होता है।"

आचार्य महाराज का गमन यथार्थ में विशिष्ट था। वर्धमान महाराज ने बताया था कि आचार्य महाराज १० मिनिट में एक मील चलते थे। लगातार घंटों चलने पर भी उनके पैर नहीं थकते थे।

ब्र जिनदास समडोलीकर

पालीताणा में साधुवर्ग द्वारा प्रशंसा

ब्र जिनदासजी ने सुनाया था कि वे आचार्य महाराज के साथ-साथ गिरनार की यात्रा को गए थे। पालीताणा मे श्वेताम्बर साधुओ का अच्छा समुदाय इकट्ठा था। वहाँ आचार्य महाराज को देखकर वे साधु आपस मे कहते थे - "सच्चे जैन साधु और तपस्वी गुरु तो शांतिसागर महाराज ही हैं।" श्रावक तथा श्राविका महाराज को देखकर कहती थीं - "सच्चे गुरु तो शांतिसागर महाराज है। उन सरीखा साधु कहीं नहीं है।"

आचार्य महाराज गिरनार से लोटते मे सोनगढ़ गए थे। कानजी से आचार्यश्री ने कहा था, "तुमने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया, यह बताओ श्वेताम्बर धर्म मे कौन बात तुम को अनुचित प्रतीत हुई।" इस प्रश्न का उत्तर न पाकर आचार्यश्री ने कहा था "अब हम जाते हैं"। वे वहाँ नहीं ठहरे। इस विषय मे ब्र जिनदास जी ने कहा, "यह हमारे समक्ष की बात थी और पूर्ण सत्य है।" ऐसा ही वर्णन महामुनि १०८ धर्मसागर महाराज ने भी किया, क्योंकि वे भी गिरनार यात्रा मे महाराज के साथ थे। आचार्यश्री के

चारित्र-निर्माण हेतु सामग्री-प्राप्ति में व जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। हम उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं। दुःख है उनका स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती लक्ष्मीदेवी पाटील

नांद्रे से कुमगोडा पाटील के चिरंजीव जनगोडा पाटील कॉन्ट्रेक्टर जयसिंगपुर से आए थे। उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मीबाई भी वहाँ थीं। लक्ष्मीबाई से हमने पूछा - "कुंथलगिरि में आचार्य महाराज ने आपसे क्या कहा था? ऐसे हमने लोगों से चर्चा सुनली है, किन्तु आपके मुख से उसका ज्ञान आवश्यक है।"

संयम की परंपरा चलाना

लक्ष्मीबाई ने कहा - "आचार्य महाराज ने मेरे पति श्री पाटील (जनगोडा) से कहा था कि तुम पिच्छी हाथ में धारण करके ही मरण करना। इस प्रकार की परंपरा अपने घराने में चलाना। पाटील ने महाराज से दस वर्ष का समय माँगा, तब महाराज ने कहा कि तुम्हें दस वर्ष के स्थान में बारह वर्ष का समय देते हैं। इतने समय में तुम दीक्षा ले सकते हो।

लक्ष्मीबाई ने कहा - "महाराज ने मुझे बुलाकर इस विषय में मेरी सम्मति माँगी, तो मैंने उत्तर दिया कि मैं प्रसन्नता से सम्मति देती हूँ।" मैंने पूछा - "आपके पति घर त्यागकर साधु बनेंगे, इस प्रसंग पर आपने कैसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी सम्मति प्रदान की?"

निर्मल भावों की उत्पत्ति

लक्ष्मीबाई ने कहा - "मैं जब महाराज के चरणों के समीप पहुँची और महाराज की वीतराग शान्त मुद्रा का दर्शन हुआ, तब मेरे भाव बहुत निर्मल हुए थे। उस अवस्था में सहज प्रसन्नतापूर्वक मैंने कहा था कि मेरे पति दीक्षा लेते हैं, तो मुझे इस बात में हर्ष है। उस समय मेरे मन में वैराग्य के भाव उत्पन्न हुए थे।"

श्री जनगोड़ा पाटील

मुनि दीक्षा की प्रेरणा

इसके पश्चात् मैंने श्री जनगोडा पाटील से पूछा - "आप से महाराज की क्या-क्या चर्चा हुई थी और कितनी देर तक आचार्य महाराज ने आपको अपने पास स्थान दिया था?"
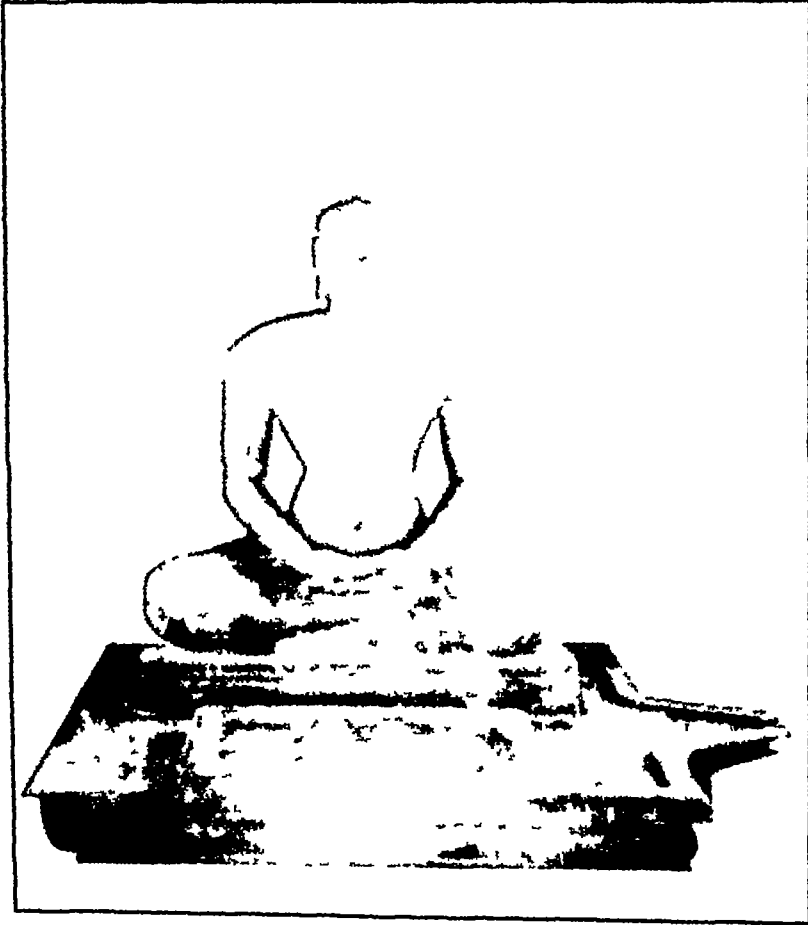
भगवान शान्तिनाथ की कलामय मूर्ति तथा
आचार्य शान्तिसागर महाराज के चरणयुगल
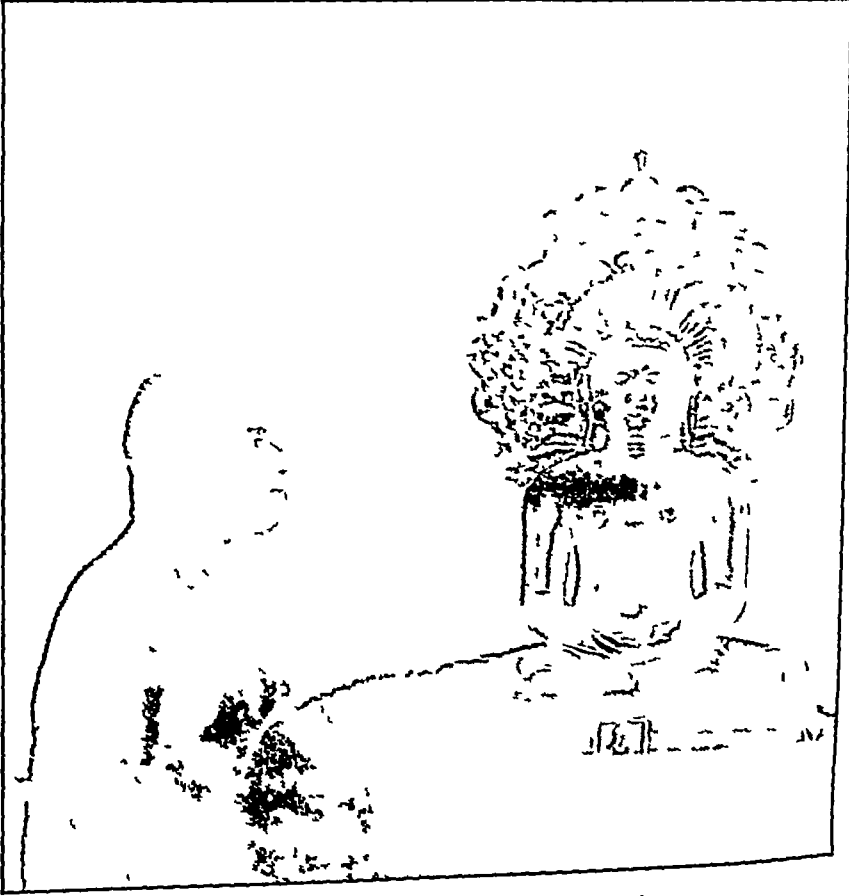
आचार्यरत्न देशभूषण महाराज जिनेन्द्रदर्शन करते हुए

श्री पाटील ने बताया - ''लगभग एक घटा तक महाराज से हृदय की वाते हुई थीं। महाराज ने पहले मेरे समक्ष अपने पूर्वजो का पवित्र इतिहास सुनाया। घराने के तेजस्वी जीवन, वैभव तथा धार्मिक प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला। उसे सुनकर मेरे मन मे वडा उत्साह उत्पन्न हुआ तथा वहुत उज्ज्वल भाव जगे। महाराज के कथन का अतरग रहस्य यह था कि तुम अपने वश की प्रतिष्ठा के अनुसार कार्य करना। ऐसा काम नहीं करना, जिससे वश के नाम पर कलक लगे।

ऐसा कहने के वाद महाराज ने मुझे पिच्छी हाथ मे लेकर निर्ग्रन्थ वनने को कहा। उन्होने यह भी कहा कि तुम दीक्षा लेने के वाद अपने पुत्र को भी ऐसा ही करने को कहना, जिससे घराने मे दीक्षा लेने की पवित्र परपरा क्रमश चलती जाये।''

अल्प परिग्रह हेतु प्रेरणा

महाराज ने यह भी कहा था - ''अव तुम अधिक धन-सचय के भाव को छोडकर अल्प परिग्रह मे ही सतोष धारण करो। अधिक परिग्रह मत वढाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। जितना तुम्हारे पास है, वह पर्याप्त है, आवश्यकताओं को थोडी करो, अधिक के लिए प्रयत्न नहीं करना।'' अधिक सग्रह के महारोग से पीडित मानव समाज यदि आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित अल्प परिग्रह के रास्ते पर चले, तो अधिक तृष्णा के कारण उत्पन्न आर्थिक सकट शीघ्र ही दूर हो जायेगा। इस विषय मे कवीर के शव्द ध्यातव्य हैं-

कहा चुनावे मेढिया लांबी भीत उसार।
घर तो साढे तीन हाथ घना कि पौने चार॥

''तुम पहले क्षुल्लक दीक्षा लेना, या ऐलक दीक्षा लेना। बारह वर्ष के भीतर ऐसा कर सकते हो। गडबड मत करना। शात तथा स्थिर भावपूर्वक कार्य करना।''

ससार मे सभी वृद्धजन अपनी सतति को इस प्रकार का उपदेश देते हैं कि तुम लौकिक वैभव और विभूति के सग्रह मे सर्वश्रेष्ठ बनना, किन्तु साधु शिरोमणि शातिसागर महाराज ने तपोलक्ष्मी की प्राप्ति तथा वृद्धि के लिए उपदेश दिया। इसका कारण यह है कि अकिंचनता को आभूषण मानने वाले आचार्य महाराज ने तपश्चर्या रूपी धन का सग्रह किया, अत उन्होने अपने भतीजे जनगोडा पाटील को सयमश्री के सग्रह हेतु प्रेरणा की थी।

गजानन भाऊ मूग कोल्हापुर

सरलवृत्ति

कोल्हापुर के धर्मप्रेमी बधु गजानन भाऊ मूग महाराज के पास फलटण गए। मदिर प्रवेश केस सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण चर्चा करके जाने को तैयार हुए। महाराज ने पूछा - "तुम जल्दी जा रहे हो। भोजन किया या नहीं?" मूग महाशय ने निवेदन किया - "महाराज! आपके आहार को अभी देर है, इससे हम अभी वैसे ही जाते है?" करुणामूर्ति महाराज ने कहा - "हमारे आहार का तुम्हारे भोजन से क्या सबध?"

तपोमय मुनि जीवन

दक्षिण के अनेक मान्य तथा विचारशील लोगो ने बताया कि उत्तर प्रात की ओर प्रस्थान करने के पूर्व आचार्य महाराज अधिक अतर्मुख वृत्ति थे। जिस समय उनके शरीर पर सर्प लिपटा था, उस समय महाराज साक्षात् तपोमूर्ति दिखते थे। उस समय उनके मुख से निकले हुए एक-एक शब्द को लोग अमृत की घूँट समझकर पीते थे। वे बहुत कम बोलते थे। उग्र तप और ध्यान मे निमग्न रहा करते थे। उस काल मे उनमे अनेक अद्भुत सिद्धियो की जागृति का आभास सा होता था।

चमत्कार

एक व्यक्ति के घर मे एक बच्चा भयकर बीमार था। महाराज ने अपने अत करण के प्रकाश से बच्चे की बात जान ली और घरवालो को कहा - "घबडाओ मत। बालक अच्छा हो जायगा।" बालक अच्छा हो गया। लोग आश्चर्य मे पडे कि बच्चे की बात का महाराज को कैसे पता चल गया। लोकोत्तर तपस्वी साधुराज उत्तर की तरफ जाकर लोकव्यापक तथा महोपकारी आचार्य हो गए।

सन् १९२७ मे महाराज इस्लामपुर गए थे। उस समय अनेक जैनधर्म-विद्वेषियो ने सगठन कर यह निश्चय किया था कि महाराज को लगोटी पहिना कर ही नगर मे से निकलने देगे। उस धर्म सकट के समय हजारो क्षात्र धर्म वाले जैन तलवार बदूक, भाला आदि लेकर वहॉ इकट्ठे हो गए। कोल्हापुर के तत्कालीन जैन दीवान लट्ठे साहब ने समाचार दिया था कि आवश्यकता पडने पर मै कोल्हापुर की सेना भेजूगा। महाराज के प्रभाव से नगर का प्रमुख अधिकारी जैनधर्म का पक्षकार बन गया। उसने विरोधी व्यक्तियो को सूचना दी कि यदि कुछ भी गडबडी हुई तो तुम लोगो को हथकडी पहिनाई जायगी।

पराक्रम का पोषण

उस समय सघ मे विद्यमान चद्रसागरजी ने लोगो से कहा कि वे शान्त रहे। उत्तेजित न हो। यह सुनकर आचार्य महाराज बोले - "यहाँ शाति का उपदेश असामयिक है। यह शात रहने का मोका नहीं है। धर्म की प्रतिष्ठा-रक्षण के हेतु लोग जो उचित समझेगे, सो करेगे। जब विधर्मी लोग निर्ग्रन्थ साधुओ को वस्र पहनाने की तेयारी कर रहे हों, उस समय समर्थ धार्मिक लोग केसे चुप बेठेंगे?" इसमे आचार्य महाराज की दृष्टि एक क्षत्रिय तेजस्वी साधु के अनुरूप थी। परिस्थिति के अनुसार प्रवृत्ति करने का जेनधर्म का आदेश है। क्षत्रिय वृत्ति से सद्धर्म का सरक्षण होता है। जेनधर्म वीरो का धर्म हे, कायरो का नहीं।

उपद्रव में शांत भाव

आचार्य महाराज जब साधु परमेष्ठी थे, उस समय उनको बडी-बडी विपत्तियो का सामना करना पडा था, परन्तु उनके सच्चे तपोबल से सकट शीघ्र दूर हो जाते थे। एक बार महाराज कोगनोली से कागल ग्राम जा रहे थे। उस समय वे क्षुल्लक थे। साथ मे कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। ग्वालो के कुछ दुष्ट लडको ने महाराज को शात भाव से विहार करते देखकर उन पर पत्थर फेंकना शुरू किया। महाराज तो शान्त थे। इतने मे वहॉ एक सर्प आ गया और उसने फण उठाकर बच्चो की तरफ देखा कि वे सब भाग गए। महाराज आगे बढ गए। वे यथार्थ में धीरोदात्त थे।

तप:तेज

आचार्य महाराज जब मिरज पहुँचे, तब मिरज के राजा उनका दर्शन करने तथा उपदेश सुनने सभा मे पधारे। उनके लिए विशिष्ट आसन तैयार किया गया था। मिरज नरेश ने कहा - "मैं ऐसे योगिराज के चरणो मे ही आप सब के साथ बैठने का पात्र हूँ।"

अविवेकी भक्त

महाराज ने कुथलगिरि में एक बार कहा था - "यमराज कहता है कि हम तुम्हे अभी नहीं ले जाते, किन्तु मैं जबरदस्ती जा रहा हूँ।" कई लोग कहते थे - "महाराज आपके नेत्रो की ज्योति मद हो गई है, आप आहार कैसे लेते हो?" अनेक लोग ऐसे भी थे, जो समाधिमरण का क्या अर्थ है, इसे बिना सोचे-समझे ही समाधि लेने के लिए महाराज को ऐसे ही प्रेरित करते थे, जैसे विरक्त परिणाम वाले तीर्थंकर के पास आकर

लौकान्तिक प्रेरणा करते है। अन्तर इतना ही है कि लौकान्तिकदेव विवेकमूर्ति होते हैं और ये प्रेरक व्यक्ति विवेक-विहीन थे।

विरक्ति मे महान् वृद्धि

कुथलगिरि जाने के पूर्व मिरज तरफ महाराज का विहार हुआ था। मिरज के समीप महाराज के पैर मे एक कॉटा गड गया, तव महाराज वोले - "अव भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु कर्मचक्र मुझे फिराता है, घुमाता है।" कॉटा विना निकाले भी वे कुछ दूर तक चलते रहे। साथ के लोगो ने वहुत आग्रह किया, तव उन्होने कॉटा निकालने दिया।

समय के पूर्व समाधि

इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मन मृत्यु से युद्ध करने को पूर्ण तैयार हो रहा था। ऐसी मानसिक स्थिति मे कुछ भोले भक्त तथा कोई-कोई अपने को विशेष बुद्धिमान मानने वाले व्यक्ति आचार्य महाराज को शीघ्र सल्लेखना लेने की प्रेरणा देते थे, सलाह देते थे और यदा-कदा स्मरण दिलाते थे। इस सल्लेखना-प्रसग पर पर्याप्त ऊहापोह के पश्चात् हमे तो ऐसा लगता है कि यदि ऐसी विपरीत सलाह देने वाली मडली न होती, तो जैन समाज को अपने श्रेष्ठ गुरुदेव के दर्शन का लाभ अभी और कुछ समय तक होता। इतने जल्दी वह राजहस यहा से जाकर लोकान्तर को प्रयाण न करता।

भवितव्यता

भवितव्यता बडी प्रबल होती है। समतभद्र स्वामी ने उसे अलघ्य शक्ति-युक्त कहा है। बाह्य-अतरग सामग्री के मिलने पर होनहार को कोई नहीं टाल सकता है। एक दिन १०८ वर्धमानसागर जी ने मराठी भजन के ये शब्द कहे थे - "कर्म बलवान मोठे, भोगा बिन चुके न कोठे" - "कर्म बडे बलवान हैं। वे अपना फल दिये बिना नहीं छूटते।" कर्मो को जबरदस्ती उदयावली मे प्रवेश कराकर तपस्वी अविपाक निर्जरा भी करता है, किन्तु बहुत से ऐसे कर्म बँधे रहते हैं कि उनको भोगना ही पडता है। भगवान आदिनाथ स्वामी ने पूर्व जन्म मे एक बैल को छ घटे भूखा-प्यासा रखा था, उसका फल यह हुआ कि तीर्थकर पदवीधारी निर्ग्रन्थ होने पर उनको छ माह पर्यन्त अन्तराय कर्मोदयवश प्रयत्न करते हुए भी विधिपूर्वक आहार का लाभ नहीं मिला अत भवितव्यता के अनुसार आचार्य महाराज के स्वर्गारोहण के विषय मे बाह्य अतरग सामग्री की अनुकूलता प्राप्त हो रही थी।

भावो की विचित्रता

आचार्य महाराज ने सदा ज्योतिपशास्र को देखकर महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, किन्तु यम सल्लेखना लेकर कुथलगिरि के पहाड पर चढने का उनका परिणाम अमावस्या को हुआ। उनसे निवेदन भी किया गया कि महाराज आज का दिन ठीक नहीं, किन्तु इस कथन का उन पर कोई असर नहीं हुआ। वे कहने लगे - "अमावस्या को क्या देखना? उस दिन तो महावीर भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया था। भगवान ने क्या मुहूर्त देखा था?"

अपूर्व सामर्थ्य संपन्न तपस्वी

वास्तव मे आचार्य महाराज की तपस्या अपूर्व तपस्या रही है, जिसके कारण विपरीत परिस्थितियो के मध्य मे भी उनका मन शाति का सागर ही रहा और ३६ दिन के लम्बे समय तक उन्होंने सच्ची सल्लेखना-काय और कषाय की लेखना अर्थात् काय और कषायो को कृश करने का कार्य करते हुए अपने जन्म को कृतार्थ किया। यथार्थ मे महाराज का मन सुमेरु पर्वत सदृश स्थिर था। प्रलय के पवन से अन्य पर्वत कपित होते हैं, मेरु नहीं। आचार्य महाराज ने जीवन भर महान् तप किए। उन्होने सिह-विक्रीडित सदृश कठोर तप किया था। वे एक बार हमसे कहते थे कि हमने सब प्रकार के तपो का अभ्यास कर लिया है। तपोग्नि द्वारा उनका जीवन अत्यन्त परिशुद्ध बन चुका था, इससे अतकाल में सक्लेशकारक सामग्री का समुदाय उनके लिए ऐसा ही हुआ, जैसे समुद्र के लिए एक अग्नि का स्फुलिंग होता है।

तपस्या का रहस्य

तत्त्वज्ञानी महात्मा को भी तपस्या करने का आगम मे उपदेश दिया गया है, इसका रहस्य आचार्यश्री के सल्लेखना काल मे स्पष्ट हुआ। यदि आराम के साथ वे जीवन व्यतीत करते और सयम तथा सयमी के सपर्क से बचते रहते, तो उनकी जीवन नौका श्रेष्ठ सल्लेखना के सौभाग्य से वचित हो सक्लेश के सागर मे समाप्त हुए बिना न रहती, इसीलिए पूज्यपाद स्वामी ने समाधिशतक मे मुमुक्षु को कष्ट सहन करने के लिए प्रेरणा की है -

अदु:ख-भावितं ज्ञान क्षीयते दु.खसन्निधौ।
तस्माद्यथाबल दु:खैरात्मान भावयेन्मुनि: ॥१०२॥

-जिस ज्ञान ने दु ख सहन करने की भावना नहीं की है, वह दु ख के आगमन

होते ही विनष्ट हो जाता है, इसलिए मुनि का कर्तव्य है कि यथाशक्ति कष्टो को सहन करके आत्मा को सुदृढ बनावे।

अद्भुत बात

महाराज की सल्लेखना के अतिम दो तीन दिन तक ऐसा दिखता था कि अब आत्मा शरीर का त्याग करने को तैयार बैठी है। एक दिन तो लोगो मे ऐसा प्रवाद फैल गया था कि ३४ वे दिन रात्रि को ही महाराज दिवगत हो गए। जब महाराज की शरीर-स्थिति अत्यन्त क्षीण हो गई थी, तब शास्त्र से परिचय रखने वाले विवेकी विद्वानो तथा विशिष्ट त्यागियो की महाराज के आस-पास उपस्थिति आवश्यक थी। ऐसे लोग सेवार्थ नैयार बैठे थे, किन्तु वहॉ का रग-ढग आरम्भ से ही अद्भुत रूप मे था। मेरा आचार्यश्री के साथ निकट सबध रहा। मुझे तक स्वार्थी तत्त्वो ने नही बुलाया। समाधि की प्रतिज्ञा लेने की सूचना तक प्रबधको ने हमे नहीं भेजी थी।

भ. लक्ष्मीसेन जी

आचार्यश्री की समाधि बेला मे भट्टारक लक्ष्मीसेन जी ने महत्त्वपूर्ण सेवा की थी। वे आचार्यश्री के अत्यन्त विश्वासपात्र तथा विद्वान् भक्त थे। समाधिमरण काल समीप आ गया। उस समय का उनका कथन महत्त्वपूर्ण है, ''प्रबधको ने कहा था, हम आपको २ बजे रात को जगावेगे। पर उन्होने ऐसा नहीं किया - अत ५ बजे हम स्वय महाराज की कुटी मे गए।'' उन्होने देख लिया कि अब यह धर्म का सूर्य अस्ताचल को स्पर्श कर चुका है और इसको पूर्ण रूप से अस्तगत होने मे कुछ भी काल शेष नहीं है। इससे उन्होने 'सिद्धोह, बुद्धोह, आनदरूपोह' सदृश जोर-जोर से जप करना प्रारभ किया। कभी-कभी वे 'णमो सिद्धाण' का भी जप करते थे। महाराज के सामने की ओर सघपति सेठ गेदनमलजी, सेठ चदूलालजी सराफ तथा लक्ष्मीसेन स्वामी थे और पृष्ठ भाग की ओर भट्टारक जिनसेनजी, क्षु सिद्धसागर (भरमप्पा) थे। करीब ६ बजे तक मत्रो का पाठ चलता गया। करीब पौने छह बजे उपाध्याय गधोदक लाया और महाराज से कहा गया - ''यह गधोदक आया है। क्या आपको लगा दे?''

महाराज ने कहा - 'हूँ', तब गधोदक उनके शरीर मे लगाया गया। कुछ समय के पश्चात् पूछा - ''क्या आपको उठाकर बैठा दे?'' उन्होंने हाथ से निषेध किया। 'निर्मलोह', 'निरजनोह', आदि मत्रो का उच्चारण किया जा रहा था। भक्तामर का पाठ

भी प्रारम्भ हुआ और १७ वॉ पद्य पढा गया।''[१]

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्य.।
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नांभोधरोदरनिरुद्ध - महाप्रभाव:।
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

- हे मुनीन्द्र! आप कभी भी अस्त को नहीं प्राप्त होते, आप राहु द्वारा ग्रास नहीं किये जाते, एक क्षण मे समस्त विश्व को प्रकाशित करते है, आपका महान् प्रभाव मेघो के द्वारा नहीं रोका जाता, आपकी महिमा लौकिक सूर्य की महिमा से अधिक है।

जिस समय ये शब्द निकले - 'मुनीन्द्र! नास्त कदाचिदुपयासि' - 'हे साधुराज! आप कभी भी अस्तगत नहीं होते,' उसी समय उन श्रेष्ठ सयमी क्षपकराज के जीर्ण शरीर से चैतन्य ज्योति ने लोकान्तर को प्रस्थान कर दिया। अब जिन आचार्य शातिसागर महाराज के सद्भाव से हम अपने को कृतार्थ माना करते थे, वह विभूति स्वर्गीय निधि बन गई। चैतन्य ज्योतिरहित वह तप पुनीत शरीर वहॉ ही पडा रहा। वह सूचित करता था कि जीव से शरीर यथार्थ मे पृथक् है।

अतिम क्षण मे महाराज का मुख पश्चिम की ओर था। यह स्वाभाविक ही था। सूर्य की उदय की दिशा पूर्व है और अस्त होने की दिशा पश्चिम है। धर्म का सूर्य पश्चिम मुख हो अस्त हो गया, यह बात निसर्ग के अनुकूल ही रही। व्यावहारिक जनो की दृष्टि मे यह धर्मसूर्य अस्तगत हुआ, किन्तु यथार्थत देखा जाय, तो कहना होगा कि सम्यक् प्रकार से श्रेष्ठ समाधि की साधना के फलस्वरूप महाराज की आत्मा का सामान्य उदय नहीं बल्कि महान् अभ्युदय हुआ होगा। इस तथ्य को ध्यान मे रखने पर प्राणोत्क्रमण बेला मे पठित भक्तामर का १७ वॉ काव्य इनके पूर्ण अनुरूप रहा। ये मुनि तो थे ही। धर्म के सूर्य भी थे। धर्म का सूर्य अस्तगत नहीं होता, वह तो नित्य उदित रहता है, अत महाराज की महिमा वास्तव मे सूर्यातिशायी हुई।

---

१ ऋद्धिमत्र - ''ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठगमहाणिमित्त-कुसलाण। ॐ णमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्र-पीडा जठरपीडा भजय भजय सर्वपीडा-सर्वरोगनिवारण कुरु कुरु स्वाहा। मत्र पास रखने से, अछूता पानी मत्र द्वारा २१ बार मत्र कर पिलाने से पेट की असाध्य पीडा, वायुशूल, गोला सभी मिटते हैं। विधान- सात दिन पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार जाप सफेद माला द्वारा करनी चाहिए।

महत्त्व की बात

मैने भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज से पूछा - "क्या आपसे कोई महत्त्व की बात महाराज ने कही थी?"

उन्होने उत्तर दिया - "महाराज ने कहा था कि "वर्धमानसागर का ध्यान रखना तथा अन्य साधुओ पर भी दृष्टि रखना।" उनका अभिप्राय था कि समाधिमरण का काल समीप आने पर उनका ध्यान रखना।

भट्टारक लक्ष्मीसेन जी की बुद्धिमत्ता

मैने भट्टारक लक्ष्मीसेनजी से महाराज के सल्लेखना काल मे होने वाली अव्यवस्था और गडबडी के विषय मे चर्चा की, तब उन्होने अपने पद के अनुरूप ये गौरवपूर्ण शब्द कहे थे - "हमने भट्टारक जिनसेन स्वामी से कहा था कि यहॉ हमे अपने मान-अपमान का विचार छोडकर गुरु की सेवा करना है। यहॉ आचार्य महाराज कितनी महान् सल्लेखना कर रहे है। वे इतना सहन कर रहे है, तब हम क्यो कुछ भी सहन न करे? हम यहॉ एक व्यक्ति के लिए आए है, हमे दूसरो को नहीं देखना चाहिए। इससे हम चुप रहते थे। जब विशेष विपरीत स्थिति देखते थे, तब दूसरो से अपना अभिप्राय कह देते थे।"

श्री धनपाल बापूराव चौगुले अक्किवाट

भोज ग्राम के समीप लगभग १० मील की दूरी पर अक्किवाट नाम का एक ग्राम है, जो महामात्रिक विद्यासागर दिगम्बर मुनिराज की धर्मप्रभावना एव समाधि की भूमि रहा है। हमे बताया गया कि विद्यासागर मुनिराज ने यवन नरेश अकबर के दरबार में जैनधर्म के गौरव को वृद्धिगत किया था। एक बार उन्होने अमावस्या को मत्र करके एक थाली आकाश मे फेकी थी, वह रात्रि भर पूर्णचद्र के समान प्रकाश देती रही थी। यह बात उस स्थान पर खूब प्रसिद्ध है। अमावस्या को बहुत लोग वहॉ जाकर विद्यासागर महाराज की निषीधिका को प्रणाम करते है। सभी जाति के लोग उन महामुनि की भक्ति करते है।

आचार्य महाराज कई बार उस ग्राम मे गए थे। वे विद्यासागर मुनिराज के समाधि स्थल पर जाकर प्रात काल स्तोत्र पाठादि करते थे। कभी-कभी मध्याह्न की सामायिक भी वहॉ करते थे। महाराज कहा करते थे - "तुम विद्यासागर मुनि की भक्ति करो, यह स्थान पुण्यभूमि है।"

श्री धनपाल बापूराव चौगुले हेडमास्टर अक्किवाट ने बताया कि आचार्य महाराज जब यहाँ के समीपवर्ती ग्रामो मे विहार करते थे, तो इस स्थान का तथा विद्यासागर मुनिराज का गौरवपूर्ण शब्दो मे उल्लेख किया करते थे। यहाँ से १२ मील दूर चिचली ग्राम मे सन् १९२५ मे महाराज का भाषण हुआ था। बहुत लोगो ने पाप का त्यागकर व्रत लिये थे।

एक खास महत्त्व की बात यह हुई थी कि एक वेश्या के हृदय मे धर्म की भावना जगी और उसने अपनी पापवृत्ति का त्याग किया था। उस समय महाराज के चरण जहाँ पडते थे, वहाँ मेला सा लग जाता था।

शास्त्रानुसार उपदेश

उस जमाने मे महाराज दो-दो घटे कानडी में बडा मार्मिक उपदेश देते थे। उनकी उपदेश पद्धति शास्त्रानुसार ही होती थी। वे जनानुरजक की पद्धति का अनुकरण नहीं करते थे। अधिकाधिक लोगो को प्रसन्न करके यश प्राप्त करने की उनकी चेष्टा नहीं रही। मैंने मजरेवाडी, नादणी, कुरुन्दवाड, शिरोड आदि ग्रामो में महाराज के उपदेश को सुना है और उनका लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रभाव देखा है।

उनके स्वर्गवास होने पर आसपास के ग्रामवासी सभी जाति वालो ने उपवास आदि किए थे। सगे-सबधी की मृत्यु से भी अधिक दु ख उनके वियोग का लोगो ने माना था।

सुभिक्ष

जब आचार्य महाराज हमारी तरफ पधारे थे, उसके तीन चार वर्ष पूर्व यहाँ धान्य की उत्पत्ति बहुत कम हो गई थी, किन्तु महाराज के पधारने के वर्ष मे इतनी अधिक मात्रा में फसल आई कि पिछले वर्षो की कसर तक निकल आई। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवो की मन, वचन, काय, कृत, कारित तथा अनुमोदना पूर्वक निरन्तर रक्षा करने मे तत्पर उन दया के देवता के शरीर से निकलने वाली पुण्यवर्गणाओ से वनस्पतिकायिक जीवो को भी हर्ष हुआ था। निमित्तशास्त्र भी तो कहता है कि जिस मार्ग से सच्चे दिगम्बर तपस्वियो का विहार होता है, वहाँ सुभिक्ष का आवास होता है। वे भगवान से प्रार्थना करते थे - ''प्रभो! दुर्भिक्ष चोर-मारी क्षणमपि जगता मास्मभूत् जीवलोके।''

कुथलगिरि के गरीब व्यापारी

कुथलगिरि मे महाराज के स्वर्गवास होने के अनतर गरीव लोग वाते करते थे - "भगवान्! इन साधु महाराज को क्यो जल्दी वुला लिया? कहीं एक माह ये वावा और जीवित रहते, तो हमारा भाग्य जग जाता।"

श्री गौतम रामचन्द शाह म्हसवड़कर

श्री गौतम रामचद शाह म्हसवडकर ने एक मनोरजक वात सुनाई। गौतमभाई जामुन के वृक्ष पर चढ रहे थे कि डाल टूट पडी, इससे उनका पैर टूट गया। उनको देखकर कुथलगिरि जाने के पूर्व महाराज वोले -

विनोद

"गौतम! तुम मेरे माथ-साथ कुथलगिरि अवश्य चलना। कारण, मेरे नेत्रो की ज्योति मद हो रही है। तुम लगडे हो और मै अधा होता जा रहा हूँ। 'अधे-लगडे की' जोडी वराबर रहेगी।" ऐसा विनोद कर वे हँसने लगे। उनकी सरलता तथा मधुरता अवर्णनीय थी। गौतम भाई ने एक वात और सुनाई - "पैर टूटने के एक वर्ष वाद सन् १९५२ मे मै आचार्य महाराज के पास दहीगॉव मे पहुँचा। लोग मेरे प्रति समवेदना का भाव व्यक्त करते थे।

सांत्वना

उस समय आचार्य महाराज ने कहा - "गौतम! पैर टूट गया। कोई बात नहीं। पूर्वबद्ध अशुभ कर्म की निर्जरा हो गई। यह अच्छा ही हुआ। इस प्रकार बुराई मे भी भलाई देखने की मनोवृत्ति उन ऋषिराज की थी। उनकी वाणी की युक्तियुक्तता से मेरे दु खी मन को वडा सतोष हुआ और सात्वना प्राप्त हुई। सचमुच मे यदि मैने पूर्व मे पाप-कर्म का सचय नहीं किया होता, तो इस प्रकार की वेदना अकस्मात् स्वय नहीं आ सकती थी। जैसा बीज जीव बोता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। व्यर्थ ही हम अज्ञानवश दूसरो को दोष देते है।

करुणापूर्ण हृदय

महाराज का हृदय करुणा रस से परिपूर्ण था। इस विषय मे गौतम भाई ने सुनाया - "एक बार महाराज कुथलगिरि जा रहे थे। मार्ग मे जोरदार पानी बरसने लगा। हम लोग भीगने लगे, तब महाराज ने कहा कि भीगो मत। कुटी के भीतर आ जाओ। उस

छोटी सी कुटी में हम लोगो के जाने से महाराज को कितनी असुविधा होगी, यह बात हमने सोची। उन ऋषिराज के चरणो के समीप बैठने की मान्यता वाला व्यक्ति उनके बराबरी के स्थान पर कैसे बैठेगा, इस सकोचवश हम भीतर नहीं गए, किन्तु उन दयामूर्ति गुरुदेव ने अपनी करुणापूर्ण भावना व्यक्त करने मे देर नहीं की।

व्रत प्रतिमा दान

"महाराज विनोदवश मुझे गौतम कहते-कहते कभी-कभी गणधर भी कहकर बुलाते थे।" एक दिन महाराज बोले - "गौतम! तुम अपने हाथ से तो सदा भोजन बनाते हो, इसलिए प्रतिमा क्यो नहीं लेते? आटा पीसने का प्रश्न कोई कठिन नहीं है। बडे-बडे अधिकारी तक आहार दान के हेतु स्वय चक्की चलाकर आटा पीसा करते है। इससे तुमको व्रत प्रतिमा लेने मे नहीं डरना चाहिए।" महाराज ने सल्लेखना काल मे मुझे व्रत प्रतिमा देकर मेरा भविष्य सुधार दिया।

संयमी का अर्थ-संचय बुरा है

कोई-कोई व्यक्ति ऊँचा सयम धारण करते हुए भी अर्थ-सचयादि के कार्य मे भाग लिया करते हैं। उनके विषय मे महाराज का कथन चिरस्मरणीय हे - "एक म्यान मे दो तलवारे नहीं रहती है, इसी प्रकार अर्थोन्मुख चित्त आत्मोन्मुख नही रह सकता तथा आत्मोन्मुख मन अर्थोन्मुख नहीं होता। अत: आत्मा का उद्धार करने वाले संयमी को अर्थ-सचयादि के फेर में नही फँसना चाहिए। अर्थसचय मे प्रवृत्त साधु को दातार की प्रशसा करनी पडती है। उसके प्रति विशेष राग भाव पैदा होता है। जिसने दान नहीं दिया, उसके प्रति चित्त मे मलिन भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। राग-द्वेष की निवृत्ति ही तो सयमी जीवन का लक्ष्य है। समतभद्र स्वामी का वाक्य है। "रागद्वेष-निवृत्त्यै चरण प्रतिपद्यते साधु " अत ऐसे प्रसगो से बचना चाहिए, जो रागद्वेष की भावनाओ को जगावे।

क्षुल्लक महाबल जी (वर्तमान मुनिराज)

क्षु महाबल जी ने शिखरजी जाते हुए हमे बताया कि "पायसागर महाराज के हृदय मे आचार्य महाराज की अपूर्व भक्ति थी। उन गुरुदेव के कारण ही उनकी समाधि सम्यक् सपन्न हुई। ९ बजे उक्त पायसागर महाराज को भक्तामर मैंने सुनाया। दस मिनिट वे ध्यान मे बैठे। ध्यान अवस्था मे ही उनकी परलोक यात्रा हो गई।"

श्री सुब्वैया शास्त्री कारकल

महाराज की वृत्ति न्यायपूर्ण रहती थी। श्री सुब्वैया शास्त्री कारकल वाला ने बताया - प्रारम्भ मे आचार्य महाराज के सघ के कोल्हापुर जिले मे दर्शन प्राप्त हुए। सघ के कुछ साधु श्लोको का अशुद्ध पाठ कर रहे थे। मैने महाराज से कहा कि महाराज यह अशुद्ध पद्य-पठन ठीक नहीं है।''

महाराज ने कहा - ''आप ठीक कहते हैं, आप सरीखे ज्ञानवान शास्त्री पडित सघ मे साथ रहे, तो सव सुधार हो जायगा।'' महाराज ने मेरे कहने का तनिक भी विपरीत अर्थ न लेकर न्याय का ही समर्थन किया था।

श्री जिनकुमार बैतूल

वैतूल के पोस्टमास्टर श्री जिनकुमार आचार्य महाराज के समीप गजपथा चातुर्मास के समय लगभग एक वर्ष रहे थे। उन्होने वताया - ''आचार्य महाराज के समीप अरविदकुमार रावजी दोशी केमरा लेकर महाराज की फोटो उतारने पहुँचे, तव महाराज ने पूछा कि तुम हमारी फोटो क्यो उतारते हो?''

अरविन्द ने कहा - ''आप समान सद्गुरु का दर्शन प्रतिदिन नहीं होता। इसलिए आपकी फोटो खींचते हैं, जिससे आपका दर्शन परोक्ष रूप से हो जाए।''

महाराज बोले - ''मदिर मे प्रतिमाजी बहुत है, उनका दर्शन करके अपना कल्याण क्यो नहीं करते?''

''रात्रि के समय मै महाराज की कुटी के समीप ही सोता था। रात्रि को महाराज लघुशका के लिए उठते थे। वे अधेरे मे सोते थे। उनकी आहट मिलते ही मै जागता था और टार्च के प्रकाश से भूमि को शुद्ध दिखाता था। उपवास के दिन महाराज नहीं उठते थे। महाराज के समीप पूर्ण नीरवता रहती थी। वे बिलकुल चुपचाप रहते थे। कभी-कभी मैंने देखा कि ज्वर के कारण शरीर बहुत गर्म है, किन्तु वे चुपचाप रहे आते थे, मानो पूर्ण नीरोग हो। मैं रात को कभी जागता था, तो उन्हे सदा सावधान तथा ध्यान की स्थिति में पाता था।

विनोद द्वारा शिक्षा

एक दिन मुझे जोर की नींद आ गई। मैं निद्रा मे निमग्न था। प्रभात मे उन्होने

विनोदपूर्वक पूछा- "रात को तुम कहाँ चले गए थे।" मै उनके प्रश्न का अर्थ न समझ सका। तब उन्होने मेरी गहरी निद्रा का हाल बताया।

सामायिक के पूर्व मै उनके नेत्रो मे औषधि लगाता था। मैने पूछा - "इस अजन से लाभ हुआ या नहीं।" महाराज ने कहा - "कुछ भी लाभ नहीं है।" विनोद पूर्ण मुखाकृति के साथ कहने लगे - "इतने बडे शरीर मे इतनीसी औषधि क्या करेगी?"

प्रश्न - आप कोमल नेत्रो मे अजन लगाने का कष्ट क्यो उठाते हैं?

उत्तर - उन्होने कहा - कुछ ऑसू बह जाते है, इससे नेत्रो मे ठडक पड जाती है। कुछ शाति मिलती है।"

शांति का आभास

प्रश्न - शाति आत्मा का गुण है। शरीर से आत्मा को शाति कैसे? सिर मे दर्द है, तो पैर मे पट्टी लगाने का क्या प्रयोजन?

महाराज ने कहा - "हमारे मन मे अगाध शाति है, थी और आगे भी कमी नहीं होगी। शरीर को शाति मिलने से क्षणभर शाति का आभास हो जाता है। वास्तव मे इससे आत्मा की शाति में न हानि है और न वृद्धि।"

इस कथन द्वारा शाति तत्त्व का रहस्य स्पष्ट होता है। 'शाति का आभास' इद्रियो के आश्रय से प्राप्तव्य है। असली शाति की उपलब्धि बाह्य पदार्थो की सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है।

क्षुद्र कीट पर करुणा

"मै और भरमप्पा अष्टमी और चतुर्दशी को महाराज के साथ गजपथा के पहाड पर जाते थे। मार्ग मे जामुन के बराबर एक बडा कीडा सामने आ गया। मैने अपने पैर से उसे अलग कर दिया। महाराज ने देखकर अपने हाथो मे उस कीडे को उठा लिया और उसे योग्य स्थान पर छोड दिया। यह देखकर महाराज की 'सत्त्वेषु मैत्री' - सपूर्ण जीवो मे मित्र भाव रूप वृत्ति स्पष्ट होती थी।

सुवास

"उनकी असाधारण तपस्या, विशुद्ध चित्तवृत्ति और जिनेन्द्रदेव की प्रगाढ भक्ति के कारण कभी-कभी आश्चर्यप्रद शक्ति का विकास नेत्रगोचर होता था। आचार्य श्री के नेत्रो के लिए किसी अनुभवी व्यक्ति ने मेहदी का तेल मस्तक मे लगाने को बताया

था। मै उस सुवास शून्य तेल को महाराज के सिर पर मलता था। इसके पश्चात् उनकी कमर मे दाद रोग के निवारण हेतु मै नीम की निबोरी का कटु तेल रगडता था। इसके अनन्तर मै देखता था कि मेरे हाथो मे दुर्वास के वदले उन महापुरुष के स्पर्शवश चन्दन की सुवास आती थी। मेरी तरह दूसरो का भी ऐसा अनुभव रहा है।''

दूसरे की सुविधा का ध्यान

''महाराज स्वय शरीर के प्रति अत्यन्त निस्पृह तथा विरक्त रहते हुए भी दूसरो के सुख-दुख का बडा ध्यान रखते थे। मै प्रतिदिन तीन बजे दिन को उनके समक्ष शास्त्र पढा करता था। जब भोजन का समय समीप आता था, तो वे कहते थे - ''जीमो, तुम्हारे भोजन का समय हो गया है।'' स्वय अनेक उपवास करते हुए भी दूसरे की छोटी सी असुविधा तक का वे अधिक ध्यान रखते थे। यहा ध्यान शब्द वास्तव मे दृष्टि सामान्य का द्योतक है। ध्यान तो उनका अपनी आत्मा की ओर ही रहा करता था।''

डॉक्टरी के विषय मे विचार

एक दिन महाराज कहने लगे - ''तुम आगे और क्या अभ्यास करने का निश्चय कर रहे हो?'' मैने कहा - ''महाराज! मेरे भाव सेवा के है, इसलिए मैं डॉक्टरी सीखने की सोचता हूँ।'' उन्होने कहा - ''सेवा के भाव है, तो धर्म की सेवा करो। चिकित्सक बनने पर तुम्हारे समक्ष पैसे की आकुलता रहेगी। उस समय धन की हाय-हाय तुम्हारी आज की सेवा की भावना को समाप्त कर देगी।'' उनके इस कथन मे व्यापक लोकप्रवृत्ति का अनुभव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

अपूर्व विनोद

मै मार्च १९५४ मे नीरा मे महाराज के पास दर्शनार्थ पहुँचा। महाराज ने कहा - ''तुम इतनी दूर कैसे आए।''

मैने कहा - ''महाराज! आप दिगबर साधु हैं, आपके दर्शन हेतु आया हूँ।''

उस समय मधुर विनोद की भाषा मे उन्होने कहा - ''इतनी दूर आने का क्यो कष्ठ उठाया? बन्दर भी नग्न रहता है, उसे देख सकते थे।'' इसके बाद वे हँसने लगे।''

मैं उनकी पूजा करने बैठा। नैवेद्य चढाते समय मेरे हाथ मे कोई पकवान न देखकर वे कहने लगे - ''तुम पढते हो, घेवर, पूडी, लाड्डु, बासुन्दी, पेडा, जलेबी आदि और हाथ में तुमने किसमिस रखी है। क्या तुम हमे भुलाते हो?'' इतना कहकर वे हँसने

लगे। उनका स्मितवदन देखकर ऐसा लगता था, मानो भगवती अहिसा ही स्मित की स्थिति मे हो।

जन्मदिवस पर उपवास का कारण

महाराज ने बुधवार को उपवास किया था। गुरुवार के दिन भी वे आहार को नहीं उठे। मैंने प्रार्थना की कि कल तो आपका उपवास था, आज उपवास क्यो करते है? शरीर मे उष्णता वृद्धिंगत होगी। उससे आपके नेत्रो को नुकसान होगा।

महाराज ने कहा - "गुरुवार हमारा जन्मदिन है।" मैंने कहा - "जन्म-दिन आनन्दा चा दिवस आहे-आनन्द का दिन है। लोग उस दिन मिष्टान्न खाते है, खिलाते हैं।"

महाराज ने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि सुनते ही मन हर्षित हो उठा। वे कहने लगे - "धर्म के लिए कोई असमय नहीं है। सभी समय धर्म की आराधना के योग्य हैं। नीतिकार कहता है, 'अकालो नास्ति धर्मस्य, जीविते चचले सति' - जीवन के क्षणिक होने पर धर्म करने के लिए कोई भी अकाल अर्थात् अयोग्य समय नहीं है। जब जननी के उदर से जन्म धारण करते समय जीव दिन-रात आदि के योग्य-अयोग्य काल का विचार नहीं करता है, मरते समय भी काल विशेष का ध्यान नहीं रखता, तब धर्म धारण करने मे भी यह क्यों सोचा जाय कि आज मेरा जन्मदिन है, इससे मैं आत्मकल्याण के कार्य में प्रमाद करूँ ?" उपवास के दिन तत्त्वज्ञानी आत्मा को ज्ञानामृत का आहार देते हैं। Fast means - fastıng of the body but feastıng of the soul

प्रगाढ श्रद्धा पूर्ण हृदय

सकट-निवारण हेतु जिनेन्द्र-नाम-स्मरण पर महाराज की बडी आस्था थी। गहरा विश्वास था। बम्बई सरकार ने हरिजन मदिर प्रवेश कानून के द्वारा जैनों के धार्मिक अधिकारो पर हस्तक्षेप किया था, तब आचार्यश्री ने अन्न त्याग किया था, यह तो सब जानते है। उस समय महाराज क्या करते थे, यह बात सबको ज्ञात नहीं है।

जप

सामान्यत महाराज सूर्यास्त के समय आध्यात्मिक-प्रकाश लाभार्थ सामायिक हेतु बैठते थे। रात को बारह बजे के लगभग सामायिक के पश्चात् उनका जाप चलता था। पश्चात् वे अल्प निद्रा लेते थे। मदिर प्रवेश कानून की विशेष चर्चा चलने पर तथा

कहीं की विशेष चिन्ताप्रद स्थिति ज्ञात कर वे रात-रात भर लगातार शांतिपूर्वक जाप करते रहते थे।

एक दिन मैंने पूछा - "महाराज! क्या जाप से धर्म-संकट टल जायगा?"

दृढ विश्वास

तब उन्होंने बडी दृढता से उत्तर दिया - ' शीघ्र ही धर्म की विजय होगी।" उनकी श्रद्धा अपूर्व तथा अविचल थी।

महाराज के समक्ष तत्त्व चर्चा चला करती थी। कभी-कभी बहस गरम रूप भी दिखाई पडती थी किन्तु उसके पर्यवसान में शांति की ही उपलब्धि होती थी। एकदिन तीन श्वेताम्बरी साधु गजपथा मे महाराज के पास आए। दो बजे से चार बजे तक चर्चा जोर-जोर से चलती रही। श्वेताम्बर साधु कहते थे - "हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश दीजिए।"

आगमवाणी

उनको अकाट्य तर्कपूर्ण ढंग से समझाते हुए आचार्य महाराज ने कहा - "जिनेन्द्र की वाणी हमारा प्राण है। उसके आदेश के अनुसार हमें चलना है। हमें आप-से या दूसरे से पथप्रदर्शन प्राप्त नहीं करना है।" महाराज के श्रद्धा, युक्ति तथा अनुभव प्रेरित प्रवचन को सुनकर वे साधु उनके समक्ष नत-मस्तक हो चले गए। गरम बहस के समय ऐसा भ्रम होता था कि कहीं इसका कटुतापूर्ण पर्यवसान न हो, किन्तु ऐसा न होकर अंत मे शान्ति पूर्ण भावों का विस्तार होता था।

ब्र. पं. पन्नालालजी काव्यतीर्थ

अपूर्व गुणग्राहक

प० पन्नालालजी काव्यतीर्थ, धर्मालंकार ने आचार्य महाराज के विषय में बताया- "मैंने सन् १९३० के लगभग मथुरा मे महाराज के जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। सघ के साधुओं की भी चर्या बारीकी से देखी। मैंने अपनी कुछ शंकाओं की ओर शास्त्राधार से महाराज का ध्यान आकर्षित कराया। महाराज ने पक्षमोह त्यागकर तत्काल शास्त्रानुसार सशोधन कराया। उनकी गुणग्राहकता अपूर्व थी।"

महान् गंभीर

मैंने पंद्रह दिन तक महाराज को नमस्कार नहीं किया था। मैं उनकी समस्त

पद्धतियो को बारीकी से देखता रहा था। मेरे नमस्कार न करने पर महाराज मे जरा भी क्षोभ नहीं उत्पन्न हुआ। वे बड़े गभीर थे। पदह दिन के पश्चात मेरा मन सदेह मुक्त हुआ, तब मैने उनको तथा सघ के साधुओ को प्रणाम किया । महाराज की शाति अपूर्व थी।

तेजपुंज नेत्र

महाराज के शरीर मे साहजिक दीप्ति पाई जाती थी। उनका शरीर तपोग्नि के कारण झुलसा हुआ, किन्तु चमकदार दिखता था। उनका तप पुनीत शरीर उनकी महिमा को स्पष्ट करता था। उनकी आँखो मे अद्भुत ज्योति थी। उनके तेजपुज नेत्रो के दर्शन से उनकी पवित्रता टपकती थी।

निर्माल्य

उनकी दृष्टि वडी मार्मिक थी। एक दिन मैने महाराज से निवेदन किया- "शिखरजी मे तेरहपथी कोठी के प्रवन्धक का कार्य मुझे सोपा जा रहा है; किन्तु मेरा मन इस कार्य से पीछे हटता है। मदिर के पैसे को लेने से निर्माल्य लेने का दोष आयेगा। आपकी क्या दृष्टि है?"

महाराज ने पूछा-"क्या तुमने काम करने का वेतन तय किया है?" मैंने कहा- "मैंने ऐसा कुछ नहीं किया । जो व्यवस्थापक समिति देगी, वह मैं स्वीकार करूगा।"

मार्मिक वात

महाराज ने वडी मार्मिक वात कही- "देखो! विदेह मे सभी लोग जिनेन्द्र के आराधक हैं। वहाँ भी तो जिन मदिर हैं। उनकी व्यवस्था, रक्षा का कार्य जैनी के सिवाय अन्य कौन करेगा? इससे तीर्थक्षेत्र में जाकर प्रवन्धक वनने मे कोई वाधा नहीं है। एक वात है कि जितने दिन वहाँ रहो, उतने दिन जी-जान से परिश्रम करना। प्रमादपूर्ण कार्य मत करना।"

चन्द्रसागर महाराज की तपस्या

"महाराज के कथन से मन का सदेह दूर हुआ । मैंने उनके कथनानुसार ही कार्य किया था। आचार्य महाराज महान् तो थे ही, उनके शिष्य भी अपूर्व थे। चद्रसागर मुनि महाराज की तपस्या से मैं वहुत प्रभावित हुआ था। शायद सन् १९३६ की वात है। चद्रसागर महाराज जयपुर नगर के वाहर खानियाँ की नशिया मे विराजमान थे। मै उनके दर्शनार्थ पहुँचा। महाराज मध्याह्न मे वहाँ के पहाड के ऊपर जाकर ध्यान करते थे। हम

कुछ लोगो के साथ पहाड पर चढने ही वाले थे कि ऊपर से शेर की गर्जना सुनाई दी। सब लोग घबडा गए। कई लोगो का तो भय के कारण बुरा हाल हो गया था। ध्यान का समय पूर्ण होने पर चद्रसागर महाराज पर्वत से शात, गभीर तथा तेजोमय मुखमडल सहित नीचे आए। पहाड से जब वे उतरते थे, तब ऐसा दिखता था, मानो एक नरसिह नीचे आ रहा है। उनकी रसना इद्रिय की विजय भी महान् थी।''

युक्तियुक्तता

प पन्नालालजी ने कहा-''चद्रसागर महाराज ने मुझे व्रत प्रतिमा लेने की प्रेरणा दी। मैंने अपनी असमर्थता बताते हुए कहा-''महाराज! मुझ से यह नहीं बनेगी, दोष लग जावेगे।'' वे बोले-''प्रतिमा लेने पर दोष मालूम होगे। तुम पडित हो, स्वय दोषो को जानकर उनको दूर कर सकोगे।'' ''उनकी कृपा से मुझे दूसरी प्रतिमा मिली। उससे बडी शाति प्राप्त हुई। यथार्थ मे आचार्य महाराज के निकट सपर्क मे रहने वाली अनेक आत्माओ का कल्पनातीत कल्याण हुआ है।''

पं. कुन्दनलाल जी सिवनी

स्फटिक सदृश अंत.करण

प० कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य सिवनी ने बताया- ''मै ब्यावर मे महाराज के चातुर्मास के काल मे मौजूद था, क्योकि मै दिगम्बर जैन महासभा द्वारा सचालित महाविद्यालय का अधीक्षक (Superintendent) था। दिन-रात आचार्य महाराज के निकट सपर्क मे आने का अवसर आता था। उनका अत करण स्फटिक के समान निर्मल था। सत्य को स्वीकार करने मे उनको क्षण भर भी विलम्ब नहीं लगता था। मै जब भी देखता, महाराज प्राय स्वाध्याय मे ही सलग्न रहते थे। ध्यान करते थे और तपस्या मे लीन रहते थे।''

वास्तव मे देखा जाय, तो आचार्य महाराज के जीवन मे समन्तभद्र स्वामी का साधु परमेष्ठी सबधी लक्षण पूर्णरूप से चरितार्थ होता था। समन्तभद्र स्वामी को किन्हीं-किन्हीं आचार्यो ने भावि-तीर्थकर कहा है, यथा- ''सेढिय-समतभद्दो तित्थयरा होति''- ''श्रेणिक महाराज तथा समतभद्र आचार्य आगामी तीर्थकर होगे।'' 'राजावलिकथे' कन्नड ग्रथ मे समतभद्र स्वामी को भावी तीर्थकर एव चारण ऋद्धि समन्वित भी कहा है-

''आ भावितीर्थकरन् अप्प-समन्तभद्र स्वामिगळु पुनर्दीक्षेगोण्डु तप

सामर्थ्यादि चतुरगुलचारणत्वमडेदु रत्नकरडकादि-जिनागम-पुराणम
पेल्लि स्याद्वादवादिळ आगि समाधियि् ओडेदम।''

ऐसी पूज्य आत्मा ने रत्नकरड श्रावकाचार मे कहा है-

विषयाशा-वशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

— जिनके पास इद्रियो को आनद देने वाले विषयो की आशा का अभाव है, जो कृषि, वाणिज्यादि सावद्य कर्मरूप आरभ रहित है, धन-धान्य, वस्त्रादि बाह्य तथा काम, क्रोधादि अतरग परिग्रह रहित है तथा जो ज्ञान, ध्यान तथा तपस्या म अनुरक्त है, वह तपस्वी प्रशसनीय हे।

यह लक्षण आचार्य महाराज मे पाया जाता था। उनको देखकर आश्चर्य होता था कि आज की आध्यात्मिक अधियारी रूप अमावस्या की वेला मे ऐसी चिन्मय मूर्ति कैसे प्रकाशमान हो रही है? यथार्थ मे वे अद्वितीय साधु थे।

अपूर्व आगम-भक्ति

पडित जी ने वताया- ''मे जव महाराज के पास पहुँचता, तो देखता था कि वे वडे ध्यान पूर्वक शास्त्र-स्वाध्याय करते थे। कभी-कभी वे कहते थे कि देखो! शास्त्र मे यह कितनी सुन्दर वात आई है। कभी किसी विषय पर मे उनके समक्ष शास्त्रीय चर्चा पर आचार्यान्तर की वात उपस्थित करता या उनकी धारणा के विपरीत कहता था, तो वे वडे प्रेम तथा प्रसन्नतापूर्वक वात को सुनते थे। उनको शास्त्र का आधार दिखाते ही, वे तत्काल आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करते थे। वास्तव मे, महाराज आगम-प्राण थे।''

आसनदृढता

महाराज की आसन-दृढता अपूर्व थी। उपवास के दिन सुबह से जिस आसन से वह स्थित होते, तो सारा दिन वीतने पर भी उनका वही आसन रहता था। आठ-आठ घटे तक आसन एक ही रहता था। वैठने के पश्चात् वे वज्र की भॉति स्थिररूपता धारण करते थे। महाराज काष्ठ के आसन पर बैठते थे। उसके पीछे भी टिकने के लिए कुर्सी की तरह काष्ठफलक रहता था, जैसा कि उनके चित्रो मे अकित पाया जाता है। महाराज उस काष्ठ के फलक से पृथक् ही बैठा करते थे।

तप का तेज

उनके देह मे दर्पण की तरह सहज दीप्ति शोभायमान होती थी। रूखा-सूखा आहार ग्रहण करने वाले रसपरित्यागी उन साधुराज के समस्त शरीर मे विद्यमान तेज यथार्थ मे उनके विशुद्ध चरित्रयुक्त तप का ही तेज था।

ब्यावर चातुर्मास

ब्यावर चातुर्मास की एक महत्त्वपूर्ण बात थी ब्र० देवचदजी बी ए , कारजा गुरुकुल के सस्थापक तथा मुख्य सचालक की क्षुल्लक दीक्षा। आचार्य महाराज के सपर्क से प्रभावित उन ब्रह्मचारी जी के चित्त मे क्षुल्लक व्रत लेने की भावना जगी।

शेडवाल के मुनि आदिसागर महाराज ने सन् १९५८ के सिवनी चातुर्मास मे बताया था-"कर्णाटक प्रान्त मे क्षुल्लक को मुडन अणुव्रती कहते है। वह शिखा रहित, यज्ञोपवीत रहित, गेरुआ रग के खड-वस्त्र युक्त तथा मुडन युक्त रहता है। ऐलक को उच्छुल्लक शब्द से कहते है।"

"ब्र० देवचदजी ने क्षुल्लक दीक्षा का निश्चय होने के पूर्व उपलब्ध समस्त श्रावकाचारो का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया। स्व० प० देवकीनदनजी व्याख्यान-वाचस्पति, मै तथा कुछ अन्य व्यक्ति भी उनकी उचित सहायता कर रहे थे। क्षुल्लक के कर्तव्यादि के विषय मे निर्भ्रान्त होने पर दीक्षा का पक्का निश्चय हो गया। जब नामकरण की चर्चा महाराज शातिसागरजी ने उठाई, तब अन्य शिष्यो के समान 'सागरान्त' नाम रखने का विचार समक्ष आया।"

शांतमूर्ति

प० कुदनलालजी ने बताया-"उस समय मैने कहा, महाराज इनके नाम मे सागर न लगाइये। सागर महान् है, किन्तु उसमे ज्वारभाटा भी आ जाता है।" मेरे कथन का उन शातिमूर्ति साधुराज पर कुछ भी बुरा असर नहीं पडा। स्मित मुख से वे कहने लगे-"तुम ही कहो, क्या नाम रखा जाय?" मैंने कहा-"महाराज, मेरा सुझाव सर्व-प्रिय रहेगा। इनका समतभद्र नामकरण कीजिए।" प्रसन्नतापूर्वक यह नाम स्वीकृत हुआ। वह दृश्य भी नहीं भुलाया जा सकता, जब एक स्नातक (Graduate) आचार्य महाराज के चरणो को प्रणाम करते हुए मुडित-मुड क्षुल्लक की दीक्षा ले रहा था। उस समय ऐसा लगता था कि आज के असयम के जगत् मे सयम प्रेम की एक मधुर मनोरम झाँकी ही दिखाई जा रही है। मुनि श्री समन्तभद्रजी दिगम्बर मुनि के रूप मे अपने अतिम समय तक कुभोज बाहुबली क्षेत्र मे विराजमान रहे।

दिगम्बरत्व पर गांधीजी

दिगम्बरत्व वहुत वडी निधि हे। तन के दिगम्बरत्व के साथ मन भी दिगम्बर होना चाहिए। दिगम्बरत्व के माध्यम से सच्चा अपरिग्रहत्व उपलब्ध होता है। गाधीजी ने यरवदा जेल मे २६ अगस्त १९३० मे वडी अनुभव पूर्ण वात कही थी -

"आदर्श आत्यतिक अपरिग्रह तो उसीका होगा, जो मन से ओर कर्म से दिगम्वर है। मतलव, वह पक्षी की भाति विना घर के, विना वस्त्रों के ओर विना अन्न के विचरण करेगा   इस अवधूत अवस्था को तो विरले ही पहुँच सकते हे। सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह वढाना नहीं है, वल्कि उसका विचार ओर इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यो परिग्रह घटाइये, त्यो-त्यो सच्चा सुख ओर सच्चा सतोप वढता हे, सेवाशक्ति वढती हे।"[1] गाधी के उपरोक्त वाक्य गहरे अनुभव, गभीर चितन ओर विशाल अध्ययन की आधारशिला पर अवस्थित हैं।

सम्यक्त्व और संयम

महाराज का अनुभव अपूर्व था। उच्च श्रेणी के विद्वान् तथा शास्त्रीय लोग भी आचार्य महाराज से महत्त्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त करते थे। आत्मा की उपलब्धि तथा सयम की साधना के सवध मे विद्वानो तथा जन साधारण मे अद्भुत भ्रम उत्पन्न होता हे। आचार्य महाराज की यह वाणी वडी उद्बोधक तथा माननीय हे। महाराज ने कहा था-"शुद्ध आत्मा का अनुभव होना सम्यक्त्व है। तत्त्वार्थ-श्रद्धान तो उपचार कथन हे। सम्यक्त्व का स्वरूप समझ मे नहीं आता, तो व्रत धारण करो। व्रत के द्वारा देवगति मे जाना, वहाँ से विदेह में जाकर सीमधर आदि तीर्थंकरो के समवसरण मे पहुँचकर आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझना। वहाँ स्पष्ट ज्ञात होगा कि आत्मा का अनुभव क्या चीज हे? अरे! आत्मा और भगवान दो नहीं है। इसे (आत्मा को) देखा, तो उसे (परमात्मा को) देखा।"

पुरुषार्थ करो

महाराज ने यह भी कहा था-"प्रमादी को कुछ नहीं मिलेगा। पुरुषार्थ करो। व्रती बनने वाला तीनगति मे नहीं जाता है। मिथ्यादृष्टि कुलिगी साधु सोलहवे स्वर्ग तक जाता है। सम्यक्त्वहीन दिगम्बर जैन मुनि ग्रैवेयक तक जाता है। चारित्र तो अभी थोडी देर में कमा सकते हो। सम्यक्त्व हाथ की बात नहीं है। कर्महानि, सद्गुरुदेशना, अर्ध

---

१ गाधी वाणी पृ २५६

पुदगल-परावर्तन काल ससारभ्रमण का शेष रहना आदि कारणों की प्राप्ति सम्यक्त्व के लिए आवश्यक है। चारित्र विहीन सम्यक्त्वी १३२ सागर पर्यन्त ससार में रहेगा। सम्यक्त्व सहित चारित्र के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।"[१]

मोक्ष का साक्षात् कारण चारित्र

वास्तव में अनेकान्त दृष्टि को भूलकर जो एकान्त पक्ष पकडते हैं, वे स्वय अपने पैर पर कुठाराघात करते है। पूज्यपाद स्वामी का सर्वार्थसिद्धि में यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-"धर्मेन्तर्भूतमपि चारित्रमन्ते गृह्यते मोक्ष-प्राप्ते साक्षात्कारणमिति ज्ञापनार्थम्।"[२] उत्तमक्षमादि धर्मों में सयम है। उसमे चारित्र का अतर्भाव हो जाता है, फिर भी सवर के कारणों में चारित्र को अत में स्थान दिया गया है, क्योकि वह मोक्ष की प्राप्ति में साक्षात् कारण है, यह सूचित करना इष्ट था। इससे विवेकी व्यक्ति समझ सकता है कि चारित्र का कितना महत्त्व है? सयोग-केवली भगवान के परमावगाढ सम्यक्त्व है, पूर्ण सम्यक्ज्ञान है, फिर भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जिस समय अयोगी-जिन के गुप्तिरूप चारित्र की पूर्णता होती है, उसी क्षण मोक्ष होता है।

चेतावनी

महाराज का यह कथन अनमोल है -"जैनधर्म का मूल आधार भगवान की वाणी है। उस पर शक्ति के अनुसार चलो। पच पापो के त्याग की शक्ति न हो तो एक का ही त्याग करो। शक्ति के अनुसार कार्य करना कल्याणप्रद है। आगमकथित मार्ग को उल्टा करने का पाप बडा है।" महाराज ने एक मार्मिक चेतावनी दी थी-"सम्यक्त्व तो पशु पर्याय तथा नरक पर्याय मे भी होता है, परन्तु उच्च चारित्र का पालन मनुष्य पर्याय मे ही होगा। मनुष्य पर्याय के क्षय होते देर नहीं लगती, अत शीघ्र सावधानी करना श्रेयस्कर है।"

श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ मे एक वाक्य आया है। -"मुहुत्तमवि णो पमायए, वओ अच्चेति, जोव्वण च"-"एक मुहूर्त पर्यन्त भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। अवस्था ढलती है, यौवन भी जाता है।"

---

१ मिथ्यादृष्टे अतर एकजीव प्रति उत्कर्षेण द्वेषट्-षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम्' (सर्वार्थसिद्धि १, ८ पृ २७)

२ सर्वार्थसिद्धि (अध्याय ९ सूत्र १८)

ऐहिक सुखो का प्रेम

महाराज ने कहा था- "आजकल सब लोग ऐहिक सुखो की ओर झुकते है। लोग सरल तथा स्वच्छन्दता के मार्ग को पसद करते है। दिगम्बर जैनधर्म कठिन है। दिगम्बर जैन साधु प्राण भी चले जॉय, किन्तु मर्यादा का पालन करते है। इतर साधु भूख-प्यास की बाधा होने पर भोजन, जल ग्रहण करेगा। अतरायो को टालने की अन्य साधु कब परवाह करते है? दिगम्बर जैनधर्म की कठिनता के कारण थोडे ही दिगम्बर जैन साधु पाए जाते हैं।"

शासन दोषी है

भारतवर्ष ने सन् १९४७ मे स्वतत्रता प्राप्त करने के साथ स्वच्छदाचरण की ओर प्रवृत्ति की। आचार्य महाराज ने सन् १९४८ मे कुछ चेतावनी के शब्द कहे थे, जो इस समय सबके अनुभव गोचर हो रहे हैं। उन साधुराज ने कहा था -"हम यह खातिरी से (विश्वासपूर्वक) कहते है कि आज का भ्रष्टाचार ठीक नहीं है। पाप का फल थोडे दिनो में अवश्य मिलेगा। काला बाजार, चोरी, रिश्वत खाना आदि सब असत्कर्म सरकार ने सिखाए हैं। यह भूल प्रजा की नहीं, शासन की है । हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री- सेवन तथा अतिलोभ इन पॉच पापो को छुडाना न्याय है, धर्म है। इन पापो की पुष्टि करते हुए राज्य करना अन्याय है।"

मिथ्यावादियों का कर्मवाद

प्रेमपूर्वक पाप कार्यों को करते हुए कोई-कोई लोग यह कह बैठते है। -"जो-जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे"-"सीमधर भगवान के ज्ञान मे जब हमारा मोक्ष होना झलका है, तब हम मोक्ष का प्रयत्न करेगे, अभी प्रयत्न करने का क्या प्रयोजन।" इस शका के उत्तर में महाराज ने कहा था -"ऐसा कथन तो अन्यमतियों के समान हो जायेगा। मिथ्यात्वियो के कर्मवाद के समान हो जायगा।"

इस प्रसग पर एक उपयोगी बात देना ठीक लगता है। सन् १९५९ अप्रेल में सोनगढ के बाबा सिवनी आए थे और उन्होंने उपरोक्त नियतिवाद का समर्थन किया था। मैंने उनसे कहा था-

क्या क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा दूर करो भव पीरा रे॥

इससे वे निरुत्तर हो गए थे। विदेह मे विराजमान सीमधर प्रभु के ज्ञान मे जो झलका है, उसका भारतवासी को कैसे पता चलेगा।

वास्तव मे लोग पाप कार्यो मे पुरुषार्थ करते है और आत्म-कल्याण के क्षेत्र में पुरुषार्थ से विमुख होकर भगवान के ज्ञान की ओट मे छिपना चाहते हैं और प्रमादी जीवन व्यतीत करते हैं।

द्रव्य का स्वाधीन परिणमन

सूक्ष्म रीति से तत्त्व का चितवन करने पर यह ज्ञात होगा कि जैनधर्म मे समस्त वस्तुओ को कथचित् स्वतत्रता दी है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन उसके स्वाधीन है। एक द्रव्य का परिणमन द्रव्यान्तर के आधीन नहीं है। ऐसी तत्त्व व्यवस्था है, तो भगवान के ज्ञान के आधीन पदार्थ का परिणमन कहना भक्ति की भाषा है, तर्क की भाषा नहीं। जैसे एक किसान का लिखा हुआ एक कागज है। वह मूल प्रति है। उसकी नकल एक श्रेष्ठ ज्ञानी कर लेता है, तो वह दूसरी नकल उतनी महत्ता को न्यायालय मे नहीं प्राप्त होगी, जितनी उसकी मूल प्रति (Orignal Copy) महत्त्वपूर्ण मानी जायगी, अत तत्त्व-चिन्तन करते समय हमारा कर्त्तव्य है कि प्रमाद, अन्याय आदि को प्रोत्साहन प्रदान करने के मलिन उद्देश्यवश धर्म का या भगवान के ज्ञान का अवलबन नहीं लेना चाहिए। धर्म की ओट मे यदि पाप का पोषण किया जाता है तो यह बहुत बडा पातक है, जिसका परिणाम पापी जीव उदय काल मे रो-रोकर भोगा करता है। अत आत्महित के कार्य मे हमे उत्साह धारण करना चाहिए, कारण नर-पर्याय अत्यन्त दुर्लभ है।

श्री शान्तिनाथ भुजबली वैद्य बारामती

वैद्यराज को उपदेश

बारामती मे श्री शान्तिनाथ भुजबली वैद्य एक सज्जन व्यक्ति हैं। वे महाराज के पास बहुधा आया-जाया करते थे और उनके स्वास्थ्य के विषय मे विशेष ध्यान रखा करते थे। वैद्यराज ने बताया कि महाराज हमसे कहते थे।- "तुमने हजारों आदमियो को दवा दी है। उससे अधिक फल निर्ग्रन्थ साधु अथवा व्रती को औषधि देने का है। तुम साधु-सेवा मे लगे रहते हो। इसका तुम्हें बहुत मधुर फल मिलेगा। ऐसा ही परोपकार करने मे अपने जन्म को सार्थक बनाते रहना।"

महाराज के ये शब्द बडे मार्मिक है-"पैसा खूब सग्रह करो, तो वह तुम्हारे

साथ नहीं जायेगा। धर्म ही साथ जाने वाला है। बीमार स्वय की प्रसनता से जितना दे, उतना लेना। जबर्दस्ती करके और उसे दुखी करके नहीं लेना चाहिए। इसे अवश्य ध्यान मे रखना।"

चिकित्सक का कर्त्तव्य

सचमुच मे चिकित्सक के लिए जो बात आचार्य महाराज ने कही थी, वही बात आज के हजारो वर्ष पूर्व रचित वैद्यक ग्रन्थ चरक सहिता मे बताई गई है। बगाल के प्रकाण्ड डॉक्टर श्री विधानचन्द्र राय ने लिखा है- "आयुर्वेद के विद्यार्थी से चिकित्सा कार्य को समाज सेवा के व्रत के रूप मे ग्रहण करने की शपथ कराई जाती थी, क्योंकि वास्तविक चिकित्सक का हृदय रोगी के प्रति ममता और अनुकम्पा की भावना से कदापि शून्य नहीं होगा और उसके मन मे विरक्ति कदापि उत्पन्न नहीं होगी। रोगी के कष्टो को दूर करने के लिए जिस हाथ का उपयोग किया जाता है वह कदापि कम्पित नहीं होगा। स्वाधीन भारत के चिकित्सकों का आयुर्वेद के इस आदर्श पर चलना परम कर्त्तव्य है।"

नेत्रों की चिकित्सा

वैद्यराज ने कहा-"जब हम आचार्य महाराज के नेत्रो मे दवा डालते थे, तो वे कहते थे, क्यो बार-बार दवा डालते हो, इससे लाभ नहीं होता। अब हमें सल्लेखना लेना होगी, क्योकि हम ईर्या समिति का पूर्णतया पालन नहीं कर सकते। हम तो सल्लेखना की तैयारी कर रहे हें।"

साम्य परिणति

कुथलगिरि मे आगत सारे देश के हजारो व्यक्तियो को देखकर वैद्यराज ने कहा- "महाराज यह आपका प्रभाव हे जो इतने व्यक्ति आ रहे है।" महाराज बोले- "इसमें हमारा क्या है? इससे हमे हर्ष नहीं है, हम तो आत्म-चिन्तन मे लगे है।"

परोपकार के भाव

जब वैद्यराज महाराज की नाडी गिनते थे, तब महाराज कहते थे - "नाडी देखने मे क्या लाभ होगा? क्यों व्यर्थ के काम मे लगे हो? हमारे शरीर मे कोई ज्वर आदि रोग नहीं है।" वैद्यराज कहते थे-"हम आपकी नाडी की गति समझने को देख रहे है।" महाराज कहते थे-"अच्छा! तो देख लो, तुम्हारा लाभ होता है, तो कर लो।" कैसी

सरल और पवित्रता से भरी उनकी वाणी थी, दूसरा व्यक्ति दु खी न हो, इस बात को वे सदा ध्यान रखते थे।

आत्मा की मलिनता दूर करो

एक दिन वैद्यराज से महाराज ने कहा-"तुम ससार का कल्याण करते फिरते हो। कुछ तो आत्मा का कल्याण करो। दूसरे के कपडे धोते-धोते समय क्यो गॅवाते हो? अपनी आत्मा को धोने के लिए व्रत, नियम, स्वाध्याय आदि षट् कर्म करना चाहिए, इनसे तुम्हारा कल्याण होने वाला है।"

स्वर्गारोहण की रात्रि का वर्णन

आचार्य महाराज का स्वर्गारोहण ३६ वे दिन प्रभात मे ६ बजकर ५० मिनट पर हुआ था। उस दिन वैद्यराज महाराज की कुटी मे रात्रि भर रहे थे। उन्होने महाराज के विषय मे इस प्रकार बताया-"दो बजे रात को हमने जब महाराज की नाडी देखी, तो उसकी गति बिगडी हुई अनियमित (Irregular)थी। तीन, चार ठोकर देने के बाद रुकती थी, फिर चलती थी। चार बजे सवेरे श्वास कुछ जोर का चलने लगा, तब हमने कहा, "अब सावधानी की जरूरत है। अन्त अत्यन्त समीप है।" सवेरे ६ बजे महाराज को सस्तर से उठाने का विचार क्षुल्लक सिद्धसागर (भरमप्पा) ने व्यक्त किया। महाराज ने सिर हिलाकर निषेध किया। उस समय तक वे सावधान थे। उस समय श्वास जोर-जोर से चलती थी। बीच मे धीरे-धीरे रुककर फिर चलने लगती थी। उस समय महाराज के कान मे भट्टारक लक्ष्मीसेन जी "ॐ नम सिद्धेभ्य " तथा णमोकार मन्त्र सुनाते थे। ६ बजकर ४० मिनिट पर मेरे कहने पर महाराज को बैठाया। कारण, मैने कहा कि अब देर नहीं है। उनको उठाया। पद्मासन किया, तब श्वास मन्द हो गई। ओष्ठ अतिमन्द रूप से हिलते हुए सूचित करते थे कि वे जाप कर रहे है। एक दीर्घ श्वास आया और हमारा सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया। उस समय उनके मुख से अन्त मे 'ॐ सिद्धाय' शब्द मन्द ध्वनि मे निकले थे।" वैद्यराज ने कहा "कि रात मे दो बजे से हाथ पैर ठण्डे हो रहे थे। रुधिर का सचार कम होता जा रहा था। हमारी धारणा है कि महाराज का प्राणोत्क्रमण नेत्रो द्वारा हुआ। मुख पर जीवित सदृश तेज विद्यमान रहा आया था।"

क्षु. सिद्धिसागरजी

महाराज के अन्तिम क्षण मे समीप रहने वाले क्षुल्लक सिद्धिसागर (भरमप्पा) ने सिवनी मे आकर शिखरजी जाते समय हमे बताया था कि "अन्त मे तीन दिन चौबीसो घण्टे महाराज एक ही करवट रहे थे । पहिले महाराज ने हमे आज्ञा करदी थी कि तुम हमारे हाथ पॉव मत दाबना, क्योकि हमने सेवा कराना छोड दिया है। तुम जबर्दस्ती सेवा करते थे, अब नहीं करना।"

ज्ञान के महान् प्रेमी

आचार्य महाराज सयम के सिवाय सम्यक् ज्ञान के भी महान् प्रेमी थे। उन्होने कहा था- "ज्ञान बिना समाज मे धर्म नहीं टिकेगा। ज्ञान का प्रसार सार्वजनिक जैन मन्दिर मे स्वाध्याय के लिए ग्रन्थ रखने से ही हो सकेगा, कारण, वहॉ सब जैन लोग आते हैं और उन ग्रन्थो पर सबका स्वत्व रहता है। उसे कोई उठाकर नहीं ले जा सकता। वह सुगमता से सबको मिल सकता है। ग्रन्थ की बिक्री से सुविधा नहीं होती। गरीब आदमी, त्यागी तथा सन्यासी लोग ग्रन्थ नहीं ले सकते, इसीलिए जहॉ तक बने मुफ्त मे ग्रन्थ बॉटना चाहिए।"

क्षु० सिद्धसागरजी (भरमप्पा) ने आचार्य महाराज की बहुत सेवा तथा वैयावृत्त्य की थी। उन्होने बताया कि मैंने महाराज से क्षुल्लक दीक्षा मागी । महाराज ने कहा- "वर्धमानसागर से दीक्षा ले लो ।" फिर मैने महाराज से नाम पूछा। उन्होने मेरा नाम सिद्धसागर बताया । इसके बाद उन्होने ब्र० बडू रत्तू को दीक्षा के लिए कहा और कहा कि हम तुम्हें दीक्षा दे देगे। उस समय मैने कहा- "महाराज! मुझे भी आप दीक्षा दीजिए।" रत्तू बडू ने दीक्षा नहीं ली। मेरा भाग्य था मुझे दीक्षा मिल गई। दीक्षा देते समय महाराज ने मुझ से कहा था कि तुम को कुछ नहीं आता, इसलिए हमेशा णमोकार मत्र का जाप मदिर मे करते रहना। आहार को जाने के पूर्व शौच से आने पर तथा अन्य समय पर २७ बार जाप करना।"

वर्धमानसागरजी को सदेश

उन्होने वर्धमानसागरजी के लिए यह खबर भेजी थी-"जब तक हाथ पैर चलते हैं, तब तक गडबड नहीं करना। तुम्हारी आयु अधिक है। घबराना नहीं। सदा आत्मचिंतन करना।"

उनका स्वर्गवास होने पर वर्धमानसागर महाराज ने कहा था-"जैसे आचार्य महाराज गये, वैसे ही सब जावेगे। शोक क्यो करना?"

क्षु० सिद्धसागर जी ने कहा- "महाराज बहुत गभीर थे। महान् कष्ट आने पर भी वे हाहाकार नहीं करते थे। वे अपनी तकलीफ स्वय नहीं कहते थे।"

विशेष आशीर्वाद

"आपके बारे मे कई बार महाराज चर्चा करते थे। उनका आप पर सदा विशेष आशीर्वाद रहता था।"

पात्रापात्रता का विवेक

आचार्य महाराज बहुत सोच-विचार कर कार्य करते थे। एक दिन भाईचद नेमचद गाधी नातेपुते ने आचार्यश्री से ब्रह्मचर्य प्रतिमा रूप व्रत मागे। महाराज ने उनकी पात्रता का विचार करके कहा-"तुम पापभीरु हो, इस कारण तुमको वत देते हैं। तुम्हारे हृदय मे वैराग्य नहीं है, इससे प्रतिमा रूप व्रत नहीं देते है।"

विनोद

"महाराज का विनोद मधुर तथा अकटु होता था। भाईचद ने सुनाया कि मेरी विलक्षण तथा विचित्र बातो को सुनकर महाराज मुझे "दो शहाणा" (दो दिमाग वाला बुद्धिमान्) कहा करते थे।"

स्वप्न द्वारा सकेत

जो आत्मा अत्यन्त पवित्र होती है, उसके स्वप्न भी महत्त्वपूर्ण घटनाओ को सूचित करते है। द्वादशाग मे अष्टाग निमित्त शास्त्र की गणना मे स्वप्नज्ञान का उल्लेख आता है। आचार्य शातिसागर महाराज को भविष्य की अनेक घटनाओ आदि के विषय मे स्वप्न के द्वारा सकेत प्राप्त हो जाया करता था। प्रतिष्ठाशास्त्रो मे कई जगह कार्य करने के लिए मत्रजाप करके स्वप्न मे उसका रूप देखकर कर्त्तव्य निर्धारण किया जाता है। आशाधर प्रतिष्ठा-सारोद्धार ग्रथ मे लिखा है कि प्रतिष्ठाचार्य जिनमदिर की भूमि की तरह मूर्तिरूप परिणत की जाने योग्य शिला के शुभ-अशुभ जानने के लिए रात्रि के आरम्भ मे अष्टाग निमित्तों को विचारे। स्नान करके एकान्त शुद्धस्थान मे शुभ गधद्रव्य को हाथ पर लगाकर सिद्धभक्ति पढे तथा इस मत्र श्लोक का मन मे ध्यान करे-

महाराज के चार स्वप्न

लोणद चातुर्मास के अन्त में आचार्य महाराज को यह स्वप्न रात्रि के अंतिम प्रहर में दिखाई पड़ा था-"आचार्यश्री के आसपास ५०० से अधिक व्यक्ति बैठे थे। उस समय १२ हाथ लंबा सर्प फेन बाँधकर बैठा था। वह लोगों के पास से आकर महाराज के सिर पर चढ़ गया। उस समय महाराज ने लोगों को चुप रहने को कहा, इतने में सर्प चला गया।"

इस स्वप्न का अर्थ महाराज ने यह समझा कि सर्प यमराज का प्रतीक था। सर्प चला गया, इससे अपमृत्यु का संकट दूर हो गया, ऐसा सूचित होता था।

फलटण में

फलटण के चातुर्मास में सन् १९५४ के कार्तिक मास मे महाराज ने एक स्वप्न देखा कि उनसे जिनशासन की देवी ने यह कहा कि अब अन्न का आहार छोड दो। सवेरे आदिनाथ मंदिर मे जाकर उन्होंने अन्न-आहार का त्याग कर दिया।

बारसी में

तीसरा स्वप्न बारसी मे अर्ध जागृत अवस्था मे आया। उसमे एक विशाल गजेन्द्र सदृश स्थूलकाय सिंह दिखा। उसके मुख में एक आदमी समा सकता था। उसने

महागज की गर्दन को पकडकर अपन मुँह में गख लिया, किन्तु दॉत नहीं लगे। महागज ने शात भाव मे सिद्ध भगवान का स्मरण किया । उन्होंने सिह का कान पकडा। इतने मे नींद खुल गई।

इसका महागज ने यह अर्थ निकाला कि उनका जीवन सकट मे है। विपत्ति जीवित है, किन्तु अन्न त्याग द्वाग अकाल मग्ण टलेगा, ऐसा प्रतीत हुआ।

कुंथलगिरि मे

चौथा स्वप्न कुथलगिरि मे इस प्रकार आया था कि एक समय महागज जगल मे अकेले खडे थे। एक मजबूत सींगो वाला भयकर जगली भैंसा गेषपूर्वक दौडता हुआ महाराज पर झपटा। उस समय एक मुनि हाथ मे पिच्छी लेकर दस फीट की दूरी पर आ गये। उनके हाथ मे एक तीन हाथ लम्बी लकडी थी। उससे उन मुनि ने भैंसे को खूब मारा। पिटाई के कारण थककर वह भैंसा गिर पडा । उस समय महाराज सिद्ध भगवान का जाप कर रहे थे। मुनि ने महाराज से कहा कि अब आप सकटमुक्त हैं, चले जाइये। महागज ने कहा कि मुनि होकर तुमने इस प्रकार हिंसा का कार्य क्यो किया? यहॉ से दूर चले जाओ।

इस स्वप्न मे आचार्य महागज ने सोचा कि विपत्ति तो दूर हो गई, किन्तु प्रशात मुनि का दर्शन आगे दुर्लभ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। महाराज ने मौन पूर्वक पॉच उपवास का नियम लिया था। इन स्वप्नो का वर्णन महाराज ने अपने विश्वासपात्र भक्तो को सुनाया था, जिनके समक्ष वे अपने मन की बात सकोचरहित हो कहते थे।

पं. अभयकुमार शास्त्री बारामती

शेडवाल आश्रम मे शिक्षा प्राप्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री रागोलीकर बारामती ने महागज के सम्बन्ध मे सुनाया था- "महाराज पक्का आदमी देखकर ही उस पर काम सौपा करते थे। वे कहा करते थे कि समाज मे पण्डित बहुत है, किन्तु चारित्रवान पण्डित बहुत कम है। उनका शिक्षा के विषय मे महत्त्वपूर्ण अभिप्राय था, वे शेडवाल आश्रम के छात्रो की सख्या के बारे मे कहते थे, छात्रो की सख्या कम हो, इसकी चिन्ता नहीं, छात्र विद्वान् के साथ चारित्रवान भी बने, यह आवश्यक है। छात्रो की जिनधर्म पर श्रद्धा आवश्यक है। वे जिनधर्म के अभिमानी हो। विद्वत्ता बढाना, खूब ग्रन्थ लिखना आदि पाडित्य के कोरे कार्यों की वे प्रशसा नहीं करते थे। उनकी दृष्टि मे उच्च चारित्र का

मूल्य था। लोकपटुता, भाषणकुशलता, लोकप्रियता आदि बातें उनके विचार में गौरव-पूर्ण नहीं थीं। आत्महित उनका मुख्य लक्ष्य था।"

डॉ. वालचन्द्र जीवराज शहा फलटण

असाधारण क्षयोपशम

महाराज का क्षयोपशम बड़ा असाधारण था। फलटण के चन्द्रप्रभ मन्दिर के ऊपर श्रुतभण्डार बनाने के लिए स्थान नहीं था। महाराज ने उस जगह को देखकर ऐसा परिवर्तन कराया कि बहुत जगह निकल आई। उनका अनुभव अत्यन्त प्रवीण इन्जीनियर के समान था। सरस्वती भवन में कितना सीमेण्ट लगेगा, कितना लोहा लगेगा आदि सभी बातों का उनको ज्ञान था।

स्थायीपन में रुचि

महाराज बाह्य सौंदर्य के बदले स्थायीपन को पसद करते थे। शास्त्र के लिए अनेक प्रकार के कागज मगाये गए। कागज देखकर उन्होंने सबसे मजबूत कागज को पसद किया। उसके मूल्य की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

भूगोल की महत्त्वपूर्ण चर्चा

एक सरकारी कर्मचारी से जैन भूगोल के बारे में चर्चा चली। उस समय महाराज ने कहा-"पहिले विश्वास रखो, पीछे उसकी शोध करो, तो तत्त्व हाथ लगेगा। तुम पहिले ही विश्वास नहीं करते और यह कैसा, वह कैसा है इत्यादि शकाएँ करते हो, इससे इष्ट सिद्ध नहीं होता।"

मराठी सूक्ति का रहस्य

एक दिन चर्चा चली - मराठी भाषा की सूक्ति पर "जैसा बोले, तैसा चाले त्याची वदावी पावले"-इसका भाव महाराज ने बताया कि जैसा आगम कहे, उस प्रकार चले अर्थात् स्वच्छन्द मन के अनुसार प्रवृत्ति न करे।

इद्रिय निग्रह का उपाय

एक दिन मैने महाराज से पूछा-"महाराज! इन्द्रिय-निग्रह किस प्रकार करना चाहिए?" महाराज ने कहा था- "घोडे का दाना-पानी बन्द कर दो, घोडा अपने आप वश मे हो जाता है।" उन्होने एक छोटे से उत्तर से गम्भीर प्रश्न का अनुभव के आधार पर समाधान कर दिया।

नियमितपना

महाराज मे नियमितता (Punctuality) अधिक थी। वे समय पर कार्य करने का ध्यान रखते थे। उनमे गुणग्राहकता अपूर्व थी। यदि विशेष कलाकार उनके पास आता था, तो उसको वे बहुत प्रेरणा देते थे।

लोकविज्ञता

महाराज के पास जब अजैन लोग दर्शनार्थ आते थे, तब महाराज उनको श्रीफलादि देते थे। लोगो ने उनसे पूछा कि आप ऐसा क्यो करते है? महाराज ने बताया कि वे लोग हमारे पास गुरुभाव से आये, उस भाव से उन्होने दर्शन किया। उनकी श्रद्धा है कि गुरु का प्रसाद कल्याणकारी होता है, ऐसी उनकी पद्धति है, इससे उन्हे सन्तोष होता है। धर्म की ओर उनका आकर्षण बढता है, पुन पुन आने की इच्छा होती है। उनका कल्याण देखकर ही हम ऐसा करते हैं।

बच्चो से नैसर्गिक प्रेम

बच्चो पर महाराज का अकृत्रिम प्रेम था। कितनी भी गम्भीर मुद्रा मे वे हो, बालक के पास आते ही वे उसे देखकर हर्षित होते थे। कभी-कभी किसी बच्चे के हाथ मे मोटर का खिलौना रहता था, तो वे पूछते थे कि क्या इसमे हम बैठ सकते है आदि। उस समय ऐसा लगता था कि ये वृद्ध पितामह है और ये ससार के श्रेष्ठ महापुरुष रत्नत्रय-मूर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज ही है, ऐसा नहीं मालूम पडता था।

धनी-निर्धन में समान भाव

एक दिन महाराज से पूछा-"महाराज! आप श्रीमन्तों के महाराज हैं या गरीबों के?" महाराज ने कहा-"हमारी दृष्टि मे श्रीमन्त ओर गरीब का भेद नहीं रहा है। अर्थ के सद्भाव-असद्भाव द्वारा बडेपने की कल्पना आप लोग करते हो। अकिञ्चनों की निगाह में धन के सद्भाव-असद्भाव का अन्तर नहीं रहता।"

आदमी की परख

एक दिन महाराज से पूछा-"महाराज! आपके पास बेठने वाले क्या सभी खरे भक्त हैं?" महाराज बोले-"इनमें दश प्रतिशत ही खरे हैं। यह हमें मालूम है कि कौन खरा है ओर कोन खोटा है। हम दूसरे के नेत्रों को देखकर ही उस आदमी को पहिचान लेते हैं।" यथार्थ में उनकी दृष्टि हृदय के भीतर की बात को देख लेती थी।

जीवन का सार

एक दिन आत्मचिन्तन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था कि "जाते समय पिता अपने सम्पत्ति के भडार की चाबी पुत्र को देता है। इस प्रकार हम तुमको जीवन का सार बताते हैं। बताते नहीं हैं, हम यह तुमको देते हैं, आत्म चिंतन के सिवाय सुख नहीं मिलेगा।"

आत्मा का रेडियो चालू करो

"एक दिन मैंने छोटा रेडियो बनाया और महाराज को दिखाया। उसके विषय में उन्होंने अनेक सूक्ष्म प्रश्न किये। पश्चात् कहने लगे-"बालचन्द! अब तुम हृदय के रेडियो को क्यों चालू नहीं करते? उसका गीत सुनो। इसमें क्या रखा हे? आत्मा का रेडियो त्रिलोक और त्रिकाल की बातें बताता है, वह इससे बडा है।" एक छोटे से यत्र को देखकर उन साधुराज ने केसी मार्मिक बात कही। सचमुच में मोहनीय कर्म, ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण एव अन्तराय के नाश होने पर यह जीव त्रिलोक और त्रिकाल का ज्ञाता बन जाता है। अज्ञान के कारण यह जीव पर-पदार्थ मे उलझकर स्वय दु खी होता है। महाराज ने हजारों मील पैदल विहार किया, किन्तु उनके चरण, कमलो के समान कोमल ही रहे आये। वास्तव में वे 'चरण-कमल' ही थे। शरीर-शास्त्री बताते हैं कि चरणों का कमल सदृश मृदुल रहना महान् पुरुष का चिह्न है।

आगमप्राण

धवल आदि सिद्धान्त ग्रन्थ ताम्रपत्र में मुद्रित हुए। फलटण में धवल ग्रन्थ

विराजमान हुए थे। उनके सम्बन्ध मे महाराज ने कहा था-"देखो, ये मेरे प्राण है, जो तुम्हारे पास है। मेरे बराबर इनकी रक्षा तुम लोगो को करना चाहिए।" ये शब्द महाराज ने सैकडो बार कहे थे। जिनवाणी को वे अपना प्राण मानते थे। वास्तव में जिनवाणी के लिए ही सल्लेखना द्वारा उन्होने अपने प्राणो का अर्पण भी कर दिया।

तीर्थभूमि का महत्त्व

महाराज से पूछा गया कि आप सल्लेखना के लिए तीर्थ को क्यो ढूढते हैं? आप समान श्रेष्ठ साधु जहॉ भी निवास करते हैं, वही स्थान तो तीर्थ बनता है? क्या आप नया तीर्थ नहीं बना सकते?

महाराज ने कहा- "निर्वाण स्थान मे अनेक तपस्वियो ने रहकर कर्मो का क्षय किया है, वहॉ का परमाणु-परमाणु उनके द्वारा पवित्र हुआ है। उस पवित्र भूमि मे रहने से आत्मा की साधना मे सहायता मिलती है। आत्मा स्वरूप मे लीन हो जाती है। इस आत्म विशुद्धि का कारण होने से समाधि के लिए निर्वाणस्थल का शरण ग्रहण करना आगम मे बताया है। गुलाब के उद्यान मे बैठने पर पुष्प की सुवास पवन द्वारा प्राप्त होती है। इसी प्रकार निर्वाण-स्थल के पवित्र परमाणुओ द्वारा आत्मा की विशुद्धता के हेतु एक आध्यात्मिक सुवास प्राप्त होती है।"

फलटण मे कभी-कभी एक बालिका मधुर कण्ठ से महाराज को भजन सुनाती थी। उसके भजनो की ओर महाराज का बडा आकर्षण रहता था। एक भजन वृद्धावस्था के दु खी जीवन को चित्रण करने वाला मराठी भाषा मे है। महाराज उससे उस भजन को कई बार सुनते थे। उसकी एक पक्ति का भाव है- "यह बुढापा बडा विचित्र है। समय बीतता नहीं। काल आता नहीं। बताओ क्या करे?" इसी पक्ति को दुहराकर महाराज कहते थे- "तू मेरी शिष्या है, अच्छा गीत सुनाती है। उसके आने पर कहा करते थे, अब हमारी शिष्या आ गयी है। उसका भजन होने दो।" एक दिन बालिका ने कहा- "महाराज! आत्मा कैसे दिखेगी?" उस छोटी सी लडकी को आत्मा कैसे बताई जाय? महाराज बोले-"तू मेरे साथ चल, दीक्षा मत ले, भजन के द्वारा प्रभावना कर।"

रहस्य की बात

एक बार महाराज से पूछा गया-"महाराज! आप महत्त्व की बाते कैसे बता देते है? आप कहते है कि हमे अवधि नहीं है, फिर विद्वानो को भी प्रकाश देने वाली अपूर्व बाते कैसे कहते हैं?"

महाराज ने कहा-"ठीक तो है, हमारे अवधि नहीं है। जिस प्रकार के भाव हमारे अन्त करण मे आते है, उनको हम कह देते है।"

देश का भविष्य

भारत के राजनीतिज्ञो के ध्यान देने योग्य एक बात उन महाश्रमण के मुख से निकली थी। महाराज ने कहा- "जब तक यह देश अहिंसा-तत्त्व का परित्याग नहीं करता है और अन्य धर्मो पर जुल्म नहीं करता है, तब तक इसका शासन बना रहेगा। अन्यथा अत्याचार के पथ पर चलने वाले शासक का विनाश निश्चित है।"

ध्यान का मार्ग

महाराज से पूछा गया- "सामान्य मनुष्य किस प्रकार ध्यान करे?"

उत्तर मे महाराज ने कहा- "जब तक असली आत्मा का ध्यान नहीं होता, तब तक स्फटिक की बनी जिनेन्द्रमूर्ति का ध्यान करो। अभ्यास से मन स्थिर होगा अपनी आत्मा को स्फटिक की तरह विशुद्ध और निर्मल चितवन करो। वहॉ मन को केन्द्रित करने से चचल मन स्थिर बनेगा।"

दीक्षा और आहार

प्रश्न - "महाराज ! यदि आप सब को दीक्षा दे देगे, तो उनको आहार कैसे मिलेगा?"

उत्तर - महाराज ने कहा- "आहार के लिए दीक्षा मत लो। दीक्षा लेने के बाद आहार अपने आप मिलेगा।"

भक्तामर स्तोत्र का प्रथम परिचय

"महाराज ने बताया था कि उन्होंने जीवन मे सबसे पहिले भक्तामर स्तोत्र पढा था। वही पहला शास्त्र था।"

द्रव्य रहित पूजा

जो लोग भगवान के दर्शन को जाते है और द्रव्य का ले जाना बेकार सोचते है, ऐसी सूखी पूजा वालो के बारे मे महाराज मराठी का एक वाक्य कहते थे- "तू मेरे द्वार पर आया है, न फल लाया, न फूल, जा अपने घर। तुझे कोई वर नही देता और न शाप ही देता। जैसा आया उसी प्रकार चला जा।"

उनके शब्द थे-

फल नाहीं, फूल नाहीं, आला माझा द्वारा।
वर नाहीं, शाप नाहीं, जा तुझा घरा ॥

इस तरह कहकर महाराज हँसने लगते थे।

श्री बाबूराव मार्ले कोल्हापुर

सप्तम प्रतिमाधारण तथा व्यापार करना

महाराज ने कोल्हापुर के धर्मात्मा श्रीमान् बाबूरावजी मार्ले को सप्तम प्रतिमा के व्रत देते हुए कहा था- "तुम व्यापार करो, किन्तु अपना लेन-देन सत्यता से करना।" उक्त ब्रह्मचारीजी ने क्षुल्लक पद धारण करने का निश्चय किया था।

महाराज की भावना

उनसे आचार्य महाराज ने कहा था- "हमारी भावना है कि हमारे सभी शिष्य स्वर्ग मे भी हमारे साथी रहे, इसलिए सबको व्रती होना चाहिए।"

ब्र. बंडोबा बाबाजी (क्षुल्लक जी)

ब्रह्मचारी बंडोबा बाबाजी रत्तू ने बताया कि- "आचार्य शान्तिसागर महाराज के लोकोत्तर व्यक्तित्व ने नेमण्णा नाम के सरल चित्त वाले गृहस्थ को नेमिसागर मुनिराज बना दिया। नेमण्णा महोदय विलक्षण प्रकृति के व्यक्ति थे। भिन्न-भिन्न धर्म के साधुओं के सम्पर्क में रह चुके थे। एक दिन आचार्य महाराज के जीवन की घटना ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। उसदिन उन्होंने निश्चय किया कि शान्तिसागर महाराज ही ऐसे साधुरत्न हैं, जिनके चरणों को अन्त करण मे विराजमान कर जीवन भर अभिवन्दन करना चाहिए।"

प्रभावप्रद घटना

यहाँ यह सहज प्रश्न उठता है कि वह कौनसी घटना होगी, जिसने जीवन बदल दिया?

ब्र बण्डू ने बताया- "आचार्य महाराज एक गुफा मे बैठकर आत्म-ध्यान में निमग्न थे। वास्तव मे अपने स्वरूप मे मस्त बैठे थे। उस समय एक मकोडा उनके शरीर

पर चढकर उनकी पुरुष इन्द्रिय को काट रहा था। साथ मे और भी मकोड़े थे। वे मास खाते थे ओर रक्त की धारा बहती थी, किन्तु महाराज स्तम्भ की तरह स्थिर थे। उनका ध्यान पूर्ण हुआ, तब बाद मे नेमण्णा ने पूछा-" यह क्या है?" ब्र बण्ड रत्न ने कहा- "देखते नहीं हो, यह रक्त बह रहा है।"

सुनकर महाराज बोले- "कहां है रक्त?" बाद म उन्होंने देखा कि मकोडे उनके शरीर को खा रहे थे। ब्र बण्ड ने उन मकोडो को अलग किया था।

सामायिक में तल्लीनता

उस समय आचार्य महाराज बोले-"हम तो सामायिक मे बैठ गये थे। हमको पता नहीं, क्या हुआ।"

यह शब्द सुनकर नेमण्णा ने कहा-"यह क्या चमत्कार है? यह साधु है या भगवान है। निश्चय से ये बहुत बडे साधु है।" इस घटना ने उनके मन में प्रबल वैराग्य उत्पन्न किया। वे ही नेमण्णा परमपूज्य १०८ निर्ग्रन्थ मुनि नेमिसागर महाराज के रूप थे। आचार्य नेमिसागर जी की प्रेरणा से बोरीवली में दिव्य, समुन्नत तीन मूर्ति विराजमान हुई हैं।

पाटील श्रीवालगोडा कोगनोली

चिकोडी के नागगोडा जनगोडा उर्फ वालगोडा पाटील कोगनोली प्रभावशाली धर्मात्मा और गुरुभक्त सज्जन हैं। उन्होंने आचार्य महाराज की बहुत सेवा की थी।

प्रारंभिक तपोभूमि कोगनोली

जब शातिसागर महाराज ने दीक्षा लेकर भोजभूमि से विदा ली, तब उन्होने कोगनोली ग्राम मे अपनी प्रारम्भिक तपस्या का विशेप समय व्यतीत किया। आसपास के लोग शातिसागर महाराज को कोगनोली के महाराज कहने लगे थे। उस समय पूर्ण दिगम्बर मुद्राधारी मुनियो का अभाव था। उस समय मुनि आहार लेते समय दिगम्बर हुआ करते थे। आचार्य शान्तिसागर महाराज ने उस शिथिलाचार के जाल मे जकडी हुई मुनिचर्या का उद्धार किया था। कोगनोली मे वे दिगम्बर मुद्रा मे रहा करते थे। एक उपवास एक पारणा यह क्रम वारह महीने चला करता था।

वालगोडा पाटील ने वताया कि कोगनोली मे आचार्य महाराज के शरीर पर सर्प लिपटा था। वह घटना तो सर्वत्र प्रसिद्धि पा चुकी है। उस ग्राम मे विचित्र घटना हुई

थी। श्री पाटील ने बताया-"हमारे यहाँ जब महाराज आये, तब उनकी तपश्चर्या बडी भीषण थी। रसो का परित्याग कर वे आहार लेते थे। बहुधा उपवास करते थे। दिगम्बर रूप मे विचरण करते थे। कोई लोग उपसर्ग न कर दे इस भय से ग्राम का प्रमुख व्यक्ति होने के कारण मै महाराज का कमण्डलु हाथ मे लेकर सामने चलता था, जब कि महाराज शौच आदि के लिए बाहर निकलते थे।"

पागल द्वारा भयंकर उपसर्ग

महाराज बस्ती के बाहर एक निर्जन स्थान मे बनी हुई गुफा मे रात्रि को रहा करते थे और वहाँ आत्मध्यान मे लगे रहते थे। दुर्भाग्य की बात थी कि एक बार नगर का एक पागल महाराज के पास जगल मे गया। महाराज उस समय कठोर तप किया करते थे। उस एकान्त प्रदेश मे उस पागल ने भयकर उपद्रव किया। महाराज का शरीर अत्यन्त बलशाली था। यदि वे शान्ति के सागर न होते, तो उस पागल को कहीं भी उठाकर फेक सकते थे, किन्तु वे तो आचार्य महाराज थे। क्षमाशील साधुओ के स्वामी थे। भीषण उपद्रव मे भी वे अविचलित थे।

उस पागल के हाथ मे एक लकडी थी, जिसके अग्र भाग मे नोकदार लोहे का कीला लगा था। उससे बैलो को मारने का काम किया जाता है। पागल ने महाराज जी के पास रोटी मागी। वह कहता था-"ऐ बाबा ! रोटी दो, बडी भूख लगी है।" बाबा के पास क्या था? कुछ होता तो देते। वे तो चुपचाप ध्यान करने बैठे थे। उनको शान्त देख पागल का दिमाग और उत्तेजित हुआ। उसने अपने पास की लकडी से महाराज के शरीर को मारना शुरू किया। लोहे की नोक शरीर मे, पीठ मे, छाती आदि मे चुभोयी। सारा शरीर रक्तरंजित हो गया। लकडी की मार से हाथ पैर सूज गये थे। उस कठिन परिस्थिति का क्या वर्णन करे? बहुत देर तक उपद्रव करने के बाद पागल वहाँ से चला गया। बस्ती मे आकर उसने अपने एक कुटुम्बी की हत्या की, जिसके कारण उसे प्राणदण्ड मिला था।"

श्री पाटील ने बताया- "सबेरे हमने जब महाराज को देखा, तो उनके शरीर पर अनेक जगह लकडी के निशान थे। कई जगह से खून वह रहा था। मै यह देखकर आश्चर्य मे पड गया। समझ मे नहीं आया क्या हुआ? सारे समाज को खवर लगी। सव लोग बहुत दुखी हुए। महाराज ने कुछ नहीं कहा। वे चुपचाप रहे और पास के ग्राम जैनवाडी को चले गये। वहाँ जाकर हम लोगो ने उनसे वहुत प्रार्थना की। अत्यधिक अनुनय विनय के उपरान्त वे पुन कोगनोली आये।

"आज भी पागल के द्वारा किये गये उपसर्ग का स्मरण कर रोगटे खडे हो जाते हैं। कैसी उनकी स्थिरता थी, कितना उनमे धैर्य था, कितनी उनमे शान्ति थी? हमारा छोटा सा हृदय और साधारण सा मस्तक उन गुरुदेव की गहराई और महत्ता का अनुमान भी नहीं कर सकता। धन्य है, वे जो उस भयकर शारीरिक उपद्रव को साम्यभाव से सहन करते रहे।"

श्री फूलचन्द हीराचन्द कोटड़िया पूना

श्री फूलचन्द हीराचन्द कोठडिया एडवोकेट रविवार पेठ पूना ने महाराज की सल्लेखना का उल्लेख करते हुए एक विशेष बात सुनाई-"आचार्य महाराज के नेत्रो को देखकर एक होम्योपेथिक डॉक्टर ने कहा था कि यदि वे एक माह मेरी दवा नेत्रो मे डालेंगे, तो निश्चय से लाभ होगा। ऑख मे हम शुद्ध दवा डालेगे।"

"मैने डॉक्टर से दवा लेकर कुथलगिरि भेज दी। भवितव्य प्रतिकूल था, इसलिए विश्वासपात्र आदमी के द्वारा भेजी गई वह औषधि महाराज के पास नहीं पहुँची। आठ दिन के बाद हम उनके पास पहुँचे, तब महाराज बोले-"तुमने दवा नहीं भेजी। आठ दिन तक का मौका दिया। तुम भूल गये। हमने सोचा कि अब हमारा समय समीप आ गया है, इसीलिए ऐसा हुआ। हमारे मन ने सल्लेखना की सलाह दी और हमने प्रतिज्ञा करली कि अब दवा नहीं दी जा सकती।"मैं बडा दु खी हुआ, सोचा यदि दवा पहिले पहुँच जाती, तो ये गुरुदेव इतने शीघ्र ही इस भरतक्षेत्र को छोडकर स्वर्ग की यात्रा न करते।

पं. कन्छेदीलालजी न्यायतीर्थ

ग्यारह मार्च १९५७ को माणिकचन्द्र परीक्षालय बम्बई के इन्सपेक्टर श्री प कन्छेदीलाल जी न्यायतीर्थ सिवनी आए। उन्होंने आचार्य महाराज के विषय मे आश्चर्यप्रद तथा महत्त्वपूर्ण बात बताई। उन्होंने कहा-"जब आचार्य महाराज का चातुर्मास उदयपुर में था, उस समय मैं स्थानीय पार्श्वनाथ विद्यालय में धर्माध्यापक था। उस समय इन साधुराज के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण बाते देखीं। दो एक बाते याद है। एक तो बात उनके ज्ञान से सम्बन्ध रखती है। ब्र नन्दनलाल जी शास्त्र बॉचते थे।[१] जब कभी सूक्ष्म चर्चा होते-होते गम्भीर विवाद उठता था, तब महाराज अपने प्रतिभाप्रसूत अल्प शब्दो द्वारा विवाद को शात कर देते थे।"

१ ब्र नदनलालजी आचार्य सुधर्मसागर महाराज के रूप में प्रख्यात हुए हैं।

दूसरी बात, जो याद रही वह यह है कि वहाँ महाराज की प्रकृति बिगड गयी थी। राजवैद्य प जुगलकिशोर जी को महाराज का हाथ दिखाया। महाराज का चिकित्सा की ओर तनिक भी ध्यान न था। वे अद्भुत आत्मविश्वास सम्पन्न थे। वैद्यराज उनके जीवन से बहुत प्रभावित थे।

सर्पदंश होने पर भी नीरोगता

एक दिन की बात है, वैद्यराज आचार्य महाराज की कुटी से लगभग ग्यारह बजे रात को निकलकर घर गये। उस दिन वैद्यजी के घर मे अधेरे का राज्य था। वे दियासलाई खोज रहे थे कि एक सर्प ने उन्हे काट लिया। वैद्यराज विचार मे पड गये। क्या दवा लेना? क्यो दवा लेना? इतने बडे साधु औषधि नहीं लेते। ऐसा कुछ विचार करते ही विष चढने से मूर्छा आ गई। प्रभातकाल मे जब नींद खुली तो वैद्य जी ने अपने को स्वस्थ पाया। उन्होने समझ लिया कि यह प्रभाव उन योगीश्वर का है। बहुत सबेरे ही वैद्यजी महाराज के पास गये और उन्होने कहा- "महाराज! आपका अद्भुत प्रभाव स्वयं अनुभव कर मैं आपका अनन्य भक्त बन गया हूँ। "

इस प्रकार इन विशुद्ध-चरित्र मुनिनाथ के प्रभाव से न मालूम कितने लोगों की आत्मा पवित्र हो गई।

प्रभावशाली मुद्रा

पडितजी ने यह भी बताया कि उदयपुर से चार मील पर आचार्य महाराज का चातुर्मास निश्चित हुआ था। जैनधर्म से द्वेष करने वाले अनेक दुष्टो ने आचार्य महाराज पर उपसर्ग करने का निश्चय किया था।

जब आचार्य महाराज की शात मुद्रा पर उनकी दृष्टि पडी, तो सब के सब बैरभाव भूल गये और उनके चरणों के अनुरागी बन गये। ऐसा प्रभाव उनकी मुद्रा के देखने से भद्र जीवो पर पडता था। हाँ! अत्यन्त नीच तथा कुगति मे जाने वाले, पापी पुरुषो को उनका दर्शन अवश्य हृदय मे दाह उत्पन्न करता था। ऐसा होना कोई नई बात नहीं है। सूर्य को सारा ससार प्रेम से देखता है, किन्तु चमगीदड सूर्य के तेजोमय रूप को देख नहीं सकता। इसी प्रकार का नियम मनुष्यो मे भी मानना चाहिए। कारण, जीवों का स्वभाव अद्भुत होता है। स्वभाव की कोई दवा नहीं होती। फिर भी बहु सख्या के आधार पर यह कथन वास्तविकता पूर्ण है कि आचार्यश्री का दिव्य दर्शन महान् शाति को उत्पन्न करता था।

पार्श्वनाथ उपाध्ये

कोल्हापुर के पास निपाणी नगर है। उसके पास स्तवनिधि क्षेत्र है। उस अतिशय क्षेत्र में १०८ आचार्य पायसागर महाराज का स्वर्गवास तीन वर्ष पूर्व हुआ था। उनकी स्मृति में हजारों लोग स्तवनिधि पहुँचे थे, क्योंकि पायसागर महाराज का उस तरफ बडा प्रभाव रहा है। वे अद्भुत पुरुष हो गए। हम भी श्री गणपति राटे के साथ स्तवनिधि पहुँचे।

मूर्ति निर्माता जैनी

वहाँ मदिर में पूजा करने वाले एक जैन पुजारी- उपाध्याय मिले। वे वृद्ध थे, पाषाण की सुन्दर मूर्ति बना रहे थे। वहाँ हमें पता चला कि पहले सुन्दर, आकर्षक नेत्रों तथा अतःकरण को आनदप्रद मूर्तियों का निर्माण दक्षिण में किस प्रकार जैनधर्म के आराधकों द्वारा हुआ करता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी मूर्तियाँ जैनों द्वारा ही बनाई जाती थीं, हमारा अभिप्राय यह है कि मूर्ति-निर्माण कार्य मे भी जैन कलाकार निपुण थे। पार्श्वनाथ तवनप्पा उपाध्ये उन कलाकार का नाम है और वे चिकोडी तालुका (बेलगाँव जिला) के पट्टनकुडी ग्राम के निवासी हैं।

महत्त्वपूर्ण संस्मरण

वयोवृद्ध श्री उपाध्ये ने शातिसागर महाराज के सत्सग का लाभ लिया था, भोजग्राम भी चिकोडी तालुका में ही तो है। श्री उपाध्ये का यह वर्णन महत्त्वपूर्ण तथा मनोरजक है-"आचार्य महाराज जब गृहस्थ थे अर्थात् उन्होंने जब गृह नहीं छोड़ा था, तब वे हमारे ग्राम पट्टन में आए थे। मै उनको एक घटे पर्यन्त पद्मनदिपचविशतिका सुनाता था। उस समय महाराज को ब्रह्मचारी सातगोडा कहते थे। उनका उस समय यह नियम था कि शास्त्र स्वाध्याय के बिना वे अन्न-जल नहीं लेते थे। शास्त्र सुनने के उपरात ही वे भोजन करते थे। उनका शास्त्र का प्रेम प्रारभ मे ही महान् रहा है। हमारा उनका हार्दिक प्रेम था। वे शास्त्र सुनकर मुझसे कहते थे"-

मुनि बनने की पूर्व से ही भावना

"उपाध्याय! मेरा मन शीघ्र ही स्वामी बनने का है।" दक्षिण मे मुनिपद लेने वाले को स्वामी कहने की पद्धति है। इस व्यवहार के पीछे सद्विचार छुपा है। चक्रवर्ती भी साक्षात् क्यों न हो, वह स्वामी नहीं है। वह बेचारा भोगो तथा इद्रिय सुखो का दास है।

शातिसागरजी के पास कोन्नूर मे गया था। वहाँ पाँच सौ से भी अधिक गुफाएँ है। महाराज नगर के बाहर ही गुफा मे रहते थे। दोपहर की सामायिक गुफा मे ही करते थे। गुफा पाँच फुट से भी बडी थी। ऊँची अधिक थी। एक चिट्ठे वाला सर्प, जो लगभग २ हाथ का रहा होगा, गुफा मे आया। वह महाराज की जघा पर चढा और बाद मे गुफा के बाहर आ गया। वह महाराज के शरीर पर पाँच मिनिट पर्यन्त रहा था। उस समय महाराज ध्यान मे स्थिर थे। वे जरा भी हिले-डुले नहीं। उनकी दृढता देखकर मेरे मन पर बहुत प्रभाव पडा। मैं इतना प्रभावित हो गया कि करीब लगातार तीस वर्ष पर्यन्त भादो मे उनके पास नियम से जाया करता था। मै उनके बहुत परिचय मे रहा। वे अपने ढग के अद्वितीय महापुरुष हो गए।''

कालप्पाण्णा लेगड़े शाहपुर

बहिन का वर्णन

कालप्पाण्णा लेगडे शाहपुर बेलगॉव ने बताया-''आचार्य महाराज महान् थे। उनकी बहिन कृष्णाबाई भोज की महिलाओ मे अग्रणी थीं। उनका स्वभाव मृदु था। वे सब स्त्रियो को धर्म का उपदेश देती थीं। उनका वर्ण वर्धमान महाराज के समान था। उनके समान ही वे सरल स्वभाव वाली थीं। शान्त, तेजयुक्त, बुद्धिमती महिला थीं। सैकडो महिलाओ मे उनका व्यक्तित्व पृथक् दिखता था। वे व्रती थीं। अनुभव पूर्ण चर्चा करती थीं। शरीर नीरोग था। सबसे छोटे भाई कुमगोडा पाटील जयसिगपुर के मुख्य व्यापारी थे। वे व्यवहार तथा धर्म कार्यो मे अत्यन्त चतुर तथा प्रवीण थे।''

श्री गणपति रोटे कोल्हापुर

प्रतिभा सपन्न

श्री गणपति ने आचार्य महाराज का सम्मरण सुनाया था -''शाहुपुरी मदिर की प्रतिष्ठा के समय आचार्य महाराज कोल्हापुर आए थे। उस समय कोल्हापुर मे सत्यशोधक समाज के नाम से कुछ व्यक्तियो का समुदाय विद्यमान था। उस समाज के लोगो ने तीन दिन पर्यन्त विचित्र-विचित्र शकाएँ की थीं। महाराज अपनी प्रतिभा के द्वारा जो उत्तर देते थे, उससे सब शात हो जाते थे।''

महत्त्वपूर्ण प्रश्न - मुझे यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न याद है। एक व्यक्ति ने कहा-

''महागज! आपके धर्म मे मुक्तात्माओ का पुनर्जन्म नहीं माना गया ह। मव मुक्त हो जायेगे तो एक सिद्धालय मे केसे ममावेगे?''

समाधान - आचार्य महाराज व्यक्ति की योग्यता, पात्रता आदि को ध्यान मे ग्खकर उत्तर देते थे। सामान्य ज्ञानियो को समझ मे आ जाय, ऐसी वात उस समय कहना आवश्यक था। महागज ने कहा-''एक वर्तन मे दूध लो। उसे पूरा भर दो। उसमे शक्कर डालने पर दूध नहीं गिरता है। एक दूसरे वर्तन मे पानी लो। उस पानी मे घोडे की लीद डालो, तो पानी गिर जाता है। दूध मे शक्कर की तरह एक जगह सिद्ध भगवान समा जाते है। पानी मे लीद की तरह ससागी जीव एक जगह सव नहीं समाते है।'' लोग चुप हो गए। महाराज की प्रतिभा विलक्षण थी। प्रतिभा ही क्यो, उनकी सभी वाते अपूर्व थीं।

श्री मियांचन्द रतूचन्द फड़े अकलूज

१०८ धर्मसागर मुनि महाराज को शिखरजी की यात्रा कराकर सघपति श्री मियाचद ग्तूचद फडे आषाढ वदी चतुर्थी सन् १९५५ को वारसी से चार मील की दूरी पर आचार्यश्री के समीप पहुँचे। उनसे महाराज ने पूछा-''धर्मसागर को कहाँ रखकर आए?''

उत्तर-''महाराज जवलपुर के समीप के वरगी ग्राम मे छोड आए है। वहाँ गर्मी वहुत पडती है।''

मुनि की विवेकपूर्ण दृष्टि

महाराज ने कहा-''धर्मसागर ने वहाँ ठहरकर उचित काम किया। अगर आगे चलकर गर्मी के कारण वीमार पडता, तो क्या हालत होती, ऐसी गर्मी मे?''फिर महाराज वोले-''वह होशियार हो गया- तो शहाणा झाला।''आचार्यश्री की दृष्टि को ध्यान मे न रख ऋतु की उग्रता के समय कठोर तपश्चर्या करने वाले कई पवित्र मुनीश्वरो का देहावसान हो गया है।

वारसी के समीप आने पर महाराज बोले-''तुम वापिस चले जाओ।''फडे ने कहा-''महाराज! आपके साथ थोडी दूर और चलेगे।''

महाराज-''जाओ बाबा! तुम थके हुए हो।''

फडे-''महाराज! आपके साथ चलने से थकावट दूर होती है। थकावट नहीं मालूम पडती है।''

थोड़ी दूर चलने के पश्चात उन दयालु गुरुदेव ने कहा-"जाओ! अब बहुत हो गया।' फिर महाराज बोले-"अच्छा, जाओ। हाँ! कुंथलगिरि जल्दी आना।" उस समय किसे पता था कि आगे क्या होगा? यम सल्लेखना लेने की कल्पना भी उस समय अवगत नहीं हुई थी।

कल्पना में बात तो तब आती जब उसके सम्बन्ध में कभी किसी प्रकार की चर्चा चली होती। अदभुत आत्मबली, परमपावन गुरुदेव प्रायः हृदय की बात मुझे बताते थे। उन्होंने कहा था-"हम सल्लेखना तो लेंगे, किन्तु वह यम-सल्लेखना न होगी। हम नियमरूप-सल्लेखना लेंगे," उनके मनोगत को उपरोक्त रूप में जानने के कारण, मैं तो कभी नहीं सोचता था, कि महाराज और यमराज का द्वन्द्व यम-सल्लेखना के माध्यम से आरम्भ होगा?

गहराई से पता चलाने पर यह अवगत हुआ, कि वे साधुराज सल्लेखना की तपोग्नि में अभी प्रवेश करने की नहीं सोचते थे, किन्तु दुर्दैववश कुछ लोगों ने ऐसी विचित्र परिस्थिति लाकर एकत्रित कर दी कि महाराज की अत्यन्त विरक्त और प्रबुद्ध आत्मा ने यम-सल्लेखना को स्वीकार किया। अब विशेष ऊहापोह में क्या सार है-'अब पछताए होत का, चिड़िया चुग गई खेत।'

गुरुदेव तो गए। उनके जीवन की बातों को पुनः-पुनः स्मरण कर तथा तदनुसार प्रवृत्ति कर हम अपना जन्म कृतार्थ कर सकते हैं। वे तो वास्तव में धन्य हो गए। हमारे समक्ष उनके पदचिह्न हैं।

卐 卐 卐

सर्वतोभद्र साधुराज

इस प्रकार अनेक निर्ग्रन्थ साधुओ, साध्वियो, श्रावको, श्राविकाओ, गृहस्थो आदि के अन्त करणगत विचारो से भी यह बात स्पष्टरूप से ज्ञात होती है, कि आचार्य शान्तिसागर महाराज महान् योगिराज थे। तपोमूर्ति थे। उनका जीवन अपूर्व आध्यात्मिक प्रकाश से दीप्तिमान था। वे आध्यात्मिक ज्योति थे। उनके विशुद्ध जीवन से गणनातीत भव्यात्माओ ने आत्मकल्याण की मगलमय प्रेरणा प्राप्त की थी। उनका व्यक्तित्व महान् था। उनके पवित्र सपर्क को पाकर मोही प्राणी वीतरागता के पथ पर चलने को स्वयमेव तत्पर हो जाता था।

चंदन सदृशजीवन

उनका जीवन मलयागिरि के श्रेष्ठ चन्दन तुल्य था।[१] उनके समीप पहुँचनेवाला सतापमुक्त बनता था, साथ ही उसकी आत्मा मे पवित्रता का सौरभ भर जाता था। उनके शरीर पर अनेक बार सर्पराज लिपटे थे, जो यह द्योतित करते थे, कि शान्तिसागर महाराज वास्तव मे चदन तुल्य महिमा सपन्न सज्जनोत्तम थे, क्योकि सर्पसमूह का चदन-प्रेम प्रसिद्ध है।

महान् तत्त्वज्ञानी

मोक्षमार्ग की दृष्टि से जीवन की परिपूर्णता के लिए आत्मोपलब्धि, आत्मबोध एव आत्मनिमग्नता रूप रत्नत्रय की अखण्डमैत्री आवश्यक है। उनकी वाणी तथा विविध प्रवृत्तियो के विषय मे आगम के प्रकाश मे विचार करने पर यह स्पष्ट होता था, कि वह आत्मा तत्त्व दृष्टि समलकृत थी। आप्त, आगम, तथा वीतराग धर्म के प्रति उनके अन्त करण मे सुदृढ श्रद्धा थी, इसके लिए उनका सर्वागीण जीवन दर्पण का कार्य करता हुआ प्रतीत होता है।

वैसे सूक्ष्मदृष्टि से सोचा जाय, तो सम्यग्दर्शन अत्यन्त सूक्ष्म है। वह वाणी के अगोचर है। वह केवलज्ञान, मन पर्ययज्ञान अथवा परमावधि, सर्वावधि ज्ञानगोचर कहा गया है। पचाध्यायी मे लिखा है-

> **सम्यक्त्व वस्तुत. सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।**
> **गोचरं स्वावधि-स्वान्तपर्यय-ज्ञानयोर्द्वयो ॥३७५॥**

१ गुरुदेव का जन्म जिस गृह मे हुआ था, वहाँ हम गए थे। वहाँ चदन का वृक्ष लगा है।

वह सम्यक्त्व मतिज्ञान श्रुतज्ञान अथवा देशावधि ज्ञान के अगोचर हे। पचाध्यायीकार कहते हे -

न गोचरं मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-द्वयोर्मनाक्।
नापि देशावधेस्तत्र विषयानुपलब्धित· ।।३७६।। उत्तरार्ध

किसी के बौद्धिक विकास अथवा वाणी-विलास के आधार पर भी उसके अन्त करण को सम्यक् प्रकार से समझना सभव नहीं हे। पचाध्यायी मे लिखा हे-

अस्ति चैकादशागाना ज्ञान मिथ्यादृशोपि यत्।
नात्मोपलब्धिरस्यास्ति मिथ्याकर्मोदयात् परम् ।।१९९-२।।

मिथ्यात्वी जीव के आचारागादि एकादश अगों का ज्ञान होते हुए भी आत्मा का अनुभव नहीं होता है, क्योंकि उसके मिथ्यात्व प्रकृति का उदय पाया जाता है।

ऐसी स्थिति मे सुन्दर लेखक, वक्ता, गायक, कवि आदि होते हुए भी व्यक्ति की आत्मा मिथ्यात्व पक से विमुक्त है, ऐसी कल्पना दृढतापूर्वक नहीं की जा सकती है, फिर भी स्थूल रीति से प्रशम, सवेग, अनुकम्पा तथा आस्तिक्य गुणो के द्वारा दूसरे के तत्वज्ञान के विषय मे विचारकवर्ग को सोचने, समझने मे सहायता प्राप्त होती है।

मिथ्यात्वी की पहिचान

कुछ तो ऐसी बातें कही गई हें, जिनसे क्षण भर में मिथ्यात्व के विकार का सद्भाव सूचित होता है। ऐसी प्रसिद्धि है-

सर्प डस्यो तब जानिये, रुचिकर नीम चबाय।
कर्म डस्यो तब जानिये, जिनवाणी न सुहाय।।

इसी प्रकार भगवती-आराधना का यह कथन सम्यक्त्वी-मिथ्यात्वी का विश्लेषण करने मे सहायक होता है-

पदमक्खर च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठ।
सेस रोचतो विहु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।

जो व्यक्ति सूत्रकथित एक भी पद या अक्षर को नहीं पसन्द करता है तथा उसके सिवाय शेष आगम को मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि मानना चाहिए। जिनेन्द्र वाणी के एक अश में भी अश्रद्धा रूप विष व्यक्ति के प्रगाढ मिथ्यात्व का परिचायक है।

मम्यक्त्वी जीव मर्वज्ञ, वीतगग, हितोपदेशी आप्त की वाणी पर श्रद्धान करता है। उमे वह आज्ञा रूप से स्वीकार कग्ता है। कहा भी है-

मूक्ष्म जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं च तद्ग्राह्य नान्यथा-वादिनो जिना.॥

जिन भगवान के द्वारा प्रतिपादित तत्त्व सूक्ष्म है। वह युक्ति से खण्डित नहीं किया जा सकता है। उसे आज्ञा रूप से मान्य जानकर स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान कभी भी मिथ्या प्रतिपादन नहीं करते हैं।

आगम

ियमसार में कहा है, "तम्स मुहग्गयवयण पुव्वा वरदोस विरहिय शुद्ध आगम-मिदि कहिय"-अरिहत भगवान के मुख से उत्पन्न तथा पूर्वापर दोष रहित, विशुद्धवाणी आगम है। समतभद्र म्वामी ने आप्तमीमासा मे कहा है-

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतो साध्यं तद्धेतु-साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागम-साधितम् ॥७८॥

वक्ता यदि आप्त नहीं है, तव जो वात युक्ति के द्वारा निर्णीत होती है, उसे हेतु-साधित कहते हैं। यदि वक्ता आप्त है, तो उनकी वाणी होने के कारण निर्णीत माना गया तत्त्व आगम-साधित कहा गया है।

आज कुछ लोग आगम की उपरोक्त आज्ञा की जान बूझकर अवहेलना करते हुए आगम के बहुभाग को प्रामाणिक न मानकर अपने को सम्यक्त्वी सोचते हैं तथा अपने साथियो को तत्त्वज्ञानी कहते हैं। सम्यक्ज्ञान के प्रकाश मे यह चेष्टा प्रगाढ मिथ्या भाव से परिचालित प्रतीत होती है। ऐसे व्यक्तियों से सम्यक्त्व के सद्भाव के सूचक आस्तिक्य गुण का अभाव निश्चित होता है। जैसे नीरोग व्यक्ति की चेष्टाओं से उसकी म्वस्थता का परिज्ञान होता है उसी प्रकार सम्यक्त्वी की चेष्टाओं आदि द्वारा सम्यक्त्व का सद्भाव सूचित होता है।

सम्यक्त्व के चिह्न

हमे देखना है सम्यक्त्व के चिह्न रूप प्रशमादि का क्या स्वरूप है, और वे चिह्न आचार्य शान्तिसागर महाराज मे थे या नहीं? अनगारधर्मामृत मे लिखा है-

प्रशमो रागादीनां विगमोऽनन्तानुबंधिना सवेगः ।
भव-भयमनुकम्पाखिल सत्त्वकृपास्तिक्यमखिलतत्त्वमतिः ॥२-५२॥

अनतानुबधी रागादि अर्थात् क्रोध, मान, माया तथा लोभ का अभाव प्रशम भाव है। इससे आत्मा मे प्रशान्त भाव उत्पन्न होता हे। ससार से भयभीत होने को सवेग कहते हैं[१]। त्रस-स्थावररूप सपूर्ण जीवो पर दयाभाव रखना अनुकम्पा हे। सपूर्ण तत्त्वो के यथार्थ स्वरूप के निश्चय को आस्तिक्य भाव कहा है। जिनेन्द्र प्रणीत आगम के कथन पर पूर्ण विश्वास धारण करने को भी आस्तिक्य कहा गया हे।[२]

आचार्यश्री का जीवन

हमने इस आध्यात्मिक ज्योति मे विविध व्यक्तियो के विचारो को उनके शब्दो में निबद्ध किया है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शान्तिसागर महाराज प्रशममूर्ति थे। उनका जीवन वैराग्य भाव से परिपूर्ण रहा है, अत सवेगभाव भी उनमे था। त्रस-स्थावर जीवों के प्रति कारुण्य-भाव धारणकर महाव्रत को अगीकार करने के कारण उनके उच्च अनुकम्पा भाव स्वयंसिद्ध होता है। जिनेन्द्र की वाणी पर उनकी श्रद्धा लोकोत्तर थी। उस आगम पर श्रद्धा रहने के कारण ही ईर्या आदि समितियों की रक्षार्थ उन्होने शरीर के सशक्त रहते हुए भी समाधिमरण रूपी दुर्धर तप साधना को स्वीकार कर परम शान्तिपूर्वक प्राणों का परित्याग किया।

धर्मध्यान

आर्तध्यान, रौद्रध्यान का त्याग कर उन्होंने धर्मध्यान को स्वीकार किया था। इस समय शुक्लध्यान भरतक्षेत्र मे नहीं होता है। कुदकुदस्वामी ने लिखा है-

---

१ पचाध्यायी में सवेग का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है-
सवेग परमोत्साह धर्मे धर्मफले चित ।
सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिसु ॥
आत्मा का धर्म तथा धर्म के फल में परम उत्साह रखना, साधर्मियों में अनुराग अथवा परमेष्ठियों में प्रीति करना सवेग भाव है।

२ राजवार्तिक में अकलक स्वामी ने प्रशमादि का स्वरूप पूर्ववत् ही कहा है-
रागादीनामनुद्रेक प्रशम । ससाराद्भीरुता सवेग । सर्वप्राणिषु मैत्री अनुकपा। जीवादयोऽर्थो यथा स्वभावै सतीति मतिरास्तिक्य। एतैरभिव्यक्तलक्षण प्रथम सरागसम्यक्त्वमित्युच्यते। पृ १६, अध्याय १, सूत्र २ ।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सोवि अण्णाणी ॥७६॥ मोक्षपाहुड

इस भरतक्षेत्र मे इस पंचमकाल मे मुनि के धर्मध्यान होता है। यह ध्यान आत्म-स्वभाव मे स्थित मुनि के होता है। इस बात को जो नहीं मानता है वह व्यक्ति भी अज्ञानी है।

शुभोपयोग मीमांसा

आचार्य महाराज की प्रवृत्ति निसर्गत शुभोपयोग रूप होती थी। चारित्रशून्य कोई-कोई गृहस्थ आजकल अपने को शुद्धोपयोगी सोचते हैं। यह धारणा आगमबाधित है। परिग्रही गृहस्थ के शुद्धोपयोग नहीं होता। वह दिगम्बर साधु के ही पाया जाता है। अप्रमत्त गुणस्थान से आगे शुद्धोपयोग कहा है। बृहद्द्रव्यसंग्रह में गाथा ३४ की टीका में (पृ ९४) लिखा है-"ततोऽप्यसंयतसम्यग्दृष्टि-श्रावक-प्रमत्तसंयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो वर्तते तदनन्तरमप्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यन्तं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन विवक्षितैकदेश-शुद्धनयरूप-शुद्धोपयोगो वर्तते"-असंयत-सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में परम्परा से शुद्ध उपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभ उपयोग रहता है। तदनन्तर अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यन्त जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद से विवक्षित एक देश शुद्धनय रूप शुद्ध उपयोग वर्तता है।

जो गृहस्थ अपने पद के योग्य सामान्य सदाचार को भूलकर अशुभोपयोग में लीन रहते हुए शुद्धोपयोग की बाते बनाते हैं तथा शुभोपयोग को त्याज्य कहते हैं, वे पापपंक मे डूबते हैं। जब आगम कहता है, गृहस्थावस्था मे शुद्धोपयोग नहीं होता है, तब उस आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करना हितकारी है। अपनी झूठी कल्पना द्वारा आगम की अवहेलना मिथ्यात्वी का कार्य है।

पुण्य बंध

इस शुभोपयोग का फल पुण्यबंध है। पुण्यबंध रहित अवस्था शुक्लध्यान द्वारा साध्य है। आज वह ध्यान नहीं होता, अत धर्मध्यान द्वारा पुण्यबंध मानना होगा।

कुंदकुंद स्वामी ने संसार अनुप्रेक्षा में लिखा है -

असुहेणणिरयतिरियं सुहजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोयं विचिंतिज्जो ॥४२॥

अशुभ उपयोग से नरक, तिर्यंच पर्याय मिलती है। शुभ उपयोग से देव तथा नरगति के सुख मिलते है। शुद्धोपयोग से मोक्ष मिलता है, इस प्रकार इस लोक के विषय में विचार करे।

धर्म ध्यान शुभ भाव है

धर्मध्यान शुभ परिणाम रूप है। यह धर्मध्यान चौथे से प्रारम्भ होता है। श्रेणी पर आरोहण के पूर्व धर्मध्यान होता है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मे अकलकस्वामी ने लिखा है-"धर्म्यध्यान श्रेण्योर्नेष्यते"(अ ९ सू ३६, पृ ३५४)। आगे उन्होंने यह भी लिखा है-"धर्म्यध्यानमविरत-देशविरत-प्रमत्ताप्रमत्तसयताना भवति"-यह धर्म्यध्यान अविरत, देशविरत, प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत पर्यन्त होता है। अप्रमत्तगुणस्थान का भेद सातिशय अप्रमत्त भी कहा है, जबकि वह जीव करणत्रिक करता हुआ श्रेणी पर आरोहण करता है। अत इस गुणस्थान मे श्रेण्यारोहण के पूर्व धर्मध्यान होता है तथा श्रेणी आरोहण काल में शुक्ल ध्यान होता है। धर्मध्यान शुभ परिणाम स्वरूप है। उससे पुण्य का बध होता है। इस विषय मे कुदकुदस्वामी का प्रवचनसार के ज्ञेयाधिकार मे यह कथन मनन योग्य है-

सुह-परिणामो पुण्णं, असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामोणण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥१८१॥

आगम मे शुभ परिणाम पुण्य का कारण कहा है। अशुभभाव पाप का कारण कहा गया है। इन दोनों से भिन्न शुद्धभाव दु खक्षय का कारण कहा गया है। कुदकुदस्वामी ने गाथा २७४ मे कहा है-"सुद्धस्स य णिव्वाण" शुद्धोपयोगी के ही मोक्ष होता है, इससे जो गृहस्थ शुद्धोपयोग की ही बाते करते हुए शुभोपयोग की भूमि पर पैर ही नहीं रखना चाहते, फलत शुभोपयोग छोडा, शुद्धोपयोग मिला नहीं, तो पारिशेष न्यायानुसार अशुभोपयोग से कुपथ मे भटकते है। वे स्वय आगमविरुद्ध विचार- चक्र मे फँसते हैं और अन्य धार्मिक लोगों को भी अपने रास्ते पर खींचने का उद्योग करते फिरते हैं। यह पद्धति ठीक नहीं है।

शुभोपयोगी के पुण्य बध एव पाप की निर्जरा होती है। ठीक मार्ग इस प्रकार है। कहा भी है—

अशुभ भाव को त्यागकर सदा धरो शुभ भाव।
शुद्धभाव आदर्श हो यह आगम का भाव ॥१॥

हिंसादिक दुर्भाव हैं, जिनपूजादि सुभाव।
दया-दान- व्रतधारकर लागहु मोक्ष उपाव ॥२॥

आगमोक्त प्रवृत्ति

आचार्य महाराज आगम के हृदय को भली प्रकार समझते थे, अत वे शुभोपयोग से सबध रखने वाले अन्य कार्यो में भी योगदान करते थे। कुथलगिरि मे यम-सल्लेखना लेने पर भी वे प्रतिदिन १००८ भगवान देशभूषण, कुलभूषण स्वामी का पचामृत अभिषेक देखकर निर्मलता प्राप्त करते थे।

ऐसी श्रेष्ठ तपस्या के समय पर उन आगमप्राण गुरुदेव का अभिषेक-दर्शन धार्मिक वर्ग को यह सूचित करता है, कि उक्त अभिषेक पद्धति पूर्णतया आगम-सम्मत है। वह पथ विशेष की वस्तु नहीं है। आत्मकल्याण के प्रेमियों को आचार्य महाराज के जीवन से अपनी धारणा मे सुधार करना चाहिए।

विचारणीय

यह बात स्थूल बुद्धि व्यक्ति भी सोच सकता है, कि उस तपश्चर्या काल मे शान्तिसागर महाराज अपने प्राणाधिक आगम के अनुसार प्रवृत्ति कर रहे थे। जो पक्षाध व्यक्ति यह सोचे, कि महाराज दक्षिण के थे, अत वे ऐसा करते थे, वे भ्रम मे हैं। वे गुरुदेव न दक्षिण के थे, न उत्तर के, वे तो आगम के थे। अतएव आचार्य महाराज की महत्ता को स्वीकार करने वालों को पक्ष की ममता त्याग- कर गुरुदेव के जीवन मे प्रकाश प्राप्त करना चाहिए। पक्ष मोह छोडकर आगम की आज्ञानुसार प्रवृत्ति हितकारी है। आगमपथी बनना श्रेयस्कर है।

व्यवहार-निश्चय मीमांसा

कोई-कोई यह कहते हैं, मुमुक्षु को व्यवहार दृष्टि को छोडकर निश्चय दृष्टि को अपनाना चाहिए, क्योंकि उनकी धारणा है कि व्यवहार नय मिथ्या है, इस विषय में आचार्य महाराज कहते थे स्याद्वादवाणी का अग होने से दोनो नय सम्यक् हैं। इसी से उन्होंने व्यवहार का परित्याग नहीं किया था। बहुधा लोग व्यवहार-निश्चय का आगम-सम्मत अर्थ बिना जाने-बूझे व्यवहार की निन्दा के क्षेत्र मे कूद पडते हैं। उन्हे जानना चाहिए कि निश्चय नय के समान व्यवहार नय भी सम्यक् ज्ञान का अग है। वस्तुभेद (पर्याय) तथा अभेद (गुण अथवा द्रव्य, सामान्य) रूप है। वह सामान्य-विशेष धर्मरूप है। 'आलाप पद्धति' में लिखा है। ''तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च। तत्र

निश्चयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषय '' व्यवहार तथा निश्चय ये दो मूल नय है। निश्चय नय अभेद को ग्रहण करता है, व्यवहार नय भेद को विषय करता है। भेद तथा अभेद मे दोनो प्रमाण के विषयभूत होने से यथार्थ है, काल्पनिक नहीं हैं। महाज्ञानी ऋषिराज समतभद्र स्वामी ने आप्तमीमासा मे उपरोक्त तत्त्व इन शब्दो मे व्यक्त किया है -

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥३६॥

भेद तथा अभेद दोनो अस्तित्व रूप है, क्योकि वे प्रमाण ज्ञानगोचर हैं। वे काल्पनिक नहीं हैं। वे मुख्य तथा गौण विवक्षारूप से आपके मत मे एक जगह पर दोनो ही अविरोधी रूप मे पाये जाते है।

भ्रान्त धारणा

आचार्य महाराज ने द्वादशाग महाशास्त्र को समुद्र की उपमा दी थी। उस द्वादशाग वाणी की गभीरता को भुलाकर वालवुद्धि व्यक्ति भी अपने को सरस्वती पुत्र मानकर आजकल आचार्यो के कथन को भी सदोष बताता है। कोई-कोई कहते हैं, पुण्य, पाप दोनो समान हैं। अत पुण्य भी त्याज्य है। जव पुण्य त्याज्य है, तब पुण्य के कारण दान-पूजादि कार्य भी अग्राह्य हो जाते है। ऐसी धारणावाला गृहस्थ देवपूजा, दानादि सत्कार्यों को भी छोडकर अपने जीवन की मलिनता का परित्याग नहीं करता है। इस विषय मे एकान्त पक्ष को छोडकर विवेकी व्यक्ति को आचार्य महाराज के समान अनेकान्ती बनना चाहिए। आचार्य महाराज स्वय पुण्य प्रवृत्तियो मे तत्पर रहते हुए अनेक भक्तो को व्रतधारण द्वारा पुण्य सचय करने के मार्ग मे लगाते थे। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश मे कहा है "वर व्रतै पद दैव, नाव्रतैर्बत नारक"(३)-व्रतो के द्वारा देवपद पाना अच्छा है, व्रतरहित होकर नरक मे जाना बुरा है। इस रहस्य के सौन्दर्य को भूलकर कोई-कोई कहते है कि पुण्य तथा पाप दोनो समान है। अत पुण्य का उपदेश देना ठीक नहीं है। कुंदकुंद स्वामी ने मोक्षपाहुड मे कहा है, हिसादि के त्याग रूप व्रत तथा तप द्वारा स्वर्ग जाना अच्छा है। पापाचरण द्वारा नरक जाना ठीक नहीं है, -"वर वयतवेहि सग्गो, मा दुक्ख णिरय इयरेहि" ॥२५॥

पुण्य सचय

खेद है कि लोग आगम के सिंधु मे अवगाहन बिना किए ही स्वेच्छानुसार कल्याण करते हैं। बडे-बडे आचार्यों ने गृहस्थो को पुण्य सचय का उपदेश दिया है।

गृहस्थावस्था में धर्मध्यान रूप शुभोपयोग ही संभव है जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है, अतः पुण्यसंचय की ओर गृहस्थ की जीवनधारा को प्रवृत्त कराना पूर्णतया उचित है। आश्चर्य है कि गृहस्थ पुण्य रूप वृक्ष के फलों को संचय करना चाहता है उनका रसपान करने को लालायित रहता है उसमें ही अपना प्रायः सारा समय व्यय करता है किन्तु उस वृक्ष की निन्दा करता है उसकी जड़ को पुष्ट करने के बदले में उसे क्षति पहुँचाने की अभद्र चेष्टा करता है।

पुण्यस्य फलमिच्छंति पुण्यं नेच्छंति मानवा:।
न पापफलमिच्छंति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

पाप-पुण्य में भेद

गृहस्थों को यह जानना चाहिए कि स्याद्वाद शासन में पुण्य पाप को आध्यात्मिक दृष्टि से जहाँ समान कहा है वहाँ उन दोनों के भेद को भी स्वीकार किया गया है। जिनने समयसार ही देखा है उनको अकलंक स्वामी का राजवार्तिक भी पढ़ने का कष्ट करना चाहिए जहाँ अनेकान्त दृष्टि को इस प्रकार खुलासा किया गया है।

अनेकांत पक्ष

"उभयमपि परतन्त्र्य-हेतुत्वादविशिष्टमिति चेन्नेष्टानिष्टनिमित्तभेदात्तत्सिद्धे:"
शंकाकार कहता है पुण्य तथा पाप दोनों ही समान हैं, क्योंकि दोनों जीव की परतंत्रता के कारण हैं। इस पर **आचार्य** उत्तर देते हैं कि ऐसा कथन ठीक नहीं है। इष्ट तथा अनिष्ट निमित्त भेद से उन दोनों में भिन्नता है। 'यदिष्ट-गति-जाति-शरीरेन्द्रिय-विषयादिनिर्वर्तकं तत्पुण्यं। अनिष्टगति-जाति-शरीरेन्द्रिय-विषयादिनिर्वर्तकं यत्तत्पापमित्यनयोरयं भेदः।' जो इष्ट गति जाति शरीर, इन्द्रिय विषयादि का कारण है वह पुण्य है और जो अनिष्ट गति जाति शरीर इन्द्रिय विषयादि का कारण है, वह पाप है। इस प्रकार पुण्य-पाप में भेद है। (पृ २४८ अध्याय ६)।

अध्यात्म प्रेमियों के आराध्य अमृतचन्द्रसूरि अकलंक स्वामी का समर्थन करते हुए तत्त्वार्थसार के चतुर्थ अध्याय में कहते हैं –

संसारकारणत्वस्य द्वयोरप्यविशेषतः ॥१०४॥

पुण्य-पाप दोनों संसार के कारण होने से समान हैं।

इसी विषय को आधारभूत बनाकर पुण्यसंचय के विरुद्ध यथेच्छ प्रतिपादन

किया जाता है। लोगो को यह जानना चाहिए कि शुद्धतत्त्व प्रतिपादन की अपेक्षा उपरोक्त बात कही गई है।

उदाहरण-जीवतत्त्व की दृष्टि से लोकाग्रभाग मे तनुवातवलय के नीचे विराजमान सिद्धभगवान तथा वहाँ आकाशप्रदेश मे स्थित निगोदिया जीव समान है। दोनो मे अन्तर नहीं है। यह द्रव्यदृष्टि है। पर्याय दृष्टि से दोनो का अन्तर स्पष्ट है। निगोदिया अक्षर के अनतवे भाग ज्ञान वाले हैं, अनन्त दु ख के समुद्र मे डूबे है, अत्यन्त अल्पशक्ति वाले हैं और सिद्ध भगवान अनतदर्शन ज्ञान, सुख, वीर्य आदि सम्पन्न है। अत विवेकी का कर्त्तव्य है कि पर्याय दृष्टि तथा द्रव्य दृष्टि का यथायोग्य उपयोग करे। द्रव्यदृष्टि से ठण्डा जल और उबलता हुआ पानी समान हैं। यदि एक बालक को दोनो प्रकार के पानी को समान समझाकर भेद न बताया जाय, तो बेचारा उबलते हुए पानी को भी शीतल जल सदृश समझने के कारण दाहजनित व्यथा से पीडित हुए बिना न रहेगा। इस कारण यद्यपि पुण्य और पाप एक दृष्टि से समान हैं, किन्तु दूसरी दृष्टि से वे भिन्न भी हैं। गृहस्थो को यह भिन्न दृष्टि भी स्मरण रखना चाहिए।

अमृतचन्द्र सूरि की दृष्टि

अनेकान्त तत्त्वज्ञान के समर्थ प्रतिपादक अमृतचन्द्र स्वामी ने उसी तत्त्वार्थसार में लिखा है-

हेतू-कार्य-विशेषाभ्या विशेष पुण्य-पापयो ।

– पुण्य और पाप मे हेतु और कार्य की दृष्टि से भिन्नता है, अर्थात् दोनो समान नहीं हैं।

हेतू शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥१०३॥

– पुण्य का हेतु शुभभाव है, पाप का कारण अशुभ भाव है। इस प्रकार हेतु की दृष्टि से दोनो पृथक् हैं। कार्य की दृष्टि से भी दोनो मे भिन्नता है, पुण्य का फल आनन्द है और पाप का फल दु ख है। तपस्वी साधु के मुख से पुण्य-पाप की समानता की बात कुछ अर्थपूर्ण दिखती है, किन्तु कनक, कामिनी के पाश मे फँसा हुआ गृहस्थ, साधु की वाणी की नकल करता हुआ अद्भुत सा लगता है। सातवे नरक के नारकी और सर्वार्थसिद्धि के दिव्य सुखो का अनुभव करने वालो को समान गिनने वाला गृहस्थ अद्भुत दिमाग वाला दिखेगा।

उत्तर - इसका उत्तर देते हुए जैन कहते हैं, कि उपरोक्त साम्य होते हुए भी दोनों में भोज्यपना, अभोज्यपना की अपेक्षा अन्तर है। वृक्षपना आम तथा नीम के वृक्षों में पाया जाता है, फिर भी भक्ष्यपना की दृष्टि से आम का फल मनुष्य के लिए ग्राह्य है, नीम की निबोरी नहीं, हाँ कौआ को वह निबोरी भले ही अच्छी लगे। अथवा स्त्रीपना माता तथा पत्नी में समान रूप से विद्यमान है, किन्तु उन दोनों की भिन्नता भी सब स्वीकार करते हैं। जंगली लोग भी दोनों की भिन्नता को मानते हैं, उच्च समाज तो भिन्नता को स्वीकार करती ही है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दृष्टि से दो पदार्थ समान हो जाते हैं, दूसरी अपेक्षा से उनमें भिन्नता पाई जाती है। महाराज दशरथ की संतान होने से राम, लक्ष्मण भाई हैं, किन्तु राम की जननी कौशल्या तथा लक्ष्मण की जननी सुमित्रा है, अतः माता की अपेक्षा राम-लक्ष्मण में भिन्नता है। यही न्याय पुण्य, पाप के विषय में लगाना चाहिए। आचार्य कुंदकुंद की परम्परा वाले अमृतचन्द्रसूरि तथा अकलंकदेव की भी दृष्टि धार्मिक पुरुष को शिरोधार्य होनी चाहिए। इस आर्ष दृष्टि को अस्वीकार करनेवाला भी यदि सम्यक्त्वी हो सकता है, तो फिर मिथ्यात्वी का क्या स्वरूप होगा? यह स्मरण रखना चाहिए कि एकान्त पक्ष ही मिथ्यात्व है, वही कथन सापेक्षरूपता धारण करके अनेकान्तरूप बनकर सम्यक् हो जाता है।

पुण्य तथा धर्म

इस प्रसंग में अध्यात्मवाद के आभासियों की एक भ्रान्त धारणा पर भी विचार करना आवश्यक है। वे कहते हैं, भगवान की पूजा आदि धर्म नहीं हैं। वे कार्य पुण्य हैं। पुण्य-पाप के समान हैं, अतः मुमुक्षु को पूजा आदि के प्रपंच में नहीं फँसना चाहिए। एक और अद्भुत बात है, ये लोग पूजा भी करते हैं और उसे बुरा भी बताते हैं। ऐसे लोगों को यह समझना चाहिए कि भगवान की पूजा आदि से पुण्य होता है, सुख मिलता है तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुंदकुंद स्वामी ने श्रावक धर्म में दान पूजादि का

ममावेश किया है। श्रावकाचरण को 'सावय धम्म' कहा है। अध्यात्मवादियों के अत्यन्त आदर प्राप्त महाकवि बनारसीदास जी जिनेन्द्रदेव की पूजा के फलरूप इंद्रियजनित सुखों के साथ मोक्षसुख का भी वर्णन करते हैं। उनका कथन है-

देवलोक ताके घर आगन राज रिद्धि सेवे तसु पाय।
ताके तन सौभाग्य आदि गुन केलि निवास करें नित आय॥
सो नर तुरत तिरें भव सागर निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य-भाव, विधि सहित बनारसि जो जिनवर पूजें मन लाय॥

धर्म का स्वरूप

धर्म की परिभाषा है-"यतोभ्युदय-नि श्रेयससिद्धि स धर्म "-जिससे अभ्युदय अर्थात् ससार का वैभव तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं, उसे धर्म कहते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य ने महापुराण मे लिखा है-

धर्मादिष्टार्थसंपत्तिस्ततः कामसुखोदयः।
स च सप्रीतये पुसा धर्मात् सैषा परपरा ॥१५, पर्व ५॥

राज्य च संपदो भोगा कुले जन्म सुरूपता।
पाडित्यमायुरारोग्यं धर्मस्यैतत्फलं विदुः ॥१६॥

धर्म से इष्ट पदार्थ, सपत्ति का लाभ होता है। उससे कामरूप सुख उत्पन्न होता है। उससे आनन्द प्राप्त होता है। यह परपरा धर्म से प्राप्त होती है। धर्म के फल राज्य, सपत्ति, सुकुल मे उत्पत्ति, सुरूप की प्राप्ति, विद्वत्ता, दीर्घजीवन तथा नीरोगता कहे गए हैं।

धर्म का क्या स्वरूप है? इस पर महापुराणकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं-

दया-मूलो भवेद्धर्मो दया प्राण्यनुकपनम्।
दयाया परिरक्षार्थं गुणाः शेषाः प्रकीर्तिताः ॥२१॥

धर्म का मूल दयाभाव है। प्राणियो के प्रति अनुकम्पा करना दया है। इस दया भाव के रक्षणहेतु शेष गुण कहे गए है। कुंदकुद स्वामी ने बोध पाहुड मे "धम्मो दया विसुद्धो (२५)-दया से विशुद्ध भाव धर्म है, कहा है। मोक्षपाहुड मे उन्होने अहिसा भाव को धर्म कहा है। "हिसारहिए धम्मे" (९०) अत गृहस्थ को जीवदया रूप मे धर्म का पालन करना चाहिए। मुनिराज जीव रक्षा करते है।

जिन सत्कार्यों को लोग पुण्य कह दिया करते है, यथार्थ में उनके भीतर दया भाव का पोषण पाया जाता है। दया शब्द व्यापक है। उसके दो भेद स्वदया, परदया कहे गए है। दया या अहिंसा भाव को धर्म जानना चाहिए।

धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ

धम्मो वत्थुसहावो खमादि भावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो।।

वस्तु का निज स्वभाव धर्म है। उत्तम क्षमादि भावरूप दशविध धर्म है। रत्नत्रय धर्म है। जीवदया भी धर्म है (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

सनातन धर्म के चिह्न

महापुराण में लिखा है-

धर्मस्य तस्य लिंगानि दम. शांतिरहिंस्रता।
तपो दानं च शीलं च योगो वैराग्यमेव च ।।२२।।

अहिंसा-सत्यवादित्व-मचौर्यं त्यक्तकामता।
निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्म. सनातन. ।।२३।।

उस धर्म के ये चिह्न हैं, इंद्रियों का दमन, क्षमा, अहिंसा. तप, दान, शील, योग (ध्यान) वैराग्य। अहिंसा. सत्यवादिता, अचौर्य, कामभाव का त्याग. परिग्रह रूप धर्म सनातन हैं। आचार्य कहते हैं:-

तस्माद्धर्मफलं ज्ञात्वा सर्वं राज्यादिलक्षणम्।
तदर्थिना महाभाग! धर्मे कार्या मतिः स्थिरा ।।२४।।

अत हे महाभाग महाबल नरेन्द्र! यह राज्यादिकी प्राप्ति उस धर्म का फल जानकर तुम्हें धर्म के कार्य मे अपनी बुद्धि को दृढ़ करना चाहिए।

अतएव इस आर्षवाणी के प्रकाश में जो राज्यादि संपत्ति को धर्म का फल कहे जाने का विरोध करते हैं, उनको अपने विचारों का संशोधन करना चाहिए, क्योंकि उनका कल्याण स्याद्वाद दृष्टि में है।

जिनसेनाचार्य के विचारों का समर्थन करने वाले उद्भट आचार्यों द्वारा रचित बहुत से प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं; किन्तु स्थानाभाव होने से धर्मात्मा पुरुषों को पूर्वोक्त आगम से ही आत्महित में प्रवृत्त होना चाहिए।

निमित्त की उपयोगिता

एक वात ओर हे, उस पर भी मक्षेप मे प्रकाश डालना उपयोगी प्रतीत होता हे। मोक्ष की प्राप्ति के लिए अन्तरग भाव ही चाहिए। वाह्य निमित्त कारण कुछ नहीं करता हे। वह मात्र उपस्थित रहता हे। इस प्रकार निमित्त को 'पचम अन्यथासिद्ध' रूपता प्रदान करना विचित्र सूझ है। घट पर्याय की उत्पत्ति मे उपादान कारण मृत्तिका हे। यदि उस समय कुभकार उपस्थित मात्र रहता हे ओर इससे उसे निमित्त कारण माना जाय, तो कुभकार का गधा भी उस समय उपस्थित रहता हे, अत वह भी कुभकार के समान निमित्त कहा जायगा। गर्दभ को निमित्त कारण कहेंगे तो गर्दभ के अभाव में घट की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिए। ऐसा नहीं हे, अत कार्य की उत्पत्ति मे निमित्त-उपादान कारण युगल का सद्भाव मानना चाहिए।

आचार्य गुणभद्र का कथन

उत्तर पुराण में लिखा है कि जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा अचेतन होते हुए भी पुण्य वध मे कारणारूप परिणामो की उत्पत्ति मे कारणा हे। इस विपय मे प्रकाश डालते हुए गुणभद्राचार्य लिखते हैं –

> कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्यसमुद्भवः।
> तस्मात् साधु विज्ञेयं पुण्यकारणकारणम् ॥ ५३-पर्व ७३॥

कारण युगल अर्थात् वाह्य अन्तरग अथवा निमित्त उपादान कारणो के द्वारा कार्य की उत्पत्ति होती है। जिनेन्द्रप्रतिमा पुण्य वध के कारण का कारण हे, अर्थात् परपरा-कारण है। पुण्य वध का कारण जीव का भाव हे ओर जीव के शुभ परिणामो मे कारण प्रतिमा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कारण द्वय के द्वारा कार्य होता हे, केवल उपादान द्वारा नहीं।

जो सवस्त्र मुक्ति मानते है, वे यह कह सकते हैं, कि केवल भाव ही मोक्ष का कारण है, वस्त्र त्याग रूप निमित्त की जरूरत नहीं है। जो दिगम्बर सप्रदाय वाले उपादान को ही सब कुछ मानकर निमित्त का तिरस्कार करते है, वे दिगम्बर जैन आगम के विपरीत मत का प्रचार करते हैं।

पद्मपुराण की महत्त्वपूर्ण उक्ति

> अपकारे समासक्ता परस्य स्वस्य चानिशम्।
> ज्ञास्यति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गति-गामिन. ॥९९ सर्ग ३०॥

इम पचमकाल मे अपना अहित करने मे तथा दूसरे का अहित करने में निरन्तर तत्पर रहने वाले व्यक्ति पैदा होंगे अपने को सिद्ध समान मानने वाले दुर्गतिगामी पुरुष पैदा होंगे। एकान्तवादियों द्वारा पूजित चरण वाले संयमशून्य व्यक्ति का समाधिशून्य मरण देख आर्षवाणी की सत्यता स्पष्ट होती है।

जिनेन्द्र की ऐसी भविष्य वाणी के प्रकाश में लोगों को एकान्त अध्यात्मवाद का आश्रय छोडकर आचार्य शान्तिसागर महाराज द्वारा उपदिष्ट तथा उनके जीवन द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त पथ पर चलकर अपना कल्याण करना चाहिए। महाराज कहते थे, आगम के अनुसार विचार बनाना चाहिए। अपनी धारणा के अनुसार आगम को नहीं बदलना चाहिए।

आगम-प्राण

आचार्य महाराज की श्रद्धा मेरु की तरह अविचलित थी। सागर के समान वह अथाह थी। उनके आदेशानुसार जब धवला, जयधवला महाबंध (महाधवल) सिद्धान्त ग्रंथ ताम्रपत्र में उत्कीर्ण हो गए, तब महाराज ने शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापकों से कहा था "ये शास्त्र हमारे प्राण हैं। हमारा प्राण इस शरीर में नहीं है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी ही हमारा प्राण है।" यथार्थ में आचार्य महाराज आगम-प्राण थे।

सम्यक्त्व के विषय में

अनगारधर्मामृत में एक महत्त्व की बात आई है-

तै. स्वसंविदितै. सूक्ष्मलोभान्ता. स्वां दृशं विदु.।
प्रमत्तान्तान्यगां तज्जवाक्चेष्टानुमितैः पुनः ॥२-५३॥

स्वय के ज्ञान द्वारा उक्त प्रशमादिकों के द्वारा असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय दशम गुणस्थान पर्यन्त जीव स्वगत सम्यक्त्व के सद्भाव को जान सकते है। प्रशमादिकों के निमित्त से उत्पन्न होने वाले वचन तथा चेष्टा यानी शरीरक्रिया को देखकर छठे प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त के अन्य जीवो के सम्यग्दर्शन को भी जान सकते हैं।

आत्मानुभवी महर्षि

इस प्रसग मे एक उपयोगी सस्मरण लिखना उचित प्रतीत होता है। सन् १९५४ के पर्युषण पर्व मे आचार्य महाराज फलटण में विराजमान थे। पर्व के पर्यवसान के समीप काल मे आचार्य महाराज बडी तन्मयता पूर्वक आत्मध्यान, आत्मचिंतन तथा आत्मस्वरूप

की चर्चा कर रहे थे। उस समय मेने पूछा था-"महाराज! आप जो कुछ कथन कर रहे हे, वह आगम, अनुमान या अनुभव के आधार से कह रहे हे?"

मेरे प्रश्न के उत्तर मे उनके मुख से सहसा ये मार्मिक शव्द निकल पडे- "हम अपने अनुभव से यह कथन कर रहे हें।" इसके पश्चात् वे योगिराज गम्भीर होकर चुप हो गये थे। उस समय हृदय मे अवर्णनीय आनन्द आया, कि हमे सच्चे आत्मानुभवी साधुराज के चरणों के समीप रहने का अपूर्व सोभाग्य प्राप्त हुआ। अनगार-धर्मामृत रूप उपरोक्त शास्त्राधार से यह स्पष्ट हो जाता हे कि चतुर्थगुणस्थान से दशम गुणस्थान पर्यन्त स्वय के सम्यक्त्व का निश्चय हो जाता है। अत आचार्य महाराज का उपरोक्त कथन शास्त्राज्ञा द्वारा समर्थित स्पष्ट ज्ञात होता है।

विवेक दृष्टि

ससार में जहाँ असली रत्न रहता हे, वहॉ नकली रत्नों का ढेर भी पाया जाता है। जौहरी व्यक्ति अपनी कुशलता के द्वारा असली, नकली का भेद जान लेता हे। इसी प्रकार आज वहुत से अपने को सम्यक्त्वी कहने वालो तथा समझने वालो की सख्या को देखकर आगम ज्ञाता समझ सकता है कि इनमे कोन किस प्रकार है? जो प्रशम भाव के स्थान में अहकार, माया आदि कषायो की मूर्ति हो, जो ससार से डरने के बदले मे सत्कार्यो से डरकर दूर भागते हो, क्रूर स्वभाव, क्रूर आचार, क्रूर विचारादि के कारण जिनके जीवन में अनुकम्पा का लेश भी न हो तथा जो आगम की आज्ञा का तिरस्कार कर स्वय नवीन शास्त्र वनाने की प्रवृत्ति में सलग्न हो, ऐसी आस्तिक्यशून्य आत्मा में सम्यक्त्व का सद्भाव सोचना वकराज को हस मानने सदृश अविवेकपूर्ण वात होगी। कहाँ हस और कहाँ वकराज! दोनो का वर्ण धवल है, किन्तु दोनो की परणति भिन्न-भिन्न है। उसी प्रकार कहॉ आचार्य शान्तिसागर महाराज मे पाए जाने वाले सम्यक्त्व के सद्भावसूचक प्रशम, सवेगादि भाव तथा कहाँ अहकार मूर्ति और प्रतारणा पण्डित प्रशमादि शून्य व्यक्ति के परिणाम! "कहॉ काग वाणी, कहॉ कोयल की टेर है।"

सम्यक्त्व के अष्ट अग कहे गए हैं- नि शकित नि काक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य तथा प्रभावना। इन गुणो की दृष्टि से भी आचार्य महाराज का जीवन महत्त्वपूर्ण था। सिंधु मे जैसे लहरे दृष्टिगोचर होती थीं। आचार्य महाराज सदृश आत्मा ही सम्यक्त्व तथा सयम के प्रसाद से स्वर्ग के सुखो को भोगकर वहाँ से चलकर मोक्ष प्राप्त करती है। मोक्ष-पाहुड मे कुदकुद स्वामी ने लिखा है-

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इदत्त।
लोयतिय-देवत्त तत्थ चुदा णिव्वुदि जति ॥७७॥

इस पचमकाल मे भी रत्नत्रयधारी मुनीश्वर अपनी आत्मा का ध्यान करके इद्र पद अथवा लौकान्तिक देव का पद प्राप्त करके वहॉ से चयकर मोक्ष पाते हैं।

अपूर्व जीवन

विचारक व्यक्ति आचार्य महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाले ८१० पृष्ठो वाले 'चारित्रक्रवर्ती' ग्रन्थ और इस 'आध्यात्मिक ज्योति' के माध्यम से उनके लोकोत्तर जीवन की एक सुमधुर झाकी प्राप्त कर करता है। यद्यपि वे गुरुदेव चले गए। अव उनका पुनर्दर्शन स्वप्न मे भी दुर्लभ हो गया फिर भी उनके जीवन की घटनाओं पर गभीरता पूर्वक दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि आचार्य शातिसागर महाराज कितने महान् थे, कितने तेजस्वी थे, कितने पवित्र थे, कितने जितेन्द्रिय थे कितने वडे परीषह-विजेता थे, कितने वडे सद्धर्म-प्रभावक विभूतिमान पुरुषसिह थे? उनकी छत्तीस दिन पर्यन्त सल्लेखना ने पापी, पतित हीनाचरणी खलराजो के अन्त करण पर भी उनकी पवित्रता तथा श्रेष्ठता की मुद्रा अकित कर दी। छत्तीस गुणवाले आचार्य परमेष्ठी की छत्तीस दिवसीय समाधि अलौकिकता पूर्ण थी।

सप्राण समयसार

उनकी सल्लेखना के पैंतीसवे उपवास के दिन मै उनके चरणो के समीप तीन घण्टे वैठा था। उस समय का दृश्य आज भी अन्त करण मे स्पष्ट रूप से अकित है। ऐसा लगता था कि मै जीवित रत्नत्रय के समीप वैठा हूॅ। सचेतन समयसार के दर्शन कर रहा हूॅ। अचेतन, पौद्गलिक के नहीं। अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय मे हिंसादि का पूर्ण त्याग करने वाले मुनीश्वर को समयसार स्वरूप लिखा है। उनके शब्द हैं-

हिसातोऽनृतवचनात्स्तेयादब्रम्हत. परिग्रहत.।
कात्स्न्यैकदेशविरतेश्चारित्रं जायते द्विविधम् ॥४०॥

निरत. कात्स्न्यनिवृत्तौभवति यति समयसारभूतोऽयम्।
यात्वेकदेशविरतिर्निरतस्तस्यामुपासको भवति ॥४१॥

हिसा, असत्यवचन, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का परिपूर्ण तथा आशिक त्याग से चारित्र दो प्रकार का होता है। पूर्णरीति से हिसा आदि का त्याग करने वाला दिगम्बर साधु समयसार स्वरूप है। जो हिसादि का एकदेश रूप त्याग करता है, उसे उपासक कहते है।

साध्य तत्त्व वीतरागता

जो लोग व्यवहार-निश्चय के द्वन्द्व मे उलझे रहते हे, उनको अमृतचन्द्र सूरि के ये शब्द प्रकाश प्रदान करेंगे, कि व्यवहार तथा निश्चय नाम की दो दृष्टियाँ पदार्थ के स्वरूप को ग्रहण करने के लिए हे। वे साधन-रूप हे, वे स्वय साध्य नहीं हे। उनका सम्यक् अववोध प्राप्त कर रागद्वेष की विषमता का त्याग कर आतरिक साम्यभाव अथवा मध्यस्थ वृत्ति की उपलब्धि जिनेन्द्र की तत्त्वदेशना का सार है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे लिखा है-

> व्यवहार-निश्चयौ य॰ प्रवुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थ ।
> प्राप्नोति देशनाया: स एव फलमविकल शिष्य: ॥८॥

व्यवहारनय तथा निश्चयनय इन दो पक्षों से परे समयसार हे। इस विषय मे कुदकुद स्वामी के समयसार के ये शब्द वडे मार्मिक हें-

> कम्मं वद्धमवद्ध जीवे एव तु जाण णयपक्खं।
> पक्खातिक्कतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४२॥

जीव मे कर्म वॅधे है अथवा नहीं वॅधे हें? इस प्रकार की दो दृष्टियो को नय पक्ष जानो। जो दोनो पक्षो के परे कहा गया है, वह समयसार है।

धर्म के सूर्य

मैंने आचार्य महाराज के चरणों के समीप अनेक वर्ष बैठकर उनका जीवन निकट से देखा है, उसका गहरा अध्ययन किया हे। मे तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि वे सचमुच रत्नत्रय धर्म के सूर्य थे। सूर्योदय के समक्ष नक्षत्र मालिका का अस्तित्व रहते हुए भी दर्शन नहीं होता, ऐसी ही स्थिति उन गुरुदेव के समक्ष अनेक आध्यात्मिक विभूति कहे जाने वालो की होती थी। वह ज्योति लोकोत्तर थी।

बाह्यार्थ परित्याग का हेतु

कुछ लोग गृहस्थावस्था मे रहते हुए और इन्द्रियो की दासता करते हुए मोह-विजेता वनने को तथा रागद्वेष रूप शत्रुओ को पछाडने का मधुर स्वर आलापते है, उनको गुणभद्रस्वामी के आत्मानुशासन मे प्रतिपादित ये शब्द ध्यान मे रखने चाहिये-

> रागद्वेषौ प्रवृत्ति स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम्।
> तौ च बाह्यार्थ-सबद्धौ तस्मात्ताञ्च परित्यजेत् ॥२३७॥

गग तथा द्वेष को 'पवृत्ति' शब्द मे सकीर्तित करत है उनक त्याग का 'निवृत्ति' कहते है। व गग-द्वेष वाह्य पदार्थों म सम्बन्धित है। इसस वाह्य पदार्थों का परित्याग कर।

इस आचार्य वाणी मे यह स्पष्ट हो जाता है कि धन, धान्यादि वाह्य पदार्थों का विना परित्याग किए जो गग-द्वेष के क्षय का स्वप्न देखते हैं, वे वास्तविक वीतगगता का साक्षात् नहीं स्वप्न मे भी नहीं प्राप्त कर सकत। इस प्रकाश म सर्व परिग्रह त्यागी, महायोगी, वालब्रह्मचारी, साधुगज, आचार्य शान्तिसागर महागज की विशिष्टता प्रत्येक विचारक मुमुक्षु के हृदय मे अकित हो जाती है।

मार्दव-मूर्ति

आचार्य महागज के चरणो के समीप वैठने पर ऐसा लगता था, कि हम जीवित धर्म के समीप वैठे है। वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की साक्षात् प्रतिमा लगते थे। जो धर्म की व्याख्या 'उत्तम खमादि-दहविहो-धम्मो' करते है वे आचार्यश्री को उत्तमक्षमा मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम तप, त्याग आकिचन्य तथा ब्रह्मचर्य रूप दशविध धर्म की मूर्ति रूप मे पाते थे। इतने महान् होते हुए भी वे अपने को सवसे छोटा साधु मानते थे। जव मै सन् १९५२ मे उनका चरित्र लिखने के उद्देश्य से उनसे कुछ प्रश्न पूछने गया था, तव उन्होंने कहा था, "मै सवसे छोटा साधु हूँ मेरा चरित्र लिखने मे अपना समय व्यय क्यो करते हो?" उनकी दृष्टि उन ऋद्धिधारी मुनीश्वरो पर रहा करती थी, जिनकी वे सर्वदा अभिवदना किया करते थे। ऐसी दृष्टि रहने से उनमे 'अहकार' का रोग नहीं पाया जाता था। आज जहाँ तत्त्व की वास्तव मे उपलब्धि से शून्य होते हुए भी अनेक व्यक्ति अपने को आत्मज्ञो का चूडामणि समझ अहकार-मूर्ति वनकर अविवेकी वर्ग द्वारा स्तुति पादार्चना आदि को प्राप्तकर अपने को कृतकृत्य अनुभव करते है वहाँ गुणराशि होते हुए भी आचार्य महाराज मार्दव मूर्ति थे।

आध्यात्मिक प्रहरी

वे इस परम सत्य को भली प्रकार जानते थे, कि मोक्षमार्ग का मूल भेद-विज्ञान है। इस महान् विद्या की प्राप्ति हेतु वे आत्मचितन के लिए प्रेरणा देते थे, तथा आध्यात्मिक, करुणामूर्ति-प्रहरी के रूप मे जीव के सयम-रत्न को चुराने वाले विषय-कषायो से सावधान रहने के लिए सदा सदाचार की ओर भी वे लोगो का ध्यान आकर्षित करते थे। उनका अनुभव महान् था, वे नरभव की दुर्लभता, अपूर्वता तथा महत्ता को पूर्णतया जानते थे,

साथ ही जीवन की क्षणिकता से भी वे अपरिचित नहीं थे। कवि ने ठीक ही कहा है -

आयु घटत है रातदिन ज्यो करोत ते काठ।
हित अपना जल्दी करो पडा रहे सब ठाट॥

इसलिए वे गुरुदेव अपने पास आने वालो को व्रतादि दान द्वारा उपकृत करते थे । उनका आत्मतेज तथा तपस्या का प्रभाव इतना अधिक था, कि उनके पास आने वाला भव्य जीव स्वयमेव उनसे कुछ-न-कुछ व्रत नियम लेता था।

व्रतों के उपदेश का हेतु

वे कभी-कभी कहते थे, "यह निकृष्ट काल है। महान् ज्ञानियो का अभाव है, जो वस्तु का मार्मिक स्वरूप समझाकर अनादि अविद्या को दूर करने मे मार्ग दर्शन करते। यदि तुमने व्रतो को धारण कर लिया, तो उससे देवरूप मे जन्म लेकर विदेह मे तीर्थंकर सीमधर भगवान के समवसरण मे पहुँचकर उनकी दिव्यध्वनि सुनकर आत्म-अनात्म का रहस्य समझ सकोगे। यदि असयमी की अवस्था मे मरण कर तुमने हीन पर्याय प्राप्त कर ली, तो तुम्हे कष्ट भोगना पडेगा।"

आश्चर्यप्रद व्यक्तित्व

आचार्य महाराज की वाणी मे जादू था। जहाँ छोटा सा भी नियम लेना असभव दिखता है, वहाँ उनके प्रभाव से सपूर्ण परिग्रह का त्याग करने वाले अनेक महामुनि दिखने लगे। श्रेष्ठ सयम की ओर लोगो का मन आकर्षित करने का अत्यन्त कठिन काम सरल हो गया। उन्होने उच्च मुनि परपरा की पुन प्राणप्रतिष्ठा की। उनके ही व्यक्तित्व का प्रभाव है, जो उनके स्वर्गवासी बनने के पश्चात् भी अनेक स्त्री-पुरुष उच्च सयम को स्वीकार कर मनुष्य जन्म को सफल करते हुए सर्व-साधारण का जीवन सुवास-सपन्न कर रहे है। चारित्र रूपी चक्र को सचालित करते हुए वे ऋषिराज धर्म के चक्रवर्ती होते हुए भी चारित्र चक्रवर्ती रूप मे दृष्टिगोचर होते थे।

प्रतिकूल वातावरण

वासनाओ पर विजय प्राप्त करना बडा कठिन काम है। महापुराण मे बताया है कि भरत चक्रवर्ती ने स्वप्न मे शुष्क वृक्ष देखा था। उसका फल भगवान ऋषभदेव ने यह कहा था -

"**पुंसां स्त्रीणां च चारित्रच्युतिः शुष्कद्रुमेक्षणात्।**"(७९, पर्व ४१) हे

भरत! तुमने जो स्वप्न मे सूखा वृक्ष देखा है, उससे यह सूचित होता है, कि पचमकाल मे भरतक्षेत्र के पुरुषो तथा स्त्रियो के चारित्र मे पतन होगा।

युग-निर्माता

वर्षा ऋतु मे यत्र तत्र जल का प्रवाह ही नयनगोचर हुआ करता है, इसी प्रकार आज जहाँ देखो वहाँ भ्रष्टाचार तथा असयम पूर्ण प्रवृत्ति दिखती है, ऐसे वातावरण मे सयम का भाव लोगो के अन्त करण मे अकित करना आचार्य महाराज की अपूर्व सामर्थ्य को सूचित करता है। उन्होने एक नवीन युग का निर्माण किया था। यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आचार्य महाराज ने भद्र परिणामी जीवो को आचार-विचार शुद्धि के क्षेत्र मे अद्भुत जागृति कराई। सैकडो वर्षो से गृहस्थ लोग मुनि जीवन को वर्तमान काल मे असभव मान बैठे थे। विद्वान् तथा कवि लोग अपनी रचनाओ मे हीन सहनन आदि का विचार किए बिना वज्रवृषभ सहननधारी चतुर्थकालीन मुनियो को दृष्टि-पथ मे रखकर मुनिजीवन को असभव सोचा करते थे। प्रतिमाधारी श्रावक का पद प्राप्त करना अत्यन्त कठिन बताया जाता था। गृहस्थो को यह पता नहीं था, कि कौन क्रियाएँ मुनिजीवन से सबध रखती हैं और किन क्रियाओ का पालन श्रावकाचार का अग है। दक्षिण प्रान्त मे कहीं-कहीं दिगम्बर मुनि थे, तो वे मूलगुणो का पालन भी नहीं जानते थे।

अभयवाणी

सयम के क्षेत्र की अद्भुत स्थिति थी। सदाचार के मार्ग मे ऐसी कटकाकीर्ण परिस्थिति मे आचार्य महाराज ने अपने जीवन तथा वाणी द्वारा भव्यो का अवर्णनीय कल्याण किया। उन्होने कहा, "घबडाते क्यो हो, यह पचमकाल का बालकाल है। अभी पचमकाल के केवल अढाई हजार वर्ष व्यतीत हुए हैं। शेष साढे अठारह हजार वर्ष पर्यन्त धर्म रहेगा। तब तक मुनिजीवन रहेगा। पचमकाल इक्कीस हजार वर्ष का भगवान ने कहा है। इस काल के अत तक मुनि पाए जायेगे, अतिम मुनि के अवधिज्ञान भी पाया जायेगा। ऐसा आगम का आदेश है। जो जीव दर्शन मोह के तीव्र उदय से आक्रान्त हैं, वे इन बातो मे श्रद्धा नहीं करते।"

आचार्य महाराज ने उपलब्ध विपुल ग्रथ राशि का खूब मनन-चितन किया था। बडे-बडे अभिमानी शास्त्री लोग उनके समीप आकर उनसे प्रकाश प्राप्त किया करते थे। आचार्य महाराज कहते थे "आगम कहता है पचमकाल के अततक मुनिधर्म रहेगा, इसके विपरीत जो श्रद्धान करता हुआ यह कहता फिरता है, कि इस काल मे मुनि नहीं हो

सकते, वह वास्तव मे मिथ्यात्वी है, क्योकि वह शास्त्र की आज्ञा के विपरीत कथन करता है।"

स्मरण योग्य कथन

आचार्य महाराज ने कहा था कि-"चतुर्थकाल मे हजार वर्ष तप करने पर जितनी निर्जरा होती है, उतनी निर्जरा इस हुण्डावसर्पिणी पचम काल मे एक वर्ष तपस्या द्वारा सम्पन्न होती है।"क्योकि आज तप करने मे महान् आत्मबल चाहिए।

इस सम्बन्ध मे जब मैने गुरुदेव से शास्त्राधार पूछा, तब उन्होने आचार्य देवसेन रचित भावसग्रह की यह गाथा बताई थी-

> वरिस-सहस्सेण पुरा जं कम्म हणइ तेण काएण।
> ते सपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे ॥१३१॥

पहले मुनि लोग हजार वर्ष तप द्वारा जो कर्मों की निर्जरा करते थे, वह आज इस हीन सहननयुक्त शरीर द्वारा एक वर्ष मे सम्पन्न करते हैं।

उक्त ग्रन्थ के ये शब्द भी आगम-प्रेमियो के स्मरणयोग्य हैं -

> संहणण अइणिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो।
> तहवि हु धीरा पुरिसा महव्वभरधरण-उच्छहिया ॥१३०॥

यह दु पम काल हे। इसमे सहनन अत्यन्त हीन होता है। मन की चचलता का ठिकाना नहीं है, फिर भी धैर्य सम्पन्न पुरुष महाव्रतो के भार को धारण करने मे उत्साहित होते हैं, यह आश्चर्य की बात है।

आचार्य महाराज ने इस सम्बन्ध मे 'पर-उपदेश-कुशल' पडित का काम न कर स्वय घोर तपस्या द्वारा यह बता दिया कि साहसी तथा श्रद्धालु आत्मा आज भी विश्व को चकित करने वाले श्रेष्ठ सयम की समाराधना कर सकता है। जिस युग मे पाप, असयम, भ्रष्ट आचार-विचार की वैतरणी बह रही हो, उसमे सयम तथा उज्ज्वल आचरण की गगा को प्रवाहित करना इन्हीं साधुराज के भगीरथ-प्रयत्न का सुफल है। यथार्थ मे उन्होने पचमकाल में चतुर्थकाल की झॉकी उपस्थित कर दी।

महान् उपकारी

आचार्य वीरसागर महाराज ने मुझसे कहा था - "आचार्य महाराज ने सयम के क्षेत्र मे अवर्णनीय कार्य किया। उन्होने जीवो का जितना उपकार किया उसका कथन

करना हमारी शक्ति के परे है।" बहुतों ने उनके दर्शन मात्र से प्रेरित हो श्रेष्ठ संयम लिया था। सकल संयमी महाप्रभावक साधु आचार्य पायसागर महाराज के जीवन की दिशा उनके दर्शनमात्र से बदली थी।

स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र (कोल्हापुर) में पायसागर महाराज ने कहा था-"मैं तो पापसागर था, व्यसनों में लीन था। पाप से छुडाकर मेरे गुरु ने मुझे पायसागर (क्षीरसागर) बना दिया।" सप्त व्यसन के साथ श्रेष्ठ नाटककार के व्यसन वाले विलासमूर्ति व्यक्ति का दिगम्बर तपस्वी साधु बनकर रत्नत्रयधर्म की प्रभावना करना तथा स्व-परहित करते हुए अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलकर पायसागर महाराज का समाधि-मरण करना इसी आध्यात्मिक ज्योति का अद्भुत प्रभाव था। आज अध्यात्मवादी बनकर प्रमादी जीवन की प्रेरणा दे स्वच्छन्द प्रवृत्ति का पोषण करने वाले भी जीव दिखाई पडते हैं, किन्तु उन लोगों के समक्ष जब भी आचार्य शान्तिसागर महाराज के सुश्रद्धा समन्वित तप पुनीत पुण्य जीवन की चर्चा की जाय, तो उनकी वही अवस्था हुए बिना न रहे, जो शृगाल की सिंह की ध्वनि सुनकर होती है।

आचार्य महाराज अध्यात्म के सूर्य थे। वे संयम के सिंह थे। उन्होंने अनेकान्तमयी धर्म की देशना द्वारा कितना कल्याण नहीं किया? युद्धभूमि में जाने वाले सैनिक के लिए वीर-गाथा अत्यन्त उत्साह प्रदान करती है, इसी प्रकार मोह के अखण्ड शासन के विरुद्ध, काम-क्रोध-तृष्णा रोग से जर्जरित जगत् के मोह के कुशासन को उच्छेद कर सम्यक् चारित्र की महिमा का प्रसार करने वाले चारित्र चक्रवर्ती साधुराज के उपकारों को स्मरण करता हुआ मुमुक्षु मानव महान् साहस, धैर्य, उत्साह तथा प्रेरणा को प्राप्त करता रहेगा।

इस युग में विज्ञापन का आश्रय पा तथा धनिकों की कृपा के बल पर अध्यात्म विद्या से अपरिचित असंयमी लोग भी महान् योगी, संत-शिरोमणि बनाए जाते हैं, उनके समक्ष आचार्य महाराज के जीवन की विविध प्रवृत्तियाँ लाई जाती हैं, तब उनकी वही स्थिति होती है, जो सूर्योदय होने पर अंधकार की होती है।

आचार्य महाराज का जीवन युग-युग तक जगत् को आध्यात्मिक प्रकाश तथा उज्ज्वल आचार के लिए प्रबल प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। वास्तव में, वे मोहान्धकार संकुल संसार के मध्य आध्यात्मिक ज्योति-स्वरूप अनुपम विभूति रहे। उनकी पावन स्मृति तथा उनकी दयामयी धर्मदेशना मुमुक्षुवर्ग को सदा कल्याणभाजन बनावेगी। उनका

अन्त वाह्य जीवन रत्नत्रय धर्म से परिपुष्ट था। वहिरात्मा की वात ही दूसरी, वडे योगीजन भी जिनके जीवन की श्रेष्ठता की गुण-गाथा गाते थे, वे साधुराज, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर महाराज स्वर्गीय निधि वन गए, फिर भी उनके समान उनकी पावन स्मृति भी अमर रहेगी, इसमे तनिक भी सदेह नहीं है।

नियमसार मे कुंदकुंद स्वामी ने कहा है, "सम्मत्तस्सणिमित्त जिणसुत्त " (गाथा ५३) जिनागम सम्यक्त्व की उत्पत्ति मे निमित्त कारण है। शास्त्र को साधु का नेत्र कहा है, "आगमचक्खू साहू " (प्रवचनसार)

राग, द्वेष, मोह, माया, मद, मत्सर, काम, क्रोधादि शत्रु जब साधक की आत्मा मे विकार उत्पन्न करने को तत्पर होगे, तब आचार्य शातिसागर जी के नाम तथा आदर्श का स्मरण आत्मा को अपार साहस, धैर्य तथा सामर्थ्य प्रदान करेगे।

शिखर जी पर उपदेश

श्रेष्ठ तीर्थ सम्मेदशिखर पर कहे गए उन निर्ग्रन्थ सद्गुरुदेव के ये मार्मिक शब्द चिरस्मरणीय रहेगे-"सयम पालन करने मे भय नहीं करना चाहिए। आत्मा कभी नहीं मरती। चारित्र को उज्ज्वल रखकर कभी भी मरना अच्छा है। चारित्र को मलिन बनाकर दीर्घजीवी वनना ठीक नहीं है।" उन्होने इस उपदेश के अनुसार आचरण करके यह स्पष्ट कर दिया, कि जीवन निधि की अपेक्षा सयम रत्न विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन ऋषिराज का दिव्यजीवन आचार्य पूज्यपाद के इन शब्दो की ओर समस्त विश्व का ध्यान आकर्षित करता हुआ प्रतीत होता है -

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वत.।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म-सग्रहः॥

— शरीर विनाशशील है, वैभव अल्पकाल स्थायी है, मृत्यु सदा समीप है, अत धर्म का सग्रह करना चाहिए।

शिक्षितो को उपदेश

उन्होने जहाँ सदाचार को प्रेरणा दी, वहॉ सद्विचार के लिए भी उनकी महान् देन रही है। शिक्षा के विषय में उनका कथन था, जो धोबी की तरह दूसरो के वस्त्र धोता फिरे और मलिनता का परित्याग न करे, ऐसा ज्ञानी बनना ठीक नहीं है। ज्ञानी का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने जीवन को सदाचार समलकृत भी बनावे।

शास्त्रदान

वे शास्त्र-दान हेतु बहुत प्रेरणा देते थे। उन साधुराज का कथन था "जिनागम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है। गरीब व्यक्ति तथा साधु सन्यासी पैसा खर्चकर शास्त्र को खरीद नहीं सकते। इससे समर्थ श्रीमानो को उपयोगी शास्त्रो को प्रकाशित कर मदिरो, त्यागियो आदि को बॉटना चाहिए"। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर गुरुदेव के उपदेश मे स्थापित सस्था ने सिद्धान्त शास्त्रो का उद्धार कराने के सिवाय अनगार धर्मामृत, समयसार, उत्तरपुराण, मूलाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि बडे-बडे ग्रथों को छपाकर एव बिना मूल्य देकर अपूर्व ज्ञान-प्रसार का कार्य किया।

आचार्य महाराज सदा अनेकान्त दृष्टि का पोषण करते रहे है। वे स्याद्वाद रूपी उपवन की रक्षा करने वाले श्रुतभक्त सत्पुरुष थे। उनकी महिमा का जितना वर्णन किया जाय उतना थोडा है। यथार्थ मे वे गुरुदेव ससार सिधु मे डूबते हुए जीवो की रक्षा करने वाले नाविक थे। वे यद्यपि स्वर्गीय निधि बन गए, फिर भी उनकी पवित्र स्मृति मुमुक्षु वर्ग का अपार कल्याण करती रहेगी। उच्च समाधिमरण द्वारा अपने दुर्लभ नर-जन्म को कृतार्थ करने वाले परम गुरु क्षपकराज शान्तिसागर महाराज के पुण्य चरणो को शतश प्रणाम हैं। जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है -

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धातवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि संन्यसनसमन्वित मरणम् ।।

-हे देव! जहॉ अनेक साधुओ का समुदाय विद्यमान हो, ऐसे आचार्य के समीप अथवा जिन प्रतिमा के समीप अथवा जहॉ सिद्धान्त रूपी समुद्र की पुण्य घोषणा श्रवणगोचर होती हो, ऐसे स्थानो मे जन्म-जन्म मे मेरे समाधि सहित मरण हो।

कामना

समाहिमरण होहु मज्झ।
मुझ को समाधिमरण प्राप्त हो।

आचार्य महाराज का अंतिम अमर संदेश

परम पूज्य आचार्य श्री शातिसागर महाराज ने कुथलगिरि मे आमरण अनशन के २६ वें दिन तारीख ८ सितम्बर को शाम के ५ बजे मराठी मे मानव कल्याण के लिए जो उपदेश किया, वह रिकार्ड किया जा चुका है। उसमे उन्होने कहा था—

मानव कल्याण का आधार ' सत्य और अहिसा

"ॐ नम सिद्धेभ्य । पच भरत, पच ऐरावत के भूत भविष्यत् काल सम्बन्धी भगवानो को नमस्कार हो। तीस चौबीसी भगवानो को, श्री सीमन्धर आदि तीर्थकर भगवानो को नमस्कार हो। ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त तीर्थकरो के १४५२ गणधर देवो को नमस्कार, चारण ऋद्धिधारी मुनियो को नमस्कार, चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरो को नमस्कार। अन्तकृतकेवलिभ्यो नमोनम । प्रत्येक तीर्थकर के तीर्थ मे होने वाले १०-१० घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरो को नमस्कार हो।

ग्यारह अग चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महासमुद्र है। उसका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं है, उसके ज्ञाता केवली श्रुतकेवली भी अब नहीं हैं। उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी, सरस्वती 'श्रुत देवी' अनन्त समुद्र तुल्य है। उसमे कहे गये जिन-धर्म को जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है। उसको अनन्त सुख मिलता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा नियम है। एक अक्षर ॐ है। उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवो का कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखर से स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शन ने उच्च पद पाया। सप्त व्यसनधारी अजन चोर स्वर्ग गया है। कुत्ता महा नीच जाति का जीव जीवन्धरकुमार के णमोकार मन्त्र के उपदेश से देव हुआ। इतनी महिमा जैनधर्म की है, किन्तु (श्वास लेते हुए) जैनियो की अपने धर्म मे श्रद्धा नहीं है।

जीव और पुद्गल पृथक् है

अनन्त काल से जीव पुद्गल से भिन्न है, यह सब लोग जानते हैं पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है, जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड है, इसमे ज्ञान नहीं है, ज्ञान-दर्शन-चैतन्य जीव मे है। स्पर्श, रस, गध, वर्ण, पुद्गल मे है, दोनो के गुण, धर्म अलग-अलग हैं। पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष से पुद्गल का अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही होता है, पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पच पापो मे पडा है। दर्शनमोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिए? सुख-प्राप्ति की इच्छा है, तो दर्शनमोहनीय का घात करो। सम्यक्त्व धारण करो । चारित्रमोह का नाश करो। सयम धारण करो। दोनो मोहनीय का नाश करो। आत्मा का कल्याण करो। यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव ससार मे फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो। सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समयसार, नियमसार, पचास्तिकाय, अष्टपाहुड, गोम्मटसार आदि बडे-बड़े ग्रन्थो मे है, पर इन पर श्रद्धा कौन करता है? आत्म-कल्याण वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नम ।

कर्म-निर्जरा का साधन

तुम्हे क्या करना चाहिए? दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्मचिन्तन से दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मो की निर्जरा भी आत्म-चिन्तन से होती है।

दान से, पूजा से, तीर्थयात्रा से पुण्यबन्ध होता है। हर धर्म कार्य से पुण्य का बन्ध होता है, किन्तु कर्मनिर्जरा का साधन आत्मचिंतन है। केवलज्ञान का साधन आत्मचितन है। अनत कर्मो की निर्जरा का साधन आत्मचितन है। आत्मचिंतन के सिवाय कर्म-

आचार्यश्री अन्तिम अमर सन्देश देते हुए

निर्जरा नहीं होती है। कर्मनिर्जरा बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता। क्या करे? शास्त्रो मे आत्मा का ध्यान उत्कृष्ट ६ घड़ी, मध्यम ४ घड़ी और जघन्य दो घड़ी कहा है। कम-से-कम १०-१५ मिनट ध्यान करना चाहिए। हमारा कहना यह है कि कम-से-कम ५ मिनट तो आत्मचितन करो। इसके बिना सम्यक्त्व नहीं होता। सम्यक्त्व के बिना ससार-भ्रमण नहीं छूटता, जन्म-जरा-मरण नहीं छूटते। सम्यक्त्व तथा सयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर ६६ सागर यहाँ रहोगे। चारित्रमोहनीय का क्षय करने के लिए सयम धारण करना चाहिए, इसके बिना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं होता। सयम धारण करने से डरो मत, सयम धारण किये बिना सातवॉ गुणस्थान नहीं होता और सातवे गुणस्थान के बिना उच्च आत्म अनुभव नहीं होता। वस्त्र-धारण मे सातवॉ गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं

ॐ सिद्धाय नम । समाधि दो प्रकार की है, एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि । गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी, अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिए मुनिपद पहले धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो, तो शुद्ध सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। आत्म-अनुभव के सिवाय सम्यक्त्व नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है, फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व आत्म-अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्पसमाधि मुनिपद धारण करने पर होती है। सातवे गुणस्थान से बारहवे पर्यन्त निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवे गुणस्थान मे केवलज्ञान होता है ऐसा शास्त्र मे कहा है। यह विचार कर डरो मत कि क्या करे? सयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, सयम और सम्यक्त्व के बिना कल्याण नहीं है। पुद्गल

और आत्मा भिन्न हैं, यह ठीक ठीक समझो । तुम सामान्य रूप से जानते हो, भाई-बन्धु, माता-पिता पुद्गल से सम्बन्धित हैं, उनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है । जीव अकेला है, बाबा (भाइयो) । जीव का कोई नहीं है । जीव भव-भव मे अकेला जावेगा । देवपूजन, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान ये धर्मकार्य हैं । असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये ६ कर्म कहे गये हैं । इनसे होने वाले पापो को क्षय करने को उक्त धर्मक्रिया कही हैं, इनसे मोक्ष नहीं है । मोक्ष किससे मिलेगा? केवल आत्म-चितन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता ।

जिनवाणी का माहात्म्य

भगवान की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो । इसके एक-एक शब्द से मोक्ष पा सकोगे । इस पर विश्वास करो । सत्यवाणी यही है, एक आत्मचितन से सब साध्य है और कुछ नहीं है। बाबा। (भाई) राज्य, सुख, सम्पत्ति, सतति सब मिलते हैं, मोक्ष नहीं मिलता है । मोक्ष का कारण एक आत्म-चितन है । इसके बिना सद्गति नहीं होती है ।

साराश — 'धर्मस्य मूल दया' प्राणी का रक्षण दया है । जिनधर्म का मूल क्या है? 'सत्य और अहिसा ।'मुख से सब सत्य अहिसा बोलते हैं, मुख से भोजन, भोजन कहने से क्या पेट भरता है? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए । बाकी सब काम होगे । सत्य-अहिसा पालो । सत्य मे सम्यक्त्व है । अहिसा मे दया है । किसी को कष्ट नहीं दो । यह व्यवहार की बात है । सम्यक्त्व धारण करो, सयम धारण करो । इसके बिना कल्याण नहीं होता ।' (दिनाक ८-९-५५ समय ५-१० से ५ ३२ शाम ।)

卐 卐 卐